भारत में आर्थिक नियोजन

(Economic Planning in India)

लेखकगण

डॉ० के० सी० भंडारी, एम० कॉम०, पी-एच० डी०,

भूतपूर्व सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, हालकर कालेज, इन्दौर ;

भूतपूर्व अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, माधव कालेज, उज्जैन ,

भूतपूर्व अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई कालज, ग्वालियर ,

प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, शाजापुर, (मध्य प्रदेश)

तथा

एस० पी० जौहरी, एम० कॉम०,

व्याख्याता, वाणिज्य विभाग,

महारानी लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर ।

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

प्रकाशक व पुस्तक विक्रेता, आगरा ।

मूल्य रु० १०)

मूल्य : दस रुपया
द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण
१९६२

मुद्रक मॉडर्न प्रेस, आगरा।
प्रकाशक : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

प्रस्तावना

[द्वितीय संस्करण]

भारत मे आर्थिक नियोजन के द्वितीय सस्करण को पाठको के सम्मुख रखते हुये अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत सस्करण मे समस्त अध्यायो को पर्याप्त रूप से सशोधित किया गया है एवं भाषा सम्बन्धी जटिलता एव अशुद्धता को पूर्णतया हटाने की कोशिश की गयी है। इसके उपरान्त अर्ध-विकसित राष्ट्रो की समस्याओ का इस सस्करण म अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है। विदेशो के आर्थिक नियोजन के सचालन एव कार्यक्रम को दो अतिरिक्त अध्यायो मे लिखा गया है। भारत की दसवर्षीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था की सफलताओ के वर्णन का भी समावेश किये जाने की पूर्ण चेष्टा की गयी है। हमे अत्यन्त प्रसन्नता है कि प्रथम सस्करण कुछ ही महीनो मे समाप्त हो गया और हमे पूर्ण आशा है कि यह सस्करण अर्थशास्त्र एव वाणिज्य के क्षेत्र मे अपने विषय पर स्नातक एव स्नातकोत्तर कक्षाओ के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। आर्थिक नियोजन मे दिलचस्पी लेने वाली जनता के लिये भी यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय बनेगा, ऐसी हमारी धारणा है।

द्वितीय संस्करण की रचना मे हमारे विद्यार्थी श्री मुरारीलाल गुप्ता एव श्री जी० डी० बसल ने जो सहायता दी है, इसके लिये हम उनके आभारी हैं।

गणराज्य दिवस,
दिनाक २६ जनवरी, १९६२।

—डॉ० के० सी० भण्डारी
एस० पी० जौहरी

विषय-सूची

भाग १—नियोजन के सिद्धान्त

भाग २—विदेशों मे आर्थिक नियोजन

भाग ३—भारत मे आर्थिक नियोजन

तालिका विवरण

भाग १

नियोजन के सिद्धान्त

अध्याय १

विषय प्रवेश

[नियोजन का परिचय, नियोजन का प्रारम्भ, नियोजन की विचारधारा का महत्व, नियोजन एवं सरकारी हस्तक्षेप, नियोजन के अन्तर्गत स्वतन्त्रता, नियोजित एवं अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना]

नियोजन का परिचय

आधुनिक युग अतिशय तीव्र प्रतियोगिता का युग, यत्रो के प्रयोग द्वारा अत्यधिक निर्माण का युग, विज्ञान के प्रगति एव विकास के लहराते यौवन का युग, अन्तर्महाद्वीपीय प्रेक्षरणास्त्रो का युग, कृत्रिम उपग्रह के माध्यम से प्रकृति-विजय का युग, विध्वसकारी अणु एव उद्‌जन बमो का युग, मानव की सभ्यता की रक्षा एव शान्ति के लिए बिलखते-तडफते प्राणो का युग—जीवन के हर क्षेत्र मे, प्रत्येक चरण मे, प्रत्येक दिशा मे नियोजन का युग है। विश्व का जो परिवर्तित रूप आज मानवता का विकराल आनन प्रस्तुत कर रहा है, वह नियोजन का वरदान है। विश्व की आर्थिक-व्यवस्था की धमनियो मे अर्थ नहीं, नियोजन प्रवाहित है। वास्तव मे प्रकृति स्वय इतनी नियोजित है कि मनीषियो एव विद्वानो ने अकिंचन-सी अनियमितता को भूकम्प तथा यदाकदा प्रलय की भयावह संज्ञाएँ प्रदान कर दी है। चाहे मानव प्रकृति पर कितनी भी विजय प्राप्त करे, वह रहेगा प्रकृति का दास ही, किन्तु एक बुद्धिमान दास, प्रकृति का सच्चा सपूत जिसने योजना या नियोजित-व्यवस्था को अपने जीवन का अंग ही नहीं अपितु जीवन ही मान लिया है। आज प्रश्न यह नहीं है कि नियोजन कहाँ-कहाँ होता है, प्रत्युत प्रश्न यह है कि नियोजन कहाँ नहीं होता।

आचार्य अपने विद्यार्थियो को किसी विषय के अध्ययन करने के तरीके बताते समय व्यवस्थित अध्ययन को अधिक महत्व देता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अपनी आय को—जो सीमित है, विभिन्न इच्छाओ की जो असीमित हैं—पूर्ति पर व्यय करने से पूर्व अपने मस्तिष्क मे कुछ विचारो को जन्म देता है जो नियोजन का प्रारूप है। इस नियोजन मे ज्ञात व अज्ञात सभी कठिनाइयों और

सुविधाओं को ध्यानावस्थित कर आय को विभिन्न व्ययों पर वितरित करना होता है। आय का वितरण, आय की सीमा और इच्छाओं की निस्सीमता के कारण, इच्छाओं की तीव्रता अथवा प्रमुखता के आधार पर होना चाहिए अन्यथा अत्यावश्यक इच्छाओं की अपूर्ति और कम आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति अवश्यम्भावी है जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता को मानसिक उद्वेलन तथा शारीरिक कष्ट हो सकता है। साथ ही अधिक आय को व्यवस्थित रूप से तथा चतुरता से व्यय न करने से साधना का दुरुपयोग होता है जो दीर्घकाल म कष्टदायक सिद्ध होता है। इस प्रकार नियोजन द्वारा सम्भाव्य परिस्थिति के प्रादुर्भाव के पूर्व ही उसकी निवारण व्यवस्था की जाती है। "कठिनाइयों की वृद्धि पर प्रतिबन्ध लगाने अथवा उनके भार एव तीव्रता को कम करने के लिये की गयी पूर्व व्यवस्था ही नियोजन है।"

जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्ति हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रम की शरण लेता है, ठीक उसी प्रकार एक राष्ट्र को भी अपने सर्वांगीण विकास के लिए नियोजन की सहायता लेनी पडती है। "नियोजक को नियोजन के उद्देश्य बताना, उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नीति निर्धारित करना और विभिन्न नियन्त्रणों को, जो कि चुने हुए लक्ष्यों की ओर प्रगति करने के लिए वाञ्छनीय हैं, निश्चित करना आवश्यक है। यह लक्ष्य ऐसे वर्ग-रहित समाज की स्थापना करना हो सकता है जिसमें वस्तुओं का उचित वितरण हो, साधनो का अपव्यय न हो, युद्ध के लिए साधनों का एकत्रीकरण अथवा स्वाधिकार वर्गों को सहायता प्रदान करना हो सकता है।"[1]

नियोजन का प्रारम्भ

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि नियोजन का जो विस्तृत क्षेत्र आज हमारे सम्मुख उपस्थित है, उसकी आयु ५० वर्ष से अधिक नहीं है। आधुनिक युग में संसार के सभी राष्ट्रों में नियोजन किसी न किसी रूप में प्रयोग में लाया जाता है। रूस में नियोजन की आश्चर्यजनक सफलताओं के पूर्व नियोजन का उपयोग केवल सीमित उद्देश्यों के लिए ही किया जाता था, विशेषकर युद्ध के समय में, युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण हेतु तथा प्राकृतिक सकटों के निवारणार्थ।

1. "Planners necessarily have to suggest objectives, policies to achieve them, and various checks to assure that progress is being made towards the selected goal This goal may be a class-less society with fair distribution of goods and non wastage of resources or it maybe a mobilisation of resources for war and for favouring the privileged class"
(Seymour E Harris, *Economic Planning*, p 13)

आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए नियोजन का प्रयोग शान्ति-काल मे सर्वप्रथम रूस द्वारा ही किया गया। योरोपीय देशो मे "स्वतन्त्र साहस" (Free Enterprise) का बोलबाला था। योरोपीय तथा अमेरिकी देशो मे "स्वतन्त्र साहस" की नीतियो (Laissez Faire Policies) द्वारा उत्पादन म वृद्धि भी हुई थी। स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन तथा उपभोग पर शासकीय नियन्त्रण अत्यन्त सीमित होता है तथा सरकार विपणि, उत्पादन तथा उपभोग पर अदृश्य नियन्त्रण रखता है अथवा माँग तथा पूर्ति के नियमो के अनुसार अर्थ-व्यवस्था सचालित की जाती है। रूस ने नियोजित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना की और पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की तुलना म अधिक उत्पादन के लक्ष्यो को अत्यन्त न्यून अवधि मे प्राप्त कर ससार के अर्थशास्त्रियो का ध्यान नियोजन की ओर आकृष्ट किया।

सन् १६२८ ई० के पश्चात् रूस ने लगातार तीन पचवर्षीय योजनाओ की घोषणा की और इन योजनाओ द्वारा रूस के उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई, जबकि अमेरिकी, ब्रिटिश तथा फ्रासीसी अर्थ-व्यवस्था मे मूल्यो के उतार-चढाव की उपस्थिति ने उत्पादन को सीमाबद्ध कर रखा था। "जिज्ञासु मस्तिष्को ने पश्चिम के स्थान पर पूर्व की ओर देखना प्रारम्भ कर दिया। रूस की उत्पादन तथा औद्योगीकरण के क्षेत्र मे सफलताएँ महत्वपूर्ण थीं। कभी भी किसी देश ने इतने कम समय म पिछड़े हुए कृषिप्रधान राष्ट्र को एक आधुनिक औद्योगिक शक्ति मे परिवर्तित होने का अनुभव नहीं किया था।"[१]

आर्थिक नियोजन की विचारधारा का महत्व—आर्थिक नियोजन की विचारधारा मे अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो पर सरकारी अधिकार एवं नियन्त्रण निहित रहता है और इसके द्वारा जानबूझ कर निर्धारित किये गये लक्ष्यो की पूर्ति सम्भव होती है। इस विचारधारा को बीसवी शताब्दी में निम्नलिखित घटको ने पुष्टि प्रदान की है—

(१) **विवेकपूर्ण विचारधारा (Rationalized outlook)**—इसके प्रादुर्भाव स विवेक एव विज्ञान की तुला पर ठीक उतरने वाले विचारो को स्वीकृति प्रदान करने की प्रवृत्ति का विस्तार हुआ। वैज्ञानिको एव तान्त्रिक विशेषज्ञों ने ऐसे

1. " inquiring minds began to look eastward rather than westward as they had in the twenties Russian successes were striking nevertheless in the rise of output of productivity and in the rate of industrialisation No country had ever experienced so rapid a transformation from a backward agricultural state to a modern industrialized power " (S E. Harris, *Economic Planning*, pp 14-15)

राज्य की स्थापना को महत्व दिया जो कि एक मशीन के समान निरन्तर देश के साधनो का अधिकतर सतोष के लिये उपयोग कर सके। देश के उत्पादक साधनो को इस प्रकार सगठित किया जा सके कि जिससे समाज का अधिकतर हित हो। वास्तव मे विवेकीकरण जब देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को आच्छादित कर लेता है तो इस व्यवस्था को आर्थिक नियोजन कहा जाता है। विवेकीकरण से प्रतिस्पर्धा के दोषो को दूर किया जाता है और उत्पादन अनुमानित माँग के अनुसार ही किया जाता है। ठीक इसी प्रकार नियोजन द्वारा आर्थिक-व्यवस्था मे स्थिरता लाने के लिये उत्पादन नियोजन के लक्ष्यो के आधार पर निर्धारित किया जाता है। विवेकीकरण द्वारा श्रमिको मे अधिकतम कार्यक्षमता उत्पन्न होती है। कच्चे माल, मशीनो तथा श्रम के अपव्यय को रोका जा सकता है। आर्थिक नियोजन द्वारा भी प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था के अपव्यय को रोका जाता है। विवेकीकरण के समय ही आर्थिक नियोजन मे नवीनतम मशीनो के उपभोग तथा अधिकतम तांत्रिक कायक्षमता को महत्व प्राप्त होता है। इस प्रकार विवेकीकरण की विचारधारा मे आर्थिक नियोजन के विचार को पुष्टि प्रदान की है।

(२) समाजवादी विचारधारा—इसके विस्तार ने आर्थिक नियोजन के विस्तार एवं विकास मे महत्वपूर्ण सहयोग दिया है और आधुनिक युग मे आर्थिक नियोजन समाजवाद का अभिन्न अग बन गया है। यद्यपि समाजवाद की विचारधारा मार्क्स द्वारा चौथी शताब्दी (B C) मे प्रस्तुत की गयी परन्तु बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक यह केवल सिद्धान्त मात्र ही समझी जाती थी।

समाजवाद ने अब व्यवहारिक राजनीति का रूप ग्रहण किया है, और इसे आधुनिक युग मे सभी राष्ट्रो मे मान्यता प्राप्त होने लगी है। "समाजवाद समाज के ऐसे आर्थिक सगठन को कहते हैं जिसमे उत्पादन के भौतिक साधनो पर समस्त समाज का अधिकार होता है और जिनका सचालन ऐसे सगठनो द्वारा जो समाज के प्रतिनिधि हो और समाज के प्रति उत्तरदायी हो, एक सामान्य योजना के अनुसार किया जाता है। इसम समाज के समस्त सदस्यो को समाजीकृत एव नियोजित उत्पादन के लाभो मे समान हित प्राप्त करने का अधिकार होता है।"[1] इस परिभाषा मे समाजवाद के सामाजिक पहलू को विशेष

1. Socialism is an economic organisation of Society in which the material means of production are owned by the whole community and operated by organs representative of and responsible to the community according to a general plan, all members of the community being entitled to benefits from the results of such socialised planned

(Contd next page)

महत्व दिया गया है जिसके द्वारा देश की राष्ट्रीय आय के समान वितरण का आयोजन किया जाता है। ऐसी व्यवस्था मे उत्पादक साधनो का केन्द्रीय अधिकारी के निश्चयो के अनुसार किया जाता है। सन् १८७५ से १९२५ तक समाजवाद का अर्थ उत्पादन के साधनो पर सामाजिक अधिकार समझा जाता था परन्तु अब इसे नियन्त्रित उत्पादन कहा जाता है।

समाजवाद के निम्नलिखित तीन मुख्य अंग हैं—

(१) उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार।

(२) आर्थिक नियोजन।

(३) समानता।

समानता मे तीन घटको को सम्मिलित किया जाता है (अ) धन के वितरण मे समानता (ब) आर्थिक अवसरो की समानता (स) आर्थिक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि की समानता।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही समाजवाद का महत्व बढने लगा और समाजवाद के साथ-साथ आर्थिक नियोजन भी विख्यात होने लगा। जर्मनी के १९१९ के चुनाव मे समाजवादी पक्षो की शक्ति बढती हुई प्रतीत हुई और The National Socialist German Labour Party जो १९२३ मे स्थापित की गयी थी १९३३ के चुनाव मे विजयी हुई। इसी प्रकार ब्रिटेन मे १९२४ के चुनाव म Labour Party को लगभग एक तिहाई वोट प्राप्त हुये। १९३५ मे Labour Party के वोटो की सख्या और भी बढ गयी और १९४५ मे समाजवादियो ने बहुमत से अपनी सरकार बनायी। ब्रिटेन की लेबर सरकार ने युद्धकाल के विस्तृत सरकारी नियन्त्रणो को जारी रखना उचित समझा और इस प्रकार आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तो को मान्यता प्राप्त हुई। सन् १९३६ मे फ्रास मे भी लगभग ⅓ डिप्युटीज (Deputies) समाजवादी थे। रूस न भी समाजवादो एव साम्यवादी का विकसित रूप प्रस्तुत किया है। इटली, बलगेरिया, आस्ट्रेलिया, हगरी, जेकोस्लोवेकिया, नार्वे, पोलेन्ड आदि अन्य देशो में भी समाजवाद के प्रति झुकाव है। पूर्व मे भारत, चीन सयुक्त अरब गणराज्य आदि देशो मे भी समाजवाद एव समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना के प्रयत्न जारी हैं। इस प्रकार समाजवाद की विचारधारा के व्यवहारिक महत्व हो जाने से आर्थिक नियोजन की विचारधारा को पुष्टि प्राप्त हुई है।

(३) राजनैतिक अथवा राष्ट्रीय विचारधारा—नियोजन द्वारा साधनों

production on the basis of equal rights."
(Dickinson, *Economics of Socialism*, p 11.)

एव लक्ष्यो मे समन्वय सुविधापूर्वक स्थापित किया जा सकता है। इसमे निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये समन्वित प्रयास सम्भव होते हैं। इसके द्वारा आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण सम्भव होता है। राजनीतिज्ञ एव राष्ट्रवादी इसका उपयोग अपने राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिये कर सकते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे कुछ राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति सदैव निहित होती है। राष्ट्र की सुरक्षा का प्रबन्ध नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अत्यधिक सुलभ होता है, इसलिये युद्धकाल मे आर्थिक नियन्त्रणो एव शक्तियो के केन्द्रीकरण का उपयोग होता है जो आर्थिक नियोजन के मुख्य अग है। हिटलर ने जर्मनी म नियोजित अर्थ व्यवस्था का सचालन इस प्रकार किया कि विभिन्न राष्ट्रो पर साम्राज्य स्थापित कर सके। सकटकाल म नियोजन के अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ और आर्थिक नियोजन का जो स्वरूप हम देख रहे हैं, यह सकट काल की ही देन है। प्रारम्भ मे आर्थिक नियन्त्रण सकटकाल की एक तान्त्रिकता थी परन्तु अब इस तात्रिकता का उपयोग आर्थिक नियोजन के नाम म शान्तिकाल मे आर्थिक विकास के लिये किया जाने लगा है।

इस प्रकार राष्ट्रवादियो, राजनीतिज्ञो तथा वैज्ञानिको न आर्थिक नियोजन की कला को ऐसी तान्त्रिकता के रूप म महत्व प्रदान किया जिसके द्वारा राष्ट्र के उपलब्ध एव सम्भावित साधनो मे अधिकतर आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। समाजवादियो के दूसरी ओर इस तान्त्रिकता को सामाजिक एव आर्थिक समानता स्थापित करने का मुख्य यन्त्र बताया।

सन् १९३० से १९४० के आर्थिक नियोजन का महत्व राष्ट्रीय विचारधारा के कारण बढा जबकि सन् १९५० से १९६० तक वैज्ञानिक एवं तात्रिक विचार-धाराओ का जोर रहा। इस विचारधारा ने प्रजातान्त्रिक देशो को विशेषरूप से प्रभावित किया जिसके कारण प्रजातान्त्रिक देशो मे आर्थिक नियोजन को स्थान प्राप्त हुआ है।

(४) प्रथम एव द्वितीय महायुद्ध—प्रथम एव द्वितीय महायुद्धो मे विध्वस के कारण अधिकतर राष्ट्रो को अपनी अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण की आवश्यकता प्रतीत हुई। युद्ध मे वह देश ही विजयी हो सकता है जो अपनी अर्थ व्यवस्था नियोजित ढग से सचालित करता और राज्य की इच्छानुसार राष्ट्र के समस्त साधनो को युद्ध मे विजय प्राप्त सम्बन्धी कार्यक्रमो मे लगाया जा सके। युद्धकाल मे वस्तुओ और सेवाओ की पूर्ति शीघ्रातिशीघ्र करने की आवश्यकता होती है।

इन आवश्यकता पूर्ति हेतु प्रतिस्पर्धी अर्थ-व्यवस्था मे आवश्यक समायोजन दीर्घकाल मे ही सम्भव होते हैं जबकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था को राज्य जिस ओर

चाहे शीघ्र ही प्रवाहित कर सकता है। इस प्रकार युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे उचित समय के अन्दर को जा सकती है। युद्धकाल मे निजी व्यवसायो को जोखिम की मात्रा अत्यधिक होती है और वह नवीन उद्योगो एव व्यवसायो की स्थापना करने तथा पुराने व्यवसायो का विस्तार करने की जो जोखिम होती है, उसे सुलभता से अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति मे युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के हेतु सरकारी क्षेत्र का विस्तार करना अनिवार्य हो जाता है जिसे नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सुलभतापूर्वक किया जा सकता है।

(५) आर्थिक कठिनाइयाँ (Economic Crisis)—आर्थिक उच्चाव चाव मे पूँजीवाद की विशेषता द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयो का निवारण करने हेतु राजकीय हस्तक्षेप को आवश्यकता होती है। जर्मनी मे सन् १६२६ की मन्दी के पश्चात् जर्मन अर्थ-व्यवस्था को बडी क्षति पहुँची। इसका निवारण करने के लिये जर्मन सरकार ने मुद्रा सकुचन (Deflationary Policy) का अनुसरण किया। सयुक्त राज्य अमेरिका में रूजवेल्ट सरकार को सन् १६३३ की मन्दो का सामना करते समय यह ज्ञात हो गया कि यह मन्दी अनियोजित अर्थ-व्यवस्था का परिणाम है और इसीलिये राज्य ने अर्थ-व्यवस्था मे स्थिरता लाने के हेतु बहुत सी कार्यवाहियो का अनुसरण किया। मुद्रा स्फीति, मुद्रा प्रसार, मन्दी, मूल्यो की वृद्धि आदि की कठिनाइयो को दूर करने एव उनकी उपस्थिति को रोकने के लिये आर्थिक नियोजन एक शक्तिशाली अस्त्र का रूप ग्रहण कर सकता है।

(६) एकाधिकार (Monopoly)—सन् १६२६ की विश्वव्यापी मन्दी के पश्चात् ससार भर में सामूहीकरण का दौरदौरा हुआ। व्यवसायो ने यह विचार किया कि मन्दी का सबसे बडा कारण उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा है और इस प्रतिस्पर्धा को दूर करने के लिये प्रन्यास (Trusts), पार्षद् (Cartels), एकीकरण (Amalgamation) आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था मे स्थिरता लाने के हेतु एकाधिकार प्राप्त करने की प्रवृत्ति सामान्य हो गयी। परन्तु इस निजी एकाधिकार की प्रवृत्ति का आधार केवल व्यवसाइयो का हित और ग्राहक-उपभोक्ता तथा सामान्य जनता के हितो को कोई स्थान नहीं था। ऐसी परिस्थिति मे विभिन्न देशो की सरकारो ने इस एकाधिकार की प्रवृत्ति का पूर्ण लाभ उठाने के हेतु इसे सामान्य जनहित का एक औजार बना लिया और विभिन्न देशो मे अर्थ-व्यवस्था के अनेक क्षेत्रो मे सरकारी एकाधिकार स्थापित किये जाने लगे जिनका अन्तिम लक्ष्य केवल लाभोपार्जन न होकर सामान्य जनता का हित था। सरकारी एकाधिकार आर्थिक

नियोजन का मुख्य अग होने के कारण आर्थिक नियोजन के विस्तार मे सहायक सिद्ध हुआ। जर्मनी मे सरकारी हस्तक्षेप मे नियन्त्रण की आधारशिला निजी पार्षदो (Private Cartels) ने डाली थी।

(७) तांत्रिक प्रगति—(Technological Advancement)—तात्रिक प्रगति के फलस्वरूप अधिक उत्पादन, श्रमिको की वास्तविक आय में वृद्धि तथा पूंजी-निर्माण की गति मे वृद्धि होती है। रोजगार, बचान वृद्धि एवं विनियोजन मे भी वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था के लाभो को सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिये अर्थ-व्यवस्था पर सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक होता है। प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था का दिन प्रतिदिन समायोजन करना अत्यन्त आवश्यक होता है जिसे एक केन्द्रीय अधिकारी ही कर सकता है। उन्नतिशील अर्थ-व्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण न होने के फल-स्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन, निजी सामूहीकरणो का प्रादुर्भाव आदि का भय रहता है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो में नवीन व्यवसायो की स्थापना के हेतु पूंजी उपलब्ध करना भी कठिन होता है क्योकि इन देशो मे पूंजी शर्मीली होती है। इस परिस्थिति मे बडी औद्योगिक इकाइयां सरकारी क्षेत्र मे ही स्थापित की जा सकती हैं।

(८) राजकीय वित्त (Public Finance)—प्रथम महायुद्ध काल में सरकारो के सुरक्षा व्यय मे अत्यधिक वृद्धि हुई और नवीन करो को लगाया गया तथा पुराने करो की दर मे वृद्धि हुई।

युद्धकाल मे सरकारी व्यय, कर एव सरकारी ऋण (Public Debt) मे महत्वपूर्ण वृद्धि हुई जा युद्ध के पश्चात् भी जारी रखी गई। सरकारो के उत्तरदायित्व बढ गये और जो पहिले निजी आवश्यकतायें समझी जाती थी, उन्हे सामाजिक आवश्यकताएं समझा जाने लगा जिनके प्रति सरकार का उत्तरदायित्व बढ गया। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए यह आवश्यक हो गया कि सरकारी आय म भी निरन्तर वृद्धि की जाय। इस विधि को द्वितीय महायुद्ध मे और अधिक प्रोत्साहन मिला जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न अगो पर राज्य नियन्त्रण एव हस्तक्षेप करने लगा। सरकारी आय एवं व्यय मे वृद्धि के अनुसार सरकारी कार्यवाहियों मे वृद्धि स्वाभाविक ही थी। सरकारी कार्यवाहियो मे वृद्धि होने का तात्पर्य हुआ—**सरकारी क्षेत्र का विस्तार तथा निजी क्षेत्र का सकुचन**—इस प्रकार सरकार का अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप बढता रहा जिसका फल आर्थिक नियोजन का सचालन हुआ। राजकीय ऋण के विस्तार से देश की मुद्रा, साख एव पूंजी के

क्षेत्र मे सगठनात्मक (Structural) परिवर्तन हो जाते हैं। जब मुद्रा एवं साख का प्रसार होता है तो मुद्रा स्फीति का दबाव बढ जाता है जिसे रोकने के लिये सरकारी हस्तक्षेप एव नियन्त्रण आवश्यक होता है। मुद्रा-प्रसार होने पर सरकार के मूल्यो, मजदूरी, उत्पादन, उपभोग, बैंक की कार्यवाहियो तथा प्रतिभूति के बाजारो पर नियन्त्रण करना अत्यन्त आवश्यक होता है। मन्दी काल मे सरकारी आय-व्यय भी कम हो जाते हैं जिससे मूल्यो मे और कमी आ जाती है और बेरोजगार की गम्भीरता बढती जाती है। ऐसी परिस्थिति मे सरकारी व्यय मे वृद्धि करना आवश्यक होता है क्योकि सरकारी व्यय मे वृद्धि होने पर ही मूल्यो मे स्थिरता एव रोजगार मे वृद्धि की जा सकती है। जब सरकारी काम मे वृद्धि करने का उत्तरदायित्व सरकार ले लेती है तो दीर्घकालीन बजट बनाने तथा दीर्घकालीन नियोजन की आवश्यकता होती है।

(६) जनसंख्या की वृद्धि—अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे जनसंख्या की वृद्धि तथा जीवनस्तर मे कमी—यह दो लक्षण सामान्य रूप से पाये जाते हैं। जनसख्या की अधिक वृद्धि को रोकने के हेतु परिवार-नियोजन का उपयोग किया जा सकता है परन्तु परिवार नियोजन आर्थिक पुनर्निमाण की अनुपस्थिति मे निरर्थक समझा जाता है। सभी अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे अब यह मान्यता है कि over-population की समस्या का निवारण शीघ्र आर्थिक विकास द्वारा ही सम्भव है। आर्थिक विकास एक राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत ही सुगमतापूर्वक हो सकता है।

(१०) पूंजी की कमी—अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक विकास हेतु पर्याप्त पूंजी उपलब्ध नहीं होती है। अनियोजित अर्थव्यवस्था मे उत्पादन एव उपभोग स्वतत्र होते है और उपभोक्ता अपने उपभोग की वस्तुएँ खरीदने के पश्चात् ही बचत की बात का विचार कर सकता है, प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त न्यून होने के कारण अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे पर्याप्त उपभोग सामग्री क्रय करना ही सम्भव नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति मे आन्तरिक बचत की मात्रा अत्यन्त कम होती है। इसे बढाने के लिये अनिवार्य बचत की आवश्यकता होती है जो नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सम्भव हो सकती है।

(११) पूंजीवाद के दोष—पूंजीवाद मूल्य एव लाभ भी एक पद्धति है जिसमे व्यक्ति को उत्पादन के सम्बन्ध मे पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। यह एक ऐसा सगठन होता है जिसमे प्रतिस्पर्धा एव स्वतन्त्रता की प्रधानता होती है। पूंजीवाद मे निजी लाभ के हेतु उत्पादन किया जाता है और उत्पादन के साधन निजी

अधिकार मे रहते है। उत्पादन-कार्य मजदूरो पर रक्खे गये श्रम द्वारा किया जाता है और उत्पादित वस्तु पर पूंजीपति का अधिकार होता है। इस व्यवस्था मे आर्थिक निश्चय किसी केन्द्रिय अधिकारी द्वारा नही किये जाते अपितु व्यापारी व्यक्तिगत रूप से आर्थिक निश्चय करता है। जीवनस्तर एव भौतिक सम्पन्नता का अनुमान व्यक्तिगत दृष्टिकोण से लगाया जाता है। समस्त आर्थिक क्रियाओ का आधार व्यक्तिगत लाभ अथवा हित होता है। पूंजीवाद मे उत्पादन के समस्त घटको की तुलना मे पूंजी को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है।

श्रम को एक वस्तु के सामान ही समझा जाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार इससे बाजार म क्रय विक्रय किया जाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे उत्पादन क साधन समस्त जनसमुदायो के हाथो से निकल कर एक छोटे से वर्ग के अधिकार मे चले जाते है। तेजी एव मन्दी की निरन्तर उपस्थिति पूंजीवादी व्यवस्था की मुख्य देन है जिसमें बेरोजगारी एवं अर्द्ध-विकसित बेरोजगारी सदैव गम्भीर समस्या बनी रहती है। ससार के आर्थिक इतिहास म पूंजीवाद का महत्वपूर्ण योगदान है। आदम स्मिथ ने यह सिद्ध किया कि अधिक कार्यक्षमता पूर्ण प्रतिस्पर्धा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। उन्होन राजकीय हस्तक्षेप को सर्वथा व्यर्थ बताया। पूंजीवादी व्यवस्था म बाजारो की भी प्रगति हुई, माग मे वृद्धि हुई, औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र मे क्रान्ति हुई और यातायात एव सचार का विकास हुआ। इंगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति भी पूंजीवाद की ही देन थी। वैब्स ने पूंजीवाद की परिभाषा इस प्रकार दी है—"पूंजीवाद अथवा पूंजीवादी व्यवस्था अथवा पूंजीवादी सभ्यता का अर्थ उद्योग के विकास एव वैधानिक सगठन की उस अवस्था से है जिसमे कि श्रमिको का समुदाय उत्पादन के साधनो के स्वामित्व से वचित कर दिया जाता है तथा ऐस पारिश्रमिक अर्जित करने वालो मे परिणत कर दिया जाता है कि इनका जीवन निर्वाह तथा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य राष्ट्र के उन कतिपय व्यक्तियो की इच्छा पर निभर होता है जो भूमि, यत्र एवं श्रम-शक्ति के स्वामी हैं तथा जो अपने वैधानिक स्वामित्व के द्वारा उनके प्रबन्ध का नियन्त्रण करते हैं तथा वे ये सब कार्य अपने निजी एव व्यक्तिगत लाभ के लिए करते है।"[1]

---

1. "By the term 'Capitalism' or the 'Capitalistic System' or as we prefer the 'Capitalist Civilization', we mean the particular stage in the development of industry and legal institutions in which bulk of the workers find themselves divorced from the ownership of the instruments of production in

(Contd next page)

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन पूँजीवाद के सात मुख्य लक्षणों की ओर इंगित करता है, जो निम्न प्रकार हैं —

(१) पूँजीवाद में उत्पादन के साधन (मनुष्य को छोड़कर) तथा सम्पत्ति निजी होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रयत्नों द्वारा उन्हें प्राप्त करने, उपयोग करने तथा अपने उत्तराधिकारियों को मृत्युपरान्त देने की स्वतन्त्रता एवं अधिकार होता है।

(२) प्रत्येक उपभोक्ता अपने उपभोगार्थ किसी भी वस्तु को चुनने, अपनी आय को स्वेच्छानुसार व्यय करने तथा विनियोजित करने को पूर्ण स्वतन्त्र होता है।

(३) पूँजीवाद में प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है अर्थात् वह साहस, प्रसविदा तथा निजी सम्पत्ति के मनोवांछित उपयोग में पूर्ण स्वतन्त्र होता है।

(४) पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक समानता को कोई महत्त्व नहीं देती। परिणामस्वरूप समाज तीन विभिन्न वर्गों—सम्पन्न, मध्यमवर्गीय तथा निर्धन में विभक्त हो जाता है। इन वर्गों में सदा पारस्परिक संघर्ष होना स्वाभाविक है।

(५) पूँजीवादी व्यवस्था में स्वतन्त्र साहस एवं पूर्ण प्रतियोगिता को महत्त्व दिया जाता है। उत्पादन उपभोक्ताओं की इच्छानुसार व्यक्तिगत लाभ के दृष्टिकोण से किया जाता है तथा सरकार आर्थिक क्रियाओं में न्यूनातिन्यून हस्तक्षेप करती है। *उत्पादकों की उत्पादकों से, विक्रेताओं की विक्रेताओं से,* उपभोक्ताओं की उपभोक्ताओं से तथा श्रमजीवियों की श्रमजीवियों से सदैव पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बनी रहती है। इस प्रकार प्रतियोगिता सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का आधार स्तम्भ होती है।

(६) पूँजीवादी व्यवस्था का मुख्य लक्षण व्यक्तिगत लाभ की भावना है। साहसी अपने निजी लाभ का सर्वोच्च महत्त्व देता है तथा किसी व्यवसाय की स्थापना एवं विस्तार करने से पूर्व यह विचार करता है कि उसे कम से कम

---

such a way as to pass into the position of wage earners whose subsistence, security and personal freedom seem dependent on the will of a relatively small proportion of the nation, namely those who own and through their legal ownership control the organisation of the land, the machinery and the labour force of the community and do so with the object of making themselves individual and private gains"—*Webbs*

त्याग करने से किस व्यवसाय मे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता है। राष्ट्रीय एव सामाजिक हित का उसके व्यक्तिगत हित के समक्ष कोई मूल्य नहीं होता है।

(७) पूंजीवादी व्यवस्था मे, उत्पादन के साधनो मे, सर्वोपरि स्थान पूंजी को प्राप्त है। जो व्यक्ति व्यवसाय मे धन एव पूंजी लगाता है, वही उसका नियन्त्रक भी होता है अर्थात् श्रम, भूमि, साहस आदि सभी अन्य घटक पूंजी के आधीन हो जाते हैं।

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था मे बहुत सी आर्थिक एव सामाजिक दुर्गुणो का सामंजस्य होता है। इसका कारण है, उत्पादन तथा वितरण पर प्रभावशील, शासकीय नियन्त्रण की शिथिलता। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के दुर्गुणो ने नियोजन के महत्व मे वृद्धि की है। पूंजीवाद के मुख्य दोष निम्न प्रकार हैं —

(१) आर्थिक अस्थिरता (Economic Instability)—उच्चावचान, तेजी, मन्दी, आदि पूंजी की मुख्य देन है। अनियोजित पूंजीवाद मे उच्चावचान की उपस्थिति के तीन मुख्य कारण हैं —

(अ) कच्चे माल की पूर्ति पर प्रभाव डालने वाले अनिश्चित कारण (Unforseen Causes)

(ब) माँग और पूर्ति म अपूर्ण समायोजन और

(स) मूल्यो मे आर्थिक कारणो से परिवर्तन।

जब उत्पादन सम्बन्धी निश्चयो को व्यापारी व्यक्तिगत रूप से करते है तो इन निश्चयों म त्रुटि रहना स्वाभाविक ही होता है।

व्यापारी व्यक्तिगत रूप से केवल एक अत्यन्त सकुचित क्षेत्र को विचाराधीन करके निरर्थक कर सकता है। उसे अपन अन्य साथी व्यापारियो के निर्णयो का भी पता नही होता है। ऐसी परिस्थिति मे उत्पादन सम्बन्धी अनुमान सदैव माग की तुलना मे कम अथवा अधिक रहते हैं। माग एव पूर्ति सदैव पारस्परिक समायोजन करन का प्रयत्न तो करते हैं परन्तु यह समायोजन कभी हो नहीं पाता है। इसी कारण पूंजीवाद मे अधिक उत्पादन तथा कम उत्पादन की समस्या सदैव उपस्थित रहती है। माग एव पूर्ति में समायोजन होने के कारण ही मन्दी एव तेजी आती है। इसके अतिरिक्त वित्तीय व्यवस्था का प्रभाव मूल्यो पर पडता रहता है जिससे मूल्यो मे सामान्यत स्थिरता नहीं आ पाती है। मूल्यो मे स्थिरता न होने पर समस्त आर्थिक क्रियायें अस्थिर हो जाती हैं।

(२) आर्थिक विषमता—अनियोजित पूंजीवाद मे धन, आय, एव अवसर का असमान वितरण होता है। राष्ट्रीय धन एव आय का बडा भाग

जनसमुदाय के एक छोटे से वर्ग के हाथ में होता है और जनसमुदाय का बहुत बडा भाग निर्धन रहता है। धन अथवा पूंजी को अर्थ-व्यवस्था मे सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। पूंजीपति वर्ग उत्पादन के घटको, आय के साधनो, एव रोजगार के अवसरो पर अधिकार प्राप्त कर लेता है जिसके फलस्वरूप धनवान के धन मे निरन्तर वृद्धि होती है और निर्धनता सदैव बढती रहती है। व्यापारी वर्ग एकाधिकार प्राप्त करने के हेतु पारस्परिक समझौते कर लेते हैं और उत्पादन को सीमित इसलिये रखते हैं कि मूल्यो मे वृद्धि करके अधिक लाभोपार्जन किया जा सके। इस प्रकार उत्पादन के घटको का अधिक्य होने हुये भी अधिक उत्पादन नहीं किया जाता है और अधिकता के वातावरण मे लोग भूखे रहते हैं। पूंजीपति सदैव ऐसे व्यवसायो का विस्तार एव विकास करता है जिनमे अधिक लाभ उपार्जन करके व्यक्तिगत हित हो सके। सामाजिक हित को व्यापारी वर्ग व्यक्तिगत हित के पश्चात् स्थान देता है। आय की विषमता का मुख्य कारण उत्तराधिकार का विधान तथा दोषपूर्ण शिक्षा-प्रणाली होने हैं। उत्तराधिकार के विधान के अनुसार निजी सम्पत्ति पिता से पुत्र को, पुत्र के बिना किसी परिश्रम से ही प्राप्त होती है और पुत्र के हाथो मे उत्पादन के घटको का सञ्चय हो जाता है जिससे वह और अधिक धनोपार्जन कर सकता है। दूसरी ओर शिक्षा के क्षेत्र मे भी केवल धनी वर्ग ही अपने बच्चो को उच्च शिक्षा दिला सकता है क्योकि उच्च शिक्षा की लागत इतनी अधिक रहती है जो कि धनी वर्ग ही सहन कर सकता है। ऐसी परिस्थिति मे भी धनोपार्जन की योग्यता भी केवल धनी वर्ग को ही प्राप्त होती है और रोज-गार के अवसर इसी धनी वर्ग को प्राप्त होने हैं। इस प्रकार धन एव अवसर की विषमता के कारण आय की विषमता सदैव बनी रहती है।

(३) अकुशलता (Inefficiency)—पूंजीवाद मे व्यवसायी सदैव अपने लाभ के लिये उत्पादन करता है। वह विलासता की वस्तुओ के उत्पादन को अधिक महत्व देता है क्योंकि इनमे अधिक लाभोपार्जन किया जा सकता है। समाज-कल्याण के हेतु उत्पादन निजी व्यवसायियो द्वारा नहीं किया जाता है। उत्पादन का प्रकार सदैव मूल्यो पर आधारित रहता है। किसी वस्तु का मूल्य बढने पर उसका उत्पादन बढाया जाता है और मूल्य कम होने पर उत्पादन कम करने का प्रयत्न किया जाता है। बारबरा वूटन (Barbara Wooten) के मतानुसार पूंजीवादी व्यवस्था को एक विवेकपूर्ण व्यवस्था कहना उचित नहीं है क्योकि इस व्यवस्था मे बहुतायत के वातावरण मे भी लाखो लोग भूखे रहते हैं, लाखो को बेरोजगार तथा निर्धनता का भय

प्रकार जिन देशो ने स्वतन्त्रता प्राप्त की वे आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक, नैतिक आदि सभी दृष्टियो से पिछडे हुए थे। इन राष्ट्रो के निवासियो का जीवनस्तर दयनीय था। स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकारो का यह कर्तव्य हो गया कि वे इस पिछडी, अविकसित एव कठिन परिस्थितियो से राष्ट्र को मुक्ति दिलावें। इन राष्ट्रो मे साधनो तथा प्रशिक्षित व्यक्तियो की न्यूनता थी। भावी साधनो (Potential Resources) की खोज एव उपभोग करना अत्यन्त आवश्यक था। यह कार्य-सम्पादन नियोजन द्वारा ही न्यूनातिन्यून अवधि मे सम्भव था। अब एशिया के सभी राष्टो मे विकास की ओर सत्वर गति से एक दौड हो रही है। भारत और चीन इस दौड मे सबसे आगे हैं। ये सभी राष्ट्र नियोजन द्वारा सीमित साधनो से अधिकतम लाभ उठाने मे प्रयत्नशील हैं।

आज के युग का लोकतन्त्र केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता तक ही सीमित नहीं। "आधुनिक युग के लोक तन्त्र मे समान व्यवहार के नियमो का अनुसरण करना तथा एक राष्ट्र के अधिकतम लोगो को जीवन के समस्त क्षेत्रो मे पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ कार्य करने का अवसर प्रदान करना, कुछ सीमित अकुशो के साथ जो जनसमुदाय के हित म हा, सम्मिलित होता है। इसलिए लोकतन्त्र को अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे मे हेर-फेर करने के लिए निरन्तर कार्यरत रहना पडना है, जिससे न केवल समान अवसर ही प्रदान किया जा सके प्रत्युत अधिकतम जनसख्या के अधिकतम हित के दृष्टिकोण से भी वह न्यायोचित प्रतीत हो।"[1]

यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि नियोजन का महत्व लोकतन्त्र तक ही सीमित है। आज के युग मे सभी राजनीतिक विचारधाराओ मे आर्थिक तथा सामाजिक समानता को मान्यता प्राप्त है। साम्यवादी तथा समाजवादी तो विशेपत इन दो मूल उद्देश्यो को प्रमुखता देते है। तानाशाही मे भी इन उद्देश्यो को स्थान प्राप्त है किन्तु इसके साथ अनन्य शासक (Dictator) के सम्मान तथा शक्ति की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया जाता है। आर्थिक

1. "Democracy in the modern age has come to be associated with a pursuit of equality of opportunity and full fledged freedom of action to the majority of the people of a country in all walks of life, with due limitations imposed upon them in their own interest. Democracy constantly works to bring about the requisite changes in the structure of economy so as not only to afford equality of opportunity but also to justify from the point of view of the greatest good of the largest number of population"

(V. Vithal Babu, *Towards Planning*, p. 16.)

तथा सामाजिक समानता नियोजन के माध्यम से ही कम से कम समय मे प्राप्त की जा सकती है। पाकिस्तान भी नियोजन द्वारा आर्थिक विकास की ओर अग्रसर है, जहाँ एक रूप मे तानाशाही शासन-व्यवस्था है।

आर्थिक नियोजन एवं सरकारी हस्तक्षेप—सरकारी हस्तक्षेप का तात्पर्य अर्थ-व्यवस्था के किसी एक अथवा एक से अधिक क्षेत्रो मे जानबूझ कर हस्तक्षेप करने से है। स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रो को सरकारी नियमन के आधीन आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, सरक्षक कर (Protection Duties), मूल्य नियन्त्रण एव राशनिंग, कोटा निर्धारित करना, किसी विशेष वस्तु के व्यापार के लिए आज्ञापत्र जारी करना आदि। इस प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप के दो मुख्य लक्षण होते हैं। प्रथम अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे स्वतन्त्रता बनी रहती है और विपणि-व्यवस्था सरकारी हस्तक्षेप से उत्पन्न हुये सुधारो से प्रभावित होती है। द्वितीय लक्षण यह है कि देश की विभिन्न स्वतन्त्र आर्थिक इकाइयो की कार्यवाहियो मे समन्वय उत्पन्न नही होता है। इस व्यवस्था मे सरकारी हस्तक्षेप द्वारा राष्ट्र के आर्थिक जीवन पर सरकारी नियन्त्रण नहीं होता है। दूसरी ओर आर्थिक नियोजन मे राज्य जान-बूझ कर समन्वित प्रयास करता है कि समस्त अर्थ-व्यवस्था का सचालन निश्चित उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किया जा सके। राजकीय हस्तक्षेप नियोजन का अभिन्न अग है। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो पर समन्वित राजकीय हस्तक्षेप किया जाता है। इसीलिये यह कहना उचित है कि हर प्रकार के नियोजन मे सरकारी हस्तक्षेप निहित होता है परन्तु अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक सरकारी हस्तक्षेप को आर्थिक नियोजन नहीं कहा जा सकता है। जब सरकारी हस्तक्षेप समन्वित रूप से किया जाय तथा इसके द्वारा अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्र प्रभावित होते हो तो उसे आर्थिक नियोजन कह सकते हैं। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था के सचालन की तीन विधियाँ हो जाती हैं। प्रथम स्वतन्त्र व्यापार (Laissez Faire), द्वितीय स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था मे यदाकदा सरकारी हस्तक्षेप और द्वितीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था। जब सरकारी हस्तक्षेप का इतना विस्तार किया जाय कि वह समस्त अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करने लगे और इसके द्वारा पूर्व निश्चित उद्देश्यो की पूर्ति निश्चित काल मे हो सके तो इस सरकारी हस्तक्षेप को आर्थिक नियोजन कह सकते हैं। प्रारम्भ मे ससार के समस्त राष्ट्र स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था के अनुयायी थे। प्रथम एव द्वितीय महा-युद्ध मे सरकारी हस्तक्षेप अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रो पर आच्छादित हुआ और आधुनिक काल में यह सरकारी हस्तक्षेप आर्थिक नियोजन का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है।

आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत स्वतंत्रता

आर्थिक नियोजन मे राजकीय नियन्त्रण एव हस्तक्षेप सदैव निहित होता है और इसलिए स्वतन्त्रता के पक्षपाती विद्वानो ने आर्थिक नियोजन को गुलामी अथवा दासता का मार्ग बताया है। ऐसे पक्षपाती विद्वानो मे प्रो० हेयक को सर्वप्रथम स्थान दिया जा सकता है। स्वतन्त्रता शब्द का अर्थ प्रथक-प्रथक समुदाय एव व्यक्ति प्रथक-प्रथक रूप से लेते हैं। केनेथई बोल्डिग ने लिखा है—"स्वतत्रता" शब्द एक झगडे वाला शब्द है। इससे गहरी भावनाएं एव इच्छायें जागृत होती हैं और कुछ ऐसा, स्पष्ट आवाहन होता है जो मानव हृदय को अत्यधिक मूल्यवान होता है। परन्तु इसकी मूल शक्ति कुछ अशो मे इसकी अस्पष्टता पर निर्भर होती है। इसका अर्थ विभिन्न लोगो को भिन्न-भिन्न होता है। जब अमेरिकन लोग स्वतन्त्र विश्व की बात करते हैं, जब हिटलर ने Freiheit को अपना नारा बनाया, जब सेन्ट पॉल ने भगवान की सेवा को पूर्ण स्वतंत्रता बताया, जब रूजवेल्ट और चर्चिल ने चार स्वतत्रताओ की घोषणा की और जब साम्यवादी यह दावा करते हैं कि उनका समाज ही केवल स्वतन्त्र समाज है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि एक-एक ही शब्द के बहुत से अर्थ है। यह अस्पष्टता एव झगडा दोनो का ही कारण है'।[1] इस अस्पष्टता के कारण आधुनिक काल मे स्वतत्रता का वास्तविक अर्थ साधारणत समझ से बाहर हो गया है।

वास्तव मे स्वतंत्रता का अर्थ चयन करने का अधिकार है। चयन करने के बहुत प्रकार हैं जिनके मुख्य रूपो को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है —

(१) सास्कृतिक स्वतत्रता (Cultural freedom)
(२) नागरिक स्वतत्रता (Civil freedom)
(३) आर्थिक स्वतत्रता (Economic freedom)
(४) राजनीतिक स्वतत्रता (Political freedom)

---

1. Freedom is a fighting word. It arouses deep emotions and desires and clearly evokes something that is very precious to the human heart Its very power, however, depends in parts on its vagueness It means very different things to different people. When Americans speak of free world, when Hitler used '*Freiheit*', *as one of his slogans, when St Paul wrote* that in His service is perfect freedom, when Roosevelt and Churchill promulgated the 'four freedoms' and when Communist claim that theirs' is only free society, it is obvious that the one word covers a multitude of meanings This is source both of confusion and conflict".
(Kenneth E. Boulding, *Principles of Economic Policy.*)

सामान्यत यह विचार किया जाता है कि नियोजित अर्थ व्यवस्था मे इन सभी प्रकार की स्वतन्त्रताओं को नियन्त्रित कर दिया जाता है।

(१) सास्कृतिक स्वतन्त्रता—इसके अन्तगत विचार व्यक्त करने तथा धर्म सम्बन्धी स्वतन्त्रताएँ सम्मिलित होती है। सास्कृतिक स्वतन्त्रता का आर्थिक नियोजन स कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वास्तव म इस स्वतन्त्रता की उपस्थिति की मात्रा राज्य के राजनीतिक गठन पर निभर रहती है। यह कहना भी उचित नहीं है कि सास्कृतिक स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण किये बिना आर्थिक नियोजन सफल नही हो सकता है। राज्य यदि यह चाहता है कि राष्ट्र म समान सस्कृति का अनुसरण हो जिसस आर्थिक नियोजन के कायक्रमो को सुगमतापूर्वक सचालित किया जा सके तो जनसमुदाय को एक विशेष सस्कृति का अनुसरण करन के लिये बाध्य किया जा सकता है। परन्तु यह जब ही सम्भव हो सकता है, जबकि देश म प्रजातान्त्रिक सरकार न हो। प्रजातान्त्रिक राज्य म धम एव विचार व्यक्त करन की स्वतन्त्रता पर सवथा रोक नहीं लगायी जा सकती है क्योंकि सरकार को सदव जनसमुदाय की इच्छाओं को विचाराधीन करना होता है अन्यथा सरकारी सत्ता एक दल से दूसरे दल के हाथ म चली जाती है। तानाशाही राज्य म सास्कृतिक स्वतन्त्रता को बडी मात्रा तक सीमित कर दिया जाता है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि सास्कृतिक स्वतन्त्रता राजनीतिक गठन से प्रभावित होती है न कि आर्थिक नियोजन के अनुसरण से।

(२) नागरिक स्वतन्त्रता—इसके अन्तगत विभिन्न न्याय सम्बन्धी एव वैधानिक अधिकारो को सम्मिलित किया जाता है। इन अधिकारो का विशेष रूप से उन नागरिको से सम्बन्ध होता है जो कि विधान द्वारा किसी अपराध के लिए अपराधी ठहराये गए हो अथवा ठहराये जान वाले हो। आर्थिक नियोजन के सचालन के लिए नागरिक स्वतन्त्रता पर अकुश लगान की कोई आवश्यकता नहीं पडती है और आर्थिक नियोजन एव नागरिक स्वतन्त्रता एक साथ रह सकत हैं। वास्तव म नागरिक स्वतन्त्रता सत्ताधारी व्यक्तियो की विचारधाराओं पर निर्भर रहती है। एक डिक्टेटर सदव नागरिक स्वतन्त्रता को सीमित करता है जबकि प्रजातान्त्रिक ढाँचे म नागरिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्व दिया जाता है।

(३) आर्थिक स्वतन्त्रता—आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ बडा विवादपूर्ण रहा है। पूँजीवादी आर्थिक स्वतन्त्रता मे उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार उपभोग की वस्तुए क्रय करन की स्वतन्त्रता तथा उत्पादक को अपने निजी लाभ के आधार पर उत्पादन काय करने की स्वतन्त्रता को सम्मिलित करते हैं। दूसरी ओर समाजवादी आर्थिक स्वतन्त्रता से अर्थ आर्थिक सुरक्षा बताते

है। "स्वतन्त्रता का आधुनिक विचारधारा बहुत कुछ भिन्न है। इसका अर्थ असुरक्षा इच्छा, अस्वच्छता, रोग, अज्ञान, तथा शिथिलता से मुक्ति है। स्वतन्त्रता की पुरानी विचारधारा सर्वथा भिन्न थी। इसका अर्थ इच्छानुसार चाहे जितने घण्टे कार्य करने की स्वतन्त्रता, बच्चों को कारखाने तथा खेतों पर भेजने, भूखे रखने योग्य ही मजदूरी देने, एकाधिकार मूल्य लगाने, लाभदायक मूल्य प्राप्त न होने पर खराब वस्तुओं को बेचने, स्वप्न से परे धन एकत्रित करना तथा इस धन को दूसरों को निर्धन एवं दरिद्र बनाने के लिये उपयोग करने की स्वतन्त्रता समझा जाता था।"[१]

आर्थिक स्वतंत्रता को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है —
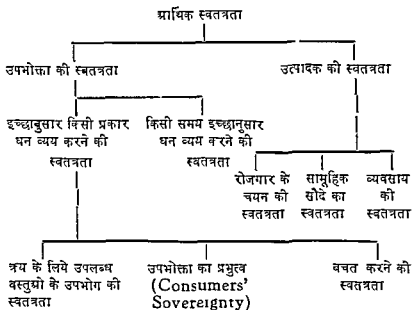
1. The modern conception of feeedom is very much different—it is the conception of freedom from insecurity from want, disease squalor, ignorance and idleness. The old conception of freedom was quite different. It referred to freedom to work as many hours as one choses, to send children to factories and farms, to pay starvation wages, to charge monopoly prices, to sell wretched goods when remunerative prices are not to be had, to amass undreamt wealth and to parade it shamelessly to despoil and beggar those one can"
(G D. Karwal, *Economic Freedom and Economic Planning*, p. 152.)

उपभोक्ता बाजार में बिक्री के लिए उपस्थित वस्तुओ मे से अपने लिये वस्तुओ का चयन करता है। जिन वस्तुओ की माँग अधिक होती है, उनका उत्पादन उत्पादक अधिक मात्रा मे करता है। वस्तुओ का उत्पादन बढने पर मूल्य कम हो जाता है और उत्पादन कम होने पर मूल्य बढ जाता है। इसी प्रकार वस्तुओ की माँग बढने पर मूल्य बढता है और उत्पादन बढाने के प्रयत्न किये जाते हैं। माँग कम होने पर उस वस्तु का मूल्य कम हो जाता है और उत्पादक का लाभ भी कम होने लगता है। ऐसी परिस्थिति मे उत्पादक की उस वस्तु के उत्पादन में रुचि कम हो जाती है और उत्पादन गिरने लगता है। प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था की इस अवस्था को उपभोक्ता का प्रभुत्व कहते हैं। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन उपभोक्ता के चयन एव माँग पर निर्भर नहीं होता है। नियोजन अधिकारी प्राथमिकतानुसार यह निश्चय करता है कि किन-किन वस्तुओ का उत्पादन कितनी मात्रा में किया जाय ? उपभोक्ता का प्रभुत्व तभी प्रभावशाली हो सकता है जबकि उसके पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो। किसी वस्तु की माँग करने के लिए पर्याप्त क्रय-शक्ति होना भी आवश्यक होता है। जब क्रय-शक्ति का सचय कुछ चुने हुए लोगो के हाथ में हो, तो अर्थ-व्यवस्था के एक बडे भाग पर इस चुने हुए वर्ग का ही प्रभुत्व हो जायगा। जनसाधारण जिसके पास धन का अभाव है, न तो प्रभावशाली माँग प्रस्तुत कर सकेगी और न उसकी आवश्यकतानुसार उत्पादन ही किया जायगा। ऐसी परिस्थिति मे उपभोक्ता का प्रभुत्व जब ही प्रभावशाली माना जा सकता है, जब समस्त समाज के पास क्रय-शक्ति का पर्याप्त सचय हो। जनसाधारण को क्रय-शक्ति उपलब्ध कराने हेतु ही आर्थिक नियोजन द्वारा धन, अवसर, आय आदि के समान वितरण का आयोजन किया जाता है। जनसाधारण के हाथो मे अधिक क्रय-शक्ति पहुँचने मे उसमे उत्पादन पर नियन्त्रण करने की क्षमता मे वृद्धि होती है। फिर भी इतना कहना सर्वथा सत्य होगा कि आर्थिक नियोजन द्वारा पूँजीवादी वर्ग के प्रभुत्व को ठेस पहुँचती है और वह उत्पादन की क्रियाओ को प्रभावित करने मे असमर्थ हो जाता है।

बचत करने की स्वतन्त्रता—बचत करने का मुख्य उद्देश्य भविष्य मे अधिक उपयोग करने का आयोजन करना होता है। उपभोक्ता वर्तमान उपयोग को कम करके बचत करता है और उसका विनियोजन कर देता है जिससे भविष्य मे उसे व्याज की अथवा लाभाश की अतिरिक्त आय हो सके और वह अधिक उपभोग कर सके। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे बचत को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया जाता है और विनियोजन की उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जाती है। विनियोजन करने के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति अपने विनियोजन की सुरक्षा चाहता है जो कि दृढ अर्थ-व्यवस्था मे ही सम्भव होती है। प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था मे जहाँ कि उच्चावचन अत्यधिक होते हैं, विनियोजन को सुरक्षित नहीं कहा जा सकता

है। नियोजन अर्थ-व्यवस्था मे बचत एव विनियोजन—दोनो मे सामंजस्य स्थापित किया जाता है और अर्थ-व्यवस्था को मन्दी एवं तेजी के दबाव से बचाया जाता है। ऐसी परिस्थिति मे बचत करने की सुरक्षा भी उपलब्ध होती है।

उत्पादक की स्वतंत्रता—(अ) रोजगार के चयन की स्वतंत्रता—नियोजन के अन्तर्गत श्रमिको को किन्हीं व्यवसायो मे कार्य करने के लिये आदेश दिया जा सकता है अथवा उनको प्रोत्साहित किया जा सकता है। आदेश द्वारा जो व्यवसायो मे रोजगार दिलाये जाते हैं, वे प्रभावशाली तो अवश्य होते हैं परन्तु रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता पर अकुश लग जाता है। प्रोत्साहन द्वारा किन्ही विशेष व्यवसायो मे रोजगार प्राप्त कराने से लोगो मे उस रोजगार के प्रति रुचि रहती है और रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता बनी रहती है। रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता को सीमित करने हेतु प्राय दो प्रकार के अकुश लगाये जाते हैं—आर्थिक एव वैधानिक। आर्थिक अकुशो के अतर्गत राज्य ऐसे व्यवसायो को जिनमे रोजगार बढाना चाहता है, आर्थिक एव अन्य सहायता प्रदान करता है, कच्चे माल को उपलब्ध कराता है, बिक्री आदि की सुविधाएँ प्रदान कराता है। इसके विपरीत वे व्यवसाय जिनमे रोजगार कम करने की आवश्यक्ता समझी जाय, उनको राज्य कोई विशेष सुविधाएँ प्रदान नही करता है। वैधानिक अंकुशो मे दो तत्व सम्मिलित होते है—प्रथम अपने व्यवसाय का चयन करने की स्वतन्त्रता पर वैधानिक अकुश और द्वितीय किसी कार्य अथवा नौकरी को छोड़ने अथवा स्वीकार न करने पर वैधानिक अंकुश। जब किसी व्यवसाय मे लोगो की आवश्यकता हो और प्रोत्साहन द्वारा उस व्यवसाय मे लोग न आते हो तो वैधानिक अकुशो द्वारा लोगो को उस व्यवसाय के रोजगार को स्वीकार कराया जाता है। ऐसी कठोर कार्यवाही युद्ध-काल मे ही आवश्यक होती है क्योकि प्रत्येक कार्य शीघ्रातिशीघ्र करने की आवश्यकता होती है और प्रोत्साहन विधियो मे समय नष्ट नही किया जा सकता है।

आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत वास्तव मे रोजगार चयन करने की स्वतन्त्रता मे वृद्धि होती है परन्तु प्रत्यक्ष रूप से इस स्वतन्त्रता को सीमाबद्ध कर दिया जाता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत उन व्यवसायो के द्वारा नवीन श्रमिको को लेना बन्द कर दिया जाता है जिनमे पहले से ही श्रम का आधिक्य होता है। इस प्रकार लोगो को उस विशेष व्यवसाय अथवा कारखाने मे रोजगार प्राप्त करने की स्वतन्त्रता पर अकुश लग जाता है। परन्तु यह अंकुश आर्थिक कठिनाइयो से बचने के लिए किये जाते है। यदि ऐसे अकुश न लगाये जाँय तो सम्पूर्ण रोजगार की स्थिति छिन्न-भिन्न हो जाती है। वास्तव मे नियोजित अर्थ-व्यवस्था का लक्ष्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना होता है और

नवीन रोजगार के अवसर बडी मात्रा मे उत्पन्न किये जाते हैं । इस प्रकार लोगो को रोजगार के एक बडे समूह मे चयन करने की स्वतन्त्रता मिलती है। अर्थ-व्यवस्था के केवल एक बहुत छोटे क्षेत्र के लिये ही अकुश लगाये जाते हैं और शेष रोजगार चयन करने के अवसरो मे अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे रोजगार के कार्यालयो (Employment Exchanges) को विशेप स्थान दिया जाता है। समस्त रिक्त स्थानो की इन दफ्तरो को सूचना देना अनिवार्य होता है। ऐसी परिस्थिति मे रिक्त स्थानो की सूचना अधिक से अधिक लोगो को मिल जाती है और वे रोजगार चयन करने के अधिकार का अधिक प्रभावशाली उपयोग कर सकते हैं। अनियोजित अर्थ व्यवस्था म प्राय भय बना रहता है कि एक रोजगार छोडने पर दूसरे रोजगार का मिलना कठिन होगा और दीर्घकाल तक बेरोजगार रहन का अवसर आ सकता है। ऐसी परिस्थिति मे कर्मचारी अपने पुराने रोजगार को प्रतिकूल दशाओ म भी अपनाए रहते हैं और अच्छे रोजगार के अवसरो का लाभ उठाने की जोखिम नहीं लेते। नियोजित अर्थ-व्यवस्था म एक ओर पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करन हेतु नवीन अवसर उत्पन्न किए जाते है तो दूसरी ओर बेरोजगारी के विरुद्ध बीमे का प्रबन्ध भी किया जाता है। एसी परिस्थिति मे लोगो को अच्छे रोजगार के चयन के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं।

(ब) सामूहिक सौदे की स्वतत्रता—नियोजित अर्थ-व्यवस्था म श्रम संघो का कार्य किसी विशेष व्यवसाय के श्रमिको के हितो की सुरक्षा करना ही नहीं होता है। इनके कार्य हैं—श्रमिको को अधिक मजदूरी प्राप्त करने के स्थान पर योजना के निर्माण मे सहायता करना, श्रम की उत्पादकता बढाना, श्रमिको के पारिश्रमिक को नियमित करना और यह देखना कि श्रमिको को मजदूरी उनके कार्य के अनुसार मिलती है। उत्पादित वस्तु के गुण (Quality) सुधारना तथा उत्पादन लागत कम करना, सामाजिक बीमा का सचालन करना झगडो के फैसले म सहयोग देना आदि आदि। उनके समस्त कार्य राष्ट्रीय हित से सम्बन्धित होते हैं। जब श्रम सघो का यह सब कार्य करने का अवसर दिया जाता है तो यह कहना उचित नहीं होता कि उनकी स्वतत्रताओ को सीमित कर दिया जाता है। दूसरी ओर आधुनिक युग म नियोजित एव अनियोजित सभी अर्थ-व्यवस्था वाले देशो म सुलह (Conciliation) एव अनिवार्य पच फैसला (Compulsory Arbitration) द्वारा मजदूरी निर्धारित होती है। ऐसी परिस्थिति में सामूहिक सौदे की परम्परागत स्वतत्रता के कोई मानी नहीं रह जाते हैं।

साहस की स्वतत्रता—यह कहना किसी प्रकार उचित नहीं है कि नियो-

जित अर्थ-व्यवस्था म निजी क्षेत्र को सर्वथा समाप्त कर दिया जाता है। संसार के बहुत से देशो मे आर्थिक नियोजन का सचालन होते हुए भी निजी क्षेत्र कार्य करता है। वास्तव मे नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे निजी क्षेत्र को नियन्त्रित एवं नियमित कर दिया जाता है। निजी क्षेत्र को नियमित करने की प्रथा आधुनिक युग मे अनियोजित युग मे अर्थ-व्यवस्था मे भी है। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे भी हम देखते हैं कि सरकारी क्षेत्र द्वारा जनोपयोगी उद्योगो का सचालन किया जाता है। दूसरी ओर नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे भी निजी क्षेत्र को कार्य करने का अवसर दिया जाता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे निजी व्यवसाय सरकारी क्षेत्र के सहायक होते हैं और जब तक सरकारी एवं निजी क्षेत्र मे प्रभावशाली समन्वय नही होता, योजना का सफल होना सम्भव नहीं होता। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था एवं साहस की स्वतंत्रता साथ-साथ रह तो सकती है परन्तु निजी साहस को नियमबद्ध अवश्य कर दिया जाता है।

(४) राजनीतिक स्वतत्रता (Political Freedom)—राजनीतिक स्वतत्रता के अन्तर्गत सरकार की आलोचना करने का अधिकार, विरोधी दल बनाने का अधिकार, जनसाधारण का सरकार बदलने का अधिकार आदि सम्मिलित होते हैं। वास्तव मे इन अधिकारो का नियोजन से किसी प्रकार प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता और न इनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति नियोजन के संचालन को प्रभावित ही करती है। प्रोफेसर हेयक एव उनके साथियो की धारणा कि नियोजन द्वारा देश मे तानाशाही का प्रादुर्भाव होता है, उचित प्रतीत नहीं होती। राजनीतिक तानाशाही आर्थिक नियोजन द्वारा नही उत्पन्न होती है और न नियोजन के सचालन हेतु तानाशाही आवश्यक ही होती है। राजनीतिक स्वतत्रता को सीमाबद्ध करना सत्ताधारी लोगो पर निर्भर रहता है। यदि सरकार मे तानाशाही प्रवृत्ति के लोग हो तो राजनीतिक स्वतत्रता पर अकुश लगाना स्वाभाविक है। आर्थिक नियोजन का सचालन प्रजातान्त्रिक ढाचे मे भी उतना ही सफल हो सकता है, जितना तानाशाही ढांचे मे। दूसरी ओर यह कहना भी उचित नहीं कि प्रजातान्त्रिक ढाँचे मे दीर्घकालीन कार्यक्रम नहीं बनाये जा सकते हैं क्योकि सरकार के बदलने पर पहली सरकार द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यक्रमो को रद्द कर दिया जाता है। वास्तव मे योजना मे अधिकतर कार्यक्रम सामान्य हित के लिए होते है और विरोधी दल की सरकार बनने पर भी उन कार्यक्रमो को निरस्त करना उचित नही समझा जाता है। उनके सचालन की विधियाँ भले ही बदल जाँय परन्तु बडे कार्यक्रम अवश्य चालू रखे जाते है। कभी-कभी सैद्धान्तिक मतभेद के कारण कुछ कार्य निरस्त भी किए जा सकते है परन्तु निरस्त होने के भय

से नियोजन का सचालन न किया जाय अथवा विरोधी दल को ही नष्ट कर दिया जाय, इन दोनो मे से एक भी कार्य उचित न होगा । आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक शक्तियो का केन्द्रीयकरण सरकार के हाथ मे हो जाता है, जिनका उपयोग सामान्य हित के लिए किया जाता है। आर्थिक शक्तियो के साथ राजनीतिक शक्तियो का सचय करना सदैव अनिवार्य नहीं होता है । अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे धन का सचय एक छोटे वर्ग के हाथ मे होता है जो देश की राजनीति को भी प्रभावित करता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे धन के केन्द्रीयकरण को रोका जाता है और धनी को राजनीतिक मामलो मे हस्तक्षेप करने का अवसर कम मिलता है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन का राजनीतिक स्वतत्रता से प्रत्यक्ष रूप से किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होता है।

नियोजित एव अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना

आधुनिक युग मे नियोजित अर्थ-व्यवस्था अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना मे अधिक विवेकपूर्ण एव उचित समझी जाती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे निश्चित लक्ष्य कम समय म तथा उचित रीतियो द्वारा प्राप्त किये जा सकते है। इसी कारण नियोजित अर्थ-व्यवस्था को अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना मे प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

नियोजित अर्थ व्यवस्था म कार्यक्रम विस्तृत दृष्टिकोण से निश्चित किये जाते हैं। नियोजन अधिकारी नियोजन के लक्ष्य तथा कार्यक्रम निश्चित करते समय किसी विशेष क्षेत्र, वर्ग अथवा समुदाय की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करता अपितु समस्त राष्ट्र की आवश्यकतायें लक्ष्यो के निर्धारण का केन्द्र-बिन्दु होती हैं। "अनियोजित तथा उद्योगो की प्रतियोगी व्यवस्था का मूल तत्व यह है कि उत्पत्ति तथा विनियोजन के विषय म निश्चय करने वाले व्यक्ति नेत्रहीन होते हैं। वे किसी एक वस्तु की उत्पत्ति के इतने थोडे अश पर प्रभुत्व रखते है कि औद्योगिक क्षेत्र की अल्प माँग को ही विचार मे रख सकते है। उनको अपने निश्चय के परिणामो का ज्ञान न तो होता ही है और न हो ही सकता है। वे सामाजिक प्रतिघातो को भी ध्यान म नहीं रखते।"[1]

1. "It is essence of an unplanned and compititive arrangement of industry that persons who take decisions about output and investment should be blind They control such a small fraction of the output of a single commodity and therefore take into account such a small part of the industrial field *that they are not and cannot be aware of the consequences* of their own actions. They are not awrre of economic results. They do not even consider social repurcussions"
(E F. M. Durbin, *Problems of Economic Planning*, p. 30)

नियोजित व्यवस्था मे वित्तीय साधनो तथा उत्पादन म समन्वय स्थापित करना सरल होता है। "पूँजीवादी समाज का महत्वपूर्ण लक्षण निरन्तर मदी एव सम्पन्नता की अस्थिरता है तथा अर्थशास्त्रियो म वास्तविक सहमति है कि औद्योगिक व्यवहारो मे अधिक हेर फेर साख नीति तथा उत्पादन के अनुचित प्रबन्ध के कारण होते हैं।'[1] अनियोजित अर्थ व्यवस्था मे जनता की बचत अर्थात आय का वह भाग जो उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता है तथा विनियोजन जो कि नये उद्योगो की स्थापना के लिए किया जाना है, म कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है और न कोई सस्था ही बचत को तुरत विनियोजित करने की व्यवस्था पर ध्यान देती है। *निजी अधिकोषण सस्थाएँ* दूसरी ओर विनियोजन की राशि म वृद्धि कर देती हैं जबकि वास्तविक बचत की मात्रा म कोई वृद्धि नही होती। इन कारणो के परिणामस्वरूप पूजीवाद के सम्पूर्ण इतिहास म बेरोजगारी तथा मदी का विशेष स्थान है। नियोजित व्यवस्था म वित्तीय क्षेत्र का एक अधिकारी नियुक्त किया जा सकता है जो देश की समस्त बचत तथा विनियोजन का उपयोग राष्ट्र के हित म कर सकता है। साथ ही वह निजी हितो के प्रभाव को इन क्षेत्रो म पृथक रख सकता है।

नियोजित तथा केंद्रित व्यवस्था म उत्पादन के विभिन्न घटको को उत्पादन क्षेत्र म उचित स्थान दिया जा सकता है क्योंकि यहाँ व्यक्तिगत हित का कोई महत्व नहीं रहता और इस प्रकार उत्पादन घटको म समन्वय बना रहता है तथा उनकी कार्यक्षमता म वृद्धि होती है। श्रमिको को उद्योगो के प्रबन्ध मे भाग लेने का अधिकार तथा उन्हे पारिश्रमिक के अतिरिक्त लाभाश देकर श्रमिको म उत्पादन के प्रति रुचि का प्रादुर्भाव किया जा सकता है।

नियोजित व्यवस्था द्वारा राष्ट्र का आर्थिक विकास सुलभ होता है। फर्डिनेंड ज्वग (Ferdynand Zweig) के अनुसार नियोजित अर्थ व्यवस्था के कार्यक्रमो का सचालन निश्चित सामाजिक अथवा राजनीतिक उद्देश्यो के आधार पर किया जाता है, जिससे इन उद्देश्यो की पूर्ति म सुलभता होती है। दूसरी ओर अनियोजित अर्थ व्यवस्था म अपने पृथक-पृथक नियम गुण एव

---

1 'The constant recurrence of depression and the instability of prosperity is one of the most marked features of capitalistic society and there is a virtual unanimity among economists that the wide movements of industrial activity are traceable to the mismanagement of relation between credit policy and production' (E F M Durbin *Problems of Economic Planning*, p 52)

मान्यताएं होती है जिससे इसमे निश्चित उद्देश्य निर्धारित करके राष्ट्र के समस्त साधनो को इन उद्देश्यों की पूर्ति की ओर आकर्षित करना सम्भव नहीं होता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था एक रूप मे स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था होती है जिसमे व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। इस व्यवस्था मे उत्पादन एवं विनियोजन के लक्ष्य व्यक्तिगत मान्यताओ के आधार पर पृथक् रूपेण निश्चित किये जाते है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन एवं विनियोजित सम्बन्धी लक्ष्य नियोजन के उद्देश्यो जैसे युद्ध, आर्थिक विकास आदि के आधार पर निर्धारित होते हैं और इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु पृथक्-पृथक् निश्चयो के स्थान पर सामूहिक निश्चय को ही मान्यता प्राप्त होती है जिससे लक्ष्यो की पूर्ति एवं तदनुसार आर्थिक विकास सुलभ होता है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्राथमिकताओ (Priorities) का विशेष स्थान होता है। *परिस्थिति के अनुसार तीव्रतम कठिनाइयो के निवारण का आयोजन* सर्वप्रथम किया जाता है। ऐसी समस्याएं जो राष्ट्र के जीवन का प्रमुख अग हो तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती हों, उनके उन्मूलनार्थ साधनो का अधिक भाग आवटित किया जा सकता है। इस प्रकार आवश्यकताओ तथा परिस्थितियो के अनुसार प्राथमिकताओ की एक सूची का निर्माण किया जा सकता है। उसे दृष्टिगत करके अर्थ-व्यवस्था का सचालन तथा संगठन किया जा सकता है। अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे इस प्रकार प्राथमिकताओ की सूची *बनाना सम्भव नहीं है और किसी राष्ट्र मे इस प्रकार न तो अर्थ-व्यवस्था मे* ही सुधार किये जा सकते हैं और न उस अर्थ-व्यवस्था मे आर्थिक तथा सामाजिक बुराइयो को ही दूर किया जाना सम्भव है।

अनियोजित अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन उपभोक्ताओ की मांग के आधीन रहता है। उद्योगपति तथा उत्पादक उन्हीं वस्तुओ का उत्पादन करते हैं जिनकी बाजार मे अधिक मांग होती है। इस प्रकार उपभोक्ता की इच्छाओ की छाप सदा ही उत्पादन पर लगी रहती है। साधनो का वितरण भी उद्योगपति उपभोक्ताओ की आवश्यकतानुसार करता है। उपभोक्ताओ की मांग असगठित होती है जिसमे राष्ट्रीय हित के स्थान पर व्यक्तिगत हित का प्रभुत्व होता है। उपभोक्ता अपनी मांग करते समय अपनी मांगो के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य प्रभावो से अनभिज्ञ होते हैं और इस प्रकार राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था मे परिवर्तन अथवा विकास करना कठिन होता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया जाता है तथा राष्ट्र के साधनो का वितरण राष्ट्रीय हितो के अनुसार किया जाता है। उत्पादन उपभोक्ता द्वारा

नहीं प्रत्युत नियोजन के कार्यक्रम द्वारा संचालित होता है । इस प्रकार अधिका-धिक साधनों को पूंजीगत सम्पत्तियो के उत्पादन मे लगाया जा सकता है और अर्थ-व्यवस्था को शीघ्र ही विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है ।

निष्कर्ष यह है कि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था एक आकस्मिक अर्थ व्यवस्था होती है, जबकि नियोजित अर्थ व्यवस्था एक विचारपूर्ण (Deliberate) व्यवस्था है जिसमे अर्थ व्यवस्था के उद्देश्य विचारपूर्वक निश्चित करके इसका सचालन किया जाता है । इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था अधिक सफल और विवेकपूर्ण प्रतीत होती है । अनियोजित अर्थ व्यवस्था म व्यक्तिगत उत्तर-दायित्व, व्यक्तिगत पहल (Initiative) तथा निश्चयो की शीघ्रता तथा परिवतनशीलता को विशेष अवसर प्रदान किया जाता है । दूसरी ओर नियोजन मे व्यवस्थित समन्वय, वैज्ञानिक तथा तान्त्रिक ज्ञान के विवेकपूर्ण उपयोग तथा माँग और पूर्ति मे समन्वय करना ताकि उचित जीवन स्तर का आयोजन हो सके आदि उद्देश्य सम्मिलित होते हैं ।

अध्याय २

नियोजन की परिभाषा एवं उद्देश्य

[परिभाषा, नियोजन के तत्व; नियोजन के उद्देश्य— आर्थिक उद्देश्य, आय की समानता, अवसर की समानता, अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, अविकसित एव अर्धविकसित क्षेत्रो का विकास, सामाजिक उद्देश्य, राजनीतिक उद्देश्य, अन्य उद्देश्य]

परिभाषा

नियोजन का शाब्दिक अर्थ पहले स व्यवस्था करना है । किन्हीं परिस्थितियो के उपस्थित होने के पूर्व उनके लिए व्यवस्था करना नियोजन का मूल अर्थ है । भविष्य मे उपस्थित होने वाली ज्ञात एव अज्ञात परन्तु अनुमानित कठिनाइयो के विरुद्ध उचित प्रवन्ध करना एक बुद्धिमत्तापूर्ण एव विवेकपूर्ण कार्य है । जिस प्रकार एक व्यक्ति भविष्य मे आने वाली समस्याओ का सामना करने के लिए अपने साधनो का विश्लेषण करके उनको विभिन्न व्ययों मे विवेकपूर्ण रीति से वितरण करता है तथा कठिनाइयो की तीव्रतानुसार प्राथमिकता निश्चित कर साधनो का आवटन करता है, ठीक इसी प्रकार एक राष्ट्र को भी अपने साधनो का विवेकपूर्ण आवटन करना चाहिये जिससे भविष्य मे ज्ञात व अज्ञात परन्तु सम्भावित घटनाओ के विरुद्ध आयोजन किया जा सके । एक राष्ट्र को अपने नागरिको के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के लिये उत्पादन मे वृद्धि करना, साधनो का इस प्रकार आवटन करना कि उनसे अधिक से अधिक समाज का हित हो सके, उत्पादन का उचित वितरण तथा वैज्ञानिक ज्ञान का विवेकपूर्ण उपयोग करना आदि सभी आवश्यक कार्य होने हैं। इस प्रकार नियोजन आवश्यकरूपेण एक विवेकपूण व्यवस्था कही जा सकती है जिसके द्वारा किसी राष्ट्र की अधिकतम जनसख्या का अधिकनम हित लक्षित होता है ।

नियोजन के साथ जव हम 'आर्थिक' शब्द जोड देने हैं तो अर्थ मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता । प्रत्युत इस विवेकपूर्ण व्यवस्था मे आर्थिक क्रियाओ को विशष स्थान दिया जाता है । इस प्रकार आर्थिक नियोजन एक विवेकपूर्ण

व्यवस्था होती है जिसमे अर्थ-व्यवस्था पर नियोजन अधिकारी द्वारा उचित नियन्त्रण रखा जाता है तथा जिसके द्वारा समाज मे आर्थिक सामाजिक समानता का प्रादुर्भाव होता है ।

एल० लार्विन के अनुसार, "आर्थिक नियोजन का अर्थ एक ऐसे आर्थिक सगठन से है जिसमें समस्त पृथक् पृथक् औद्योगिक सस्थाओ को एक समन्वित इकाई के रूप मे सचालित किया जाता है और जिसके द्वारा निश्चित अवधि मे जनता का जीवन स्तर उन्नत करने के लिये सभी उपलब्ध साधनो का नियन्त्रित उपयोग होता है।"[1] लार्विन की इस परिभाषा के अनुसार नियोजन मे कुछ निश्चित लक्ष्य उनकी पूर्ति हेतु देश के समस्त उपलब्ध साधनो को पूर्ण जानकारी एव उनके अधिकतम प्रभावी उपयोग के लिए सुव्यवस्थित और नियन्त्रित कार्यक्रम होना चाहिए ।

एच० डी० डिकिन्सन के अनुसार नियोजन एक ऐसी व्यवस्था का स्वरूप है जो विशेषकर उत्पादन तथा वितरण से सम्बन्धित होती है । इसके अनुसार "क्या और कितना उत्पादन किया जाय, कहाँ, कैसे और कब उसका उत्पादन किया जाय तथा उसका बँटवारा किसको किया जाय—के विषय मे निश्चित अधिकारी द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था की व्यापक परीक्षा के पश्चात् सचेत तथा महत्वपूर्ण निर्णय करने को आर्थिक नियोजन कहते है ।"[2] इस परिभाषा के विश्लेषणात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि आर्थिक नियोजन उत्पादन तथा वितरण का सगठित रूप है जिसका संगठन नियोजन अधिकारी द्वारा किया जाता है । परन्तु नियोजन के लक्ष्यो की पूर्ति के लिए निश्चित समय का होना भी आवश्यक है। इस परिभाषा मे समय घटक को कोई स्थान नही दिया गया है ।

प्रोफेसर एस० ई० हैरिस के अनुसार, "नियोजन का अर्थ आय तथा मूल्य

---

1. "A system of economic organisation in which all individual and separate plants, enterprises and industries are treated as co-ordinated single whole for the purpose of utilising all available resources to achieve the maximum satisfaction of the needs of people within a given interval of time.'
—*L Lorwin*

2 "Planning is the making of major economic decisions—what and how much is to be produced, how, when and where it is to be produced and to whom it is to be allocated by the concious decisions of a determined authority on the basis of a comprehensive survey of the system as a whole."
(H D Dickinson, *Economic of Socialism*, p. 14)

के सदर्भ मे निश्चित उद्देश्यो के आधार पर नियोजन अधिकारी द्वारा साधनो का आवटन है।"[1]

साधारण शब्दो म प्रो० हैरिस के अनुसार नियोजन अधिकारी द्वारा *निश्चित किये गये लक्ष्यो के आधार पर साधनो के वितरण को नियोजन कहते* हैं। इस परिभाषा के तीन मुख्य तत्व हैं —

(१) लक्ष्यो का उचितरूपेण निश्चय,

(२) नियोजन अधिकारी तथा

(३) साधनो का वितरण।

लक्ष्यो का निश्चित करना नियोजन की सर्वप्रथम अवस्था है। ये लक्ष्य प्राप्त उन्नति को मापन तथा निश्चित करने मे सहायक होने है। नियोजन के उद्देश्यो की पूर्ति के हेतु एक निश्चित समय निर्धारित किया जाता है और नियोजन की सफलता प्राप्त-उन्नति के पूर्व निश्चित लक्ष्यो से तुलना द्वारा ज्ञात की जाती है। ये लक्ष्य इस प्रकार नियोजन की सफलता परीक्षण हेतु वायु-भार-मापक यन्त्र (Barometer) का कार्य करते है।

नियोजन अधिकारी का तात्पय यहाँ दो बातो से है, प्रथम नियोजन का सगठन तथा द्वितीय नियोजन को जन-समथन। नियोजन अधिकारी नियोजन की समस्त व्यवस्था का सगठन करके उसे सचालित करता है। नियोजन अधिकारी को राष्ट्र के साधनो पर नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त होना आवश्यक है, साथ ही उन साधनो के उपयोग तथा वितरण पर भी पूरा अधिकार होना चाहिए। प्रजातात्रिक नियोजन मे यह अधिकार केवल सरकार द्वारा ही नहीं दिये जा सकते, जनता का सहयोग तथा समथन भी आवश्यक है। जनता के सहयोग से नियोजन अधिकारी का कार्य भार भी कम हो जाता है। तानाशाही नियोजन म जनता का सहयोग शक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है।

साधनो के वितरण मे चार क्रियाएँ सम्मिलित हैं —

(१) राष्ट्र म वितरणार्थ क्या-क्या साधन उपलब्ध है ? इस सम्बन्ध मे राष्ट्र के वास्तविक तथा सम्भावी (Potential) साधनो की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।

(२) नियोजन अधिकारी को उन साधनो की प्राप्ति एव वितरण पर

---

1. "Planning generally substitutes allocation according to goals determined by authority for allocation of resources in response to price and income movement"
(S. E. Harris, *Economic Planning*, p. 26.)

शक्तियों तथा भौतिक साधनों का समाज के अधिकतम हित के लिए उपयोग करना सम्मिलित है। राष्ट्र के लिए नियोजन आय-व्यय पत्रक के निर्माणार्थ राष्ट्र के वर्तमान तथा सम्भाव्य आर्थिक साधनों, जनसंख्या के समान परिवर्तन तथा सभ्यता की सामान्य स्थिति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इस व्यापक ज्ञान की प्राप्ति हेतु मानवीय शक्तियों तथा भौतिक साधनों का परीक्षण तथा उनके विभिन्न उपयोगों की सूची का निर्माण आवश्यक है, ताकि कथित साधनों के सर्वोत्तम सम्भव उपयोग द्वारा उत्पादन तथा लोक जीवन स्तर में वृद्धि की जा सके। प्रत्येक नियोजन की अवधि निश्चित होती है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति करनी होती है। राष्ट्र की सम्पूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को नवीन तथा विवेकपूर्ण विधियों से संगठित करना एवं निवासियों में नूतन जीवन-संचार करना नियोजन का प्रमुख कार्य है। संसार की परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन लाना नियोजन का उद्देश्य होना चाहिए।

डॉ० डाल्टन ने आर्थिक नियोजन को परिभाषित करते हुए कहा है— "आर्थिक नियोजन विस्तृत दृष्टिकोण से वह क्रिया है, जिसमें वृहद् साधनों पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति जानबूझ कर आर्थिक क्रियाओं को निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संचालित करते हैं"[1]। इस परिभाषा में नियोजन के तीन लक्षणों की विवेचना की गयी है — (१) नियोजन का तात्पर्य योजना अधिकारी के आदेशों के अनुसार अर्थ व्यवस्था को संचालित करना है। (२) ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके नियन्त्रण में राष्ट्र के अधिकतर साधन रहते हैं। डा० डाल्टन का तात्पर्य यहाँ राज्य से है। (३) निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अर्थ-व्यवस्था का संचालन किया जाता है।

श्रीमती बारबरा वूटन के अनुसार आर्थिक नियोजन का मुख्य लक्षण जानबूझ कर आर्थिक प्राथमिकताओं का चयन करना है। उन्होंने कहा है— "क्या मैं इस रुपये को रोटी पर व्यय करूँ अथवा अपनी माता की जन्म तिथि के अवसर पर शुभकामनाओं का तार भेजने पर? क्या मैं मकान क्रय कर लूँ अथवा किराये पर ले लूँ? क्या इस भूमि को जोत कर खेती की जाय अथवा उस पर भवन बनाया जाय? प्रत्येक वस्तु असीमित मात्रा में

1 Economic Planning in the widest sense is the deliberate direction of persons in charge of large resources of economic activity towards chosen ends"
(Dr Dalton, *Practical Socialism for Great Britain*.)

उत्पन्न करना असम्भव है, इसीलिये प्राथमिकता निर्धारित करना तथा चयन करना आवश्यक है "।[1]

चयन एव प्राथमिकता निर्धारण करने की दो विधियाँ हो सकती हैं। प्रथम जानबूझ कर प्राथमिकताएं निर्धारित करना और द्वितीय *प्राथमिकताओं* को स्वत बाजार तात्रिकताओ (Market Mechanism) द्वारा निर्धारित होने देना। जब यह प्राथमिकताएं जानपूछकर निर्धारित की जाय तो उसे आर्थिक नियोजन कहना चाहिये। श्रीमती बारबरा बूटन ने अपनी दूसरी पुस्तक 'Plan or No Plan' म आर्थिक नियोजन को इसी आधार पर *इस प्रकार परिभाषित किया है—"आर्थिक नियोजन वह विधि है जिसमे* बाजार तांत्रिकताओ को जानबूझ कर इस उद्देश्य से नियन्त्रित किया जाता है कि ऐसी व्यवस्था उत्पन्न हो जो बाजार तात्रिकताओ को स्वतत्र छोडने पर उत्पन्न हुई व्यवस्था से भिन्न हो"।[2] आर्थिक नियोजन मे प्राथमिकताएं निर्धारित करने का उद्देश्य निश्चित लक्ष्यो की पूर्ति करना होता है। एक *प्रतिस्पर्धीय अर्थ-व्यवस्था मे किसी भी वस्तु के उत्पादन लक्ष्य निश्चित समय* मे पूरा करना सम्भव इसलिये नहीं होता कि इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु जानबूझ कर कोई व्यवस्था नही की जाती है। दूसरे शब्दो मे इस लक्ष्य की पूर्ति अवसर पर छोड दी जाती है। परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य लक्ष्य निर्धारित करके उनकी निश्चित काल मे पूर्ति हेतु व्यवस्था करता है। *जब तक लक्ष्यो की पूर्ति का काम निश्चित न किया जाय,* आर्थिक नियोजन का अर्थ अस्पष्ट रहेगा। इसलिये लक्ष्यो की पूर्ति का निश्चित काल होना भी आवश्यक है।

हर्मन लेवी ने आर्थिक नियोजन की परिभाषा निम्न प्रकार दी है—"आर्थिक नियोजन का अर्थ माँग और पूर्ति मे अच्छा सतुलन प्राप्त करने से है। *यह सतुलन स्वत सचालित, अदृष्य तथा अनियन्त्रित घटको द्वारा*

---

1. Shall I spend this rupee on bread or send a greeting telegram to my mother on her birthday ? shall I buy a house or rent one ? Shall this field be ploughed and cultivated or built on ? Since it is impossible to produce everything in indefinite quantities there must be choice and priority".
(Mrs. Barbara Wooton, *Freedom under Planning*, p 12.)
2. "Economic Planning is a system in which the market mechanism is deliberately manipulated with the object of producing a pattern other than that which would have resulted with its own spontaneous activity".
(Barbara Wooton, *Plan or No Plan*, pp. 47-49.)

निर्धारित होने के लिये नहीं छोड़ा जाता बल्कि उत्पादन अथवा वितरण अथवा दोनो पर विचारपूर्ण एवं जानबूझ कर नियन्त्रण करके निर्धारित किया जाता है"[1]। इस परिभाषा मे नियोजन को माँग और पूर्ति मे अनुकूल संतुलन उत्पन्न करने की कला का स्वरूप दिया गया है। वास्तव मे नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत निश्चित लक्ष्यो की पूर्ति जब ही सम्भव हो सकती है जबकि माँग एवं पूर्ति का सतुलन नियोजन अधिकारी के कार्यक्रमो के अनुकूल किया जा सके।

कार्ल लैन्डौर (Carl Landauer) के अनुसार—"आर्थिक नियोजन का अर्थ उस सामजस्य से है जो विपणि द्वारा स्वत प्राप्त करने की बजाय समाज के किसी सगठन द्वारा जानबूझ कर किये गये प्रयास से प्राप्त किया जाता है। इसलिये नियोजन एक सामूहिक प्रकार की क्रिया है और इसमे व्यक्तियो की क्रियाओ को समाज द्वारा नियन्त्रित किया जाता है"।[2] इस परिभाषा मे नियोजन को एक सामूहिक क्रिया बताया गया है क्योंकि राज्य समाज के प्रतिनिधि के रूप मे इस क्रिया का सचालन करता है। जब अर्थ व्यवस्था के समस्त अगो मे राज्य द्वारा इस प्रकार सामजस्य स्थापित किया जाता है कि निश्चित लक्ष्यो की पूर्ति निश्चित काल मे हो सके तो इस क्रिया को आर्थिक नियोजन कहना चाहिये।

ज्युग (Zweig) के मतानुसार—'आर्थिक नियोजन समस्त अर्थ-व्यवस्था पर केन्द्रीय नियन्त्रण की व्यवस्था है चाहे वह केन्द्रीय नियन्त्रण किसी भी उद्देश्य तथा किन्हीं भी विधियो द्वारा किया जाय'। इस परिभाषा मे आर्थिक नियोजन के तीन लक्षण सम्मलित हैं—

(अ) राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का केन्द्रीयकरण—अर्थ-व्यवस्था के केन्द्रीयकरण से तात्पर्य अधिकार के केन्द्रीयकरण, उत्पादन के केन्द्रीयकरण अथवा नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण से है। आर्थिक नियोजन मे केन्द्रीयकरण सदैव निहित

---

1. Economic Planning means securing a better balance between demand and supply by a conscious and thoughtful control either of production or distribution or of both rather than leave this balance to be affected by automatically working, invisible and uncontrolled force".
(Herman Levy, *New Industrial System*)
2. Planning means coordination through a conscious effort instead of the automatic coordination which takes place in the market and that conscious effort is to be made by on organ of society. Therefore Planning is an activity of collective character and its regulation of the activities of individuals by the Community."
(Carl Landauer, *Theory of National Economic Planning*, p 12)

रहता है। केन्द्रीय अर्थ व्यवस्था म नियोजन का अपनाना अथवा नहीं अपनाना की समस्या नहीं होती है। स व्यवस्था म तो केवल यह निश्चय करना होता है कि विभिन्न केन्द्रित क्ष त्रा म किस प्रकार की याजना सर्वश्र ष्ठ रहेगी। केन्द्रीयकरण अर्थ-व्यवस्था को नियोजन की ओर न जाना है।

(ब) राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था का निश्चित उद्दश्या की पूर्ति हेतु नियन्त्रण—*स्वत त्र बाजार व्यवस्था म किसी भी प्रकार के नियन्त्रण को* स्थान नही होता है। इस व्यवस्था म आर्थिक निश्चय स्वत सचालित माँग और पूर्ति के घटका पर आधारित होत ह। नियोजित अर्थ-व्यवस्था म आर्थिक निश्चय अर्थ साधना म जानबूझ कर नियन्त्रण करक लिए गए है। इसका अर्थ *यह नहीं है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था मूल्य तान्त्रिकता* (Price Mechanism) को कोई स्थान नहीं देती। वास्तव म नियोजित अर्थ व्यवस्था म मूल्यो का सचालन नियोजन अधिकारी द्वारा किया जाता है जबकि बाजार व्यवस्था म मूल्या का सचालन बाजार की माँग पूर्ति आदि घटका द्वारा किया जाता है। *नियोजित अर्थ-व्यवस्था म उत्पादन का चयन व्यवसाय का चयन विनिमय का* चयन बचत एव विनियोजन का चयन तथा उपभोग का चयन व्यवसाइयो श्रमिका उपभोक्ताओ तथा उत्पादका द्वारा नहीं किया जाता है। यह चयन नियोजन अधिकारी द्वारा नियोजन के उद्दश्या क अनुसार किये जाते हैं। इस प्रकार नियोजित अर्थ व्यवस्था म चयन (Choose) करन क अधिकार का नियन्त्रण किया जाता है। इस नियन्त्रण की मात्रा विभिन्न राष्ट्रा म परिस्थितिया क अनुसार भिन्न रहती है।

(स) आर्थिक नियोजन म राष्ट्रीय जीवन की सम्पूर्ण व्यवस्था होती है—आर्थिक नियोजन द्वारा राष्ट्रीय जीवन के समस्त क्ष त्रा क सम्बन्ध म योजनाए बनायी जाती हैं। समस्त राष्ट्र को एक इकाई मान कर कार्यक्रम निर्धारित किय जात हैं। आर्थिक नियोजन की सफलताथ अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्ष त्रो म सामजस्य होना अति आवश्यक होता है।

राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) न जिसकी स्थापना पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता म १९३७ म की गयी थी आर्थिक नियोजन की परिभाषा निम्न प्रकार दी है—

'प्रजातान्त्रिक ढाँच म नियोजन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह उपभोग, उत्पादन, विनियोजन व्यापार, आय वितरण के स्वार्थरहित (disinterested) विशेषज्ञो का तान्त्रिक समन्वय है जो कि राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्थाओ द्वारा निर्धारित विशिष्ट उद्दश्या की पूर्ति हेतु प्राप्त किया जाय।

इस परिभाषा मे इस बात पर जोर दिया गया है कि लक्ष्यो का निर्धारण जनसमुदाय के प्रतिनिधियो द्वारा किया जाय और उनकी पूर्ति हेतु विभिन्न क्षेत्रो के विशेषज्ञो को समन्वित कार्यक्रम निर्धारित करने चाहिये।

नियोजन के तत्व

उपर्युक्त समस्त परिभाषाओ को विश्लेषणात्मक सूक्ष्म अध्ययन निष्कर्ष के रूप मे अधोलिखित नियोजन के आवश्यक तत्वो को प्रस्तुत करता है—

(१) नियोजित अर्थ-व्यवस्था आर्थिक सगठन की एक पद्धति है।

(२) आर्थिक नियोजन मे राष्ट्रीय साधनो का तान्त्रिक समन्वय (Technical co-ordination) होता है।

(३) नियोजन मे साधनो का विवरण प्राथमिकता के अनुसार किया जाता है।

(४) नियोजन के सचालनार्थ एक योग्य एवं उचित अधिकारी होना चाहिए जो साधनो का परीक्षण करे, लक्ष्य निर्धारित करे तथा लक्ष्यो की पूर्ति के ढग निकाले।

(५) नियोजन मे राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित उद्देश्य निश्चित होने चाहिए।

(६) लक्ष्यो की पूर्ति हेतु एक निश्चित अवधि होनी चाहिए।

(७) राष्ट्र के वर्तमान तथा सम्भाव्य साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग—उत्पादन को अधिकतम स्तर पर लाने के लिए किया जाना चाहिए।

(८) नियोजन को जनता का समर्थन प्राप्त होना चाहिए तथा उसके सचालन मे लोक-सहयोग का उचित स्थान होना चाहिए।

उपर्युक्त तत्वो की आधारशिला पर एक सूक्ष्म एव एकीकृत परिभाषा नियोजन स्तम्भ का भार इस प्रकार सह सकती है कि "नियोजन अर्थ-व्यवस्था, लोक सहयोग एव लोक समथन प्राप्त, ऐसे सगठन को कहते है जिसमे नियोजन अधिकारी द्वारा पूर्व निश्चित आर्थिक एव सामाजिक उद्देश्यो की निश्चित अवधि मे पूर्ति करने के हेतु राष्ट्रीय वर्तमान एव सम्भाव्य साधनो का प्राथमिकताओ के अनुसार तान्त्रिक, विवेकपूर्ण एव समन्वित उपयोग किया जाता है।"

नियोजन के उद्देश्य

नियोजन के तत्वो मे यह स्पष्ट है कि इसमे लक्ष्यो का एक क्रम सम्मिलित होता है जो उद्देश्यो की आधारशिला पर निर्मित होता है, नियोजन का सचालन एव कार्यक्रम उसके उद्देश्यो के आधीन होता है। कोई भी कार्यक्रम, व्यवस्था अथवा निर्माण कार्य नियोजन है अथवा नहीं, इसका ज्ञान उस कार्यक्रम, व्यवस्था

अथवा निर्माण-कार्य के उद्देश्यो के निरीक्षण द्वारा ही सम्भव है। ग्राथिक नियोजन के उद्देश्यो को अधोलिखित चार श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) *ग्राथिक उद्देश्य—जिसमे ग्राथिक समानता, अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अविकसित एव अर्ध विकसित क्षत्रो का विकास करना सम्मिलित है,*

(२) सामाजिक उद्देश्य,

(३) राजनीतिक उद्देश्य, तथा

(४) अन्य उद्देश्य।

(१) ग्राथिक उद्देश्य—*ग्राय की समानता*—ग्राथिक नियोजन मे ग्राथिक उद्देश्य का प्रभुत्व होता है, अन्य उद्देश्य ग्राथिक उद्देश्यो की पूर्ति के आधीन होते हैं। ग्राथिक समानता म, जिसे ग्राथिक सुरक्षा भी कहा जा सकता है, राष्ट्रीय ग्राय तथा अवसरो का समान वितरण निहित है। यद्यपि ग्राय की समानता का उद्देश्य पूर्णत प्राप्त करना असम्भव है क्योकि लोगो के कार्य मे भिन्नता होती है और एक उन्नतिशील समाज मे कार्यानुसार ग्राय-वितरण ग्रावश्यक है अन्यथा कार्य के प्रति प्रोत्साहन एव रुचि समाप्त हो जायगी। ग्राय के समान वितरणार्थ राष्ट्रीय ग्राय तथा सम्पत्ति दोनो का ही पुनर्वितरण करना ग्रावश्यक है, क्योकि ग्राय की असमानता का प्रमुख कारण व्यक्तिगत प्रयास नही बल्कि सम्पत्ति का असमान वितरण है।

सरकार ग्राय का पुनर्वितरण करो द्वारा कर सकती है। सम्पन्न समुदाय से अधिक कर-भार द्वारा प्राप्त कर ग्राय को निर्धन वर्ग को सस्ती सेवाएँ, उदाहरणार्थ चिकित्सा सम्बन्धी सेवाएँ, शिक्षा, सामाजिक बीमा, सस्ते भवन, सस्ते खाद्य पदार्थ ग्रादि उपलब्ध कराने पर व्यय किया जा सकता है। दूसरी ग्रोर राज्य मजदूरी के स्तर पर नियन्त्रण करके श्रमिको को कार्यानुसार न्यूनतम पारिश्रमिक प्रदान कराके साहसी का लाभ कम कर सकता है। किन्तु इस कृत्य के पूर्व साहसी के प्रलोभन (Inducement) को भी दृष्टिगत करना होगा। जिसके कारण वह उद्योग चलाता है, यदि साहसी का लाभ अधिक पारिश्रमिक देने के कारण कम हो जायगा, तो वह अपन साधनो को अन्य कार्यों तथा उद्योगो मे लगा देगा तथा उसके समक्ष सामाजिक हित महत्त्वहीन हो जायगा। ग्राय की असमानता को दूर करने के लिए मूल्य नियन्त्रण तथा प्रतिबन्ध (Rationing) का भी उपयोग किया जा सकता है। ग्रावश्यक वस्तुग्रो के वितरण पर सरकारी नियन्त्रण होने से सम्पन्न लोग विपन्न लोगो की भाँति ही उनका समान उपयोग कर सकेंगे। परन्तु मूल्य नियन्त्रण तथा प्रतिबन्ध की सफलता चोरबाजार की सम्भावनाग्रो के कारण सदैव सन्देहपूर्ण रहती है।

अवसर की समानता

अवसर की समानता का तात्पर्य राष्ट्र के समस्त नागरिको को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करने का है। अवसर की समानता प्रदान करने के लिए सम्पत्ति तथा कुशलता का समान वितरण होना आवश्यक है क्योंकि ये दो घटक ही आय के प्रधान साधन हैं। "कुशलता की न्यूनता के कारण ही कार्य के पारिश्रमिक मे असमानता पायी जाती है। खनिक से अधिक डाक्टर आय उपार्जित करता है क्योंकि डाक्टरो की माँग की तुलना में पूर्ति न्यून है जबकि खनिको की पूर्ति माँग की अपेक्षा अधिक है। यदि समाज का प्रत्येक शिशु बिना अधिक व्यय के डाक्टर बन सके, तो डाक्टरो की घरेलू सेवको की भाँति कोई कमी नहीं रहेगी तथा ये डाक्टर फिर इतनी आय उपार्जित नहीं कर सकेंगे। अत करारोपण से पूर्व आय की असमानता के निवारणार्थ हमे अवसर की समानता म वृद्धि करनी चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति शिक्षा प्रणाली मे सुधार द्वारा की जा सकती है। समस्त समाजवादियो का उद्देश्य होता है कि समस्त बच्चो को उनकी योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करने योग्य बनाया जाय तथा शिक्षा और बच्चो के पालको की आय म कोई सम्बन्ध न हो। यदि ऐसी स्थिति वास्तव मे प्राप्त हो सके तो विभिन्न व्यवसायो की आय की असमानता स्वत ही कम हो जायगी।"[1]

सम्पत्ति का समान वितरण करना आय मे समानता लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सम्पत्ति म असमानता का मुख्य कारण उत्तराधिकार का विधान है। व्यक्तिगत धनोपाजन का अधिकाश पैतृक सम्पत्ति से प्राप्त होता है। धनिक को जो आर्थिक सुविधाएं प्राप्त होती है, वह उसकी व्यक्तिगत योग्यता तथा

---

1. "It is the shortage of skills which explains the differences in remuneration for work Doctors earn more than miners because in relation to the demand for doctors there is much greater shortage of doctors than there is of miners If every child in the community could become a doctor at no cost, doctors would not be as scarce, as domestic servants, and would not earn much more In order, therefore, to even out earnings from work before taxation, what we have to do is to increase equality of opportunity The key to this is of course, the educational system. All socialists aim at enabling all children to have whatever education their abilities fit them for without reference to the incomes of their parents, and if this state of affairs can really be achieved, differences between the incomes of different professions will be very greatly reduced" (W. Arthur Lewis, *The Principles of Economic Planning*, p 36)

कुशलता के कारण नही अपितु उसके सम्पत्तिवान् परिवार मे जन्म लेने के कारण है। उनकी स्थिति उत्तरोत्तर सुदृढ होती जाती है क्योकि धनवान अपनी पूंजी मे बचत द्वारा वृद्धि कर सकते हैं तथा अधिक आयदाता व्यवसायो मे सुविधापूर्वक विनियोग कर सकते हैं। इस प्रकार उत्तराधिकार विधान द्वारा सम्पत्ति *तथा आय की असमानता मे वृद्धि होती है।* सम्पत्ति का पुर्नवितरण सरकार द्वारा कर तथा क्षतिपूर्ति के माध्यम से अपहरण करके किया जा सकता है किन्तु सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण से उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती, क्योकि सम्पत्ति के स्वामियो को क्षतिपूर्ति राशि दी जाती है जो सम्पत्ति के स्थान पर अधिक आय दाता सिद्ध होती है। तानाशाही नियोजन म यह कार्य-सम्पादन शक्ति द्वारा सम्भव है *किन्तु प्रजातान्त्रिक नियोजन मे इस उद्देश्य की पूर्ति मृत्यु* कर उत्तराधिकार कर आदि द्वारा शनै शनै सम्भव है।

अधिकतम उत्पादन

अधिकतम उत्पादन नियोजन का प्रमुख उद्देश्य होता है। जनसमुदाय के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के लिए उत्पादन के समस्त क्षेत्रो—कृषि, उद्योग, खनिज आदि म उन्नति करना आवश्यक है। अधिकतम उत्पत्ति हेतु निम्न कार्य करना आवश्यक है —

(अ) राष्ट्रीय सम्भावी साधना एव जन शक्ति का शोषण तथा उचित *उपयोग।*

(आ) उत्पादन क साधनो का पुन विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक वितरण। जो साधन ऐस उद्योगो म लगे हा जिनसे समाज का अधिकतम हित न होता हो, उन्हे पुन वितरित करना भी आवश्यक होगा।

(इ) नवीनतम तान्त्रिक ज्ञान, कुशल श्रम तथा योग्य साहसी का उचित *उपयोग करके राष्ट्रीय साधना से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना।*

(ई) श्रमिको एव प्रबन्ध के सम्बन्धो म सुधार किया जाय जिससे श्रमिक कारखानो को अपना मान कर कार्य कर सक। पारस्परिक अच्छे सम्बन्ध होन से श्रमिक अधिक परिश्रम से कार्य करते हैं। बेरोजगार के भय को दूर करने हेतु पूर्ण रोजगार की व्यवस्था की जानी चाहिये। श्रमिको को प्रबन्ध मे सहयोग देन का अवसर देना भी आवश्यक होता है।

(उ) क्षतिपूर्ण एव हानिकारक प्रतिस्पर्धा पर रोक लगान हेतु उत्पादित वस्तुओ का प्रमापीकरण करना चाहिये।

(ऊ) बड पैमाने के उत्पादन की *मितव्ययता का लाभ उठान हेतु स्थापित* एकाधिकार अथवा किन्ही विशेष कारणो से अस्थायी रूप से बने हुए एकाधिकार पर मूल्य, लाभ एव विक्रय की शर्तों के सम्बन्ध म राज्य को नियन्त्रण रखना चाहिये।

(ए) नवीन उद्योगो (Infant Industries) को प्रोत्साहन देने हेतु आयात कर तथा अर्थ सहायता का आयोजन किया जाना चाहिये।

(ऐ) देश मे मौद्रिक स्थिरता का वातावरण होने पर उत्पादन को अधिकतम सीमा तक ले जाया जा सकता है। मुद्रा स्फीति एव सकुचन दोनो ही उत्पादन की वृद्धि मे रोक लगाते हैं।

(ओ) अधिक मात्रा मे विनियोजन का आयोजन किया जाना चाहिये। विनियोजन की वृद्धि हेतु एच्छिक घरेलू बचत, विदेशी मुद्रा की बचत मुद्रा प्रसार द्वारा बचत तथा सरकारी बचत आदि सभी मे वृद्धि होनी चाहिये।

(औ) विवेकीकरण एव वैज्ञानिक प्रबन्ध की विभिन्न विधियो को समस्त उद्योगो पर लागू किया जाना चाहिये।

जनसाधारण के जीवन स्तर मे वृद्धि करने हेतु आर्थिक नियोजन द्वारा सभी प्रकार के उद्योगो—कृषि, खनिज, निर्माण, उद्योग आदि के उत्पादन मे वृद्धि करने का आयोजन करना मुख्य उद्देश्य होता है।

पूर्ण रोजगार

पूर्ण रोजगार द्वारा राष्ट्र के समस्त कार्य करने योग्य नागरिक को रोजगार का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। पूर्ण रोजगार का आयोजन किये बिना आर्थिक समानता तथा अधिकतम उत्पादन के उद्देश्यो की पूर्ति भी सम्भव नहीं है। श्रम उत्पादन का प्रमुख एव क्रियाशील घटक है और जब तक उत्पादन के समस्त साधनो का पूर्णत उपयोग नही किया जायगा, तब तक अधिकतम उत्पादन बिन्दु का लक्ष्य प्राप्त नही हो सकता। दूसरी ओर जब तक पूर्ण रोजगार का प्रबन्ध नही होगा, बेरोजगार नागरिको को आर्थिक समानता का लाभ प्रदान नही किया जा सकता। आर्थिक समानता म वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी की समस्या का भी निवारण स्वतः होता जायगा। अत राष्ट्र की समस्त उपलब्ध शारीरिक तथा मानसिक शक्तियो का पूर्ण उपयोग एव शोषण होना चाहिए। बेरोजगार तथा आंशिक रोजगार से समाज की आय तथा क्रय-शक्ति मे कमी आती है जो उपभोक्ता तथा निर्माण दोनो ही उद्योगो को क्षतिकारक होता है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे नियोजन का मुख्य उद्देश्य देश के पिछड़े प्रदेशो का औद्योगीकरण करना होता है। अर्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे या तो पूर्ण रोजगार के आधार पर कार्यक्रम निर्धारित किये जाते है या फिर कार्यक्रमो द्वारा रोजगार मे वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे मन्दी काल एव आर्थिक स्थिरता के वातावरण मे नियोजन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना होता है। ऐसी परिस्थिति मे रोजगार की

वृद्धि हेतु विशेष कार्यक्रम निर्धारित किये जाते है क्योंकि अर्थ-व्यवस्था का विकास होने पर भी इन अर्थ व्यवस्थाओ मे बेरोजगार उपस्थित रहता है। पूर्णत नियोजित अर्थ व्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की व्यवस्था एक सर्वमान्य घटक होता है और इसे नियोजन के मुख्य उद्देश्यो मे सम्मिलित करना आवश्यक नही होता है। यहाँ विकास की योजना का अर्थ बेरोजगार की वृद्धि से होता है। परन्तु प्रजातान्त्रिक समाजवादी राष्ट्रो मे जहाँ पूर्णत नियोजित अर्थ व्यवस्था नहीं होती, नियोजन की प्रत्येक योजना मे रोजगार को स्थान होता है और नियोजन के उद्देश्यो मे एक उद्देश्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना भी होता है।

अविकसित एव अर्ध विकसित क्षेत्रो का विकास

सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन स्तर म समानता के स्थापित करने के हेतु राष्ट्र के अविकसित तथा अर्ध-विकसित क्षेत्रो को राष्ट्र के अन्य उन्नत क्षेत्रो के सम्यक् करना भी नियोजन का एक प्रमुख ध्येय है। दलित क्षेत्रा की उन्नति द्वारा ही सम्पूर्ण देश की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है। अविकसित क्षेत्रो के विकास हेतु राष्ट्र के उपलब्ध तथा सम्भाव्य साधनो का उचित एव न्यायपूर्ण वितरण करना अत्यावश्यक है। व्यक्तिगत साहसी अविकसित क्षेत्रो मे विनियोग करन से डरते हैं, अत राज्य को इस क्षेत्र म अग्रसर होकर औद्योगीकरण का अनुसरण करना चाहिए। 'नियोजन म केवल पिछड क्षेत्रो का ही विकास आवश्यक नहीं होता वरन् उन्नत क्षेत्रा का साथ ही साथ विकास आवश्यक है जिससे राष्ट्रीय आय म वृद्धि करके जनसमूह के जीवन-स्तर मे उन्नति की जा सके। यद्यपि नियोजन पिछड़ेपन से सम्बन्धित है, तथापि यह विचारधारा न्यायसगत नही है कि नियोजन का मुख्य उद्देश्य उन पिछड क्षेत्रो म सुधार करना ही है।"[1]

(२) **सामाजिक उद्देश्य**—आर्थिक नियोजन के सामाजिक उद्देश्या का मूलाधार अधिकतम जनता को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना है। इस उद्देश्य को एक अन्य सज्ञा 'सामाजिक सुरक्षा' भी दी जा सकती है। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत समाज के समस्त अगा का उनके कार्य तथा सेवानुसार न्यायोचित

1. "Planning necessitates the development of not only the back ward areas but also the forward areas so as to increase the aggregate national dividend of the country, with a view to raise to standard of living of masses Though Planning is connected with backwardness still it can be justifiably argued that the main objective of Planning is to correct the mal adjustment in those backward areas"

(V Vithal Babu, *Towards Planning*, p. 24.)

पारिश्रमिक दिया जाता है। श्रमिक वर्ग तथा उद्योगपति दोनो को ही उत्पत्ति का उचित अंश मिलना चाहिए। श्रमिक वर्ग का उचित तथा वास्तविक पारिश्रमिक इतना अवश्य होना चाहिए ताकि वह अपने परिवार का अपनी योग्यता तथा स्थिति के अनुसार भरण पोषण कर सके। इसके अतिरिक्त श्रमिक वर्ग को सामाजिक बीमा का लाभ भी प्राप्त होना चाहिए। बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था आदि ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमे श्रमिको को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पडता है। इस प्रकार की समस्त समस्याओ तथा कठिनाइयो से श्रमिक स्वतन्त्र होना चाहिए।

उद्योगपति को दूसरी ओर लाभ मे से उचित भाग उसकी जोखिम तथा कार्यानुसार मिलना चाहिये जिससे उद्योगो के प्रति उसका प्रलोभन एव रुचि नष्ट न हो सके। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे साहसी का भाग कम अवश्य हो जायगा, फिर भी यह कमी इतनी अधिक न हो कि साहसी के प्रोत्साहन के लिये हानिकारक हो। आर्थिक नियोजन के सामाजिक उद्देश्यो मे एक वर्गरहित समाज की स्थापना करना भी सम्मिलित है, ऐसे वर्ग, जातियाँ तथा समुदाय जिन्हे समाज मे समान स्थान प्राप्त न हो, उन्हे समानता के स्तर पर लाना भी आवश्यक है। समाज मे आर्थिक वर्ग अर्थात् धनवान तथा निर्धन के वर्ग-भेद को आर्थिक समानता द्वारा नष्ट किया जाता है। सामाजिक वर्गों की समाप्ति हेतु पिछडी जातियो तथा समुदायो की शिक्षा मे सुविधाएँ देकर, शासकीय सेवाओ मे प्राथमिकता प्रदान कर तथा सामाजिक रूढिवादी तथा हीन नियमो को विधान द्वारा वर्जित कर अन्य सम्मान प्राप्त जातियो तथा समुदायो के समान स्तर पर लाना भी नियोजन का उद्देश्य होना है।

(३) राजनीतिक उद्देश्य—कल-युग मे आर्थिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्र की राजनीतिक सत्ता की रक्षा, शक्ति तथा सम्मान मे वृद्धि करना भी है। रूस मे नियोजन के मुख्य उद्देश्य आर्थिक तथा सामाजिक समानता होते हुये भी राष्ट्र सुरक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है। राष्ट मे राजनीतिक स्थिरता की उपस्थिति मे ही अर्थ-व्यवस्था मे स्थिरता सम्भव है तथा निश्चित नीतियो तथा कार्यक्रम को सुगमता एव सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है। अतएव राष्ट्रीय साधनो, उद्योगो तथा कृषि का सगठन इस प्रकार किया जाता है कि सम्भावी युद्ध के भय से देश की रक्षा की जा सके।

आधुनिक युग मे शीत-युद्ध का बोलबाला है, जिसकी पृष्ठभूमि मे साम्राज्यवाद का स्थान आर्थिक प्रभुत्व ने ले लिया है। ससार के सभी बडे राष्ट्र बाजारो

तथा विषमताओ मे कमी करना थे। विषमताओ की कमी को हमे आर्थिक एव सामाजिक दोनो ही प्रकार का उद्देश्य मानना चाहिये । विषमताओ की कमी हेतु प्रथम योजना मे जो कार्यवाही की गयी, उनमे से मुख्य हैं- कम्पनी विधान म सुधार करके औद्योगिक इकाइयो पर पूंजीपतियो के अधिकार एवं नियन्त्रण को सीमित करना इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करके जनसाधारण की बचत को जन-कल्याण के लिये उपयोग करना, आधारभूत उद्योगो को सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत चलाना, सहकारी क्षेत्र का विकास, सामुदायिक विकास योजनाओ तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा का सचालन, जायदाद कर, पूंजीगत लाभो पर कर तथा अन्य कर सम्बन्धी सुधार, समाज-कल्याण के कार्यक्रम तथा रोजगार के अवसरो मे वृद्धि आदि।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे २५% वृद्धि, शीघ्र औद्योगीकरण, रोजगार के अवसर म वृद्धि तथा विषमताओ मे कमी थे। परन्तु इन सभी आर्थिक उद्देश्यो का अन्तिम लक्ष्य देश को कल्याणकारी राज्य (Welfare State) मे परिवर्तित करना था जिसमे जनसाधारण को आर्थिक एवं सामाजिक न्याय का आश्वासन हो सके। इस योजना का अन्तिम लक्ष्य देश मे ऐसा वातावरण उत्पन्न करना था जो कि समाजवादी समाज की स्थापना के लिये अनुकूल हो। योजना मे समाज कल्याण हेतु शिक्षा के प्रसार, सामुदायिक विकास योजनाओ एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा के विकास, चिकित्सा की सुविधाओ मे वृद्धि आदि का आयोजन किया गया था जिसमे समस्त नागरिको-के आर्थिक एव सामाजिक जीवन मे पर्याप्त सुधार हो सके। योजना म रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने को विशेष महत्व दिया गया। यद्यपि योजना मे पूर्ण रोजगार की व्यवस्था नहीं की गयी, फिर भी रोजगार मे वृद्धि करना योजना का एक मुख्य उद्देश्य मान लिया गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य हैं— राष्ट्रीय आय मे २५% से ३०% तक वृद्धि, खाद्यानो मे आत्मनिर्भरता एव कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि, औद्योगीकरण की प्रगति हेतु आधारभूत उद्योगो का विस्तार, रोजगार के अवसरो मे पर्याप्त वृद्धि करना तथा आय-धन एव आर्थिक सत्ता की विषमताओ मे कमी। वास्तव मे यह समस्त उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। परन्तु *तृतीय योजना का अन्तिम लक्ष्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना की ओर* एक और कदम बढाना है। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी आर्थिक एव अन्य नीतियो द्वारा समाज के निर्बल वर्गो के उत्थान मे सहायक हो जिससे यह वर्ग अन्य वर्गों के समान हो सके। योजना म निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सहकारी

सस्थाम्रो को विशेष महत्व दिया गया है। सहकारी सस्थाम्रो द्वारा प्रजातान्त्रिक विधियो द्वारा सामाजिक स्थिरता एव आर्थिक विकास सम्भव होता है। भूमि-सुधार, कृषि-भूमि की अधिकतम मात्रा निर्धारित करना, सिचाई-सुविधायें, पिछडी जातियो के लिए कल्याण कार्यक्रम, ६ से ११ वर्ष के बच्चो को अनिवार्य शिक्षा, प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्रो की स्थापना, पीने के जल का ग्रामीण-क्षेत्रो मे प्रबन्ध, रोगो का उन्मूलन, स्त्री एवं शिशु कल्याण हेतु समाज सेवा की सस्थाम्रो की स्थापना, सामुदायिक विकास योजनाम्रो का विस्तार आदि समस्त ऐसी कार्यवाहियाँ हैं जिनके द्वारा आर्थिक एव सामाजिक विषमता कम करने मे सहायता मिलेगी। योजना के समस्त क्षेत्रो के सन्तुलित विकास का भी आयोजन है।

भारतीय योजनाम्रो के राजनीतिकउ द्देश्य देश की सुरक्षा करना हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु देश मे आधारभूत उद्योगो-लोहा एव इस्पात, रासायनिक एव इन्जीनियरिंग उद्योगो की स्थापना, विकास एव विस्तार करने का आयोजन किया गया है। भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था की विशेषता यह है कि सत्तारूढ दल अपने निजी राजनीतिक हितो की पूर्ति योजनाम्रो द्वारा नहीं करता है। भारतीय नियोजन के अन्तर्गत देश मे राजनीतिक स्वतन्त्रता पर कोई अंकुश नही लगाये गये है। इसके अतिरिक्त देश मे आर्थिक साधनो का भी उपयोग राजनीतिक हितो की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता है। प्रजातान्त्रिक राज्य मे किसी दल के निरन्तर सत्तारूढ रहने के लिये जनसाधारण मे उस दल के प्रति विश्वास एव सद्भावना उत्पन्न करना आवश्यक होता है। यह विश्वास एव सद्भावना जनसाधारण को आधारभूत अनिवार्यताएँ उपलब्ध कराके किया जाता है। सत्तारूढ दल अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने हेतु अधिकतम जन-समाज के अधिकतम सन्तोष का योजनाम्रो द्वारा आयोजन कर सकता है। भारत की योजनाम्रो द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति की जा रही है।

———

अध्याय ३

नियोजन के प्रकार

[नियोजन की भिन्नता के लक्षण, नियोजन के प्रकार, समाजवादी नियोजन, साम्यवादी नियोजन, पूंजीवादी नियोजन, प्रजातांत्रिक नियोजन, तानाशाही नियोजन, गाँधीवादी नियोजन, गतिशील बनाम स्थिर नियोजन, निकट-भविष्य बनाम सुदूर भविष्य के लिए नियोजन, कार्य-प्रधान बनाम निर्माण-प्रधान नियोजन, भौतिक बनाम वित्तीय नियोजन, राष्ट्रीय बनाम क्षेत्रीय नियोजन, अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन]

आधुनिक युग के जटिल आर्थिक सगठन मे नियोजन के अनेक प्रकार हो गये हैं। राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति (Political Set-up) के अनुसार ही नियोजन का प्रकार निश्चित किया जाता है। एक साम्यवादी सरकार देश मे साम्यवादी-नियोजित व्यवस्था के लिए कार्यवाही करती है, जबकि समाजवादी सरकार म समाजवादी नियोजन का महत्व है, तथापि लगभग समस्त प्रकार के नियोजन के मूल उद्देश्य समान होते है। उन उद्देश्यो की पूर्ति एव प्राप्ति हेतु जो तरीके अपनाये जाते हैं, केवल उनम भिन्नता होती है। सभी प्रकार के नियोजन मे सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा प्रमुख उद्देश्य समझे जाते है और राष्ट्र के, इन दोनो मूलभूत उद्देश्यो की पूर्ति के लिए नियोजन के प्रकार के अनुसार, समस्त साधनो का उपयोग किया जाता है । तानाशाही नियोजन मे आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा का आयोजन केवल एक साधन मात्र होता है, जिसके द्वारा अनन्य शासक की शक्तियो तथा सम्मान मे वृद्धि प्राप्त की जाती हैं।

नियोजन की भिन्नता के लक्षण

विभिन्न प्रकार के नियोजनो के अन्तर का निम्नलिखित गुणो के आधार पर अध्ययन किया जा सकता है —

(१) राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था पर राजकीय नियन्त्रण की सीमा अर्थात् राजकीय तथा निजी क्षेत्र का आर्थिक व्यवस्था मे स्थान ।

(२) नियोजन की कार्य सचालन विधि—केन्द्रीय नियन्त्रण द्वारा अथवा प्रलोभन द्वारा—केन्द्रीय नियन्त्रण विधि म सरकार द्वारा नियुक्त केन्द्रीय नियोजन अधिकारी राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था का सचालन करता है और इस प्रकार सरकार के हाथो मे आर्थिक एव राजनीतिक दोनो ही शक्तियां का सम्पूर्ण सचय हो जाता है। इस व्यवस्था मे अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र पर सरकार का नियन्त्रण होता है और व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रताओ—साहस, प्रसविदा सम्पत्ति तथा धन के उपयोगी सम्बन्धी—को केन्द्रीय अधिकारी के आधीन कर दिया जाता है। दूसरी ओर प्रलोभन विधि म केन्द्रीय अधिकारी उत्पादन वितरण एव विनियोजना सम्बन्धी लक्ष्यो की पूर्ति के लिये प्रलोभन विधियां का उपयोग करता है। अर्थ व्यवस्था पर कठोर नियन्त्रण का अभाव रहता है। निजी साहस को भी अधिकतर क्षेत्रो म कार्य करन का अवसर प्रदान किया जाता है। सरकार लक्ष्यो की पूर्ति के लिए आज्ञाओ (Direcions) के स्थान पर विपणि व्यवस्था म, आय, मूल्य कर व्यवस्था एव तटकर नीति (Fiscal Policy) म हर फर करती है साथ ही जनसमुदाय को योजना के उद्देश्य समझा कर उन्हे योजन की सफलता के हेतु कार्य करने क लिए प्रोत्साहित करतो है। यद्यपि प्रलोभन विधि म केन्द्रीय नियन्त्रण तथा केन्द्रीय नियन्त्रण विधि म प्रलोभन का उपयोग होता है तथापि जब किसी व्यवस्था म आर्थिक शक्तियो का केन्द्रीयकरण राज्य के हाथो मे बडी सीमा तक होता है तो उस केन्द्रीय नियन्त्रण विधि कहा जा सकता है। दूसरी ओर जब योजना क सचालन के लिए केन्द्रीय नियन्त्रण का प्रत्यक्ष उपयोग केवल सीमित रूप म किया जाता है, तब इस विधि को प्रलोभन विधि कहा जा सकता है।

(३) अर्थ-व्यवस्था मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का स्थान।

(४) नियोजन के लक्ष्य तथा उनका पूर्ति काल।

(५) उत्पादनो के साधनो तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति पर राजकीय नियन्त्रण प्राप्त करन की विधि—बल द्वारा, उचित मुआवजा देकर अथवा कर द्वारा धीरे धीरे अपहरण करके।

(६) नियोजन के राजनीतिक उद्देश्य, विदेशी व्यापार तथा विदेशी विनियोजन।

नियोजन के प्रकार

उपर्युक्त गुणो के आधार पर नियोजन निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं —

(१) समाजवादी नियोजन (Socialistic Planning)

(२) साम्यवादी नियोजन (Communistic Planning)

(३) पूंजीवादी नियोजन (Capitalistic Planning)
(४) प्रजातान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning)
(५) तानाशाही नियोजन (Fascist Planning).
(६) गांधीवादी नियोजन अथवा सर्वोदयी नियोजन (Gandhian Planning or Sarvodaya Planning)

अब हम उपर्युक्त नियोजन के प्रकारो का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

समाजवादी नियोजन

आर्थिक नियोजन वास्तव मे समाजवाद का एक अभिन्न अग है। सैद्धान्तिक रूप से हम भले ही यह विचार कर सकते हैं कि समाजवाद एव आर्थिक नियोजन मे कुछ अन्तर है परन्तु व्यवहारिक रूप से इन दोनो का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि आर्थिक नियोजन की अनुपस्थिति मे समाजवाद को विचारधारा को व्यवहारिक रूप नही दिया जा सकता है। समाजवाद के अन्तर्गत राज्य को ऐसी विधियो का उपयोग करना होता है कि अर्थ-व्यवस्था को समाजवादी लक्ष्यो की ओर अग्रसर किया जा सके। सरकार द्वारा जब इन विधियो का उपयोग किया जाता है तो इसका रूप सरकारी नियोजन बन जाता है। सामाजिक एव आर्थिक समानता का आयोजन करने हेतु सरकार को निजी व्यवसाय, सम्पत्ति एव प्रतिस्पर्धा पर नियन्त्रण करके देश के आर्थिक साधनो का इस प्रकार उपयोग करना होता है कि आर्थिक विकास के लाभ समस्त समाज को प्राप्त हो सकें। राज्य द्वारा इस कार्यवाही को किये जाने से अर्थ-व्यवस्था का सचालन स्वतन्त्र बाजार पद्धति से बदलकर केन्द्रीय व्यवस्था हो जाता है जो कि आर्थिक नियोजन का स्वरूप होता है।

समाजवादी नियोजन के अन्तर्गत समाज के पूर्ण आर्थिक साधनो एव श्रम शक्ति का प्रयोग समस्त समाज के लिए किया जाता है। उत्पादन का लक्ष्य समस्त समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति करना होता है न कि व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना। समाजवाद के अन्तर्गत मानवीय श्रम का उपयोग पूंजी सग्रह के लिए नही किया जाता है अपितु सगृहीत पूंजी मानवीय श्रम के उत्थान एव आराम के लिए प्रयोग की जाती है। केन्द्रीय नियन्त्रण होने पर अर्थ-व्यवस्था से निरर्थक प्रतिस्पर्धा का उन्मूलन हो जाता है और अपव्यय को कम किया जा सकता है। समाजवादी नियोजन मे भारी उत्पादक उद्योगो का आधार उपभोक्ता उद्योग नहीं होते हैं। भारी उद्योगो के विकास को केन्द्रीय अधिकारी सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं।

समाजवाद का वास्तविक स्वरूप आधुनिक युग मे केवल एक सिद्धान्त मात्र है क्योकि इसके मूल उद्देश्यो—आर्थिक एव सामाजिक समानता—की पूर्ति के लिए बहुत से तरीके अपनाये जाने लगे है। समाजवादी नियोजन मे केन्द्रीय नियन्त्रण का विशेष महत्व होता है; सरकारी क्षेत्र को विकसित तथा निजी क्षेत्र को सकुचित किया जाता है। राष्ट्रीय उत्पादन तथा विवरण कार्य पर सरकार द्वारा धीरे-धीरे नियत्रण प्राप्त किया जाता है। मूल तथा आधारभूत उद्योगो, जैसे यातायात शक्ति, युद्ध-सामग्री-निर्माण, लोहा तथा इस्पात, रसायन तथा इन्जीनियरिंग आदि आदि का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। भूमि को भी शासन अपने अधिकार मे कर लेता है। इस प्रकार राज्य प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन क्षेत्र का सचालन करता है। राष्ट्र के अधिक से अधिक साधनो को पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे विनियोजित किया जाता है। उद्योगो का प्रबन्ध नियमो द्वारा होता है जिनमे मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियो को भी स्थान दिया जाता है। वित्तीय मामलो पर नियत्रण प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय तथा अन्य अधिकोषो का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। दीर्घकालीन विनियोजन नीति को—बीमा का राष्ट्रीयकरण, वित्तीय निगमो की स्थापना तथा अन्य बचत योजनाओ द्वारा नियंत्रित किया जाता है। निजी सम्पत्ति का अपहरण मृत्यु तथा उत्तराधिकार कर द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार पूर्णत. समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादक तथा उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को कोई विशेष स्थान प्राप्त नही होता। सरकार नियोजन के लक्ष्य अधिक ऊंचे निश्चित करती है और उनकी पूर्ति के लिए उपलब्ध साधनो का अधिकाश भाग पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगो मे विनियोजित करती है; उपभोक्ता वस्तुओ (Consumer goods) का उत्पादन,देश की बढ़ती हुई आवश्यकता की तुलना मे कम रहता है। ऐसी अवस्था म उपभोक्ता को राशनिंग तथा मूल्य नियंत्रण द्वारा वस्तुएं सीमित मात्रा मे उपलब्ध होती हैं, साथ ही उत्पादन भी सरकार की नीति के अनुसार ही किया जाता है। साधनो का आवटन पूर्व-निश्चित उत्पादन-लक्ष्यो के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार वस्तुएं क्रय करने तथा उत्पादको को उपभोक्ता की मांग के अनुसार उत्पादन करने की स्वतन्त्रता नहीं होती है।

परन्तु समाजवादी इस मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्व नहीं देते है। उनके लिए स्वतन्त्रता का अर्थ जनसमूह की इच्छाओ, बीमारी, अज्ञानता, बेकारी तथा असुरक्षा से स्वतन्त्रता प्रदान करना है। इन सभी कठिनाइयो से स्वतन्त्रता समाजवादी नियोजन द्वारा शीघ्र तथा अधिक मात्रा मे

प्राप्त की जा सकती है। समाजवादी व्यवस्था मे व्यक्तिगत राजनीतिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना कठिन होता है क्योकि नियोजन के दीर्घकालीन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक सचालित करने के लिए राजनीतिक स्थिरता की आवश्यकता होती है। एक पक्ष की सरकार जो दीर्घकालीन नियोजन का कार्यक्रम बनाती है, उसकी पूर्ति के लिए उस पक्ष की सरकार का बना रहना आवश्यक होता है, अन्यथा नवीन सरकार आने पर पूर्व के कार्यक्रमो को रद्द कर दिया जाना स्वाभाविक है। यदि विपक्षी दल नियोजन के मूल उद्देश्यो से सहमत हो और अपनी आलोचना इन उद्देश्यो की सीमा तक ही सीमित रखता हो तब राजनीतिक स्वतन्त्रता बनाये रखने मे कोई खतरा नहीं होता, क्योकि विपक्षी सरकार बनने पर नियोजन के कार्यक्रम रद्द किये जाने की सम्भावना नहीं होती है। परन्तु जब विपक्षी दल नियोजन के मूल उद्देश्यो से सहमत न हो तब उसकी स्वतत्रता पर नियन्त्रण रखना आवश्यक होता है। परन्तु समाजवादी नियोजन का सचालन-विभिन्न संस्थाओ तथा निगमो द्वारा किया जाता है और ये निगम लोकसभा के विधानो द्वारा सगठित किये जाते हैं। विपक्षी सरकार बनने पर भी इन सस्थाओ का विघटन करना सम्भव नहीं होता। इस प्रकार राजनीतिक स्वतन्त्रता पर कोई विशेष अकुश रखने की आवश्यकता नहीं होती है।

समाजवादी नियोजन के अभिलापी तथ्यो की पूर्ति के लिए जनसमूह को प्रारम्भिक अवस्था मे अधिक त्याग और कठिनाई उठानी पडती है ; क्योकि उपभोक्ता की स्वतन्त्रता तथा निजी स्वामित्व को सीमित कर दिया जाता है। विदेशी व्यापार भी सरकारी निगमो द्वारा सचालित तथा नियन्त्रित होता है और समय-समय पर सरकार की विदेशी व्यापार नीति घोषित की जाती है जिसमे पूंजीगत वस्तुओ के आयात तथा उपभोग की वस्तुओ के निर्यात पर जोर दिया जाता है। नियोजन को वित्तीय सहायता केवल अन्य राष्ट्रो की सरकारो तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ से ही प्राप्त हो पाती है, क्योकि विदेशी पूंजीपति राष्ट्रीयकरण तथा अपहरण के भय से समाजवादी देशो मे विनियोजन करना एक अच्छा एवं हितकर नहीं समझते हैं।

समाजवादी नियोजन के केन्द्रीय नियन्त्रण मे समस्त नीतियाँ तथा आदेश सरकारी अधिकारियो द्वारा निर्मित तथा सचालित किये जाते हैं। ये कर्मचारी शासकीय सिद्धान्तो की जटिलता की ओर विशेष ध्यान देते हैं। सरकारी नियम दृढ होते है जिनमे परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है। सरकारी कर्मचारियो मे आत्मबल (Initiative) तथा नये कार्य

प्रारम्भ करने के लिए रुचि का अभाव होता है। इसीलिए जोखिम के कार्यों में वे उचित एवं सफल नीति निर्धारण में कामयाब नहीं होते। सरकारी नीतियों में इस प्रकार नौकरशाही (Beaurocratic feelings) की छाप लगी रहती है जिससे कि जनता का सहयोग प्राप्त नहीं होता, उत्पादन कार्य में शिथिलता आती है तथा साधनों का अपव्यय होता है।

साम्यवादी नियोजन

साम्यवादी नियोजन (Communistic Planning) समाजवादी नियोजन का कठोर स्वरूप होता है, जिसमें बल, दबाव, केन्द्रीकरण तथा कठोरता का विशेष स्थान होता है। साम्यवादी नियोजन पूर्णतः केन्द्रित होता है। इसका मुख्य उद्देश्य अर्थ-व्यवस्था पर पूर्ण राजकीय नियन्त्रण द्वारा आर्थिक तथा सामाजिक समानता प्राप्त करना होता है। इसमें शक्तियों का कठोर केन्द्रीयकरण होता है और केन्द्रीकरण का अवस्था का छाप सदैव लगी रहती है। रूस में इस प्रकार के नियोजन का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। रूस में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीयकरण हुआ है और नियोजन ऐसी कार्य-प्रणाली में संचालित किया गया है, जहाँ नियमन, नियन्त्रण और केन्द्रीकरण की भी पूर्ण सत्ता केन्द्रीय अधिकारी में ही समर्पित रहती है। इस प्रकार साम्यवादी देशों में नियमित रूप से आयोजित अर्थ-व्यवस्था का अनुशीलन होता है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सर्वप्रथम संचालन रूस में ही हुआ, जहाँ अर्थ-व्यवस्था का समाजीकरण करने का भरसक प्रयत्न किया गया है और विपणि तान्त्रिकता (Market Mechanism) तथा स्वतन्त्र साहस को नियमित रूप से पर्याप्त दबा दिया गया है। सोवियत नियोजन शीघ्र और आश्चर्य-जनक विकास में विश्वास रखता है, इसलिए राष्ट्र के अधिक से अधिक साधनों को पूँजीगत वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगों में विनियोजित किया जाता है। उपभोक्ता-उद्योगों को विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाती हैं जिससे उपभोक्ता वस्तुओं की न्यूनता के कारण जनसमूह को अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। नियोजन की दिन प्रति दिन प्रगति की ओर ध्यान दिया जाता है और नियोजन को सफल बनाने के लिए अधिक से अधिक त्याग, कठिनाइयों का सामना तथा कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार इस व्यवस्था में मानव-जीवन कठोरतापूर्ण तथा केन्द्रीकरण की अवस्था में ढल जाता है।

"सोवियत संघ में आर्थिक नियोजन उच्चतम कोटि की विकसित स्थिति पर पहुँच गया है। इससे स्पष्टतः पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतिस्थापन होता है।

पूँजीवादी व्यवस्था मे आर्थिक साधनो का आवटन मूल्य तथा आय से निश्चित होता है तथा यह उपभोक्ता की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित होता है और इसमे निश्चय बहुत से व्यापारियो द्वारा किये जाते है। (रूस मे) राज्य अपने गौसप्लान (Gosplan) द्वारा उत्पादन की रूपरेखा निश्चित करता है जिसके मुख्य निश्चयो को समाज के महत्वपूर्ण उद्देश्यो अथवा पोलिटब्यूरो (Politburo) पर आधारित किया जाता है। वास्तव मे दुलभ साधनो का आवटन निर्मित वस्तुओ से प्राप्त होने वाले मूल्य के आधार पर न करके नियोजन की प्रमुखताओ के अनुसार किया जाता है। प्रबन्धको तथा श्रमिको को पारिश्रमिक मुद्रा मे मिलता है। यह पारिश्रमिक प्राप्त परिणामो तथा श्रमिको की आवश्यक पूर्ति को बनाये रखन के लिए न्यूनतम मजदूरी पर आधारित होता है। मुद्रा म भुगतान होते हुए भी श्रमिको को उपभोक्ता-चुनाव का अधिकार सीमित होता है। दूसरी ओर नियोजक उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे समायोजन चुनाव अनुसार करता है। स्पष्टत योजना बनाने वाले एकमात्र उपभोक्ता की मांगो पर विश्वास नही करते हैं। वे राष्ट्रीय दुर्लभ साधनो को आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन से अनावश्यक वस्तुओ के उत्पादन मे केवल इसलिए नहीं लगाते कि उपभोक्ता उन वस्तुओ को प्राथमिकता प्रदान करता है और न ही नियोजक प्रतिबन्धित आयात को उपभोक्ता की इच्छानुसार परिवर्तित करते है।"[1]

1 "In the U S S R the economic plan has reached its highest state of development It is obviously a substitute for that allocation of economic resources which in a capitalist system is determined by prices and incomes and related in turn to consumer's sovereignty and decisions made by innumerable businessmen The state through its Gosplan determines the outlines of production plan bearing its principal decisions upon the broad objectives of the society or the Politburo Obviously they will allocate scarce resources in accordance with the priorities of the Plan, not primarily according to the prices bid for the finished products. Managers and workers will receive compensation in currency, the compensation will vary with results attained and wages required to elicit the necessary supply of labour. Payments in money will enable the workers to exercise a limited consumers' choice, the planners in turn readjusting output of consumer goods in accordance with the selections made Obviously, architects of the plan will not rely exclusively on the dictates of the consumers They will not divert scarce domestic resource from essentials to non-essentials merely because consumers express a preference for the latter, nor will they divert restricted imports"
(S E. Harris, *Economic Planning*, pp 17 19.)

इस प्रकार नियोजन द्वारा पूर्णत: समाजवादी समाज की स्थापना की जाती है जिसमे निजी क्षेत्र का कोई स्थान नहीं होता। अर्थ-व्यवस्था पर पूर्ण रूप से राज्य का नियन्त्रण रहता है और शक्तियो का केन्द्रीयकरण उत्कृष्ट होता है। निजी सम्पत्ति का अपहरण बल द्वारा तथा करो द्वारा किया जाता है। राष्ट्र के समस्त उद्योग राज्य के आधीन होते हैं। देशी तथा विदेशी व्यापार भी राज्य अथवा राज्य द्वारा नियन्त्रित सस्थाओ द्वारा किया जाता है। "निजी क्षेत्र को, *जिसे आवश्यक रूप से समाज विरुद्ध समझा जाता है, कठोर विधियो द्वारा* अन्तत समाप्त कर दिया जाता है, केवल सीमित, प्रतिबन्धित तथा अस्थायी रूप से आर्थिक विकास मे स्थान दिया जाता है। यह स्थान समाजवाद म परिवर्तित होन तक केवल इसलिए दिया जाता है क्योकि समाजवाद अनायास क्रियान्वित नही किया जा सकता और क्योकि निजी साहस अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रो को समाजवाद के योग्य बनान म व्यावहारिक विधियाँ उपस्थित करता है।"[1]

साम्यवादी नियोजन मे लोकतन्त्रीय स्वतन्त्रता का समन्वय नहीं होता क्योकि लोकतन्त्र मे शक्तियो के विकेन्द्रीकरण को महत्व प्राप्त है जबकि साम्यवादी नियोजन शक्तियो के कठोर केन्द्रीय नियन्त्रण का अन्य रूप है। आर्थिक स्वतन्त्रता को अत्यन्त सीमित कर दिया जाता है और राजनीतिक स्वतन्त्रता को लुप्त प्राय। साम्यवादी राष्ट्रो मे विपक्षी दल एक स्वप्न मात्र है। राज्य के विरुद्ध आवाज उठान वालो को बल द्वारा कुचल दिया जाता है।

इस प्रकार दीर्घकालीन आयोजन—जिनके लक्ष्य अत्यधिक अकांक्षापूर्ण होते हैं—को सफलता पूवक कार्यान्वित किया जाता है। जनता म भय की स्थिति रहती है, अत राज्य द्वारा बनाया गया प्रत्येक कायक्रम सफल होता है। लक्ष्यो की पूर्ति कम समय मे होती है क्योकि जनसाधारण को कठिनाइयो को दृष्टिगत नही किया जाता। तात्पर्य यह है कि साम्यवादी नियोजन समाजवादी नियोजन का उग्र, उत्कृष्ट एव कठार स्वरूप होता है।

---

1. "Private enterprise, being regarded as fundamentally anti-social and eventually doomed to extinction by exorable processes of history, is given only a limited and strictly temporary role in economic development During the 'Transition to Socialism' it has its part to play, but only because Socialism cannot be introduced ovet night, and becanse private enterprise may offer the most practical method of raising certain sectors of economy to a level where they become ripe for socialisation" (A. H Hanson, *Public Enterpris and Eccnomic Development*, p 14)

पूँजीवादी नियोजन

वास्तव मे यह कहना उचित ही है कि शुद्ध पूँजीवाद मे जो कि मूल्य एव निजी लाभ पर ग्राधारित होता है, ग्रार्थिक नियोजन का सचालन ग्रसम्भव है। नियोजन के ग्रन्तर्गत देश की उत्पादन क्रियाग्रों का जानबूझ कर निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु राज्य द्वारा सचालन किया जाता है जबकि पूँजीवाद उत्पादक की पूर्ण स्वतन्त्रता को मान्यता देता है। ऐसी परिस्थिति मे इन दोनो मे समन्वय जब ही हो सकता है जबकि पूँजीवाद के शुद्ध स्वरूप मे कुछ परिवर्तन कर दिए जायँ। वास्तव मे नियोजित पूँजीवाद होने पर पूँजीवाद का स्वरूप नष्ट हो जाता है। जैसे ही ग्रर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रो पर राजकीय नियन्त्रण होता है, पूँजीवाद ग्रपना वास्तविक स्वरूप खोने लगता है। नियोजन एक सामूहिक क्रिया है जो ग्रर्थ-व्यवस्था के समस्त ग्रगो को ग्राच्छादित करती है ग्रौर जिसे राज्य द्वारा किया गया सगठित एव समन्वित प्रयास कहा जा सकता है। पूँजीवाद मे ग्रर्थ-व्यवस्था कुछ ग्रगो पर राजकीय नियन्त्रण प्राप्त करके नियोजन का प्रारम्भ होता है ग्रौर धीरे धीरे इस नियन्त्रण का प्रभाव ग्रन्य क्षेत्रो पर पडने लगता है जिससे पूँजीवाद का स्वरूप धीरे धीरे परिवर्तित होता जाता है।

ग्राधुनिक युग म पूँजीवादी राष्ट्रो मे भी नियोजन (Capitalistic Planning) ने महत्व प्राप्त कर लिया है। इसमे केन्द्रीय व्यवस्था को सीमित तथा ग्रस्थायी स्थान प्राप्त होता है। प्रारम्भिक ग्रवस्था म पिछडे हुए राष्ट्रो मे राज्य को उद्योगो की स्थापना तथा विकास म प्रत्यक्ष रूपेण भाग लेना पडता है क्योकि निजी साहस दुर्बल एव उस समय जोखिम ले सकने के ग्रयोग्य होता है। जैसे-जैसे निजी साहस का विकास होता जाता है, राज्य उद्योगो को निजी साहस के हाथो में सौंपता जाता है। जापान म राज्य न ग्राधारभूत सेवाग्रो के उद्योगो के ग्रतिरिक्त शेप समस्त उद्योगो के प्रवर्त्तक का कार्य सम्पादन किया है। जब वे उद्योग दृढतापूर्वक स्थापित हो गये एव लाभोपार्जन करने लगे, तब उन्हे निजी साहसियो के हाथ बेच दिया गया। दूसरी ग्रोर मैक्सिको मे राज्य की दृष्टि म निजी साहस को ही प्रारम्भ मे ही सुदृढ समझा जाता है ग्रौर केवल ग्रार्थिक तथा ग्रन्य सहायता देने की ग्रावश्यकता ही समझी गयी है। इन परिस्थितियो म राज्य साहसी का कार्य स्वय करने के स्थान पर निजी साहस को ग्रावश्यक सहायता प्रदान करके विकास-हेतु प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार पूँजीवादी देशो मे निजी साहस के सुदृढ होने तक ही राजकीय क्षेत्र का उपयोग किया जाता है।

पूँजीवादी नियोजन म विपणि की स्थिति मे हेर-फेर करके नियोजन के

विकास अथवा राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास के लिये हो सकता है । अर्थ व्यवस्था के किसी विशेष क्षेत्र अथवा क्षेत्रो के विकास का कार्यक्रम सरकार इसलिये सचालित करती है ताकि अर्थ-व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे । फ्रास की मोनेट योजना (Monnet Plan) का सम्बन्ध मुख्य रूप से औद्योगिक सामिग्री के नवीनीकरण से था । इसी प्रकार अर्जेन्टाइना की सरकार ने महायुद्ध-पश्चात् जनसख्या वृद्धि की योजना सचालित की थी। परन्तु आधुनिक युग मे अर्थ-व्यवस्थायें इतनी जटिल एव परस्पर निर्भरता पर आधारित हैं कि अर्थ-व्यवस्था के एक क्षेत्र के विकास से अन्य क्षेत्रो का प्रभावित होना अवश्यभावी है । ऐसी परिस्थिति मे विकास की किसी विशेष क्षेत्र मे सम्बन्ध रखने वाली योजनाएँ सफल होना कठिन होता है ।

दूसरी ओर सम्पूर्ण नियोजन का अर्थ एक ऐसी समन्वित योजना से होता है जिसके द्वारा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रो का विकास होता हो। यह पहले ही बताया गया है कि पूंजीवादी नियोजन के अन्तर्गत देश के आर्थिक एव सामाजिक ढांचे मे परिवर्तन नहीं किये जाते हैं। पूंजीवाद मे विकास सम्बन्धी योजना राज्य द्वारा बनायी जाती है और इस योजना को कार्यान्वित करने का कार्य अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न पक्षों को दे दिया जाता है। राज्य द्वारा योजना के क्रियान्वित कराने हेतु कोई दबाव उपयोग मे नही लाया जाता है। राज्य अप्रत्यक्ष विधियो द्वारा निजी साहसियो को योजना कार्यान्वित करने हेतु प्रोत्साहित करती है । राज्य केवल अत्यन्त कठिन परिस्थितियो मे ही निजी उत्पादको को आज्ञायें देती है। ब्रिटेन की लेबर सरकार द्वारा जो १६४५ ५१ के काल मे योजना सचालित की गयी, उसे सम्पूर्ण विकास की योजना कह सकते हैं। इस योजना के अन्तर्गत ब्रिटन की अधिकतर आर्थिक कार्यवाहियाँ राज्य के नियत्रण के बाहर थीं। राज्य ने आज्ञायें केवल कुछ ही वस्तुओ के उत्पादको को दीं।

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना का पूंजीवाद के अन्तर्गत सम्पूर्ण नियोजन कहा जा सकता है क्योकि इस योजना द्वारा राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे मे कोई परिवर्तन करन का आयोजन नहीं किया गया।

प्रजातान्त्रिक नियोजन

प्रजातान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning) एक ऐसी व्यवस्था को कहा जा सकता है जिसमे पूंजीवाद और समाजवाद का सम्मिश्रण होता है। जब समाजवादी उद्देश्यो की पूर्ति के लिए लोकतान्त्रिक विधियो का उपयोग किया जाता है, तब उस व्यवस्था को प्रजातान्त्रिक नियोजन कह सकते हैं।

प्रजातान्त्रिक नियोजन मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विशेष महत्व है। प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा भारतीय समाजवाद पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि *"समाजवाद का मतलब यह है* कि राज्य मे हर आदमी को तरक्की करने के लिए बराबर मौका मिलना चाहिए। मै हरगिज इस बात को पसन्द नहीं करता कि राज्य हर चीज पर नियन्त्रण रखे, क्योकि मै इन्सान की व्यक्तिगत आजादी को अहमियत देता हूँ। मै उस उग्र किस्म के राज्य समाजवाद को पसन्द नही करता जिसम सारी ताकत राज्य के हाथो मे होती है और देश के करीब-करीब सभी कामो पर उसी की हुकूमत हो। राजनीतिक दृष्टि से राज्य बहुत ताकतवर है। अगर आप उसे आर्थिक दृष्टि से भी बहुत ताकतवर बना देंगे तो वह सत्ता का, अधिकार का केन्द्र बन जायगा जिसम इन्सान की आजादी राज्य के मनमानेपन की गुलाम बन जायेगी।"[1] इस प्रकार सत्ता के विकेन्द्रीकरण की ओर अग्रसर होना भी आवश्यक है। पूर्णतः समाजवादी तथा साम्यवादी व्यवस्था म सत्ता के केन्द्रीयकरण की वृद्धि की जाती है परन्तु लोकतान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोका जाता है। दूसरी ओर आर्थिक आयोजन के मूलतत्व—राष्ट्र के भौतिक, मानवीय तथा वित्तीय साधनो का पूर्णतम तथा विवेकपूर्ण उपयोग करने के लिए यथेच्छाकारिता तथा प्रतियोगिता प्रधान अर्थ व्यवस्था को खुली छूट नहीं दी जा सकती, क्योकि इसमे *शोषण का तत्व प्रधान होता है और मानवीय सम्पदा की बहुत अधिक बर्बादी* होती है। 'जिसे आम तौर पर स्वतन्त्र बाजार और स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था कहते है, वह आखिर म चलकर 'योग्यतम के ही अस्तित्व' के सिद्धान्त के मुताबिक तीव्रतम और गलाघोटू प्रतियोगिता को जन्म देती है। इसलिए अब पूंजीवादी देशो म भी यह मान लिया गया है कि स्वतन्त्र उद्यम और यथेच्छाकारिता की प्रणाली बेकार और पुरानी हो चुकी है और उस पर राज्य का नियन्त्रण और नियम लागू होना चाहिए। *अगर हम यह सोचते हैं कि आयोजन और लोकतन्त्र का मेल नहीं बैठता तो इसका यह मतलब नहीं होगा कि* लोकतन्त्रीय संविधान के भीतर राष्ट्रीय साधनो का उपयोग नहीं हो सकता। असल बात यह है कि असली आयोजन, जो व्यक्ति और समाज दोनो के हितो के बीच सामजस्य स्थापित करता है, केवल लोकतन्त्रीय प्रणाली के भीतर ही सम्भव है।"[2]

१ श्री जवाहरलाल नेहरू "हमारा समाजवाद" (आर्थिक समीक्षा, १९ मार्च, १९५७, पृष्ठ ४)।
२ श्री श्रीमन्नारायण (सदस्य योजना कमीशन) "आयोजन और लोकतन्त्र" (आर्थिक समीक्षा, ५ अक्टूबर, १९५८, पृष्ठ ९)।

प्रजातान्त्रिक नियोजन म केवल चुन हुए व्यवसायो तथा उद्योगो का राष्ट्रीय करण किया जाता है। जिन व्यवसायो तथा उद्योगो का राज्य सफलतापूर्वक कल्याणकारी रीतियो के अनुसार चलाने के योग्य होता है, उनका राष्ट्रीयकरण उचित मुआवजा देने के पश्चात् किया जाता है। नियोजन के लक्ष्य साधारणत उपभोक्ता की सुविधाओ को ध्यान म रखकर निर्धारित किये जाते हैं। विदेशी सहायता का इस प्रकार के नियोजन म विशेष महत्व होता है। विदेशी सरकारो तथा पूंजीपतियो स पूंजी प्राप्त होती है, क्योकि उन द्वारा उद्योगो के अपहरण का कोई भय नहीं होता।

लोकतन्त्र म राजनीतिक तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दुरुपयोग किया जाता है जिसका प्रभाव नियोजन के कायक्रम पर भी पडता है। विपक्षी राजनीतिक दलो द्वारा कभी-कभी विनाशकारी कायक्रम भी सचालित होते रहते हैं, जो समस्त कल्याणकारी कायक्रमो के सुगम सचालन म बाधा पहुँचाते हैं तथा नियोजन अधिकारियो क अनुमानो की सिद्धि कठिन प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार विकास की गति कुछ मन्द हो जाती है और राष्ट्र के साधनो का अपव्यय भी होता है। सत्ता का विकेन्द्रीकरण करन के लिए पचायतो सहकारी सस्थाओ तथा अन्य क्षत्रीय प्रबन्धक सस्थाओ की स्थापना की जाती है। प्रारम्भिक अवस्था म सत्ता हाथ म आने पर उसका दुरुपयोग अवश्यम्भावी है। सरकारी क्षत्र म कमचारियो को इस नवीन स्थिति मे अपनी सत्ता क्षतिग्रस्त होती प्रतीत होती है, अत व सरकारी नियमो के जाल को और कठोर बनाने का यत्न करत हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय साधनो का अपव्यय होता है।

तानाशाही नियोजन

प्रा० हेयक न अपनी पुस्तक The Road to Serfdom (दासता का माग) म नियोजन की आलोचना स यह सिद्ध करन का प्रयत्न किया कि आर्थिक नियोजन से राजनीतिक तानाशाही का प्रादुर्भाव होता है। इनके विचार म राजनीतिक स्वतन्त्रता का आधार साहस की आर्थिक स्वतन्त्रता रहा है और जब साहस की स्वतन्त्रता पर अकुश लगाये जाते है तो राजनीतिक तानाशाही का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक हो जाता है। हमारे नियोजन की मांग है कि एक योजना के अनुसार समस्त आर्थिक क्रियाओ का केन्द्रीय सचालन किया जाय और इस योजना म विशेष उद्देश्यो की विशेष प्रकार से पूर्ति करने हेतु समाज के साधनो को जान बूझ कर उपयोग करन के तरीके निर्धारित किये

जायें"[1] प्रो० हेयक के विचार मे यूरोप के कुछ देशो मे तानाशाही का मुख्य कारण आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तो का अनुसरण था। उनके विचारों में आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत किसी भी देश मे विधान का शासन (Rule of Law) सम्भव नहीं हो सकता।

आर्थिक नियोजन के सम्बद्ध मे प्रकट किये गये उपर्युक्त सभी विचारो का आधुनिक काल मे खण्डन हो गया है। आर्थिक नियोजन अब केवल एक विकास का औजार मात्र है उसका उपयोग समाजवादी, साम्यवादी, प्रजातान्त्रिक एवं तानाशाही सभी प्रकार की सरकारें कर सकती हैं। इन सभी वादो की मान्यतायें एक-दूसरे से भिन्न होने के कारण इस औजार का उपयोग भी भिन्न-भिन्न विधियो एव प्रथक-प्रथक फल प्राप्ति हेतु किया जाता है। यह कहना किसी प्रकार उचित नहीं होगा कि आर्थिक नियोजन तानाशाही को बढावा देता है। वास्तव मे प्रो० हेयक ने आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत ऐसे समाज का विचार किया था जिसमे राज्य द्वारा समाज की समस्त आर्थिक क्रियाओ पर कठोर नियन्त्रण कर दिया जाता है, जिसमे साधनो के उपयोग का निश्चय राज्य द्वारा निर्धारित कठोर सिद्धान्तो के आधार पर किया जाता है, जहाँ उपभोक्ता के लिये उपभोग की वस्तुएं राज्य द्वारा निर्धारित होती हैं, जहाँ श्रमिको को विशेष स्थान तथा विशेष प्रकार के गृहो म रहने की आज्ञा दी जाती है, जहाँ श्रमिको को राज्य की इच्छानुसार अपरिवर्तनीय मजदूरी पर काम करना होता है, जहाँ श्रमिक सघो का समापन कर दिया जाता है, आदि। प्रो० डबिन ने इन विचारों का खण्डन करते हुए बताया कि आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक निश्चय निजी साहसियो के स्थान पर जनसमुदाय के प्रतिनिधियो अथवा जन-अधिकारी द्वारा किये जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये जन-अधिकारी उपभोग एवं उत्पादन के कठोर कार्यक्रम जो अपरिवर्तनीय सिद्धान्तो पर आधारित जनता पर लादें। दूसरी ओर नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे मनमाना शासन नहीं किया जाता है। प्रत्येक नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे विधान के अनुसार शासन होता है। विधान इतना परिवर्तनीय अवश्य नही होता कि इसमे परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तन न किए जा सकें। नियोजित अर्थ-व्यवस्था एक गतिशील समाज का निर्माण करता है और गतिशील समाज मे परिवर्तनो के अनुकूल

1. What our planners demand is a central direction to all economic activity according to a single plan, laying down how the resources of society should be consciously directed to serve particular ends in a particular way".
(Prof. Hayek, *The Road of Serfdom* p. 26.)

विधान मे परिवर्तन करना भी आवश्यक होता है। विधान के परिवर्तन को मनमानापन कहना उचित नहीं है।

उपर्युक्त विवाद से यह स्पष्ट है कि नियोजन का अन्तिम स्वरूप तानाशाही नहीं होता है। परन्तु ऐसे राष्ट्रो म जहाँ तानाशाही शासन हो, नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सचालन किया जा सकता है।

राष्ट्र मे तानाशाही सरकार होने पर ही तानाशाही नियोजन (Fascist Planning) का प्रश्न उठता है। तानाशाही नियोजन म सत्ता का केन्द्रीय-करण जनता की प्रतिनिधि सरकार मे न होकर अनन्य शासक (Dictator) मे होता है। राष्ट्र के समस्त साधनो का डिक्टटर की इच्छानुसार उपयोग म लाया जाता है। सरकार की समस्त क्रियाओ का उद्देश्य डिक्टटर की सत्ता, शक्ति और सम्मान मे वृद्धि करना होता है। आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता भी डिक्टेटर की इच्छानुसार नियन्त्रित होती है। इस प्रकार राष्ट्र में सैन्यीकरण की स्थिति की स्थापना हो जाती है। तानाशाही नियोजन मे निजी क्षेत्र का ही विकास सरकारी नियमन तथा नियन्त्रण द्वारा किया जाता है। जन-समुदाय के जीवन-स्तर को सुधारन के लिए सरकारी नीतियो को शक्ति द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। राष्ट्र भर म भय की छाप लगी रहती है, फलत कठोर कार्यवाही करना सुगम एव सुविधाजनक होता है। आवश्यक सेवाओ तथा आधारभूत उद्योगो का अपहरण भी किया जाता है। सरकारी कार्यक्रम को सचालित करने के हेतु निजी सम्पत्ति का शक्ति द्वारा अपहरण कर लिया जाता है। इस प्रकार तानाशाही नियोजन मे राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन मे वृद्धि अवश्य की जाती है किन्तु उसका समान वितरण नहीं किया जाता या यो कहे कि प्राय ऐसा नहीं होता। धनिक-वर्ग उसी स्थिति पर आरूढ रहते हैं, निर्धन यद्यपि निर्धन रहते है तथापि कतिपय सुविधाएँ उन्हे उपलब्ध की जाती है। साम्यवादी नियोजन की भाँति इसकी सफलता भी कभी-कभी आश्चर्यजनक होती है परन्तु मानवीय तत्वो को कोई महत्व नहीं दिया जाता जिसमे कि मानवीय व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बिलकुल लुप्त हो जाती है। सरकार में आर्थिक तथा राजनीतिक दोनो सत्ता निहित होती हैं, और व्यक्ति सरकार का दास-मात्र बनकर रह जाता है। इस प्रकार का नियोजन आकस्मिक सकटो जैसे युद्ध, प्राकृतिक सकट, मदी आदि का मुकाबला करने के लिए उपयोग मे लाया जाता है। द्वितीय महायुद्ध काल मे जर्मनी मे तानाशाही अर्थ-व्यवस्था का आयोजन किया गया था। आधुनिक युग मे पाकिस्तान की तानाशाही सरकार भी निर्धारित आयोजन द्वारा आर्थिक विकास कर रही है।

सर्वोदय नियोजन अथवा गाँधीवादी नियोजन

सर्वोदय नियोजन की विचारधारा भारत मे उदय हुई है और इसके सिद्धान्त भारत की परिस्थितियो के अनुकूल ही निर्धारित किये गये हैं। गाँधीवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के आधार पर सर्वोदय नियोजन का निर्माण किया गया है। सर्वोदय उस व्यवस्था को कहा जाता है जिसमे समस्त समाज का अधिकतम कल्याण आर्थिक एव राजनीतिक शक्तियो के विकेन्द्रीयकरण द्वारा किया जाता है। गाँधीजी सदैव यह विचार प्रकट करते थे कि स्वराज्य के द्वारा भारत के प्रत्येक ग्राम एव झोपडो मे स्वतन्त्रता की लहर दौडनी चाहिये। भारत सस्कृति के अनुकूल नियोजन का सचालन करने हेतु हमे पश्चिमवादी तथा साम्यवादी देशो की नकल करना उचित नहीं है। हमें अपनी प्राचीन सस्कृति तथा अन्य देशो के अनुभवो का अध्ययन करके ऐसी आर्थिक एव राजनातिक व्यवस्था की खोज निकालना चाहिये जो हमारे समाज के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो।

सर्वोदय एक नये अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहता है और इस समाज के निर्माण हेतु जिन योजनाबद्ध कार्यक्रमो का सचालन करना आवश्यक हो, उन्हे सर्वोदय नियोजन कह सकते हैं। ३० जनवरी १९५० को सर्वोदय योजना के सिद्धान्त सर्वप्रथम प्रकाशित किये गये। इन सिद्धान्तो की विशेष बातें इस प्रकार थीं—

(१) कृषि भूमि पर वास्तविक अधिकार जोत करने वाले का होगा, भूमि का पुन वितरण भूमि के समान वितरण के लिए किया जायेगा, भूमि की आर्थिक इकाइयो को सहकारी फार्मो मे सामूहीकृत किया जायेगा तथा जोत करने वाले का कोई भी शोषण नही कर सकेगा।

(२) आय एव धन का न्यायोचित एव समान वितरण किया जायेगा तथा न्यूनतम और अधिकतम आय भी निर्धारित कर दी जायेगी।

(३) भारत मे स्थित विदेशी व्यवसायो को देश से हटने को कहा जाय, अथवा उनसे उनके सगठन, प्रबन्ध एव उद्देश्य परिवतन करने को कहा जाय, अथवा उन्हे राजकीय अधिकार के अन्तर्गत चलाया जाय।

(४) केन्द्रित उद्योगो पर समाज का अधिकार होगा जिनका सचालन स्वतत्र निगमो अथवा सहकारी सस्थाओ द्वारा किया जाय तथा विकेन्द्रित उद्योगो मे उत्पादन के यन्त्रो पर व्यक्तिगत अथवा सहकारी सस्थाओ के अन्तर्गत सामूहिक अधिकार होगा।

(५) ऐसी वित-व्यवस्था की स्थापना करना हमारा उद्देश्य होना चाहिये जिसमे सगृहीत राजकीय वित्त (Public Revenue) का ५०% ग्रामीण

पचायतो द्वारा व्यय किया जाय तथा शेष ५०% अन्य उच्च सस्थाओ के प्रशासन पर व्यय किया जाय।

सन् १९५५ मे इन सिद्धान्तो को दोहराने की आवश्यकता समझी गयी क्योकि इस बीच बहुत सी घटनाएँ हो गई। भूदान यज्ञ की सफलताओ एव सर्वोदय के आदर्शों के प्रति गहन आकर्षण उत्पन्न होने के कारण सर्व सेवा सघ ने *एक सर्वोदय योजना समिति की नियुक्ति की जिसे काँग्रेस पार्टी* एव भारत सरकार की समाजवादी समाज की विचारधारा एव द्वितीय पचवर्षीय योजना के कार्यक्रमो एव लक्ष्यो का अध्ययन करना था तथा सर्वोदयी समाज का लक्ष्य एव उन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए जिन सस्थाओ का निर्माण करना आवश्यक हो, को स्पष्ट रूप से जन समाज के सम्मुख रखना था। इस समिति मे (१) श्री धीरेन्द्र मजूमदार (२) श्री जयप्रकाश नारायण (३) श्री कृष्ण सहज बुद्धे (४) र० श्री धाज (५) श्री सिद्धराज ढडढा (६) श्री अच्युत पटवधन (७) श्री रवीन्द्र वर्मा (८) श्री नारायण देसाइ (९) श्री शकरराव देव *(सयोजक)* सम्मिलित थे।

उपर्युक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट मे बताया कि सर्वोदयी व्यवस्था अपरिवतनीय एव कठोर व्यवस्था नही है जिसके आधार पर जीवन नही बनाया जा सकता हो। *यह तो एक विकासशील आदर्श है जिसके द्वारा मानव मानव के* सम्बन्धो और हमारी सस्थाओ के वतमान रूप मे परिवर्तन करके उन्हे सत्य और अहिंसा से अनुप्राणित कर सकता है। इसे कट्टरवाद अथवा जड-पन्थ समझना कदाचित उचित न होगा। समिति की रिपोर्ट मे निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण पहलुओ पर प्रकाश डाला *गया*—

(१) सर्वोदय समाज के आधारभूत सिद्धान्त क्या हो ?

(२) *सर्वोदयी समाज-व्यवस्था स्थापित करने* के लिए कौन-कौन से उपाय और कार्यक्रम हो सकते है तथा समाज को किन किन अवस्थाओ मे से इसके लिए गुजरना होगा ?

सर्वोदय नियोजन का लक्ष्य सर्वोदयी समाज-व्यवस्था की स्थापना करना है। सर्वोदय का अर्थ है सर्वांगीण उन्नति। 'सर्वोदय' मानता है कि समाज के अन्दर व्यक्तियो और सस्थाओ के सम्बन्धो का आधार सत्य और अहिंसा होना चाहिए। उसका यह भी विश्वास है कि समाज मे सब व्यक्ति समान और स्वतन्त्र है और इनके बीच कोई चिरस्थायी सम्बन्ध हो सकता है और इनको एक साथ रख सकता है तो वह प्रेम और सहयोग ही है *न कि बल और जोर-जबरदस्ती।* *मनुष्य के* भीतर ठोस प्रतियोगिता और लडाई की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर समाज मे

प्रेम और सहयोग न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न उसका संवर्धन किया जा सकता है। सर्वोदयी समाज ऐसे वातावरण मे पैदा नहीं हो सकता, जहाँ जुल्म के यत्र पूर्णता को पहुँचा दिए गए हैं और व्यक्तिगत स्वार्थ या मुनाफा कमाने का लोभ इतना बलवान बन गया है कि उसने प्रेम और भ्रातृभाव का दबा दिया हो और समानता की भावना को नष्ट कर दिया हो। सर्वोदय का ऐसी समाज रचना कायम करनी है जिसके अन्दर सस्थाओ द्वारा सत्ता का प्रयोग अनावश्यक बना दिया जायेगा, क्योकि यह भी तो बल-प्रयोग का एक प्रतीक ही है, अथवा सत्ता के प्रयोग को इतना घटा दिया जायेगा कि जो हमारा अहिंसा की यात्रा मे एकदम अनिवार्य हो।[1]

सर्वोदय व्यवस्था म बल के प्रयोग को स्थान नहीं है। यह माना गया है कि इस व्यवस्था के अन्तगत आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने पर मनुष्य अपने आप इतना सयम कर लेगा कि वह बिना किसी बाहरी दबाव के भी समाज के हित को करेगा। ज्यो-ज्यो मनुष्य इन सयमो की सीढियो का चढता जाएगा, राज्य सत्ता का उपयोग घटता जायगा और वह सत्ता समाज सेवा सम्बन्धी सस्थाओ के हाथो मे पहुँच जायगी जिनको इसका उपयोग करने को आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि इनकी क्रियाविधि का आधार बल प्रयोग के स्थान पर प्रेम, सहयोग, समझाना-बुझाना और प्रत्यक्ष समाज हित होगा। सर्वोदय समाज की स्थापना करने के लिये द्विमुखीय उपाय करने होंगे। एक ओर तो वर्तमान राजनीतिक एव आर्थिक सस्थाओ के हाथो मे सत्ता केन्द्रित है, उसका विकेन्द्रीयकरण करना होगा और दूसरी ओर जनता को सत्याग्रह और कला की शिक्षा दी जायेगी।

सर्वोदय योजना-समिति न सर्वोदयी योजना के लक्ष्य निम्न प्रकार स्पष्ट किये हैं —

(१) समाज के प्रत्येक सदस्य को पूरे समय तथा पेट भरने योग्य काम देना— इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु समाज के समस्त आर्थिक ढाँचे मे परिवर्तन करने होंगे। तभी ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न की जा सकेंगी कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी रुचि के अनुसार कार्य का चुनाव करके खुशी-खुशी कार्य कर सके। यह कार्य एक ओर समाज की भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करे तथा दूसरी ओर उस कार्य से जान अथवा अनजान म शरीर के स्वास्थ्य, बौद्धिक एव मानसिक विकास की प्रशिक्षा मिलती रहे। ऐस काय अथवा धधो म आवश्यक कुशलता प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षण की सुविधाएँ भी समाज व्यक्ति को दे तथा काम करने के

---

१. सर्वोदय सयोजन—अखिल भारतीय सर्व सेवा सघ प्रकाशन, पृष्ठ ४६-४७

औजार तथा साधन प्राप्त करने मे भी समाज उसकी सहायता करे। समाज का कर्तव्य होगा कि वह ऐसी अनुकूलताएँ उत्पन्न करे कि व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार कार्य अथवा पेशे का चयन कर सके। वह कार्य उसे पूरे समय मिलता रहे, वह पेट भर रोजी दे सके, उसे अपनी बुद्धि के विकास तथा अपनी शक्तियो का पूरा-पूरा उपयोग करने का अवसर मिल सके। सर्वोदयी योजना मे पूरा काम और रोजी के लक्ष्य के आधार पर उद्योग प्रणाली मे परिवर्तन करने होगे ताकि ऐसे उद्योगो की कार्यक्षमता बढायी जा सके जो अधिक से अधिक लोगो को काम दे सकने की क्षमता रखते हो। बेकारी को मिटाने हेतु यत्रो की अपेक्षा अधिक से अधिक श्रमिको को काम देना होगा। उद्योगो का पुनसगठन करना होगा तथा अधिक से अधिक मनुष्यो को कार्य देने की शक्ति रखने वाले उद्योगो के यन्त्रो मे आवश्यक सुधार करने होगे जिनसे वह कम से कम समय मे अधिक और अच्छा उत्पादन दे सके। सर्वोदय समाज विकेन्द्रीयकरण पर आधारित है और इसमे उत्पादन के साधन कुछ ही लोगो के हाथो मे केन्द्रित नहीं होगे। कोई किसी को रोजी नही देगा। सब अपनी रोजी कमायँगे। जिन उत्पादन के साधनो पर व्यक्तियो का स्वामित्व नही हो सकता है, उन पर सहकारी सस्थाओ, ग्राम सस्थाओ तथा राज्य का स्वामित्व होगा।

(२) यह निश्चित कर लेना है कि समाज के प्रत्येक सदस्य की समस्त आवश्यक्ताओ की पूर्ति हो जाय जिससे कि वह अपने व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास कर सके और समाज की उन्नति मे भी उचित योगदान दे सके—खादी बोर्ड के प्रकाशन "ठेठ नीचे से निर्माण" के अनुसार भारत मे लोगों का स्वभाव ऐसा बन गया है कि साधारण परिवार की अन्न, कपडा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरजन सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु सन् १९५५ के मूल्य निर्देशाक के अनुसार वार्षिक आय ३०००) रुपये तक होनी चाहिये। परन्तु देश मे "औसत मनुष्य की वार्षिक आय १३२०) रुपये है जिनकी आय ३६००) रुपये से ऊपर है, ऐसे परिवार देश मे केवल ५९ २ लाख हैं। यह हमारे देश की आबादी का केवल ७'४ प्रतिशत है। इसलिये योजना इतना उत्पादन बढाने और सेवाएँ उपलब्ध करने का यत्न करेगी कि यह ९२ ६% आबादी ७ ४% के से जीवन मान को प्राप्त हो सके। इसके लिये अभी क्रय-शक्ति *बढानी होगी। सर्वोदयी योजना मे सर्वप्रथम उन ९२'६ प्रतिशत की ओर ध्यान* दिया जाना होगा जिनकी आय ३६००) रुपये से कम है। ऑल इ डिया खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'बिल्डिग फ्रॉम बिलो'' के अनुसार परिवारो का उनकी आय के अनुसार वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है—

परिवारों का वर्गीकरण

वार्षिक व्यय (रुपयो मे)	परिवार (लाखो मे)	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
६००) तक	१६३·२	२०·४
६००) से १२००)	२४९ ६	३१·२
१२००) से १८००)	१६८·८	२१·१
१८००) से २४००)	८३·२	१०·४
२४००) से ३६००)	७६ २	९ ५
३६००) से ऊपर	५९·२	७·४
	८००·२	१००·०

(३) जोवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के विषय मे यह प्रयत्न हो सके कि प्रत्येक प्रदेश स्वावलम्बी हो—जिन क्षेत्रो मे प्राकृतिक साधनो की बहुतायत होगी, वहाँ प्राथमिक आवश्यकताओं—अन्न, वस्त्र, मकान प्राथमिक शिक्षा तथा साधारण रोगो की चिकित्सा के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम स्वावलम्बन निर्माण किया जायगा। जिन प्रदेशो मे प्राकृतिक अनुकूलताओं की न्यूनता होगी, वहाँ कमी वाले गाँवो के ऐसे ग्राम मण्डल बना दिये जायेंगे जो सहयोग, विनिमय और सबकी उपज को एकत्रित करके अपनी न्यूनता को पूर्ति कर लेंगे। जहाँ यह भी सम्भव न हो, वहाँ वे गाँव या क्षेत्र विशेष अपने साधनो का अधिक से अधिक उपयोग करके तथा अन्य ग्राम उद्योगो की व्यवस्था करके शेष कमी की पूर्ति उस प्रदेश की योजना मे से कर सकेंगे।

स्वावलम्बन के लक्ष्य की पूर्ति हेतु कोई कडी भौगोलिक सीमाएँ नहीं खींच दी जायेंगी। स्वावलम्बी इकाइयाँ ऐसी अनेक वस्तुओं के बारे मे एक-दूसरे की पूर्ति कर दिया करेंगी जो जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएँ न हो। प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य प्रदेशों पर निर्भर रहने से परावलम्बी प्रदेशो की जनता के स्वाभिमान को भी हानि पहुँचती है और आवश्यकता पूर्ति करने वाले प्रदेश उसके साथ भेदभाव का बर्ताव एवं शोषण करने लगते हैं।

(४) यह भी निश्चय करना होगा कि उत्पादन के साधन और क्रियाएँ ऐसी न हो जो प्रकृति का शोषण निर्मम बन कर कर डाले। उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं, साधनो एव पद्धतियो का उपयोग करते समय केवल तत्कालीन हित एव लाभ को ही दृष्टिगत करना उचित न होगा। प्राकृतिक सम्पत्तियो का शोषण करते समय आने वाली पीढियो की कठिनाइयो पर विचार करना उचित होगा। किसी ऐसी प्राकृतिक सम्पत्ति का जिसकी पूर्ति होने की सम्भावना न हो,

शोषण जब ही किया जाना चाहिये जबकि इसके द्वारा समस्त मानव समाज का सदैव के लिये हित साधन सम्भव होता हो।

उपर्युक्त लक्ष्यो से यह स्पष्ट है कि सर्वोदयी योजना मे सर्वप्रथम सबसे अधिक ध्यान सबसे कम आय वाले परिवारो की दशा सुधारने पर दिया जायेगा और यह प्रयत्न किया जायेगा कि एक निश्चित काल मे उनकी आय उनसे ऊपर की सीढी वाले लोगो के बराबर हो जाय। फिर इन दो सम्मिलित वर्गों की ओर ध्यान दिया जायेगा। उनकी आय उनसे ऊपर वाली श्रेणी के बराबर करने का यत्न किया जायेगा। इस प्रकार करते-करते एक उचित अवधि के भीतर सबको ३०००) रुपया वार्षिक आय तक लाने का यत्न किया जायेगा। इस प्रकार सर्वप्रथम ६००) रु० वार्षिक आय से कम आय वाली श्रेणी की उन्नति के लिए प्रयत्न किये जायेंगे। परन्तु इसका तात्पर्य यह न होगा कि अन्य श्रेणियो के लिए कुछ भी नहीं किया जायेगा। नीचे के स्तरो की वास्तविक आय बढाने के लिये उत्पादन को प्रत्यक्ष रूप से बढाना ही पर्याप्त न होगा अपितु उत्पादन इस प्रकार बढाने के यत्न किये जायेंगे कि सबसे नीचे के स्तर वाले परिवारो को आवश्यक मात्रा मे आवश्यक वस्तुएं मिल सकें और उनका जीवन मान ऊँचा हो सके। इस प्रकार उत्पादन और रोजगारी साथ साथ बढते जायेंगे और इनका मेल न्यायपूर्ण बँटवारे के साथ बैठा दिया जाता रहेगा।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सर्वोदयी योजना जो बेकारी को पूर्णरूपेण मिटाना चाहती है और उद्योगो का सगठन विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्तो के आधार पर करना चाहती है, धन प्रधान नहीं, श्रम प्रधान होगी। वह प्रत्यक्ष इकाई ग्राम परिवार तथा औद्योगिक परिवार के रूप मे सर्वोदय नगरो की व्यवस्था होगी। सर्वोदय समाज के विचार के जन्मदाता महात्मा गाँधी ने २८ जुलाई १९४६ को 'हरिजन' मे इस समाज की रूपरेखा इस प्रकार स्पष्ट की—

"यह समाज अनगिनत गाँवो का बना होगा। उसका ढाँचा एक के ऊपर एक के ढग का नहीं बल्कि लहरो की तरह एक के बाद एक जैसे घेरे की (वर्तुल की) शकल मे होगा। जीवन मीनार की शक्ल मे नहीं होगा, जहाँ ऊपर की सकुचित चोटी नीचे के चौडे पाये पर भार डालकर खडी रहे, वहाँ तो जीवन समुद्र की लहरो की तरह एक के बाद एक घेरे को शक्ल मे होगा, जिसका केन्द्र व्यक्ति होगा। व्यक्ति गाँव के लिये और गाँव समूह के लिये मर मिटने को हमेशा तैयार रहेगा। इस तरह अन्त मे सारा समाज ऐसे व्यक्तियों का बन जायेगा जो अहकार पाकर भी कभी किसी पर हावी नहीं होगे बल्कि सदा विनीत रहेगे और उस समुद्र के गौरव के हिस्सेदार बनेंगे, जिसके वे अविभाज्य अग हैं।"

"इसलिये सबके बाहर का घेरा अपनी शक्ति का उपयोग भीतर वालो को कुचलने मे नहीं करेगा, बल्कि भीतर वाला सबको ताकत पहुँचायेगा और स्वयं उनसे बल ग्रहण करेगा। युक्लिड की परिभाषा का बिन्दु भले ही मनुष्य को खींच न सके तो भी उसका शाश्वत मूल्य तो है ही। इसी तरह मेरे इस चित्र का भी मानव जाति के जीवित रहने के लिये अपना मूल्य है। इस तस्वीर के आदर्श तक पूरी तरह पहुँचना सम्भव नहीं है, फिर भी भारत की जिन्दगी का वैसा मकसद होना चाहिये। हमे क्या चाहिये, इसका सही चित्र तो हमारे पास होना ही चाहिये तभी तो हम उसके करीब पहुँचेंगे। यदि कभी भारत के प्रत्येक गाँव मे एक-एक गणतंत्र स्थापित हुआ तो मेरा दावा है कि मैं इस चित्र की सच्चाई सिद्ध कर सकूँगा, जिसमे सबसे आखिरी और सबसे पहला दोनो बराबर होगे या दूसरे शब्दो मे कहे तो न कोई पहला होगा न आखिरी।"

विभिन्न प्रकार के नियोजन विभिन्न राष्ट्रो की परिस्थितियो के अनुसार उपयुक्त होते है। वास्तव मे किसी भी राष्ट्र के नियोजन का प्रकार वहाँ की सरकार के राजनीतिक ढाँचे पर बडी सीमा तक निर्भर होता है। साम्यवादी सरकार की स्थापना के साथ-साथ साम्यवादी नियोजन को भी मान्यता प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार अन्य प्रकार के नियोजन भी राष्ट्रो द्वारा अपनाये गये राजनीतिक वादो पर निर्भर रहते हैं। राजनीतिक विचारधाराओ के अतिरिक्त देश की सस्कृति, जनसमुदाय का स्वभाव एव आर्थिक स्थिति, रोजगार की स्थिति भौगोलिक परिस्थितियो तथा ऐतिहासिक विचारधाराओ, शिक्षा एवं तान्त्रिक प्रशिक्षण के विस्तार आदि का प्रभाव भी नियोजन के प्रकार पर पडता है। भारत मे लोकतन्त्रीय सरकार की स्थापना के साथ प्रजातान्त्रिक नियोजन को मान्यता प्राप्त हुई। भारत की योजनाओ को लोकतन्त्रीय राज्य-व्यवस्था मे सफल बनाने के लिए प्रजातान्त्रिक नियोजन ही उपयुक्त है। भारत मे योजनाओ की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक नियोजन एवं लोकतन्त्र मे स्वाभाविक बैर नहीं है और यह विचारधारा कि प्रजातन्त्र मे आर्थिक नियोजन की सफलताएं संदेहास्पद होती हैं, सर्वथा निराधार सिद्ध हो गयी है।

उपर्युक्त नियोजन के प्रकार विस्तृत दृष्टिकोण के, जिसमे राजनीतिक दृष्टिकोण को विशेष महत्त्व दिया गया है, आधार पर निर्धारित किये गये हैं। इसके विपरीत नियोजन का वर्गीकरण उसके किसी एक विशेष गुण के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। इसके उदाहरण निम्नलिखित है—

(१) गतिशील बनाम स्थिर नियोजन (Dynamic vs. Static Planning)—नियोजन का तात्पर्य केवल प्राथमिकताओ के आधार पर लक्ष्य एवं विनियोजन करना ही नहीं होना चाहिए। वास्तव मे नियोजन एक सतत् विधि

(Continuous Process) है जिसके द्वारा निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रयत्न किये जाते हैं। परन्तु इन लक्ष्यों को यदि इतना कठोर (Rigid) बना दिया जाय कि परिस्थितियों में परिवर्तन होते हुए भी इनमें कोई परिवर्तन सम्भव न हो तो इस प्रकार के नियोजन को हम स्थिर नियोजन कह सकते हैं। वास्तव में ऐसे कार्यक्रम जिनके लक्ष्य एव प्रायोजन अपरिवर्तनशील हों उन्हें आर्थिक नियोजन कहना न्यायसंगत न होगा क्योंकि आर्थिक परिस्थितियों एवं वातावरण में परिवर्तनशीलता स्वाभाविक एव अनिवार्य है और किसी आर्थिक कार्यक्रम को स्थिरता दिया जाना सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है। गतिशील नियोजन इसके विपरीत परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनीय होते हैं जिनका ठीक-ठीक अनुमान योजना निर्माण के समय योग्य से योग्य नियोजन अधिकारी भी नहीं लगा सकते। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का भी प्रभाव आन्तरिक अर्थ व्यवस्था पर पड़ता है जिस पर नियोजन अधिकारियों का कोई नियन्त्रण नहीं होता। केवल कठोर नियन्त्रण एव नियमन द्वारा ही स्थिर कार्यक्रम का सचालन सम्भव हो सकता है। कठोर नियमन और नियन्त्रण तानाशाही नियोजन में ही सम्भव एव उचित है। स्थिर नियोजन में अधिकारी एव राज्य की प्रगति का अध्ययन करने के स्थान पर योजना के कार्यक्रमों के सचालन को विशेष महत्व देना पड़ता है। इस प्रकार के नियोजन को जन-सहयोग भी प्राप्त नहीं होगा।

(२) निकट-भविष्य बनाम सुदूर भविष्य के लिए नियोजन (Prospective vs Perspective Planning)—दूसरे शब्दों में इस प्रकार के नियोजन को दीर्घकालीन एव अल्पकालीन नियोजन भी कहा जा सकता है। दीर्घकालीन नियोजन में सुदूर भविष्य के लिए अनुमानित आवश्यकताओं के अनुसार एक विकास का ढाँचा निर्मित कर लिया जाता है। इस निर्धारित ढाँचे की प्रगति हेतु निरन्तर प्रयास की आवश्यकता होती है। निर्धारित विकास को दीर्घकाल में ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए कार्यक्रमों को अल्प कालों में विभाजित करके निश्चित दीर्घकालीन लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है। अल्पकालीन योजना में कार्यक्रमों के समस्त विवरण रख जाते हैं और उनको इस प्रकार निर्धारित किया जाता है कि एक के पश्चात् दूसरी अल्पकालीन योजना दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो। अल्पकालीन योजनाओं में प्रायः मितव्ययिताओं के अनुसार तत्कालीन समस्याओं का निवारण करने के साथ-साथ दीर्घकालीन लक्ष्यों की ओर अग्रसर होने के लिए पृष्ठभूमि तैयार की जाती है। सुदूर भविष्य की योजनाओं में केवल महत्वपूर्ण एव आधारभूत उद्देश्य ही सम्मिलित होते हैं और उनका विवरण तैयार नहीं किया जा सकता क्योंकि परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता के कारण दीर्घकालीन अनुमान लगाना

सम्भव नहीं होता है। उदाहरणार्थ, भारत मे पचवर्षीय योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय एव विनियोजन को क्रमश बढाकर ३० हजार करोड रुपये एवं २१ से २२ हजार करोड रुपये तक करने का लक्ष्य योजना का दीर्घकालीन उद्देश्य है। इसकी प्राप्ति हेतु तृतीय योजना के कार्यक्रमो का विवरण प्रकाशित कर दिया गया है जिसके द्वारा राष्ट्रीय आय को बढा कर १७ हजार करोड रुपये करने का लक्ष्य है। तृतीय योजना के अन्त होते ही उस समय की परिस्थितियो के अनुसार एव पचवर्षीय योजना के लक्ष्यो को दृष्टिगत करते हुए चतुर्थ योजना के कार्यक्रमो को निर्धारित किया जायगा। अब यह भी अनुभव किया जाने लगा है कि पचवर्षीय योजनाओ के कार्यक्रमो को वार्षिक कार्यक्रमो मे विभक्त किया जाना चाहिए। फलस्वरूप वार्षिक प्रगति आँकी जा सके और उस प्रगति के अनुसार आगामी वर्ष के कार्यक्रमो मे हेरफर किया जा सके।

(३) कार्य-प्रधान बनाम निर्माण प्रधान नियोजन (Functional vs Structural Planning)—कार्य-प्रधान नियोजन उस कार्यक्रम को कहते हैं जिसमे वर्तमान आर्थिक एव सामाजिक प्रारूप के अन्तर्गत ही नियोजन के कार्यक्रमो का सचालन करके आर्थिक कठिनाइयो का निवारण किया जाता है। इस प्रकार के कार्यक्रमो म सस्यनीय परिवर्तन नही किए जाते। एक नवीन संस्थनीय आकार का प्रादुर्भाव नहीं होता है। इस प्रकार के कार्यक्रमा को कम साधनो एव तान्त्रिक विशेषज्ञो द्वारा सचालित किया जा सकता है। परन्तु यह नियोजन चतुर्मुखी विकास एव जनसमुदाय म नवीन जीवन-सचारण हेतु अनुपयुक्त है। इसमे तो केवल विशष समस्याओ का वितरण होता है एव अर्थ-व्यवस्था की विशिष्ट दुर्बलताओ को कम किया जाता है।

दूसरी ओर निर्माण सम्बन्धी नियोजन मे सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था मे सस्यनीय परिवर्तन द्वारा एक नवीन व्यवस्था का निर्माण किया जाता है। इसके द्वारा समाज म सवतोमुखी विकास और नवीन जीवन-सचार होता है। निर्माण-सम्बन्धी नियोजन म उत्पादन की नवीनतम विधियो का प्रयोग किया जाता है। भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना को सर्वथा कार्य सम्बन्धी नियोजन कहा जा सकता है क्योकि इस योजना के कार्यक्रमो को इस प्रकार निर्धारित किया गया था कि तत्कालीन उत्पादन-व्यवस्था मे न्यूनातिन्यून हेर फेर द्वारा उत्पादन-वृद्धि की जा सके। इस योजना मे आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था मे समायोजन करने को विशेष महत्त्व दिया गया था क्योकि द्वितीय महायुद्ध एव देश के विभाजन से पहुँची क्षति की पूर्ति आवश्यक थी। फिर भी इस योजना मे कुछ क्षेत्रो मे सस्यनीय परिवर्तन हुए हैं। इन क्षेत्रो मे भूमि-प्रबन्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। द्वितीय योजना मे एक नवीन अर्थ-व्यवस्था के

निर्माण का लक्ष्य रखा गया है और सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) का विकास एव विस्तार करके उत्पादन के क्षेत्र मे सस्थनीय परिवर्तन किए गए हैं। तृतीय योजना म सहकारी कृषि, उद्योगो मे सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक महत्व, समाज सेवाओ के कार्यक्रमो एव सामुदायिक विकास आदि द्वारा सस्थनीय परिवतनो को और भी अधिक महत्व दिया गया है। इसलिये इन दोनो योजनाओ को निर्माण प्रधान योजना कहा जा सकता है।

अर्ध विकसित राष्ट्रो म निर्माण-प्रधान योजना को अधिक महत्व दिया जाता है। इसके द्वारा एक नवीन व्यवस्था का निर्माण होता है और पुरानी व्यवस्था म जिसकी प्रभावशीलता समाप्त हो चुकी है, बडे-बडे सुधार कर दिये जाते है। *रूस एव चीन मे नियोजन का स्वरूप निर्माण-प्रधान है। चीनी* नियोजन द्वारा चीन की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को समाजवादी अर्थ व्यवस्था मे परिवर्तित किया गया है। इसी प्रकार रूसी नियोजन के प्रारम्भिक काल मे नियोजन का स्वरूप निर्माण प्रधान था और इसके द्वारा समाज के ढाँचे मे परिवर्तन किये गये।

वास्तव म निर्माण-प्रधान नियोजन का अधिक प्रभावशाली माना जा सकता है। इसके द्वारा ही धन एव आय का समान वितरण तथा अवसर एव धन म वृद्धि की जा सकती है। किसी राष्ट्र की निर्धनता का समाप्त करन हेतु धन एव आय का समान वितरण तथा अधिकतम उत्पादन दोनो ही आवश्यक हैं, और इन दोनो का आयोजन अर्थ-व्यवस्था मे सस्थनीय परिवर्तन द्वारा ही किया जा सकता है। वास्तव म काय प्रधान एव निर्माण प्रधान नियोजन म कोई विशेष अन्तर नहीं है। निर्माण-प्रधान नियोजन भी कुछ समय पश्चात् कार्य-प्रधान नियोजन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। निर्माण-प्रधान योजना के संचालन के कुछ वर्षो पश्चात् अर्थ व्यवस्था एव सामाजिक व्यवस्था मे आवश्यक सस्थनीय परिवतन हो जाते हैं और फिर बडे पैमाने पर व्यवस्था म सस्थनीय परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होती है। सभी परिस्थितियो म निर्माण-प्रधान योजना कार्य प्रधान योजना बन जाती है। रूसी नियोजन ने अब कार्य-प्रधान नियोजन का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार कुछ वर्षों पश्चात् चीनी एव भारतीय नियोजन भी कार्य-प्रधान नियोजन बन जायेंगे।

(४) भौतिक बनाम वित्तीय नियोजन (Physical vs Financial Planning)—जब नियोजन का कार्यक्रम निर्धारित करते समय उपलब्ध वास्तविक साधनो को दृष्टिगत किया जाता है तो इसे भौतिक नियोजन कहते हैं। योजना के कार्यक्रम पूर्ण होने पर उत्पन्न हुई पूर्ति एव माँग के सम्बन्ध म

अनुमान लगाने का कार्य भी भौतिक नियोजन का अंग होता है। इतना ही नहीं योजना बनाते समय केवल प्रथम योजनाओ के लिये साधनो की आवश्यकताओं को ही दृष्टिगत करना पर्याप्त नहीं होता है, प्रत्युत समस्त विकास कार्यक्रमो के आवश्यक वास्तविक साधनो का निर्धारण भी जरूरी होता है। योजना के द्वारा अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान सतुलन को छिन्न-भिन्न करके नवीन सतुलन का निर्माण किया जाता है। नवीन सतुलन स्थापित करने से पूर्व आवश्यक सामग्री, यत्र, श्रम आदि की उपलब्धि को दृष्टिगत करना आवश्यक होगा। यदि कुछ सामग्री विदेशो से आयात करना हो तो यह भी आँकना पडेगा कि कथित सामग्री प्राप्त की जा सकती है अथवा नहीं और साथ ही क्या इस सामग्री मे आयात के शोधनार्थ देश मे निर्यात योग्य अतिरिक्त वस्तुएं उपलब्ध हैं या नहीं। इस प्रकार योजना के कार्यक्रमो की भौतिक साधनो सम्बन्धी आवश्यकताओ एव उपलब्धि के अध्ययन तथा निश्चयो को भौतिक नियोजन कहते है।

दूसरी ओर, वित्तीय नियोजन मे योजना के कार्यक्रमो की वित्तीय आवश्यकताओ को आंका जाता है एव उनका प्रबन्ध किया जाता है। विनियोजन का प्रकार निश्चित करके विभिन्न मदो पर व्यय होने वाली राशियाँ निश्चित की जाती हैं। विकास-व्यय द्वारा मूल्यो एव मौद्रिक आय पर पडने वाले प्रभाव का अनुमान लगाकर माँग एव पूर्ति के अनुमान लगाये जाते हैं। बजट सम्बन्धी नीतियो द्वारा मूल्य, आय एव उपभोग पर नियत्रण किया जाता है। इन सभी कार्यों को वित्तीय नियोजन मे सम्मिलित किया जाता है। किसी भी योजना को सफल बनाने के लिये भौतिक एव वित्तीय—दोनो ही विचारधाराएं एव अनुमान आवश्यक हैं। योजना मे इन दोनो विचारधाराओ को पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि किसी योजना म वित्तीय विचारधाराओ को और किसी मे भौतिक विचारधाराओ को महत्व प्रदान किया जाता है। वित्तीय साधनो मे राज्य वृद्धि कर सकता है किन्तु इनकी वृद्धि कुछ लाभदायक नहीं होगी, जब तक कि वास्तविक भौतिक साधनो मे वृद्धि न हो। दूसरी ओर यदि भौतिक साधनो को ही अधिक महत्व दिया जाय तो वित्तीय-व्यवस्था के *प्रभावों का लाभ प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस प्रकार वित्तीय नियोजन एवं* भौतिक नियोजन एक-दूसरे के पूरक हैं और इन दोनो का समन्वित उपयोग आवश्यक होता है।

योजना बनाने के पूर्व योजना कमीशन को भौतिक लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक होता है। इन भौतिक लक्ष्यो मे पारस्परिक समन्वय होना भी अत्यन्त आवश्यक है। एक उद्योग का निर्मित माल दूसरे उद्योग के लिये कच्चा माल होता है। ऐसी परिस्थिति मे दोनो उद्योगो के लक्ष्यो मे समन्वय होना अनिवार्य

है अन्यथा विकास छिन्न भिन्न हो जायेगा। प्रत्येक उद्योग के लिये आवश्यक सामग्री एव कच्चे माल की मात्रा तथा उसके द्वारा निर्मित माल की माँग निर्धारित करना योजना अधिकारी का मुख्य कर्तव्य होता है। इस प्रकार विभिन्न उद्योगो की कच्चे माल, श्रम एव सामग्री सम्बन्धी आवश्यकताओ तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा को निर्धारित करने को नियोजन का भौतिक स्वरूप कहते है। जब इन भौतिक लक्ष्यो एव निश्चयो को वित्तीय स्वरूप दिया जाता है तो उसे नियोजन का वित्तीय स्वरूप कहते है।

क्षेत्रीय बनाम राष्ट्रीय याजना (Regional vs National Planning)—बड-बड राष्ट्रा म जहाँ वे विभिन्न क्षत्रो के आर्थिक साधनो एव लक्षणा के सामाजिक वातावरण एव रीति रिवाजो तथा इन क्ष त्रो के प्रथक प्रथक हितो म समानता नही होती है तो क्ष त्रीय विकेन्द्रीयकरण की आवश्यकता होती है और प्रत्येक क्ष त्र के लिये राष्ट्रीय नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तगत प्रथक प्रथक क्षेत्रीय योजनायें बनायी एव सचालित की जाती हैं। वास्तव मे विकेद्रित योजना का ही दूसरा नाम क्ष त्रीय नियोजन है। भारत की विभिन्न राज्या की प्रथक प्रथक योजनाओ का क्षेत्रीय नियोजन कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत क्षेत्रीय अधिकारियो का नियोजन के निर्माण, सचालन एव निरीक्षण सम्बन्धी अधिकार दे दिये जाते है। । इस प्रकार की योजनाएँ राष्ट्रीय नीतियो एव कायक्रम के अन्तर्गत बनायी जाती हैं और उन पर अन्तिम नियन्त्रण योजना अधिकारी का ही होता है। सयुक्त अरब गणराज्य मे भी राष्ट्रीय विकास योजना के अन्तर्गत मिश्र एव सीरिया प्रदेश के विकास के लिये प्रथम योजना बनायी गयी है। इन दोनो ही क्ष त्रो के आर्थिक साधनो एव विकास की स्थिति म बहुत अन्तर है। प्रत्येक बडे राष्ट्र मे जो बड क्षेत्र म फैले हो क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता होती है। क्षेत्रीय नियोजन का उद्देश्य क्षेत्र के साधको का उचित उपयोग करके क्षेत्र को अन्य क्षेत्रो के स्तर पर लाना होता है। परन्तु इस प्रकार के नियोजन का यह तात्पर्य कदापि नही है कि विभिन्न क्षेत्र अपन आप मे आत्म निर्भर बनन का प्रयत्न करें तथा अन्य क्षेत्रो के साथ सामजस्य स्थापित करने के स्थान पर अपने ही विकास के लिये प्रयत्न शील रहे। क्षेत्रीय नियोजन का वास्तविक उद्देश्य उपलब्ध साधनो का अधिकतम कार्यशील उपभोग करना तथा समस्त क्षत्रो मे आर्थिक सन्तुलन उत्पन्न करना होता है।

राष्ट्रीय नियोजन के अन्तगत राष्ट्र की समस्त राजनीतिक सीमाओ म सम्मिलित क्षेत्र को एक इकाई मानकर विकास के आयोजन किये जाते है। जब

समस्त राष्ट्र के साधनो एवं आवश्यकताओ को एक साथ दृष्टिगत करके योजना बनायी जाती है तो उसे राष्ट्रीय नियोजन कहा जाता है। वास्तव मे आर्थिक नियोजन का वास्तविक अर्थ राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन समझना चाहिये। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत भी समस्त राष्ट्र के विकास के लिये योजना बनायी जाती है। राष्ट्रीय नियोजन को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु इसे क्षेत्रीय योजनाओ मे विभाजित किया जा सकता है। भारत की योजनाओ को राष्ट्रीय योजना कहना उचित होगा। इनके अन्तर्गत समस्त राष्ट्र के साधनो एव आवश्यकताओ को दृष्टिगत किया जाता है परन्तु इनकी प्रभावशीलता बढाने एव सन्तुलित क्षेत्रीय विकास करने हेतु हमारी योजनाओ को राज्यो की योजनाओ म विभाजित कर दिया जाता है। कम क्षेत्र वाले राष्ट्रो मे राष्ट्रीय योजना की क्षेत्रीय योजना म विभाजित करना आवश्यक नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति म योजना का उद्देश्य राष्ट्र के उत्पादन म वृद्धि करना होता है और देश के समस्त क्षेत्रो का सन्तुलित विकास करने के लिये विशेष प्रयास सम्भव नहीं होने हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन—अन्तर्राष्टीय नियोजन उस व्यवस्था को कह सकते हैं जिसमे एक से अधिक देशो के साधनो का उपयोग सामूहिक रूप से समस्त सदस्य राष्ट्रो द्वारा किया जाता है। वास्तव मे इसके अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रो के साधनो का एकीकरण (Pooling) होता है। इस प्रकार के नियोजन का सचालन किसी बडे साम्राज्य म ही सम्भव हो सकता है जहाँ कि कई राष्ट्र किसी एक राष्ट्र के आधीन हो। विभिन्न राष्ट्रो की प्रथक-प्रथक आर्थिक समस्यायें एव साधन होते हैं और अधिकतर स्वतन्त्र राष्ट्र कभी भी अपने समस्त साधनो का एक एकत्रीकरण करके विकास की ओर अग्रसर होना स्वीकार नहीं कर सकते क्योकि यह विकास व्यवहारिक दृष्टिकोण म भी सम्भव नहीं हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन का ढीला स्वरूप ही व्यवहारिक हो सकता है जिसमे एक से अधिक राष्ट्र जो कि स्वतत्र हो और जिनका राजनैतिक अस्तित्व एक दूसरे से प्रथक हो, अपनी अर्थ-व्यवस्था के कुछ अगो को एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के नियन्त्रण मे रखना स्वीकार कर लेते हैं।

वास्तव म आर्थिक मामलो से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को भी अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन का स्वरूप मानना चाहिये। General Agreement on Trade and Tariffs—Gatt के अन्तर्गत यह आयोजन किया गया कि किसी भी सदस्य देश मे किसी अन्य देश मे उत्पादित किसी वस्तु को जब कोई लाभ व सर्वाधिकार (Privilege) आदि दिया जाय तो अन्य सदस्य देशो के उत्पादन को भी वही लाभ एव सर्वाधिकार प्राप्त होगा जो कि सर्वाधिक

पक्ष प्राप्त (favoured) राष्ट्र को दिया गया है। इस प्रकार के समझौतो से राष्ट्रीय नियोजन को इनके अनुसार बनाना आवश्यक होता है और कभी कभी राष्ट्रीय नियोजन मे बडी कठिनाइयाँ पड जाती है। भारत इस समझौते का सदस्य है। फरवरी १९५४ मे विदेशी मुद्रा की कठिनाई उपस्थित होने पर भारत को यह आवश्यक हो गया कि वह विदेशो को दी गयी रियायतो को बन्द कर दे और भारत सरकार को इस कार्यवाही के लिये समझौते के अधिकारियो से विशेष आज्ञा प्राप्त करनी पडी।

अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अन्तर्गत यूरोपियन कामन मार्कट का उल्लेख करना आवश्यक है। २५ मार्च १९५७ की रोम की संधि के अन्तर्गत योरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Cummunity) की स्थापना का आयोजन किया गया। इस समुदाय मे ६ यूरोपीय देश बेलजियम फ्रास फेडल रिपब्लिक आफ जर्मनी इटली लक्जमबर्ग तथा नीदरलेन्डस सम्मिलित हुए। इसकी स्थापना १ जनवरी १९५८ को हुई और इसके अन्तर्गत सदस्य देशो की आर्थिक क्रियाओ के समन्वित विकास, अधिक आर्थिक स्थिरता तथा जीवन स्तर मे वृद्धि का उद्देश्य रखा गया। इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु सदस्य देशो को निम्नलिखित कार्यवाहियाँ करनी थी—

१ सदस्य देशो के पारस्परिक आयात एव निर्यात पर से कर एव उनकी मात्रा पर लगाये प्रतिबन्धो को हटाना तथा व्यक्तियो सेवाओ एव पूजी के आने जाने की रोको को भी लागू न करना।

२ सामान्य कृषि एव यातायात की नीतियो का सचालन।

३ सामान्य बाजार (Common Market) मे प्रतिस्पर्धा जीवित रखने के लिये व्यवस्था करना।

४ सामान्य विदेशी वाणिज्य नीति अपनाना जो कि सामान्य बाजार (Common Market) के बाहर के देशो से व्यापार करने पर लागू की जानी थी। इन कार्यवाहियो के अतिरिक्त एक यूरोपीय विनियोजन बैंक की स्थापना की जानी थी जिसे समुदाय के आर्थिक विस्तार का कार्य करना था। रोजगार एव जीवन स्तर मे वृद्धि करने हेतु एक यूरोपीय विशेष फण्ड का आयोजन भी किया जाना था। इस समझौते के अनुसार सदस्य देशो के पारस्परिक आयात एव निर्यात पर से प्रतिबंध एव कर हटाने तथा अन्य देशो से व्यापार करने की सामान्य नीति अपनाने का कार्य १२ वर्षों मे किया जाना है।

ब्रिटेन ने भी इस Common Market मे सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की है। परन्तु British Commonwealth के राष्ट्र इसका विरोध

कर रहे हैं क्योंकि उन्हे जो इग्लैण्ड के बाजार से सुविधायें प्राप्त होती हैं, वे सब बन्द हो जायेंगी। भारत के १९६०-६१ के समस्त निर्यात ६३५ करोड मे लगभग २०० करोड ब्रिटेन को भेजा गया। इस प्रकार भारत के लिये ब्रिटेन के बाजार का अत्यधिक महत्व है। ब्रिटेन के Common Market में सम्मिलित होने पर भारत को ब्रिटेन को भेजे जाने वाले अपने निर्यात पर उतना कर आदि देना होगा जितना कि वह यूरोपियन आर्थिक समुदाय के सदस्य-देशो को भेजे जाने वाले निर्यात पर देता है। इस प्रकार भारत की वस्तुओ का मूल्य ब्रिटेन के बाजार मे बढ़ जायेगा और भारत को अपने निर्यात बढाने का अवसर न मिल सकेगा।

इन अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो के अतिरिक्त कोलम्बो योजना जिसका मुख्य उद्देश्य दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशो का अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा जीवन-स्तर ऊपर उठाना है, को भी अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन कहना उचित होगा। इस योजना का विवरण अगले अध्यायो मे दिया गया है।

———

अध्याय ४

नियोजन के सिद्धान्त तथा व्यवस्था

(नियोजन के सिद्धान्त—राष्ट्रीय सुरक्षा, साधनो का उचित एव विवेकपूर्ण उपयोग, सामाजिक न्याय और सुरक्षा, सामान्य जनता के जीवन-स्तर मे वृद्धि , योजना की विभिन्न अवस्थाए एवं संचालन-व्यवस्था—साख्य एकत्रित करना तथा नियोजन काल मे राष्ट्रीय आय का अनुमान, राष्ट्रीय आय का विनियोजन, उपभोग एव सामाजिक हित म वितरण, योजना के कार्यक्रमो का निश्चयीकरण उपलब्ध साधनो का वितरण, योजना की विज्ञप्ति, योजना को कार्यान्वित करना, योजना के सचालन तथा प्रगति का निरीक्षण, भारत म नियोजन की व्यवस्था, भारतीय योजना आयोग के कार्य)

नियोजन के सिद्धान्त

नियोजित अर्थ-व्यवस्था म पूर्व निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हेतु सम्भाव्य साधनो का शोषण करना आवश्यक होता है । पूजीवाद, समाजवाद तथा साम्यवाद के सिद्धान्त के अनुसार ही इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए आयोजन किया जाना है । इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि कम से कम समय म उद्देश्यो की पूर्ति हो सके, साथ ही सफलता म बाधक तत्वो स बचाव रखा जा सके । राष्ट्र चाहे किसी भी वाद का परिपालन करता हो नियोजन के कार्यक्रम निम्नांकित सिद्धान्तो के आधार पर ही निर्धारित किये जाते है—

(१) राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security)—जब तक राष्ट्र मे सुरक्षा की भावना न हो कोई भी नियोजन कार्यक्रम सफलतापूर्वक सचालित नहीं किया जा सकता । योजना के दीर्घकालीन कार्यक्रमो के सचालनार्थ राजनीतिक स्थिरता की आवश्यकता होती है और राजनीतिक स्थिरता तभी सम्भव है

जबकि राष्ट्र को पडौसी राष्ट्रो की ओर से आक्रमण आदि का भय न हो। नियोजन द्वारा राज्य को आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से सुदृढ बनाया जाता है किन्तु यह स्थिरता राष्ट्रीय सुरक्षा की अनुपस्थिति मे अल्पकालीन हो सकती है। यदि राष्ट्र को अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय साधनो का अधिक भाग व्यय करना पडे तो आर्थिक विकास को पर्याप्त साधन उपलब्ध होना असम्भव है। नियोजन की सफलता के लिए राष्ट्र को इतना शक्तिशाली बनाना अनिवार्य है कि अन्य दूसरे राष्ट्रो से किसी प्रकार का भय न हो। १६वीं शताब्दी मे राष्ट्र की सुरक्षा के लिये खाद्य सामग्री को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था क्योकि वही देश युद्ध मे सफल होता था जो अपनी सेना को पर्याप्त खाद्य-सामग्री अधिक काल तक प्रदान कर सकता था परन्तु आधुनिक युग मे यन्त्र, उद्योग, यातायात एव सचार तथा खनिज का महत्त्व अधिक हो गया है। आज के युद्ध म मनुष्य नही प्रत्युत् अस्त्र शस्त्र अधिक महत्वपूर्ण है। अत आज वही देश युद्ध-विजयी है जिसके पास सगठित उद्योग, लोहा एव इस्पात का पर्याप्त उत्पादन तथा शक्ति के साधनो—कोयला, पैट्रोलियम तथा विद्युत शक्ति की पर्याप्त एव सुगम उपलब्धि है। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से नियोजन द्वारा राष्ट्र के उद्योगो को शक्तिशाली, सुसगठित एव पर्याप्त बनाना आवश्यक है।

(२) साधनो का उचित एव विवेकपूर्ण उपयोग (Proper and Rational Utilization of Resources)—नियोजन द्वारा ऐसी व्यवस्था का सगठन किया जाय कि राष्ट्र के साधनो—वर्तमान तथा सम्भावित—का उचित एव विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सके। जब तक राष्ट्र के साधनो का सुनिश्चित उद्देश्यो के आधार पर उपयोग नहीं किया जाता, नियोजन को सफलता प्राप्त नही हो सकती। एक ओर सम्भावी साधनो का उपयोग किया जाय तथा दूसरी ओर वर्तमान उत्पादन के साधनो के उपयोग मे आवश्यक समायोजन किया जाय, ताकि इनका उपयोग उत्पादन के उस क्षेत्र से हटा कर जिसको नियोजन अधिकारी ने महत्व नहीं दिया है, ऐसे क्षेत्र मे किया जाय जिन्हे नियोजन-कार्यक्रमो मे स्थान प्राप्त है। साधनो की कमी होने पर उनका उपयोग विवेकपूर्ण होना चाहिए अर्थात् उनके द्वारा उत्पादन के साधनो को बढावा देने, पूंजी निर्माण करने और नियोजन बढाने म सहायता मिलनी चाहिए। साथ ही साथ उत्पादन के साधनो को उपभोग के क्षत्र से हटाकर विनियोजन के क्षेत्र मे लाना आवश्यक होना है।

(३) सामाजिक न्याय और सुरक्षा (Social and Rational Security)—नियोजन द्वारा सामाजिक हित को सर्वाधिक महत्व दिया जाता

है। साम्यवादी नियोजन म व्यक्तिगत हित का सामाजिक हित के सवथा श्राधीन कर दिया जाता है। परन्तु प्रजातान्त्रिक नियोजन म सामाजिक तथा व्यक्तिगत हित म सामजस्य स्थापित किया जाता है। सामाजिक हित के लिए आर्थिक समानता का उचित आयोजन किया जाना चाहिए। आय की समानता तथा अवसर की समानता इसके दो महत्त्वपूर्ण अग हैं। पूर्ण रोजगार का प्रब ध करना भी नितान्त आवश्यक है। जब तक राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को अपनी योग्यतानुसार कार्य करके जीविकोपार्जन करने का अवसर नहीं मिलता, आर्थिक समानता के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होता है। सामाजिक हित के लिए जनसमुदाय के स्वास्थ्य शिक्षा गृह आदि का भी उचित आयोजन होना आवश्यक है।

(४) सामान्य जनता के जीवन-स्तर म वृद्धि (Raising of Standard of Living)—उत्पादन की वृद्धि के साथ जनता म अधिक उपभोग की प्रवृत्ति जाग्रत करना भी आवश्यक है। जीवन स्तर म वृद्धि हेतु उपभोग म वृद्धि की जानी चाहिए। इसके लिए सवसाधारण की वास्तविक आय में वृद्धि आवश्यक है साथ ही उपभोग्य वस्तुओं का पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध कराना अनिवार्य हो जाता है। नियोजन का प्रत्येक कायक्रम जीवन स्तर म वास्तविक वृद्धि करने के लिए सहायक होना चाहिए।

नियोजन की व्यवस्था के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं बनाये जा सकते हैं क्योंकि इस व्यवस्था का ढाँचा बहुत कुछ राष्ट्र की राजनीतिक तथा सामाजिक रूपरेखा पर निभर होता है। प्रजातान्त्रिक ढाँचे की उपस्थिति म शक्तियों के विकेन्द्रीयकरण के आधार पर नियोजन का व्यवस्था की जाती है। दूसरी ओर साम्यवादी राष्ट्रों म नियोजन अधिकारी के हाथ म शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता है। इसके अतिरिक्त नियोजन कैसे और किसके द्वारा संचालित किया जाय यह राष्ट्र की औद्योगिक तथा आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर होता है। उद्योग के क्षेत्र म विकसित राष्ट्रों म अधिक उत्पादन पर नियन्त्रण रखने उपभोग म वृद्धि तथा विदेशी व्यापार की उन्नति के आधार पर नियोजन की व्यवस्था की जाती है। अर्द्ध विकसित तथा अविकसित राष्ट्रों म नियोजन की व्यवस्था निश्चित करने के लिए अधिक उत्पादन तथा उचित वितरण को विशेष स्थान दिया जाता है।

योजना की विभिन्न अवस्थाएँ (Various Stages of the Plan)

नियोजन के कायक्रम को अपने जन्म से निर्वाण तक एक विशेष अवधि को पूरा करना पड़ता है। उस अवधि के अन्तर्गत उसे विभिन्न प्रान्तों तथा विभिन्न स्थितियों एवं अवस्थाओं को पार करना होता है। मुख्य अवस्थाएं निम्न प्रकार निश्चित की जा सकती हैं—

(१) साख्य एकत्रित करना तथा नियोजन-काल मे राष्ट्रीय आय का अनुमान करना;

(२) राष्ट्रीय आय का विनियोजन, उपभोग तथा समाज कल्याण हेतु वितरण;

(३) योजना के कार्यक्रम एव लक्ष्यो को निश्चित करना;

(४) उपलब्ध अर्थ-साधनो का आवटन;

(५) प्रस्तावित योजना की विज्ञप्ति;

(६) योजना को कार्यान्वित करना; एव

(७) योजना के कार्य, सचालन तथा प्रगति का निरीक्षण करना।

उपरोक्त अवस्थाओ के सुगम, सुचारु एवं उचित संचालन की आवश्यकता उतनी ही तीव्र है, जितनी स्वय कार्यक्रम के लक्ष्यो की सफल प्राप्ति की। लक्ष्यो की सफलता सचालन-व्यवस्था की कार्यक्षमता एव आचरण पर पूर्णतया निर्भर है। योजना-कार्यक्रम वह रथ है जो हर अवस्था म वाहक की अनिवार्यता का अनुभव एक अनिवार्यता के रूप मे करता है। संचालन-व्यवस्था राष्ट्र के राजनीतिक ढांचे पर निर्भर करती है। यह सर्वमान्य सत्य है कि संचालन-व्यवस्था कार्यक्रम को सुचारु एव सफलतापूर्वक सचालन हेतु योग्य एव पर्याप्त होनी चाहिये। लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था मे सचालन-व्यवस्था निम्न चार्ट से स्पष्ट है—

योजना की सचालन-व्यवस्था (Machinery of Planning)

जनसमुदाय
|
लोकसभा
|
मन्त्रिमण्डल तथा योजना-मन्त्री
|
(राष्ट्रीय विनियोजन परिषद्→राष्ट्रीय योजना परिषद्→आर्थिक निरीक्षण आयोग)
|
योजना आयोग
|

विभिन्न उत्पादन के क्षेत्रो से सम्बन्धित विकास परिषदें	सरकारी विभाग एव निगम	उद्योगपति, व्यापारी, व्यवसायी तथा उनकी सस्थाएँ	समाज-कल्याण सम्बन्धी सस्थाएँ

उपर्युक्त चित्र लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत निर्मित सचालन-

की ओर इंगित करता है। अन्य तन्त्रो की रचना एवं प्रकृति के अनुसार सचालन-व्यवस्था भी अपना स्वरूप परिवर्तित करती रहती है। अब हम विभिन्न योजना-अवस्थाओ का अध्ययन करेंगे।

(१) सांख्य एकत्रित करना तथा नियोजन काल मे राष्ट्रीय आय का अनुमान—यह योजना की सर्वप्रथम अवस्था है। साख्य-एकत्रीकरण योजना आयोग द्वारा किया जा सकता है। कोई भी योजना विश्वसनीय साख्य तथा तत्वो के आधार पर ही बनायी जा सकती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे साख्य एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करने का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं होता। अधिकाश साख्य पक्षपात के दृष्टिकोण से एकत्रित की जाती है, जिसको किसी भी रूप मे विश्वसनीय कहना अतिशयोक्ति होगी। योजना के उद्देश्य, प्राथमिकताएँ, लक्ष्य, अर्थ-प्रबन्ध आदि सभी को निश्चित करने के लिये साख्य की आवश्यकता होती है।

योजना कमीशन द्वारा ये सूचनाएं प्रबन्ध-सम्बन्धी अधिकारियो (Administrative Officers) की सहायता से एकत्रित की जाती हैं क्योकि विशेष साख्यिक सस्थाएँ स्थापित करने तथा उनके द्वारा आवश्यक सूचना एकत्रित करने मे अत्यधिक समय व्यतीत होता है। योजना कमीशन अपने विशेषज्ञो द्वारा भी साख्य-एकत्रीकरण एव विश्लेषण का कार्य सम्पादन करा सकता है। प्रत्येक विशेष क्षेत्र के विशेष उद्योग के लिए पृथक्-पृथक् समितियाँ नियुक्त की जा सकती हैं। उन्हे नियोजन के लिये सम्बन्धित उद्योगो से आवश्यक सूचनाएं एकत्रित करने तथा योजनाविधि मे इन उद्योगो के नियोजित कार्यक्रम की व्यवस्था पर नियन्त्रण रखने का कार्य सौपा जा सकता है।

इस प्रकार समस्त सरकारी विभागो, निजी औद्योगिक सस्थाओ तथा समितियो, व्यापार सस्थाओ (Trade Agencies) एव सेवा सस्थाओ (Service Agencies) से सूचना एकत्र करके योजना आयोग को इस सूचना का विश्लेषण, व्याख्या तथा आलोचनात्मक अध्ययन अपने प्राविधिक विशेषज्ञो द्वारा करना चाहिये। ये विशेषज्ञ इस सूचना के आधार पर भविष्य के उत्पादन तथा उपभोग की प्रवृत्तियो का भी अनुमान लगायें और इस प्रकार समस्त अनुभवो के आधार पर योजना काल मे उपार्जित होने वाली राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाय।

(२) राष्ट्रीय आय का विनियोजन, उपभोग तथा समाज कल्याण हेतु वितरण—अनुमानित राष्ट्रीय आय की राशि निश्चित करने के उपरान्त जोयना आयोग द्वारा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव तैयार करना आवश्यक है। राष्ट्र

की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुसार योजना के लक्ष्यो एव उद्देश्यो को निश्चित किया जाता है। राष्ट्रीय आय को तीन तालिकाओ—विनियोग, उपभोग तथा समाज कल्याण मे विभाजित किया जाता है। विनियोग की राशि निश्चित करते समय राष्ट्र की आर्थिक नीतियो के आधार पर यह निश्चय किया जाना भी आवश्यक है कि इस राशि का कितना भाग निजी तथा सरकारी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया जाय। यद्यपि उपभोग की राशि निर्धारित करते समय जन-समुदाय के वर्तमान जीवन-स्तर को आधार मानना चाहिए, तथापि आर्थिक विकास की प्रगति हेतु साधनो का उपभोग के क्षेत्र से विनियोजन के क्षेत्र मे लाना आवश्यक होता है। किन्तु यदि जन-समुदाय का जीवन-स्तर अत्यन्त निम्न हो तो उनके उपभोग को अधिक कम नहीं किया जा सकता। अत विनियोजन के लिए अर्थ आन्तरिक साधनो से पर्याप्त मात्रा म प्राप्त नहीं होगा। दूसरी ओर यह जानना भी आवश्यक होगा कि देश के सविधानानुसार जनसाधारण से कितना त्याग अपेक्षित है तथा उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को उन्हीं के उत्थान के लिए किस सीमा तक नियन्त्रित किया जा सकता है। तदुपरान्त समाज-कल्याण हेतु कितनी राशि व्यय की जा सकती है, इसका निर्धारण राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध मे राष्ट्र के पिछड़े वर्गों, अविकसित क्षेत्रो, शिक्षा तथा स्वास्थ्य व्यवस्था, गृह स्थिति तथा श्रम-कल्याण आदि की आवश्यकताओ को आधार माना जाता है।

विनियोजन, उपभोग तथा समाज-कल्याण तीनो एक-दूसरे पर अवलम्बित है। विनियोजन तथा उपभोग तो इतने घनिष्ठता से सम्बद्ध हैं कि इन पर व्यय होने वाली राशि निश्चित करने के लिए दोनो का एक साथ अध्ययन करना पडेगा। उपभोग की तालिका बनाने के लिए योजनावधि मे जीवन-स्तर मे कितनी वृद्धि की जायगी, इसका निश्चय करना आवश्यक है। जीवन स्तर मे सम्मिलित किये जाने वाले अंगो के आधार पर ही यह भी निर्धारित करना आवश्यक है कि विभिन्न वस्तुओ तथा सेवाओं की कितनी परिमाण मे आवश्यकता होगी। इसके साथ ही आवश्यक एकत्रित सूचना के आधार पर यह भी ज्ञात किया जा सकेगा कि इन वस्तुओ तथा सेवाओ की पूर्ति किस सीमा तक राष्ट्रीय उत्पादन एव आयात तथा सचय म से की जा सकती है।

इस प्रकार इस तालिका का निर्माण वस्तुओ तथा सेवाओ की न्यूनता अथवा अधिकता ज्ञात करने मे सहायक होगा। न्यूनाधिक्य का ज्ञान दो तत्वो को जन्म देगा—

(अ) आयात तथा निर्यात नीति, तथा

(ब) उन उद्योगो के विकास की आवश्यक्ता की तीव्रता जो आन्तरिक उत्पादन द्वारा उपभोग की आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक होगें।

उत्पादन के साधनो को बढाने के लिए उद्योगो को अध्ययनार्थ दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, ऐसे उद्योग जिनके विकास करने के लिए अल्पकालीन योजनाओ की आवश्यकता हो। साथ ही अर्थ-प्रबन्धन हेतु आन्तरिक साधनो पर निर्भर रहा जा सके। द्वितीय, ऐसे उद्योग जिनके विकास के लिए दीर्घकालीन योजनाओ तथा पूँजीगत वस्तुओ की आवश्यकता हो। आवश्यक सामग्री का देश मे उत्पादन कहाँ तक हो सकता है, इसका अध्ययन भी आवश्यक होगा। इस प्रकार दीर्घकालीन योजना मे पूँज गत वस्तुओ के उद्योग तथा बडी-बडी योजनाएं सम्मिलित की जायेंगी। पूँजीगत वस्तुओ के साथ-साथ उद्योगो की कच्चे माल तथा श्रम-सम्बन्धी आवश्यक्ताओ का अध्ययन भी आवश्यक होगा और इस क्षेत्र मे भी यह निश्चित करना होगा कि श्रम तथा कच्चा माल आन्तरिक साधनो द्वारा पूर्ति बढा कर अथवा आयात से कहाँ तक प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक उद्योग के प्रत्येक कच्चे माल के लिए तथा प्रत्येक प्रकार के श्रम की आवश्यकताओ के लिए बजट भी बनाया जा सकेगा। अर्ध-विकसित तथा अविकसित राष्ट्रो मे कृषि का स्थान भी महत्वपूर्ण होता है। भारत जैसे राष्ट्रो मे कृषि ही सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था की नियत्रक है। उत्पादन के अन्य क्षेत्रो का विकास भी कृषि के पर्याप्त विकास पर अवलम्बित है। कृषि के उत्थान के लिए योजना मे सिचाई के साधनो मे वृद्धि, कृषि के तरीको का वैज्ञानिकीकरण, उत्तम खाद तथा बीज का आयोजन आदि को प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। कृषि से सम्बन्धित सूचना शासकीय कृषि विभागो तथा कृषि मंत्रालयो आदि द्वारा एकत्रित की जा सकती है। योजना आयोग के अन्तर्गत कृषि विकास परिषद् (Development Council for Agriculture) का निर्माण किया जा सकता है। इस परिषद् मे विभिन्न राज्यो के कृषि विभागो, जनता, विशेषज्ञो, अर्थशास्त्रियो तथा लोकसभा के प्रतिनिधि होने चाहिए ताकि व्यापक योजनाओ के निर्माण म सुविधा हो तथा इन योजनाओ के लिए जन-सहयोग उपलब्ध हो सके।

इस प्रकार उत्पादन के क्षेत्र मे विकास के लिए वृहद् सूचनाओ, तथ्यो तथा साख्य के आधार पर तैयार किये गये सुझाव प्राप्त करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र मे विकास परिषद् (Development Council) की स्थापना अपेक्षित है। प्रत्येक उद्योग के लिए पृथक्-पृथक् विकास-परिषद् का निर्माण किया जा

सकता है। इन विकास परिषदो मे सम्बन्धित उद्योग मे लगे हुए उद्योगपतियो केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारो—विशेषकर उन प्रान्तीय सरकारो का जिनमे वह उद्योग स्थापित हो अथवा उस उद्योग की स्थापना सम्मलित हो, का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इनमे तान्त्रिक विशेषज्ञ, लोकसभा के प्रतिनिधि तथा योजना आयोग के प्रतिनिधि सम्मिलित किये जा सकते हैं। ये विकास परिषदें अपने-अपने क्षेत्र की वर्तमान स्थिति अथवा जितनी भी इकाइयाँ इस उद्योग मे हो प्रत्येक का उत्पादन, उत्पादन शक्ति, लागत, विभिन्न उपयोगो के लिए अनुकूलता, उत्पादन म वृद्धि तथा कमी होने पर उन पर प्रभाव, श्रम की उपलब्धि, उसके स्थायी सयत्र की स्थिति तथा उसके प्रतिस्थापन एव वृद्धि की आवश्यकता, वतमान बाजारो की स्थिति आदि का अध्ययन करेगी। विकास परिषद् मे इस समस्त सूचना के आधार पर अपने क्षेत्र से सम्बन्धित प्रथम प्रस्तावित योजना का प्रारूप निश्चित करने के लिए उचित अधिकारी होना चाहिए। विकास परिषद यह भी अनुमान लगा सकती है कि योजना काल मे उसके क्षेत्र की उत्पादित वस्तुओ की कितनी माँग होगी और इसके आधार पर यह निश्चित किया जा सकेगा कि उत्पादन मे कितनी वृद्धि की जाय तथा इस वृद्धि के लिए क्या-क्या कार्यवाही की जाय।

विकास परिषदो द्वारा निर्मित प्रथम प्रस्तावित योजनाएं राष्ट्रीय योजना आयोग के पास भेजी जानी चाहिए। योजना आयोग को इन योजनाओ का मिलान उसके विशेषज्ञो द्वारा तैयार आंकडा से करना चाहिए। तत्पश्चात् समस्त योजनाएं योजना आयोग अपनी टिप्पणी सहित अपन उच्च अधिकारियो के पास भेजगा।

योजना आयोग द्वारा योजना के अर्थ प्रबन्धन का भी अध्ययन किया जाता है। कभी-कभी तो विकास-योजनाओ के निर्माण के पूर्व ही उपलब्ध अर्थ-साधनो का अध्ययन करना होता है। अर्थ-साधनो की उपलब्धि की सुगमता एव परिमाण के अनुसार ही योजना के काय-क्रम निर्धारित किये जाते हैं। ऐसी परिस्थिति म योजना को वित्तीय नियोजन (Financial Planning) का नाम दिया जाता है। परन्तु विकास-योजना के लक्ष्य बहुधा पहले निश्चित किये जाते हैं, तत्पश्चात् अर्थ साधनो की उपलब्धि का अध्ययन करके उन्हे बढाने का प्रयत्न किया जाता है। योजना आयोग विभिन्न विकास परिषदो से तत्सम्बन्धित उत्पादन के क्षेत्रो की आर्थिक आवश्यकताओ का विवरण प्राप्त करता है तथा केन्द्रीय एव प्रान्तीय वित्त मत्रालयो द्वारा उपलब्ध साधनो का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार अनुमानित अर्थ-साधनो को भी योजना आयोग उच्चाधिकारी के पास भेज देता है।

समाज कल्याण की योजना बनाने के लिए एक केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद् (Central Social Welfare Board) का निर्माण किया जा सकता है। यह बोर्ड विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यकतानुसार समितियाँ स्थापित कर सकता है। श्रम हितकारी योजना निर्माण हेतु एक श्रम तथा श्रम हितकारी परिषद् (Labour & Labour Welfare Board) की स्थापना की जा सकती है, जो श्रम के पारिश्रमिक काय करने की परिस्थितियो, श्रमिको के लिए गृह निमाण, सामाजिक बीमा आदि विषयक आवश्यक सुझाव तैयार करे। इस परिषद म सरकार, उद्योगपति, श्रमिक सस्थाओ आदि के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस प्रकार समाज-कल्याण की प्रारूप (Draft) योजनाएं योजना आयोग के पास पहुँचनी चाहिए जो टिप्पणी सहित उन्हे उच्च अधिकारी के पास भज दे।

(३) योजना के कार्य क्रमो का निश्चय करना—राष्ट्रीय योजना के कार्य क्रम को अन्तिम रूप देने के लिए केवल विशेषज्ञो के विचारो पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। हम एक ऐसे राष्ट्रीय अधिकारी की व्यवस्था करनी होगी जिसके पास वर्गीय अधिकारी (Sectional Authorities) द्वारा अपनी अपनी प्रस्तावित योजनाएं स्वीकृति अथवा सुधार के लिए भजी जा सकें। इस स्थिति म तीन कार्यों म भद करना आवश्यक है। उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो म राष्ट्रीय आवश्यकता का अनुमान लगाना जिसस वर्गीय अधिकारियो द्वारा लगाये गये अनुमानो पर नियन्त्रण रखा जा सक तथा समस्त उद्योगो के लिये प्रस्तावित राष्ट्रीय योजना की रूपरेखा तैयार करना जिसस वर्गीय अधिकारियो द्वारा निर्मित विभिन्न योजनाओ का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। दूसरा कार्य राष्ट्रीय प्रस्तावित योजना तथा वर्गीय योजनाओ के आधार पर वास्तविक निश्चय करन का है। तत्पश्चात उत्पादन की राष्ट्रीय योजना तैयार की जानी चाहिए। तीसरा कार्य योजना के सचालन का निरीक्षण करने का है जिससे वर्गीय अधिकारियो के काय तथा उनके एक-दूसरे के सम्बन्धो में अधिकतम कार्य क्षमता का निश्चय हो सके। उपर्युक्त कार्यों के सम्पादन हेतु निम्नलिखित अधिकारियो की नियुक्ति होना आवश्यक है। सवप्रथम एक केन्द्रीय योजना विभाग का निर्माण आवश्यक है जिसको कि योजना आयोग की सज्ञा दी जा सकती है। योजना आयोग को, विभिन्न सस्थाओ से जो कि योजना के कार्य क्रम का सचालन करें, सूचना प्राप्त करन का अधिकार होना चाहिए। योजना आयोग के पास अपने विशेषज्ञ हो जो विभिन्न विकास-परिषदो द्वारा प्रपित योजनाओ का आलोचनात्मक अध्ययन कर सकें तथा एक राष्ट्रीय योजना की रूपरेखा तैयार कर सकें। योजना आयोग वास्तव म एक

विशेषज्ञो की सस्था होती है जिसे अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करने का अधिकार नहीं होता, प्रत्युत् विकास परिषदो द्वारा प्रेषित योजनाओ पर अपने विचार व्यक्त करने तथा सुझावो के साथ अपनी योजनाओ को अन्तिम निश्चय के लिए अन्य उच्च अधिकारियो के पास भेजना होता है।

योजना कार्यक्रमो को अन्तिम रूप प्रदान करने के लिए केवल विशेषज्ञों के विचारो को ही आधार नहीं बनाया जा सकता। आर्थिक नियोजन का तात्पर्य केवल इतना ही नही है कि पृथक् पृथक् क्षेत्रो के लिए विशेषज्ञो द्वारा पृथक्-पृथक् योजनाएं बना ली जायं, प्रत्युत् राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओ को योजना के अन्तिम उद्देश्यो के अनुसार परिवर्तित करना भी आवश्यक है। प्रजातान्त्रिक समाज मे विशेषज्ञो के हाथ मे राष्ट्र की सम्पूर्ण आर्थिक-व्यवस्था को निहित नहीं किया जा सकता। किसी भी निश्चय के पूर्व जनसाधारण के विचारो से अवगत होना भी आवश्यक है, क्योकि योजना आयोग को केवल एक विशेषज्ञो की सस्था का स्थान प्राप्त होता है। यह सस्था जनता के विचारो का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती है।

योजना का अन्तिम रूप निश्चित करने का कार्य लोकसभा द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए। लेकिन लोकसभा के सम्मुख किसी भी कार्य क्रम का स्वीकृति हेतु प्रस्तुतीकरण मन्त्रिमण्डल द्वारा होना चाहिए। योजना विभाग के मन्त्री को योजना आयोग द्वारा प्रेषित योजनाओ के अध्ययनोपरान्त राष्ट्र की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर योजना का अन्तिम रूप देना होता है। इस सब काय के लिए योजना मन्त्री के सहयोग के हेतु एक राष्ट्रीय नियोजन अधिकारी अथवा राष्ट्रीय नियोजन परिषद् (National Planning Authority or National Planning Assembly) की व्यवस्था की जा सकती है। इस सभा मे विभिन्न उद्योगो से सम्बन्धित विकास परिषदो के क्षेत्रीय प्रतिनिधि लोकसभा के कतिपय सदस्य जिनमे सरकारी तथा विरोधी दोना पक्षो के सदस्य हो, मन्त्रिमण्डल के सदस्य तथा योजना-आयोग के कुछ विशेषज्ञ तथा सदस्य सम्मिलित किए जा सकते हैं। यह सभा योजना को अन्तिम रूप देगी तथा अन्तिम प्रारूप ही योजना मन्त्री द्वारा लोकसभा की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जाना चाहिए। "लोकसभा को सर्वोच्च स्वतन्त्र सस्था होन के कारण सर्वोच्च अधिकार रहेगा, यद्यपि व्यवहार मे सभा द्वारा किए गये अनुमोदनो का लोकसभा नि सन्देह रद्द नहीं करेगी।"[1] (लिपसन)

1. "Parliament as the sovereign body would retain an overriding authority, though in practice it would doubtless not ignore the recommendations submitted by the assembly."
(E. Lipson, *A Planned Economy or Free Enterprise*, p. 2..)

इस अवस्था मे योजना के विषय मे अन्तिम निश्चय करने का कार्य अर्थात् लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य राष्ट्रीय नियोजन परिषद द्वारा किया जाना चाहिए। लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य बहुत कुछ देश की आधारभूत नीतियों पर आधारित होता है क्योकि लक्ष्यो के अनुसार ही अर्थ-साधनो का भी बँटवारा विभिन्न क्षेत्रो म किया जाता है। लक्ष्य निर्धारित करने से पूर्व प्राथमिकताओ को भी निश्चित करना आवश्यक होगा। योजना के आधारभूत उद्देश्यो के अनुसार योजना के विभिन्न कार्य क्रमों मे प्राथमिकताएँ निश्चित करना आवश्यक होता है। अर्थ विकसित राष्ट्रो मे कृषि विकास, औद्योगिक विकास, रोजगार-व्यवस्था, जीवन स्तर मे वृद्धि आदि मुख्य समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओ की तीव्रता तथा अर्थ-साधनो को उपलब्धि के अनुसार प्राथमिकताएँ निश्चित की जाती है। इसके पश्चात् प्रत्येक उत्पादन तथा समाज कल्याण के क्षेत्र मे लक्ष्य निर्धारित किए जाते है। उत्पादन के लक्ष्य निश्चित करने के साथ साथ प्रत्येक का बजट भी तैयार कर लिया जाता है। विभिन्न औद्योगिक तथा कृषि के क्षेत्र की अपूर्णताओ तथा विदेशी व्यापार की स्थिति के अनुसार लक्ष्यो को निर्धारित किया जाता है। तत्पश्चात् अर्थ-साधनो की सम्भावित उपलब्धि के अनुसार लक्ष्यो को अन्तिम रूप देन के पूर्व आवश्यक समायोजन कर लेने चाहिए। कृषि प्रधान अर्ध विकसित देशो म जलवायु की अनिश्चितता को दृष्टिगत करना भी आवश्यक होता है। इसलिए लक्ष्यो को न तो इतना अभिलाषी रखना चाहिए कि जिनकी प्राप्ति सम्भव ही न हो सके तथा सम्पूर्ण योजना, ऐसी परिस्थिति मे एक अभिलाषी कार्य-क्रम मात्र प्रतीत हो जो जनता का विश्वास प्राप्त न कर सके, और न ही याजना के लक्ष्य इतने कम होन चाहिए कि वास्तविक विकास इन लक्ष्यो की तुलना मे बहुत अधिक हो सकता हो। इस दशा मे नियोजन व्यवस्था की सज्ञा देना भी अनुचित होगा। लक्ष्यो की तुलना मे अत्यधिक अथवा अत्यन्त न्यून सफलता दोनो ही दोषपूर्ण नियोजन के लक्षण ह। परन्तु शत प्रतिशत उचित लक्ष्य भी निश्चित करना सम्भव नहीं होता क्योकि बहुत से घटको, जैसे कृषि उत्पादन, आयात तथा निर्यात की दशाओं आदि पर नियोजन अधिकारिया का कोई नियन्त्रण नहीं होता है। साथ ही, जिस सूचना तथा सास्य के आधार पर लक्ष्य निर्धारित किए जाने ह, वह भी शत-प्रतिशत सही नही हो सकते हैं। यदि हम आर्थिक नीति सूक्ष्म तथा प्रभावशील बनाना चाहते हैं तो सास्य की सत्यता तथा मात्रा मे वृद्धि करने की आवश्यकता होगी।

योजना के लक्ष्य और कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किए जायँ कि उसमे आवश्यकतानुसार समय पर परिवर्तन किए जा सकें। प्रतिकूल परिस्थितियो

की उपस्थिति में इस प्रकार परिवर्तन किए जा सकें कि योजना के कार्य-क्रम की पूर्ति पर इन परिस्थितियो का कोई विशेष प्रभाव न पडे तथा आधारभूत लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। सम्भावना से अधिक अनुकूल परिस्थितियो की उपस्थिति मे परिवर्तन इसलिये किये जाते हैं कि इन परिवर्तित परिस्थितियों का अधिकतम हित के लिये उपयोग किया जा सके। योजना के विभिन्न बजट एक-दूसरे से इस प्रकार से सम्बन्धित होते हैं कि एक बजट मे परिवर्तन करने पर अन्य समस्त बजटो मे समायोजन करना आवश्यक होता है। अतएव योजना के कार्य-क्रम मे परिवर्तन करते समय बडी सावधानी की आवश्यकता होती है।

(४) उपलब्ध साधनो का बँटवारा—राष्ट्रीय योजना परिषद् (National Planning Assembly) को लक्ष्यो के निर्धारण के साथ-साथ उपलब्ध साधनो का उपभोक्ता, उत्पादक तथा पूंजीगत वस्तुओ मे विभाजित करना होगा। इसे यह निश्चय करना चाहिए कि उपलब्ध उत्पादन के साधनो मे से कितना भाग भविष्यत् उत्पादन के हेतु व्यय किया जाय तथा वे साधन विभिन्न उद्योगो तथा सेवाओ मे किस प्रकार वितरित किये जायें। राष्ट्रीय योजना परिषद् अर्थ साधनो के वितरण के विषय म आधारभूत सिद्धान्त निश्चित कर देगी तथा ये सिद्धान्त लोकसभा द्वारा स्वीकृत होगे। परन्तु उपलब्ध पूंजी तथा अर्थ-साधनो का निर्धारित सिद्धान्तो के अनुसार वास्तविक आवंटन का कार्य एक राष्ट्रीय विनियोजन परिषद् द्वारा किया जा सकता है। इस संस्था को यह अधिकार नहीं होगा कि वह पूंजी की मात्रा निर्धारित करे अथवा विभिन्न उद्योगो और सेवाओ पर व्यय की जाने वाली राशि निश्चित करे, अपितु यह परिषद् राष्ट्रीय योजना परिषद् द्वारा किये गये निश्चयो को कार्यरूप में परिणत करेगी। यह सस्था पूंजी तथा अर्थ-साधनो के एकत्रीकरण का कार्य-सम्पादन भी कर सकती है। जनता की बचत तथा जनऋण को यदि अर्थ-साधनो मे विशेष स्थान प्रदत्त है, तो यह सस्था कथित बचत अथवा ऋण को प्राप्त करने तथा उसका उद्योगो एव सेवाओ मे पुनर्वितरण करने का कार्य कर सकती है।

(५) योजना की विज्ञप्ति—राष्ट्रीय योजना परिषद् द्वारा अन्तिम प्रस्ताव प्राप्त कर लेन के उपरान्त प्रस्तावित योजना लोकसभा के समक्ष स्वीकृति-हेतु प्रस्तुत की जाती है। इसके साथ ही योजना के प्रारूप का जनता के तत्सम्बन्धी विचारो के जानने के लिए विज्ञापन भी आवश्यक होता है ताकि ऐसे विशेषज्ञ उद्योगपति, अर्थशास्त्री, सामान्य जनता तथा सामाजिक, व्यापारिक एव अन्य सस्थाएं जो कि प्रत्यक्षरूपेण योजना से सम्बद्ध न हो, उस पर अपने विचार प्रकट कर सकें। प्रजातन्त्र मे जन-साधारण के विचारो को विशेष महत्त्व दिया

जाता है और योजना की सफलता जनता के सहयोग पर ही अवलम्बित है। अत यदि आवश्यक हो तो जन-वाणी के अनुसार लोकसभा योजना के प्रारूप मे आवश्यक समायोजन कर सकती है। इस प्रकार योजना का विज्ञापन करने का कार्य योजना-आयोग द्वारा किया जा सकता है जो जनता से प्राप्त आलोचनाओं को अपनी टिप्पणी सहित इन्हे राष्ट्रीय योजना परिषद् के पास भेज सकता है।

(६) योजना को कार्यान्वित करना—योजना की लोकसभा द्वारा स्वीकृति होने के पश्चात् उसे कार्यान्वित करने की अवस्था आती है। इस अवस्था मे यदि कोई शिथिलता रह जाती है, तब अच्छी से अच्छी योजना का सफल होना स्वप्न मात्र रह जाता है। वास्तव मे यह अवस्था सम्पूर्ण योजना के जीवन मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा मूल अवस्था होती है। अतएव शासन को इस क्षत्र मे अग्रसर होकर कार्यवाही करनी चाहिए। सचालन कार्य विभिन सरकारी विभागो, शासकीय तथा अर्ध-शासकीय निगमो, निजी व्यापारियो तथा उद्योगपतियों, सामाजिक सस्थाओ आदि द्वारा किया जाता है। प्रजातान्त्रिक नियोजन म कार्य-क्षेत्र दो भागो मे विभक्त होता है—एक निजी क्ष त्र (Private Sector) तथा दूसरा सरकारी क्षत्र (Public Sector)। सरकारी क्षत्र का कार्यक्रम सरकारी विभागो तथा निगमो द्वारा सचालित होता है जबकि निजी क्ष त्र के कायक्रमो को सरकार आवश्यक सहायता प्रदान करती है एव सरकारी नियमो के अनुसार निजी क्षेत्र को काय करने का अवसर प्रदान किया जाता है। विभिन्न उद्योगो से सम्बन्धित विकास परिषद अपने उद्योगो के कार्यक्रमो का सचालन करती है तथा आवश्यक नियन्त्रण भी रखती है। योजना आयोग क विशेषज्ञ योजना की प्रगति का अध्ययन करके समय समय पर राष्ट्रीय योजना परिषद् को रिपोर्ट भेजते हैं तथा साथ साथ योजना की प्रगति का प्रकाशन भी आयोग द्वारा किया जाता है। योजना आयोग निरन्तर परिस्थितियो का अध्ययन करता रहता है तथा योजना मे सम्भाव्य समायोजन सम्बन्धी सिफारिशें राष्ट्रीय योजना परिषद् के पास भेजता रहता है। योजना मत्री को भी समय समय पर लोकसभा के समक्ष योजना की प्रगति के विषय म जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।

(७) योजना के सचालन तथा प्रगति का निरीक्षण—योजना की अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण अवस्था योजना के सचालन का निरीक्षण तथा जाँच पडताल होती है। इस हेतु एक विशेष विभाग की स्थापना की जा सकती है जिसे आर्थिक निरीक्षण आयोग (Economic Inspection Commission) की सज्ञा दी जा सकती है। यह संस्था राष्ट्रीय योजना परिषद् के आधीन नहीं होनी चाहिए। इसे योजना के सचालन की आलोचना करने की स्वतन्त्रता रहे तथा

समय-समय पर यह योजना मे समायोजन करने के सुझाव भी दे सके। "राष्ट्रीय योजना आयोग की भाँति इस आर्थिक निरीक्षण आयोग की योजना मे सम्मिलित विभिन्न उद्योगो तथा सेवाओ से सम्बन्धित तत्वो तथा आँकडो की पूर्ण जानकारी से अवगत होने की आवश्यकता होगी तथा प्रत्येक वर्गीय सस्था को यह अनिवाय होना आवश्यक होगा कि वह समस्त सम्बन्धित प्रलेख इसके पास भजें तथा इस विभाग द्वारा नियुक्त निरीक्षको को अपनी पुस्तका का अवलोकन करायें। इस विभाग का यह कार्य होगा कि वह निरन्तर प्रत्येक उत्पादन की शाखा के कार्यक्षमता की आलोचना आर्थिक एव तान्त्रिक दोना विचारधाराओ से करे। ··· आर्थिक निरीक्षण विभाग का कार्य योजना का कार्य प्रारम्भ होने के साथ प्रारम्भ होगा और यह इस बात का भी निरीक्षण करेगा कि योजना का सचालन कहाँ तक प्रभावशील है तथा यह योजना में सुधार करने के लिए अपने सुझाव योजना आयोग तथा राष्ट्रीय याजना परिषद् के पास भजेगा।"[1]

योजना की व्यवस्था तथा सचालन के विषय म कोई भी सर्वमान्य नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते। योजना के उद्देश्य, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति राष्ट्र का आकार एव जनसमुदाय क सामान्य चरित्र के अनुसार योजना को व्यवस्था की जानी चाहिए। भारत जैसे बड राष्ट्र मे केन्द्रीय व्यवस्था की तुलना मे क्षत्रीय विकेन्द्रीकरण (Regional Decentralisation) अधिक सफल हो सकेगा। क्षत्रीय सस्थाओ मे पारस्परिक समन्वय होना ऐसी व्यवस्था मे अत्यन्त आवश्यक होगा जिसके लिए योजना आयोग

---

1. "Like the National Planning Commission this department of Economic Inspection would need the fullest access to the facts and figures relating to the conduct of the various industries and services included within the Plan, and each sectional body would need to be under obligation to show all relavant documents to it and to give access to its books to inspectors acting under the auspices of the department. It would be the function of the department to be constantly criticising the efficiency of each branch of production both from the financial and from the techinical point of view. The task of the department of Economic Inspection would be, taking the National Plan as its starting point, to discover how effectively the plan was being carried out and to make suggestions for its amendment which would trespass for consideration to the National Planning Commission and to the National Planning Authority itself"
(G. D H Cole, *Principles of Economic Planning*, pp 309-310)

को निरन्तर कार्य-रत रहने की ग्रावश्यकता होगी। क्षेत्रीय सस्थाग्रो द्वारा योजना के सचालन मे ग्रधिक नियन्त्रण तथा कार्यक्षमता लायी जा सकेगी। राष्ट्र के राजनीतिक सगठन पर क्षेत्रीय व्यवस्था की सफलता निर्भर रहेगी। क्षेत्रीय सस्थाग्रो को यथोचित स्वतन्त्रता दी जा सकती है ग्रौर इन्हे केन्द्रीय सस्थाग्रों द्वारा दिये गये निर्देशो के ग्रनुसार कार्य करना ग्रनिवार्य किया जा सकता है।

भारत मे नियोजन की व्यवस्था—भारतीय नियोजन का सचालन मिश्रित ग्रर्थ-व्यवस्था एव राजनीतिक प्रजातत्र के ग्रन्तर्गत होता है। इसमे तान्त्रिक विशेषज्ञो को विशेष स्थान प्राप्त है परन्तु ग्रन्तिम निश्चय विशेषज्ञो द्वारा नहीं किये जाते ग्रपितु सत्तारूढ राजनीतिक ग्रधिकारियो द्वारा सामाजिक एवं ग्रार्थिक उद्देश्यो के ग्राधार पर किये जाते हैं। भारत मे नियोजन के तीन स्वरूप है—

(१) दीर्घकालीन (Perspective) नियोजन,
(२) पचवर्षीय नियोजन,
(३) वार्षिक नियोजन।

नियोजन के उद्देश्य प्राय दीघकालीन होते है। दीर्घकालीन नियोजन के द्वारा दीर्घकाल लगभग १५ या २० वर्ष तक मे जिन जिन लक्ष्यो की पूर्ति की जायेगी के सम्बन्ध मे एक सक्षिप्त विवेचना की जाती है। उदाहरणार्थ, १६५५-५६ मे भारत म प्रथम दीघकालीन योजना बनायी गयी जिसम बताया गया कि १६७० ७१ म प्रारम्भ होने वाली योजना मे ग्रर्थ व्यवस्था की क्या स्थिति हो जानी चाहिये। इसी दीर्घकालीन चित्र के ग्राधार पर द्वितीय पचवर्षीय योजना के कायक्रम निर्धारित किये गये जिसस दीर्घकालीन लक्ष्यो तक पहुँचने की प्रथम ग्रवस्था द्वितीय योजना म सम्पूर्ण हो जाय। तृतीय योजना बनाने समय १६७५-७६ म प्रारम्भ होन वाली योजना म ग्रर्थ-व्यवस्था की स्थिति का चित्रण किया गया ग्रौर उसी के ग्राधार पर तृतीय योजना के कार्यक्रम निर्धारित किय गये। पचवर्षीय योजना नवीनतम सूचनाग्रो एव साक्ष्य के ग्राधार पर बनायी जाती है। प्रत्येक वार्षिक योजना पचवर्षीय योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्यो की ग्रोर ग्रग्रसर होन के लिये ग्रगला एक कदम होती है।

भारत मे पचवर्षीय योजना बनाने की प्रथम ग्रवस्था है—ग्रगले पाँच वर्षों मे माँग ग्रौर पूर्ति के ग्रनुमान, वर्तमान ग्रार्थिक प्रवृत्तियो तथा दीर्घकालीन योजना लक्ष्यो पर लगाया जाना। इस कार्य का सम्पादन योजना ग्रायोग के तान्त्रिक विशेषज्ञो द्वारा कुछ ग्राधारभूत ग्राँकडे (Key Figures) जिन्हे नियन्त्रण ग्राँकडे भी कहते हैं, तैयार करके किया जाता है। इन नियन्त्रण ग्राँकडो

को विचार करने हेतु राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) के पास भेज दिया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद मे प्रधान मत्री, केन्द्रीय कैबीनेट मंत्री, योजना आयोग के सदस्य तथा राज्य सरकारो के मुख्य मत्री सम्मलित है। यह देश के सर्वोच्च राजनीतिक अधिकारी हैं। इस परिषद के सुझाव के अनुसार नियन्त्रण आँकडो मे परिवर्तन करके इन्हे विभिन्न मत्रालयो एव राज्य सरकारो के पास भेज दिया जाता है।

इन नियन्त्रण आँकडो के आधार पर प्रत्येक केन्द्रीय मत्रालय, प्रत्येक राज्य सरकार और कभी-कभी जिला अधिकारी अपनी-अपनी योजनायें बनाते हैं। इन योजनाओ मे उच्चाधिकारियो द्वारा समन्वय करने के पश्चात् इन्हे योजना आयोग के पास भेज दिया जाता है। योजना आयोग विभिन्न घटको मे सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करता है। माँग पूर्ति, आयात एवं निर्यात, कच्चे माल एव निर्मित वस्तुओ, उपभोग एव उत्पादन, वित्तीय एव भौतिक साधन आदि मे सन्तुलन करने का कार्य योजना आयोग का है। इस सन्तुलन-क्रिया के आधार पर प्रस्तावित योजना तैयार हो जाती है जिसका प्रकाशन कर दिया जाता है जिससे इस पर विश्वविद्यालयो, वैज्ञानिक, राजनीतिक एव सामाजिक सस्थाओ मे वाद-विवाद हो सके और राज्य की जनता के विचार प्राप्त हो सके। इन वाद-विवादो को दृष्टिगत करते हुए योजना को अन्तिम स्वरूप दिया जाता है। यह कार्य योजना आयोग द्वारा केन्द्रीय मत्रालयो एवं राज्य सरकारो के साथ सलाह करके किया जाता है। योजना के अन्तिम स्वरूप को केन्द्रीय सरकार, राष्ट्रीय विकास परिषद एव लोक सभा के सम्मुख अन्तिम स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किया जाता है। इस समस्त विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि तात्रिक विशेषज्ञ योजना को अन्तिम रूप नहीं देते। इनके द्वारा बनाये गये सुझावो मे तात्रिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधाराओ के आधार पर सुधार किये जाते हैं।

भारतीय योजना आयोग के कार्य—भारत मे योजना आयोग को प्रशासन सम्बन्धी अधिकार नहीं दिये गये हैं। यह केवल एक सलाहकार सस्था के रूप मे कार्य करता है। इसके कार्य निम्न प्रकार हैं—

(१) देश के भौतिक साधनो, पूँजी एवं मानवीय साधनो जिनमे तात्रिक नियोगी वर्ग (Technical Personnel) भी सम्मिलित है, का अनुमान लगाना तथा यह जाँच करना कि इन साधनो की कमी होने पर इनकी पूर्ति कहाँ तक सम्भव है।

(२) देश के साधनो का सर्वाधिक प्रभावशील उपयोग करने हेतु योजना बनाना।

(३) प्राथमिकताओ के निर्धारित होने पर योजनाओ की सचालन अवस्थाओ को निश्चय करना तथा साधनो का प्रत्येक अवस्था की पूर्ति हेतु बँटवारा करना।

(४) उन घटको को बताना जिनके द्वारा आर्थिक विकास मे रुकावट आती हो। वर्तमान सामाजिक एव राजनीतिक दशाओ को दृष्टिगत करते हुये योजना की सफलतार्थ आवश्यक परिस्थितियो का निर्धारण करना।

(५) योजना की प्रत्येक अवस्था (Stage) के समस्त पहलुओ को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने हेतु व्यवस्था (Machinery) के प्रकार को निर्धारित करना।

(६) समय-समय पर योजना की विभिन्न अवस्थाओ के सचालन मे प्राप्त सफलता को आँकना और इस सफलता के आधार पर नीति एव कार्यवाहियो मे समायोजन करने के लिये सिफारिश करना।

(७) ऐसी आन्तरिक एव उपयोगी सिफारिशें करना, जिनसे इनको सौंपे गये कर्तव्यो की पूर्ति मे सुविधा होती हो अथवा वर्तमान आर्थिक परिस्थितियो, नीतियो, कार्यवाहियो, एव विकास-कार्यक्रमो पर विचार करके उपयोगी सिफारिशें करना, अथवा केन्द्रीय अथवा राज्य द्वारा सौंपी गयी विशेष समस्याओ का अध्ययन करके सिफारिश करना।

योजना आयोग के उपर्युक्त समस्त कार्यों का प्रकार उपदेशक (Advisory) है। परन्तु जिन मामलो म योजना आयोग को सलाह देने के लिए कहा जाता है *अथवा उसे सलाह देना आवश्यक होता है, वे इतने महत्वपूर्ण है कि उसकी* सलाह को निरस्त करना सम्भव नही होता है। इसीलिए योजना आयोग की अधिकतर सलाह को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है परन्तु इन सबका यह तात्पर्य कभी नहीं है कि योजना आयोग को सरकार के केन्द्रीय मत्रालय के ऊपर का स्थान प्राप्त है। भारत मे योजना के कायक्रम की प्रगति को आँकना भी योजना आयोग का कर्तव्य है। वास्तव मे प्रगति को आँकने का कार्य एक प्रथक सस्था द्वारा किया जाना चाहिये जो कि योजना आयोग के किसी प्रकार आधीन न हो। "प्रगति आँकने का काय महत्वपूर्ण है। वास्तव मे यह कार्य राज्य एव केन्द्रीय सरकारो द्वारा किया जाना चाहिये। कुछ हद तक यह कार्य उनके द्वारा भी *किया जाता है परन्तु योजना आयोग अखिल भारतीय दृष्टिकोण*

के साथ इस कार्य को करने के लिये अधिक उपयोगी है। वह सलाह एवं रिपोर्ट कर सकता है कि क्या किया जा रहा है।"[1]

1. "This business of appraisal is therefore of the utmost importance. Naturally it is a business which the State Governments and the Central Government should take up, and *to some extent they do it; but the Planning Commission* with its All India outlook, is best placed to look into it and to advise and report as to what is being done"
(Prime Minister, Jawahar Lal Nehru, *Problems in the Third Plan*, p. 45)

अध्याय ५

अर्ध-विकसित राष्ट्र एव नियोजन [1]

[अर्ध-विकसित राष्ट्रो का परिचय, अर्ध-विकसित क्षेत्रो के लक्षण—राष्ट्रीय एव प्रति-व्यक्ति आय का कम होना, पौष्टिक भोजन का सामान्य स्तर से कम होना, जनसमुदाय की सामान्य आयु का कम होना, जनसख्या का घनत्व अधिक होना, उद्योगो मे कृषि की प्रमुखता, तान्त्रिक ज्ञान की कमी, यान्त्रिक शक्ति की न्यूनता, अर्ध-विकसित राष्ट्रो की समस्याएँ—तान्त्रिक ज्ञान की समस्या, पूँजी निर्माण—अर्थ-विनियोजन पर प्रभाव डालने वाले घटक पूँजी निर्माण की अवस्थाएँ—प्रथम अवस्था बचत—एच्छिक आन्तरिक बचत, राजकीय बचत, मुद्रा-प्रसार द्वारा प्राप्त बचत (घाटे का अर्थ-प्रबन्धन), विदेशी मुद्रा की बचत, द्वितीय अवस्था वित्तीय क्रियाशीलता, तृतीय अवस्था विनियोजन—प्रारम्भिक, आय तथा विनियोजन का सम्बन्ध, अदृश्य बेरोजगारी तथा विनियोजन प्राथमिकताओ की समस्या--परिचय, समस्या के दो पहलू—अर्थ-साधनो की उपलब्धि, अर्थ-साधनो का वितरण—क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ, उत्पादन अथवा वितरण को प्राथमिकता, विनियोजन अथवा उपभोग को प्राथमिकता, कृषि अथवा उद्योग को प्राथमिकता, सामाजिक प्राथमिकताएँ, सामाजिक बाधाएँ, एव सामाजिक पूँजी की समस्या]

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों का परिचय

अर्ध विकसित अवस्था वास्तव मे एक तुलनात्मक अवस्था है, अत इसके कोई विशेष लक्षण निश्चित करना सम्भव नहीं है। आर्थिक एव सामाजिक मान्यताओ, विकास की सीमाओ, अन्य राष्ट्रो मे किए गए विकास की मात्रा तथा गति म परिवर्तन के प्रभाव अर्ध विकसित अवस्था के लक्षणो पर पूर्ण-रूपेण पडते हैं। आधुनिक युग मे अर्ध-विकसित राष्ट्रो म जीवन स्तर की न्यूनता, अज्ञानता, आधारभूत अनिवार्यताओ, उदाहरणार्थ—भोजन, वस्त्र, गृह आदि की अपर्याप्तता आदि मुख्य लक्षण हैं। भविष्य म इन लक्षणो मे परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है।

प्रोफसर पालविया के अनुसार, "प्रति व्यक्ति आय का न्यून स्तर, अज्ञानता की अधिकता तथा परिणामस्वरूप लैटिन अमेरिका, एशिया, मध्यपूर्व, अफ्रीका तथा पूर्व के समीप देशो म आधिवासियो के न्यून जीवन स्तर न ससार की सभाओ तथा मानव समाज के विचारशील वर्ग की विचारधाराओ को आकर्षित किया है। ऐसी शोचनीय दशाओ के साथ-साथ उत्तरी अमरीका तथा पश्चिमी यूरोप के उन्नत जीवन स्तर तथा अनन्य सुविधाओ की उपस्थिति न अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को एक बडा खतरा उपस्थित कर दिया है। विकसित क्षेत्रो म भूख की समस्या नहीं है, उत्पादन वृद्धि के मार्ग पर है तथा जन साधारण शिक्षित ही नहीं अपितु उनके ज्ञान-वर्धन हेतु पुस्तकें उपलब्ध हैं अच्छे पुस्तकालय भी हैं, और पशुओ का खाने तथा चिकित्सा का प्रबन्ध अर्ध-विकसित क्षेत्रो मे जनसाधारण को उपलब्ध सुविधाओ की तुलना म श्रेष्ठ है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे अशिक्षा अपवाद नहीं, वरन् सामान्य लक्षण हैं, प्रतिदिन दो समय भोजन प्राप्त होना समस्या है तथा उत्पादन तान्त्रिक सामग्री की अनुपस्थिति के कारण स्थिर तथा अनियमित है।"[1]

1 "Low level of income per capita, the appalling ignorance and the resultant low standard of life of the people in Latin America, Asia and Middle East, Africa and Near East have attracted the attention of world assemblies as well as thinking section of mankind in general *Co-existence in these* countries side by side with standard of life and comfort in North America and Western European countries is being *now regarded as a threat to international peace*

"In developed areas problem of starvation is alien, productivity is on a high road of increase and people not only have literacy but have a volume of books and series of well equipped libraries to enrich their knowledge and

(Contd next page)

सामान्यत अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे प्राकृतिक साधनो का बाहुल्य होता है किन्तु उपलब्ध साधनो का भी पूर्णतम उपयोग न होने के कारण इन राष्ट्रो में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय अत्यन्त कम होते हैं। उत्पत्ति के ढग प्राचीन तथा शिथिल होते हैं तथा जनसख्या का भार अधिक होता है। प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त न्यून एवं जीवन-स्तर दयनीय होते हैं। उनकी बचत करने की शक्ति सीमित तथा पूँजी-निर्माण की दर अपर्याप्त होती है। जनता की विचारधारा रूढिवादी होती है, धर्म अविवेक तथा अधविश्वास द्वारा प्रतिस्थापित होता है। वर्तमान परिस्थिति मे सन्तुष्ट रहने का स्वभाव स्थिर हो जाता है। परिणामत आय की वृद्धि के जीवन-स्तर मे वृद्धि के स्थान पर रूढिवादी प्रथाओ पर व्यर्थ व्यय किया जाता है। राष्ट्रीय आय का इतना अधिक असमान एव त्रुटिपूर्ण वितरण होता है कि कतिपय व्यक्तियो के हाथ म राष्ट्रीय आय का अधिकाश भाग जन्मजात अधिकार की भाँति बना रहता है। यह परिस्थिति अनेक पीढियो की निर्धनता तथा दरिद्रता के कारण उपस्थित होती है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो म जन-समुदाय के जीवन स्तर मे वृद्धि करने के हेतु उत्पादन मे वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक होता है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अर्ध विकसित राष्ट्रो मे इतनी उन्नति की जाय कि जन-साधारण को उत्पादक रोजगार (Productive Employment) प्राप्त हो सके। उत्पादक रोजगार का अर्थ ऐसे रोजगार से है जिसके द्वारा राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुसार वस्तुओ तथा सेवाओ की पूर्ति मे वृद्धि हो। इन राष्ट्रो के आर्थिक विकास हेतु आन्तरिक बचत मे वृद्धि के साथ साथ विदेशी पूँजी भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होनी चाहिए।

आधुनिक समाज मे राष्ट्रो की पारस्परिक निर्भरता होते हुए भी अधिकतम तथा न्यूनतम दोनो ही प्रकार के विकसित राष्ट्र हम देखते हैं। वर्तमान युग मे विकसित तथा अर्ध विकसित राष्ट्रो का अन्तर निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर है क्योकि विकसित राष्ट्र अपनी-अपनी उन्नत अर्थ व्यवस्था द्वारा अधिकाधिक प्रगति का आलिगन करते जा रहे हैं, जबकि दूसरी ओर अर्ध-विकसित राष्ट्रो

---

animals have better food and medical care than human beings in under-developed counries where illiteracy is the rule rather than exception, two square meals a day is a problem and productivity is static or hampered by the absence of technical equipment." (Palvia, *Econometric Model for Development Planning*, p. 2.)

की आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर शोचनीय होती जाती है । अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे अर्थ-व्यवस्था का रूप इतना छिन्न-भिन्न होता है कि उसका विकास केवल विचारपूर्ण (deliberate) प्रयत्नो द्वारा ही सम्भव है । विकसित राष्ट्रो मे अर्थ-व्यवस्था का सगठन इस प्रकार का हो जाता है कि वह स्वत ही विकासोन्मुख पथ पर चलता रहता है, जिसे स्व-चालित अर्थ-व्यवस्था (Self-sustaining Economy) की सज्ञा प्रदान की जाती है ।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो को एक महत्त्वपूर्ण सुविधा प्राप्त होती है जिसका लाभ विकसित राष्ट्र नहीं उठा पाते । अर्ध-विकसित राष्ट्र विकसित राष्ट्रो के अनुभवो का लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था मे इन्हे भी उन्हीं समस्याओ का सामना करना होता है जिन्हे विकसित राष्ट्र सुलझा चुके हैं। विकसित राष्ट्रो द्वारा अपनाये गये आर्थिक, सामाजिक, वित्तीय तथा प्रबन्ध सम्बन्धी प्रयोगो का बिना किसी अधिक जोखिम के अविकसित राष्ट्र उपयोग कर सकते हैं। किन्तु यह कार्य इतना सुगम, साधारण तथा सुविधापूर्ण नहीं होता जितना प्रतीत होता है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो की जलवायु, वातावरण, जनसख्या, सभ्यता, सस्कृति, इतिहास, आर्थिक तथा सामाजिक-व्यवस्था आदि परस्पर तथा विकसित राष्ट्रो से इतनी भिन्न होती है कि कोई भी अनुभव, जब तक राष्ट्रीय परिस्थितियो के अनुसार उसमे आवश्यक समायोजन, परिवर्द्धन, परिवर्तन एवं सशोधन नहीं किये जायेंगे, प्रभावशाली एव पूर्णरूपेण उपयोगी सिद्ध न होगा ।

अर्ध-विकसित क्षेत्रो के लक्षण

विकास एक ऐसी निरन्तर विधि है जो न तो किसी क्षेत्र मे पूर्ण कही जा सकती है और न ही यह किसी क्षेत्र मे सर्वथा अनुपस्थित होती है । यह विशेष सज्ञा किसी विशेष ढग, वस्तु अथवा विधि को प्रदत्त नहीं है । विभिन्न क्षेत्रो की उन्नतिशील दशाओ के सामूहिक रूप को विकास कहा जाता है । इसमे विशेषतया उत्पादन-वृद्धि, वस्त्र, गृह, शिक्षा, चिकित्सा तथा जीवन की अन्य सुविधाओ एव आवश्यकताओ की कम लागत, कम कठिनाई तथा कम परिश्रम द्वारा उपलब्धि सम्मिलित है । इसके द्वारा जन-समुदाय के भोजन, स्वास्थ्य तथा शिक्षा के स्तर मे वृद्धि को जा सकती है । इसकी पृष्ठभूमि मे अधिक अवकाश (Leisure) तथा ज्ञान मे वृद्धि निहित है ।

अर्ध विकसित राष्ट्रो की अर्थ-व्यवस्था के मुख्य लक्षणो की निम्न प्रकारेण व्याख्या की जा सकती है—

(१) राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय का अत्यन्त कम होना—प्रति व्यक्ति आय के आधार पर विभिन्न राष्ट्र-निवासियो के जीवन स्तर का अध्ययन

सर्व-सुलभ है। १९५५-५६ के ग्रांकडो के अनुसार विभिन्न देशो की प्रति व्यक्ति ग्राय निम्न प्रकार थी[1]—

राष्ट्र	ग्राय (डालरो में)
सयुक्त राज्य ग्रमेरिका	२,०३०
यूनाइटेड किंगडम	६००
रूस	१,०००
चीन गणराज्य	१७०
ग्रन्य ग्रर्ध-विकसित राष्ट्र	८०
भारत	६१
ससार का ग्रौसत	३६५

ग्रध-विकसित राष्ट्रो मे प्रति व्यक्ति ग्राय के न्यून होने का कारण ग्रार्थिक क्रियाग्रो की शिथिलता है। इन देशो का ग्रार्थिक विकास करने के लिए ग्रर्थ-व्यवस्था मे विशेषकर विनियोजन-व्यवस्था मे इस प्रकार परिवर्तन किये जायें कि वास्तविक लोक ग्राय लगभग सम्भावित (Potential) स्तर तक पहुँच जाय। ससार म राष्ट्रीय ग्राय का वितरण (सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा राष्ट्रीय ग्राय पर दी गयी रिपोर्ट (१९५१) के ग्रनुसार) इस प्रकार है—

	ससार की जनसख्या का प्रतिशत	ससार की समस्त राष्ट्रीय ग्राय का प्रतिशत
एशिया	५'३	१०'५
ग्रफ्रीका	८'३	२ ६
दक्षिणी ग्रमेरिका	४ ५	३'५
रूस	८'१	११'०
यूरोप	१६ ६	२७'०
उत्तरी ग्रमेरिका	६'०	४३'६
दक्षिणी प्रशान्त महासागर के टापू	'५	६'५

(२) पौष्टिक भोजन का सामान्य स्तर से कम होना—राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति ग्राय न्यून होने के कारण ग्रर्ध-विकसित राष्ट्रो मे कैलेरीज का उपभोग भी ग्रत्यन्त न्यून है। ग्रधिकाश जनसमुदाय मोटे ग्रनाज का उपभोग करता

---

1. Quoted from C D. Deshmukh's address to Maharashtra Commercial & Industrial Conference on 17th June, 1960
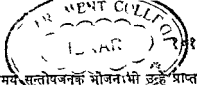
है तथा निर्धनता के कारण प्रतिदिन दो समय सन्तोषजनक भोजन भी उन्हें प्राप्त नहीं होता। एशिया मे कैलेरीज का उपभोग न्यूनतम है—यहाँ लगभग २००० कैलेरीज का उपभोग किया जाता है जबकि उत्तरी अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशो मे यह उपभोग ३२०० से भी अधिक है।

(३) जन-समुदाय की सामान्य आयु का कम होना—आय की न्यूनता तथा पोषक भोजन की अपर्याप्तता अर्ध-विकसित राष्ट्रो के अधिवासियो की आयु की न्यूनता के मुख्य कारण हैं। चिकित्सा की सुविधाओ की आवश्यकता तथा कार्य करने की दशाओ की शोचनीयता के कारण लोग पूर्ण जीवन को प्राप्त नहीं कर पाते तथा अधिकाश जीवन अस्वस्थ दशा मे व्यतीत होता है। इसीलिए उनकी कार्य करने की शक्ति तथा कार्यक्षमता भी अत्यन्त न्यून होती है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे विकसित राष्ट्रो की अपेक्षा सामान्य आयु लगभग आधी होती है।

(४) जन-सख्या का घनत्व अधिक होना—एशिया तथा दक्षिण-पूर्व मे जन-सख्या का घनत्व सर्वाधिक है। एशिया की जनसख्या अमेरिका तथा रूस की तुलना मे पाँच गुनी, दक्षिणी अमेरिका की तुलना मे आठ गुनी तथा प्रशान्त महासमुद्र के टापुओ की तुलना मे चौबीस गुनी है। एशिया मे ससार की लगभग ५३% जनसख्या है। इसके अतिरिक्त एशिया मे जनसख्या की वृद्धि दर भी, मृत्यु दर की कमी तथा उत्पत्ति-दर म परिवर्तनहीनता के कारण, अत्यधिक है। मृत्यु-दर की कमी चिकित्सा सम्बन्धी नवीनतम आविष्कारो के कारण है।

(५) उद्योगो मे कृषि की प्रमुखता—अर्ध विकसित राष्ट्रो मे कृषि सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्यम है। इनकी अधिकाश जनसख्या भूमि से जीविकोपार्जन करती है। किन्तु प्रति व्यक्ति औसत कृषि-उत्पादन इन क्षेत्रो मे विकसित क्षत्रो की तुलना मे $\frac{1}{10}$ से भी कम है। अर्ध-विकसित राष्ट्रा म ५०% से ७५% तक जन-सख्या प्राथमिक उद्योगो (Primary Industries) मे, जो खाद्यान्न-उत्पादन से सम्बद्ध है, सलग्न है। फिर भी ऐसे अधिकाश राष्ट्रो मे खाद्यान्नो की न्यूनता की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। उद्योगो तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो मे कार्यावसर (Employment Opportunities) अत्यन्त कम होने के कारण जनसख्या की वृद्धि का अधिकाश भाग कृषि म लग जाता है। परिणाम होता है—जनसख्या का भूमि पर दिन प्रति दिन भार का बढने जाना तथा प्रति एकड उत्पादन का कम होने जाना। साथ ही कृषि, मत्स्योद्योग, वनोत्पत्ति आदि मे आधुनिक वैज्ञानिक विधियो का भी उपयोग नहीं के समान होना है।

(६) तान्त्रिक ज्ञान की कमी—अर्ध-विकसित राष्ट्रो का यह एक अत्यन्त

महत्वपूर्ण लक्षण है। मध्य पूर्व मे कृषि की उन्हीं विधियो का प्रयोग किया जाता है जो आज से एक सहस्र वष पूर्व प्रयोग की जाती थी। तान्त्रिक ज्ञान (Technical Knowledge) की कमी की समस्या इन राष्ट्रों के विकास पथ पर एक गम्भीर बाधा है। अशिक्षा भी इन राष्ट्रा की पैतृक सम्पत्ति है। इन राष्ट्रो का शिक्षा स्तर आर्थिक विकास मे किसी प्रकार भी सहायक सिद्ध नही होता। तान्त्रिक प्रशिक्षण, कृषि की आधुनिक सामाय विधियो म प्रशिक्षण तथा स्वास्थ्य सम्बधी नियमो के ज्ञान की अत्यत कमी होती है।

(७) यान्त्रिक शक्ति की न्यूनता—किसी भी राष्ट के विकास-स्तर की परीक्षा उस राष्ट के जन साधारण की यान्त्रिक शक्ति (Mechanical Energy) की उपलब्धि से की जा सकती है। सन् १९३९ के अध्ययनानुसार अर्ध विकसित राष्टो, जिनमे प्रति व्यक्ति आय १०० डालर से भी कम थी, म १ २ अश्व शक्ति प्रति दिन प्रति व्यक्ति यात्रिक शक्ति उपलब्ध थी। भारत म यह शक्ति १ ० अश्व शक्ति प्रति व्यक्ति प्रति दिन थी। परिपक्व एव उन्नत अर्थ-व्यवस्थाओ मे यह सख्या २६ ६ अश्व शक्ति प्रति दिन प्रति व्यक्ति अर्थात् अर्ध विकसित राष्टो की अपेक्षा २० गुनी थी। अमेरिका मे यह मात्रा ३७ ६ अश्व शक्ति प्रति व्यक्ति प्रति दिन थी। यात्रिक शक्ति तथा औद्योगीकरण एक दूसरे से प्रत्यक्षरूपेण सम्बद्ध है। अर्ध विकसित राष्ट्रो मे यान्त्रिक शक्ति की न्यूनता उनके अऔद्योगीकरण का प्रमुख कारण है।

(८) पूंजी की कमी—अर्ध विकसित राष्टो म पूंजी के साधनो की अत्यन्त कमी होती है। सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक घटको के कारण पूंजी निर्माण की दर अत्यत कम होती है। पूंजी की कमी का मुख्य कारण लोगो की न्यून आय एव उनका स्वभाव होता है। भारत मे प्रथम पचवर्षीय योजना काल म सकल राष्ट्रीय आय का केवल ७% विनियोजन किया जाता था जिसमे से भी बहुत बडा भाग, भूमि, मूल्यवान आभूषण, वितरण सम्बन्धी व्यापार, तथा हल्के उपभोक्ता उद्योगो मे विनियोजन किया जाता है। पूंजी की अपर्याप्तता के कारण औद्योगीकरण के कायक्रमो को द्रुतगति से कार्यान्वित करना सम्भव नही होता है।

(९) विदेशी व्यापार का महत्व—अर्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था प्राय विदेशी व्यापार पर निर्भर होती है। देश मे उत्पादित होने वाली किसी एक वस्तु अथवा कच्चे माल का निर्यात करके देश के लिए विदेशी विनिमय अर्जित किया जाता है। विदेशी विनिमय कमाने के लिये किसी एक वस्तु के निर्यात पर निर्भर रहने से अर्थ व्यवस्था मे अन्य क्षेत्रो के उत्पादन के प्रति कम

प्रोत्साहन रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों में परिवर्तन होने के कारण विदेशी मुद्रा के अर्जन मे उच्चावचन होते रहते हैं और अर्थ-व्यवस्था में स्थिरता नहीं रहती है, तथा निर्यात पर अधिक निर्भरता के कारण आयात करने की सीमान्त प्रवृत्ति मे वृद्धि हो जाती है, जिससे अर्थ-व्यवस्था में स्थिरता लाना सम्भव नहीं होता।

(१०) प्रशासन का अकार्यकुशल होना—अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे राष्ट्रीय चरित्र का स्तर प्राय. न्यून होता है जिससे जन-समुदाय मे सामान्यतः व्यक्तिगत लाभ को अधिक महत्व दिया जाता है और राष्ट्रीय हित को द्वितीय स्थान प्राप्त होता है। सरकारी शासन पर न्यून राष्ट्रीय चरित्र का प्रभाव पडता है और राज्य द्वारा सचालित विकास कार्यक्रमो मे अाय-व्यय होता है तथा विकास की गति मन्द रहती है।

अर्ध-विकसित एव विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं की तुलना निम्न तालिका मे दिये गये आँकडो के आधार पर की जा सकती है—

तालिका नं० १—आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धि*

	विकसित अर्थ-व्यवस्थाएं[1]	अर्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाएं[1]
(१) शक्ति का उपयोग (प्रति व्यक्ति, प्रति दिन (अश्व-शक्ति घन्टो मे)	२६ ६	१.२
(२) वार्षिक माल ढोने की मात्रा (टन मील प्रति घन्टा)	१५१७.०	५८.०
(३) सडक एवं रेलो की लम्बाई (प्रति १००० वर्ग मील)	४० ०	१३ ०
(४) मोटर गाडियो का रजिस्ट्रेशन (प्रति १००० व्यक्तियो पर)	१११ ०	१.०
(५) टेलीफोन का उपयोग (प्रति १००० व्यक्तियो पर)	६० ०	२ ०
(६) चिकित्सक (प्रति १००० व्यक्तियो पर)	१.०६	० १७
(७) प्राथमिक स्कूलो के अध्यापक (प्रति १००० व्यक्तियो पर)	३ ६८	१ ७६
(८) निरक्षरता का प्रतिशत (१० वर्ष की आयु के ऊपर)	५% से नीचे	७८.०%

1. Source—Department of State, Washington D. C. Point Four, July (1949), pp. 93-102 (Requoted from Employment and Capital Formation by V. V. Bhatt).

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की समस्याएं

आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य श्रमिक तथा दलित वर्ग के जीवन मे सुधार करना है। जब तक श्रमिक तथा कृषक के जीवन मे सुधार तथा आमूल परिवर्तन नहीं किये जायेंगे, सर्वव्यापक शोषण की भावना को, जो विश्व शान्ति मे बाधक है, दूर नहीं किया जा सकता। इस शोषण भावना के कारण ही आधुनिक युग मे राजनीतिक उत्तेजना (Political Agitation), आन्तरिक असुरक्षा तथा परस्पर दोषारोपण का बोलबाला है। जब तक जन-समुदाय के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन-स्तर को नहीं उठाया जायगा, आधुनिक उत्पादन की विधियो का लाभ उठाया जाना असम्भव है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो के विशेष एव आश्चर्यजनक लक्षणो के कारण कतिपय गम्भीर समस्याओ का प्रादुर्भाव होता है जो विकास-मार्ग पर भीषण बाधा उत्पन्न करती हैं। इन राष्ट्रो की प्रमुख समस्याएं निम्न प्रकार हैं—

(१) तात्रिक ज्ञान की समस्या (Problem of technical knowledge)

(२) पूंजी-निर्माण की समस्या (Problem of capital formation)

(३) प्राथमिकताओ की समस्या (Problem of priorities)

(४) सामाजिक बाधाएं (Social obstacles) एव सामाजिक पूंजी की समस्या।

(५) भूमि-प्रबन्ध मे सुधार की समस्या (Problem of reforms in Land-management)

(६) राजकीय सत्ता मे अस्थिरता (Political instability)

(७) सरकारी प्रबन्ध के दोष (Drawbacks in Government management)

(८) नियोजन के प्रति जागरूकता का अभाव (Lack of Plan consciousness)

(१) तान्त्रिक ज्ञान की समस्या—गत दो शताब्दियो मे विज्ञान की अत्यधिक उन्नति हुई तथा विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। विज्ञान की सराहनीय उन्नति के कारण अर्ध विकसित एव विकसित राष्ट्रो के मध्य तान्त्रिक ज्ञान का अन्तर निरन्तर वृद्धि की ओर है। जब तक अर्ध विकसित राष्ट्रो के तान्त्रिक ज्ञान मे पर्याप्त वृद्धि करने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किए जाते, यह अन्तर दिन प्रति दिन अधिकाधिक बढता ही जायगा क्योकि विकसित

राष्ट्र द्रुतगति से तान्त्रिक विकास की ओर अग्रसर है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो को विकसित राष्ट्रो के तान्त्रिक अनुभवो का लाभ उठाने का अवसर प्राप्त है तथा इन्हे कोई भी तान्त्रिक साहस नये सिरे से प्रारम्भ करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु उन अनुभवो का उपयोग करने हेतु विकासोन्मुख प्रबन्ध, व्यवस्था तथा तान्त्रिक विशेषज्ञो को आवश्यकता होती है जो अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे प्रशिक्षण-सुविधाओ के अभाव के कारण पर्याप्तरूपेण प्राप्य नही। उत्पादकों को आधारभूत शिक्षा तथा तात्रिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक तान्त्रिक ज्ञान का उपयोग करने के लिए पर्याप्त पूंजी-विनियोजन भी आवश्यक है किन्तु अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे पूंजी की अपर्याप्तता स्वाभाविक है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो को आधुनिक तांत्रिक विधियो के उपयोग मे सर्व-प्रमुख कठिनाई उक्त विधियो के श्रम की बचत को प्रोत्साहित करना है। पश्चिमी विकसित राष्ट्रो मे जनसख्या की कोई समस्या नही है। श्रमिको की न्यूनता है, अतएव ये विधियाँ अत्यधिक लाभदायक एव सफलतापूर्वक उपयोगी सिद्ध हुई है। परन्तु अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे इसके विपरीत अवस्था होती है। वहाँ बेरोजगारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव गम्भीर समस्या है, जिसकी उपस्थिति मे श्रम की बचत करने वाली उत्पादन-विधियो का उपयोग निरर्थक प्रतीत होता है। इन राष्ट्रो मे उत्पादन की ऐसी विधियो की आवश्यकता है जिनमे पूंजी की आवश्यकता कम तथा श्रम की आवश्यकता अधिक हो।

तात्रिक ज्ञान की समस्या का निवारण केवल विदेशी सहायता द्वारा ही सम्भव है। आधुनिक युग मे कोई भी राष्ट्र तात्रिक-ज्ञान की पर्याप्तता की अनुपस्थिति मे आर्थिक विकास नहीं कर सकता। अतएव राष्ट्र मे तान्त्रिक-ज्ञान-प्रशिक्षण-संस्थाओ की स्थापना की जानी चाहिए तथा प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु विदेशी प्रशिक्षणदाताओ एव विशेषज्ञो को आमत्रण देने की व्यवस्था होनी चाहिए। राष्ट्र के होनहार, मेधावी एव योग्य युवको को विदेशो मे प्रशिक्षण प्राप्ति की सुविधाएं भी प्रदान की जानी चाहिए। इसके साथ ही जन-समुदाय मे आर्थिक विकास के प्रति जागरण तथा शिक्षा की नीति मे आवश्यक समा-योजन करना भी वाछनीय है। विकास के प्रारम्भिक काल मे इस ओर विशेष कार्यवाही द्वारा इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। तात्रिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाना चाहिए कि राष्ट्र की भविष्यत् आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ राष्ट्र मे दृढ तात्रिक आधार भी बन सके।

(२) पूंजी निर्माण की समस्या—विकास का आर्थिक तात्पर्य है, राष्ट्र के पूंजीगत साधनो मे पर्याप्त वृद्धि जिसके द्वारा न केवल राष्ट्रीय आय मे ही

वृद्धि हो प्रत्युत् प्रति व्यक्ति आय मे भी पर्याप्त वृद्धि हो सके। अत विकास की सर्वप्रथम आवश्यकता पूँजी निर्माण है। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे पूँजी का निर्माण अत्यन्त न्यून मात्रा म तथा मध्यम गति से होता है क्योंकि जन-समुदाय मे निर्धनता अत्यधिक होती है, कारणवश वे अपनी चालू आय मे से बहुत अल्प राशि ही बचा सकते हैं। राष्ट्र की चालू उत्पत्ति तथा आयात के उस भाग को जिसका उपभोग नहीं होता है, पूँजी निर्माण कहा जा सकता है। पूँजीगत साधनो म कल व यन्त्र, औजार, सड़कें भवनादि तथा व्यापार म निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ म रहने वाली वस्तुएँ तथा स्टॉक सम्मिलित हैं। निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ म रहने वाली वस्तुएँ तथा संग्रह (Stock) विनियोग के रूप मे होते हैं जो अन्तत भौतिक सम्पत्ति के रूप म भी परिवर्तित हो सकते हैं। हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के साइमन कुजनेट्स (Simon Kuznets) ने पूँजी निर्माण की दो परिभाषाएँ—एक व्यापक तथा द्वितीय सकुचित दी है। "यदि प्रति व्यक्ति अथवा प्रति श्रमिक उत्पादन म दीर्घकालीन वृद्धि को आर्थिक विकास समझा जाय, तब पूँजी का इसका साधन कहना उचित होगा तथा पूँजी निर्माण का चालू सम्पत्ति के समस्त उपयोगो को—जिसके द्वारा यह वृद्धियाँ हो—समझना चाहिए। अन्य शब्दो म आन्तरिक पूँजी निर्माण म केवल देश की निर्माण सामग्री तथा निर्माण अवस्थाओ म रहने वाली वस्तुओ (Inventories) की वृद्धियो का ही सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि वह व्यय जो कि उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए किये जायें उन्हे छोड़कर अन्य व्ययो का भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। इन बहुत सी मदो पर किये जाने वाले व्यय जो प्राय उपभोग म सम्मिलित किये जाते हैं, उदाहरणार्थ, शिक्षा, मनोरंजन तथा भौतिक सुविधाओ की उपलब्धि के लिए किये गये व्यय, जिनके द्वारा स्वास्थ्य म वृद्धि तथा व्यक्तिगत उत्पादन-क्षमता म वृद्धि होती है तथा समाज द्वारा किये गये व समस्त व्यय जो कि रोजगार म लगी हुई आबादी के चरित्र निर्माण के उत्थान के लिए किये जाते हो, को भी पूँजी निर्माण म सम्मिलित किया जाना चाहिए"[1]

---

1 "If a long term rise in national product per capita or per worker is taken to describe economic growth, it may be *desireable to define capital as means and capital formation* as all uses of current product that contribute to such rises In other words domestic capital formation would include not only additions to construction equipment and inventions within the country, but also other expenditures except those necessary to sustain output at existing levels It would

(Contd next page)

संकुचित दृष्टिकोण से, "दबाव द्वारा प्रेरित आर्थिक विकास तथा औद्योगीकरण की अवस्था मे पूंजी निर्माण का अर्थ उन कल व यत्र तथा निर्माण की अवस्थाओ म रहने वाली वस्तुओ तक सीमित रहता है जो कि प्रत्यक्ष-रूपेण औजार के रूप मे उपयोग की जाती हैं।"[1]

पूंजी के साधनों को आन्तरिक तथा विदेशी दोनो साधनो स प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु अर्थशास्त्रियो का सामान्य मत है कि विदेशी सहायता से सुदृढ आर्थिक विकास सीमित मात्रा तक हो सकता है। विदेशी अर्थ द्वारा दोहरी अर्थ-व्यवस्था का निर्माण होता है जिसके कारण कभी-कभी अर्थ-व्यवस्था मे असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तथा विदेशी सहायता का प्रवाह रुक जाने पर विकास की गति धीमी ही नही अवरुद्ध भी हो जाती है। विदेशी सहायता द्वारा दीर्घकाल तक स्वदेशी अर्थ-साधनो की न्यूनता का प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता।

इन समस्त कारणो के आधार पर यह स्पष्ट है कि आन्तरिक साधनो की अधिकतम वृद्धि का प्रयत्न किया जाना चाहिए और विदेशी सहायता पर केवल थोड़े समय तक ही निर्भर रहना चाहिये तथा वह निर्भरता अत्यन्त सीमित होनी चाहिए। अर्द्ध विकसित राष्ट्रो म वर्तमान बचत का, जिसकी मात्रा अत्यल्प होती है, भी उचित उपयोग नहीं होता। इन राष्ट्रो की राष्ट्रीय आय का अधिकांश कतिपय धनिको को प्राप्त होता है और इस वर्ग की आय तथा बचत दोनो ही अत्यधिक होते हैं। परन्तु इनकी बचत अधिकतर सम्पत्ति क्रय करने, भवनादि का निर्माण करने, व्यापार एव परिकल्पना म विनियोजित की जाती है। इस प्रकार का विनियोजन राष्ट्रीय हित की दृष्टि से किसी भी प्रकार विवेकपूर्ण तथा महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

---

include outlays on many items now comprised under consumption e g outlays on education, recreation and material luxuries that contribute to the greater health and productivity of individuals and all expenditures by society that serve to raise the morale of the employed population" (*Simon Kuznets of John Hopkins University and National Bureau of Economic Research, U S. A*)

1. "In a narrower sense under conditions of forced economic growth and industrialization, capital formation may be viewed as limited to plant, equipment and inventories that are directly serviceable as tools." (*Simon Kuznets of John Hopkins University and National Bureau of Economic Research, U S A*)

निर्धन वर्ग की बचत का विनियोजन भी विवेकपूर्ण नहीं होता क्योंकि यह मौद्रिक सचय अथवा सोना-चाँदी के क्रय का रूप धारण कर लेती है। इस *प्रकार न तो धनिक वर्ग की ओर न ही निर्धन वर्ग की बचत का विवेकपूर्ण* सदुपयोग होता है तथा उन्हे उत्पादक कार्यों मे सलग्न करना कठिन होता है। *यह परिस्थिति जन-समुदाय की अज्ञानता तथा वित्तीय* और विनियोजन सम्बन्धी संस्थाओं की उचित व्यवस्था न होने के कारण और अधिक गम्भीर हो जाती है।

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे उत्पादक उद्योगो म विनियोजन न किया जाना *कतिपय कारणो द्वारा प्रभावित होता है। कथित कारणो की व्याख्या निम्न* प्रकार की जा सकती है—

(क) स्वभाव—जन-समुदाय *नवीन तथा अपरिचित आर्थिक क्रियाओ के* महत्व एव तीव्रता की तुलना मे परिचित एव प्राचीन चली आ रही आर्थिक *क्रियाओ को प्राथमिकता देते हैं। स्वभाव का निर्माण अनेक कारणो का परिणाम* है। स्वभाव का परिवर्तन इन अवस्थाओ मे परिवर्तन के पश्चात् ही सम्भव है। रूढिवादी *तथा पुराने रीति-रिवाजो द्वारा नियत्रित अर्थ-व्यवस्था मे ही लोग* अपना कल्याण समझते हैं। तथ्य है, शिक्षा का अभाव, पैतृक रुझान, प्रोत्साहन की *अनुपस्थिति।*

(ख) सीमित माँग—जन-समुदाय की आय अत्यन्त अल्प होने के कारण *उनकी क्रय-शक्ति भी अत्यन्त न्यून होती है। साथ ही कृषि तथा ग्रामीण श्रमिक* आत्म-निर्भरता पर विश्वास करते हैं। अपनी आवश्यकताओ को स्थानीय अपर्याप्त उत्पादन द्वारा ही सन्तुष्ट कर लेने के कारण प्रचलित अवस्थाओ से आत्म-सन्तुष्टि की भावना की प्रबलता भी उनमे पायी जाती है। निर्धनता के कारण 'न्यून आवश्यकताएं—पूर्ण जीवन' उनका ध्येय हो जाता है। इस प्रकार वस्तुओ की नवीन पूर्ति को आवश्यक माँग प्राप्त होना कठिन होता है तथा निजी साहसी माँग उत्पन्न करने की जोखिम नही उठाना चाहता।

(ग) श्रम की उत्पादन क्षमता का अभाव—अशिक्षा, अज्ञानता, निवास का अस्वास्थ्यकर वातावरण, गतिशीलता का अभाव, निम्न जीवन-स्तर, *अपर्याप्त, अपोषक भोजन एव अन्य अनिवार्यताएं श्रमिक की कार्यक्षमता मे* ह्रास उत्पन्न करती हैं। परिणाम होता है, श्रम की सस्ती एव सुगम उपलब्धि होने पर भी उत्पत्ति-लागत का अधिक होना।

(घ) आधारभूत सुविधाओं की कमी—यातायात, सचार, जल की वितरण-व्यवस्था, विद्युत-शक्ति-प्रदाय, अधिकोषण अथवा साख सुविधाएं आदि

आधारभूत सुविधाओं की अनुपस्थिति के कारण साहसी का सम्भावित लाभ कम ही रहता है। लाभ की न्यूनता किसी भी उद्योग की ओर पूंजी के आकर्षण को नहीं, अपितु उसकी उदासीनता (Indifference) को जाग्रत करती है।

(ङ) योग्य साहसियों की कमी—अर्ध-विकसित राष्ट्रों मे साहसी का कार्य अत्यन्त जोखिम पूर्ण होता है क्योंकि वह तथ्यों एवं आंकडों से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। केवल अनुमानों मात्र पर आधारित कोई भी उद्यम कलयुग मे असफल रहना अवश्यम्भावी है। अनुभव की अनुपस्थिति नये साहसों की ओर आकर्षण उत्पन्न नहीं करती। यद्यपि अर्ध-विकसित राष्ट्रों में साहसी को विकसित राष्ट्रों क अनुभवों का लाभ उपलब्ध है परन्तु आधुनिक युग मे साहसी को विभिन्न योग्यताओं तथा अनुभवों की आवश्यकता होती है।

(च) पूंजीगत वस्तुओं की अनुपलब्धि—नवीन उद्योग की स्थापना के लिए यन्त्रादि पूंजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो कि देश मे उपलब्ध नहीं होती और लगभग समस्त वस्तुएं विदेशों से आयात करनी पडती हैं। इन वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पडता है तथा बीमा एव यातायात-व्यय भी अत्यधिक होता है। साथ ही इन मशीनों को चलाने के लिये निपुण श्रमिक देश मे नहीं मिलते, उनके हेतु भी विदेशों का मुंह जोहना होता है। यह मुंहजोही अत्यधिक मंहगी सिद्ध होती है। इन कारणोंवश साहसी की लागत तथा जोखिम बढ जाते हैं। कभी-कभी तो कच्चे माल के लिए आयात पर ही निर्भर रहना पडता है।

(छ) श्रम की उपलब्धि तथा गतिशीलता—यद्यपि जनसख्या का घनत्व अधिक होने के कारण श्रम की उपलब्धि पर्याप्त, सुगम एव सस्ती होती है, किन्तु यह श्रम उद्योगों मे कार्य करना पसन्द नहीं करता क्योंकि इसे कारखानों के अस्वास्थ्यकर, सघन एव दूषित वातावरण मे नियमबद्ध एवं अनुशासित परतन्त्र की भाँति कार्य करना होता है तथा उसे अपने परम्परागत एव स्वच्छन्द निवास स्थानों का परित्याग रुचिकर नहीं होता। श्रमिक वर्ग अधिक आय के प्रलोभन पर भी अपने परिवार, ग्रामीण समाज तथा अपने पैतृक एवं परम्परागत व्यवसायों से दूर नहीं होना चाहता। यदि परिस्थितियोंवश उसे उद्योगों मे कार्य करने के लिए विवश होना पडा, तब अपने स्वभाव के परिवर्तन हेतु समय-समय पर अपने पुराने व्यवसाय तथा समाज मे जाता है और इस प्रकार अर्ध-विकसित राष्ट्रों मे औद्योगिक श्रम की महत्वपूर्ण समस्या अनुपस्थित होती है, जिसके कारण श्रम की कार्यक्षमता तथा उत्पादन शक्ति कम रहती है। साहसी

श्रम सम्बन्धी कठिनाइयो के कारए भी विनियोजन की ओर आकर्षित नहीं होता है।

यद्यपि पूंजी-निर्माण एक विधि है जो विनियोजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। किन्तु प्रत्येक विनियोजन पूंजी का निर्माण नहीं करता और न प्रत्येक विनियोजन पूंजी निर्माण कहा जा सकता है। केवल वे विनियोग जिनकी विधि पूर्ण होने पर ऐसे पूंजीगत साधनो की वृद्धि हो जिनके द्वारा भविष्यन् भौतिक साधनों की प्राप्ति हो सके यद्यपि इनसे वर्तमान म प्रत्यक्षरूपेण किन्हीं इच्छाओ की पूर्ति म सहायता न मिलती हो पूंजी निर्माण की श्रेणी म परिगणित किये जाते हैं। पूंजी निर्माण तीन पृथक किन्तु परम्पराश्रित अवस्थाओ के सम्मिश्रण को कहते हैं। ये अवस्थाएं इस प्रकार है—**प्रथम है बचत**। बचत वह क्रिया है जिसमे वतमान म उपभोग हो सकने योग्य साधनो को उपभोग से *पृथक् रखकर भावी उपभोग अथवा अन्य साधनो की पूर्ति हेतु* उपयोग करने मे सहायता प्राप्त होती है। **द्वितीय अवस्था है, वित्तीय क्रियाएं**। इस क्रिया के अन्तर्गत *आन्तरिक बचत, विदेशी सहायता तथा विशेष* रूप से उत्पन्न किए गए साधनो को एकत्रित करके विनियोजक के हाथो म हस्तान्तरित करना सम्मिलित है। **तृतीय एव अन्तिम अवस्था है विनियोजन**। वह क्रिया जिसके द्वारा अथ साधनो को पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन म लगाया जाता है, विनियोजन कहलाता है। विनियोजन के फलस्वरूप जो पूंजीगत साधन प्राप्त होते हैं, उसे पूंजी कहते हैं तथा इस समस्त विधि को पूंजी निर्माण कहते हैं। पूंजी निर्माण की मात्रा पूर्वकथित तीनो क्रियाओ की कार्यक्षमता तथा तीव्रता पर निर्भर रहती है।

प्रथम अवस्था—बचत (Saving—The first stage of Capital Formation)—विषय की गम्भीरता को दृष्टिगत रखते हुए उपरोक्त तीनो अवस्थाओ का विश्लेषणात्मक विस्तृत एव गहन अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। अत उन अवस्थाओ का पृथक् पृथक अध्ययन हम करेंगे। सवप्रथम अवस्था बचत है। बचत चार मुख्य वर्गों म विभाजित की जा सकती है—

(अ) एच्छिक आन्तरिक बचत (Voluntary Domestic Savings)

(ब) राजकीय बचत (Governmental Savings)

(स) मुद्रा प्रसार द्वारा प्राप्त बचत (Inflationary Savings)

(द) विदेशी बचत (Foreign Savings)।

वर्ग के लोग अपनी बचत का उपयोग अपने ग्राम के आस पास के क्षेत्रो मे किये जाने को अधिक महत्त्व देते हैं। अत ऐसी सस्थाओ का सगठन किया जाना चाहिए जो ग्रामीण क्षेत्रो से प्राप्त बचत का विनियोजन ग्रामीण विकास मे ही कर सकें।

द्वितीय पहलू के अन्तगत बचत को और भी प्रभावशाली बनाने के लिए अल्प बचत एकत्रित करन वाली मध्यस्थ सस्थाओ—बैक, डाक विभाग, सहकारी सस्थाओ, जीवन बीमा आदि के कमचारियो म ईमानदारी, तत्परता तथा सहायता करन की भावनाओ के स्तर म वृद्धि होना भी आवश्यक है। इन सस्थाओ की कार्य करने की विधि इतनी सरल तथा प्रणाली इतनी सुगम्य होनी चाहिए कि बचत जमा करते समय तथा निकालते समय, समय का अपव्यय, कष्ट एव असुविधा नही होनी चाहिए। इसके साथ ही ग्रामीण विकास की योजनाओ के अन्तर्गत कृषक तथा श्रमिक वर्ग को धन के व्यय तथा अपव्यय सम्बन्धी शिक्षा प्रदान की जाय। यह कार्य अत्यन्त कठिन तथापि आवश्यक है क्योकि ग्रामीणो के रूढिवादी, अन्धविश्वासी एव अशिक्षित चिर स्वभाव को परिवर्तित करना सरल नही है। अर्ध विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक विकास के साथ मुद्रा-प्रसार भी एक आवश्यक लक्षण होता है। जनता-जनादन का यह विश्वास प्रदान करना भी आवश्यक है कि मुद्रा का प्रसार अत्यधिक नही होगा तथा इस प्रकार उनके विनियोजन तथा व्याज की राशि की क्रय-शक्ति अथवा वास्तविक मूल्य मे कोई विशेष कमी नहीं होगी।

(ब) राजकीय बचत—नियोजित अर्थ व्यवस्था म राजकीय बचत विकास की योजनाओ की पूर्ति का एक मुख्य अर्थसाधन है। राजकीय बचत के साधनो मे कर, राजकीय उद्योगो का लाभ आदि सम्मिलित हैं। कर द्वारा पूंजी के साधनो को प्राप्त करना सरकार क धनी वर्ग पर अधिक करारोपण की क्षमता पर निर्भर रहता है। धनी वर्ग के उन साधनो को जो निष्क्रिय पड हो अथवा जिनका राष्ट्र की दृष्टि स लाभप्रद उपयोग न होता हो, कर क रूप म प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसके लिए अधिक आय, सम्पत्ति तथा विलासताओं पर कर लगाये जा सकते है। एस करारोपण की आवश्यकता होती है कि आय, सम्पत्ति तथा विलासताओ की वृद्धि के साथ कर की दर मे वृद्धि होती रहे। इसके लिए आय-कर को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। जापान, मिश्र तथा भारत मे आय कर सरकारी आय का एक प्रमुख एव महत्वपूर्ण साधन है परन्तु अन्य दक्षिण-पूर्वी, सुदूर पूर्वी तथा अफ्रीकी राष्ट्रो मे अब भी आय-कर को कोई विशेष स्थान नही दिया जाता है। यद्यपि आय कर आधुनिक समाजवाद की विचारधाराओ के सवथा अनुकूल साधन है, परन्तु अर्ध-विकसित राष्ट्रो

मे प्रबन्ध सम्बन्धी, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणो से इस कर को पूर्ण महत्व नहीं दिया जाता है ।

आय-कर का एकत्र करना एक जटिल कार्य होता है । इसको प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसे सगठन की आवश्यकता होती है जिसमे अधिकारी ईमानदार तथा कर-एकत्रीकरण के तौर-तरीको मे निपुण हो । अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे ऐसे सगठन की उपलब्धि लगभग असम्भव है । कारणवश धनिक वर्ग जो कर बचाने की कला मे अधिक निपुण होता है, कर को कपटपूर्ण रीतियो द्वारा बचा लेता है और इस कर की प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है । धनी वर्ग राजकीय नीतियो पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपेण नियन्त्रण रखता है तथा अधिकाश राजनीतिक दल जमींदार, उद्योगपति तथा बडे बडे व्यापारियो द्वारा प्रदत्त दानो के कारण ही प्रगति करते हैं । इस कारण अर्ध-विकसित राष्ट्रो की सरकारें आर्थिक विकास हेतु धनिक वर्ग पर अधिक करारोपण नहीं कर पातीं ।

अप्रत्यक्ष कर—दूसरी ओर अप्रत्यक्ष कर वस्तुओ के क्रय विक्रय, उत्पादन, आयात-निर्यात, लाभ-कर तथा सामाजिक बीमा आदि के रूप म लगाये जाते है । पूंजीवादी राष्ट्रो मे अप्रत्यक्ष करो को अधिक महत्व दिया जाता है क्योकि इसके कारण धनिक वर्ग क पास बचत के साधन उपलब्ध रहते ह और उनको अपनी पूंजी के विनियोजन के परिणामस्वरूप अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है । नियोजित व्यवस्था और विशेषकर साम्यवादी अर्थ व्यवस्था म राजकोय बचत को अधिक महत्त्व दिया जाता है । अतएव कर-भार भी अधिक रहना है । साम्यवादी व्यवस्था म भी अप्रत्यक्ष कर को अधिक महत्व दिया जाता है, परन्तु इसका उद्देश्य व्यक्तिगत बचत को उचित अवसर प्रदान करना नहीं होता है प्रत्युत इसके कारण श्रम, योग्यता तथा उत्तरदायित्व का उचित प्रतिफल प्रदान किया जा सकता है । अप्रत्यक्ष करो द्वारा अनिवार्य वचन को प्रोत्साहन मिलता है और कर-राशि के समतुल्य उपभोग म कटौती हो जाती है । जा भी अप्रत्यक्ष कर वस्तुओ पर लगाया जाता है, वह वस्तुओ क विक्रय-मूल्य म जुड जाता है और उपभोग की वस्तुओ के मूल्य म वृद्धि हो जाती है ।

अन्य कर—कृषक वर्ग की बढती हुई आय मे से भी कर-भाग लेना आवश्यक होना है । इस हेतु भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्तियो पर करारोपण किया जा सकता है । इस कर म भी क्रमागत वृद्धि होनी चाहिए और इसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र को बचत, जो अधिकाश अनुत्पादक मदो पर व्यय की जाती है, राष्ट्र-निर्माण मे सहायक हो सकती है । परन्तु ग्रामीण क्षेत्र मे कर इस

प्रकार लगाये जायें कि ग्रामीण के जीवन-स्तर पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े; उनकी आय के परिवर्तन के साथ कर मे आवश्यक समायोजन किये जा सकें तथा कर को जमींदार आदि किसी अन्य वर्ग को हस्तान्तरित न कर सकें।

सम्पत्ति कर, सम्पन्नता कर (Betterment Levy), पूँजी-लाभ कर (Capital Profits Tax) तथा उपयोग्य किन्तु सुधार न की गयी भूमि पर कर, आदि ऐसे कर हैं जिनको लोक-हितार्थ लगाया जा सकता है। इसके साथ भूमि-लगान मे वृद्धि भी की जा सकती है, जो कि अधिक समय पूर्व निश्चित किये गये होते हैं। परन्तु कृषक वर्ग पर, जिनमे राष्ट्र की अधिकांश जनसख्या सम्मिलित या सम्बद्ध है, करारोपण करते समय आर्थिक विचारधाराओ को ही ध्यान मे न रखा जाय प्रत्युत राजनीतिक कठिनाइयो को भी विचाराधीन करना होगा। जब तक शासन के हाथ इतने सुदृढ न होगे कि वह जनसाधारण के विरोध का सामना कर सके और उनसे नियोजन के प्रति योगदान प्राप्त कर सके, तब तक इस प्रकार के कर अकार्यशील एव प्रभावहीन रहेगे।

शासकीय उद्योगो का लाभ—शासकीय उद्योगो के लाभ को प्राय वस्तुओ और सेवाओ के गुणो मे वृद्धि करने तथा उनके मूल्य घटाने मे उपयोग किया जाता है परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे इन लाभो को आर्थिक-विकास के कार्यक्रमो मे विनियोजित किया जा सकता है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे शासकीय क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है तथा इसके द्वारा केवल आवश्यक सेवाओ अथवा वस्तुओ का उत्पादन तथा नियन्त्रण किया जाता है। शासकीय उद्योगो के लाभ मे जन हितार्थ वृद्धि करने के लिए आवश्यक सेवाओ तथा वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि करना भी आवश्यक होता है। इस प्रकार की वृद्धि से उपभोग मे अनिवार्य रूपेण कटौती होती है। प्रजातान्त्रिक अर्ध विकसित समाज मे इस प्रकार की कार्यवाही करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है क्योकि जनसाधारण, जिसका जीवन-स्तर पूर्व से ही निम्नतम एव न्यूनतम है, उपभोग की और अधिक कटौती को सहने के योग्य नहीं होता है। फलस्वरूप उत्कट विरोधी-भावनाएँ जाग्रत होती हैं जो दीर्घकाल मे तो हानिप्रद होती ही हैं।

(स) मुद्रा-प्रसार द्वारा प्राप्त बचत (घाटे का अर्थ-प्रबन्धन) (Deficit Financing)—कर तथा बचत द्वारा पर्याप्त आर्थिक-साधन प्राप्त न होने की दशा मे अर्ध-विकसित राष्ट्रो की सरकारें "घाटे की अर्थ-व्यवस्था" (Deficit Financing) द्वारा पूँजी-साधनो मे वृद्धि कर सकती हैं। प्राय. घाटे की अर्थ-व्यवस्था का उपयोग युद्ध के लिए आर्थिक साधन जुटाने तथा मन्दी काल (Depression) मे शासकीय व्यय मे वृद्धि करके रोजगार के अवसर

बढाने के लिए किया जाता था। आधुनिक युग मे इस व्यवस्था का उपयोग राष्ट्रो के आर्थिक विकास हेतु भी किया जाने लगा है। जैसा कि पहले संकेत किया गया है, अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे ऐच्छिक बचत मे पर्याप्त वृद्धि करना सम्भव नहीं होता क्योकि जनसाधारण की प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम होती है तथा स्वभाव रूढिवादी होते हैं। दूसरी ओर पूँजी की कमी को विदेशी सहायता द्वारा पूर्ण किया जा सकता है किन्तु विदेशी पूँजी के साथ अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक प्रतिबन्ध होते हैं जिसके कारण उसका उपयोग अधिक समय तक नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थिति मे राज्य मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि करके कुले बाजार से साधनो को क्रय करता है और पूँजी के निर्माण मे उपयोग करता है। इस प्रकार एक ओर अर्थ-व्यवस्था मे मुद्रा के प्रदाय (Supply) मे वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर उपभोग के लिए प्राप्त वस्तुओ के उत्पादनार्थ प्राप्त साधनो को पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे सम्बद्ध किया जाता है। फलस्वरूप उपभोक्ता-वस्तुओ की अर्थ-व्यवस्था मे कमी हो जाती है। अधिक उपलब्ध साधनो को विकास सम्बन्धी कार्यो मे उपयोग किये जाने से लोगो की सामान्य आय मे वृद्धि होती है और उनके द्वारा वस्तुओ की माँग अधिक की जाती है। इस प्रकार वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि होने से जनसाधारण अल्प मात्रा मे उपभोग कर पाता है। परिणामस्वरूप उनको एक विवशतापूर्ण बचत करने को बाध्य होना पडता है। प्रजातान्त्रिक राष्ट्र मे जहाँ के अधिवासी ऐच्छिक बचत तथा अधिक कर-भार वहन करने को तत्पर नहीं होते हैं, वहाँ इस प्रकार विवशतापूर्ण बचत कराना जनहित एव आर्थिक विकास हेतु अत्यावश्यक है।

राज्य के बजट मे विकास तथा अन्य कार्यक्रमो पर व्यय की जाने वाली राशि बचत, आन्तरिक ऋण तथा विदेशी सहायता से प्राप्त साधनो से अधिक होती है। इस अवस्था मे स्वय-उत्पादित अन्तर की पूर्ति मुद्रा-प्रसार द्वारा की जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा साधनो को चालू उपभोग से पूँजी-निर्माण की ओर आकर्षित किया जाता है। यद्यपि घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा निष्क्रिय साधनो का लाभप्रद उपयोग प्रत्यक्ष रूपेण नही होना है परन्तु आर्थिक विकास के साथ साधनो मे उपयोगी क्रियाशीलता आ जाती है।

घाटे का अर्थ प्रबन्धन तथा मुद्रा-स्फीति—मुद्रा-प्रसार द्वारा जो क्रय-शक्ति राज्य को प्राप्त होती है, उसका उपयोग यदि अनुत्पादक, जैसे युद्ध आदि के प्रबन्धन आदि के लिए किया जाता है तब मुद्रा-स्फीति भयानक रूप से अर्थ-व्यवस्था पर छा सकती है और इस प्रकार की मुद्रा स्फीति विकास-मार्ग पर एक अजेय रोडा बन सकती है। उपभोक्ता-वस्तुओ की मात्रा मे अत्यन्त न्यूनता आ जाती

है, व्यापारी-वर्ग इस अवस्था का लाभ उठाता है और सरकार द्वारा उचित नियन्त्रण न रखने पर वस्तुओ के मूल्य मे निरन्तर वृद्धि होती जाती है तथा मुद्रा की क्रय-शक्ति कम होती जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था अत्यन्त अस्थायी होती है तथा शीघ्र ही मुद्रा तथा सरकार मे जनता का विश्वास समाप्त हो जाता है और एक भयानक आर्थिक-क्रान्ति होने की सम्भावना सम्मुख आती है।

इसके विपरीत मुद्रा प्रसार द्वारा जब पूंजी-निर्माण किया जाता है, तब मूल्यो मे वृद्धि अल्पकालीन होती है क्योकि पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन तथा उनके द्वारा उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो की उन्नति तथा उत्पादन म वृद्धि आदि मे कुछ समय लग जाता है और इस अवधि मे उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे अवश्य ही वृद्धि होती है क्योकि "मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त" (Quantity Theory of Money) प्रभावशील होता है। जैसे ही अधिक विनियोजन के द्वारा उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन वृद्ध्योन्मुख होता है, मूल्य यथोचित स्तर पर आ जाते है। किन्तु इस मध्य-काल मे राज्य को अत्यन्त सावधानीपूर्वक अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण रखना आवश्यक होता है अन्यथा व्यापारी तथा धनिक वर्ग इसका लाभ उठा कर एक गम्भीर अवस्था उत्पन्न कर सकते हैं। बढते हुए मूल्यो की परिस्थिति मे व्यापारी वर्ग सदैव वास्तविक से अधिक वस्तुओ की कमी प्रदर्शित करने का प्रयत्न करता है। इसीलिए वस्तुओ का विशेषकर आवश्यक वस्तुओ, जैसे खाद्यान्न, वस्त्रादि का सचय करता है और बाजार मे कृत्रिम कमी उत्पन्न कर देता है। आवश्यक वस्तुओ के मूल्य म वृद्धि होने के कारण उनकी सहानुभूति मे अन्य उपभोक्ता-वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि हो जाती है। राज्य की मूल्य वृद्धि पर नियन्त्रण रखना अत्यन्त वाछनीय होता है क्योकि मूल्यो मे वृद्धि होने से योजना के अनुमानित व्यय मे वृद्धि हो जाती है। इस हेतु या तो और अधिक अर्थ साधनो का प्रबन्ध करना आवश्यक होता है जो कि पहले से ही अन्य साधनो की अपर्याप्तता या अनुपस्थिति के कारण घाट के अर्थ प्रबन्धन द्वारा प्राप्त किये जा रहे हैं, उसी माध्यम से प्राप्त किये जायेंगे जिसका वही प्रभाव होगा और यह विषैला चक्र अत्यन्त घातक होगा, अथवा अर्थ साधनो की पर्याप्त उपलब्धि न होने की दशा मे योजना के लक्ष्यो मे कटौती करनी होगी, जिससे विकास की गति अत्यधिक मद हो जायगी जो कि अन्तत हानिकर है। मूल्य-नियन्त्रण इसलिए भी आवश्यक है कि कृत्रिम उत्पादित न्यूनता के कारण जनसाधारण, जिनका जीवन-स्तर अत्यधिक दयनीय होता है, के उपभोग मे और कटौती हो जाने के कारण उन्हे अधिक कठिनाई का

सामना करना पडता है। धनिक वर्ग अधिक धन अपने अधिकार मे करता जाता है और आय के समान वितरण की अनिवार्यता की पूर्ति के स्थान पर आय की असमानता को प्रोत्साहन मिलता है। यह प्रजातात्रिक समाज के आधारभूत सिद्धान्तों का ही खण्डन करता है।

घाटे के अर्थ-प्रबन्धन का स्वरूप—घाटे की अर्थ-व्यवस्था मुद्रा अथवा साख की वृद्धि के रूप मे हो सकती है। अर्ध-विकसित राष्ट्रों मे प्रायः मुद्रा-प्रसार को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है क्योकि इन राष्ट्रो मे बैंक-पत्र का सामान्य प्रयोग नहीं होता और न ही अधिकोषण-व्यवस्था, द्रव्य-विपणि आदि सुसंगठित होते हैं। साथ ही केन्द्रीय बैंक का नियन्त्रण भी अति न्यून होता है। इसके अतिरिक्त मुद्रा-प्रसार की आवश्यकता प्रारम्भिक अवस्थाओ मे जन-समुदाय के पास क्रय-शक्ति की अपर्याप्तता के कारण भी तीव्रतर होती है। विकसित औद्योगिक राष्ट्रो मे साख मे वृद्धि द्वारा बजट के घाटे की पूर्ति की जाती है। राज्य ऐसी स्थिति मे अधिकोषो से साख प्राप्त कर अपने कार्यक्रमों का अर्थ-प्रबन्धन करता है। अधिकोष से एक निश्चित समय के लिए साख प्राप्त की जाती है। उस निश्चित समयोपरान्त जब यह साख लौटायी जाती है, तब अर्थ-व्यवस्था से अतिरिक्त क्रय-शक्ति भी वापिस हो जाती है। इसके विपरीत अर्थ-व्यवस्था में बढी हुई मुद्रा को वापिस लेना कठिन होता है। मुद्रा-प्रसार के साथ साख का प्रसार भी होता है और इस प्रकार मूल्यो मे दुगुनी वृद्धि होती है। दूसरी ओर निरन्तर साख-प्रसार के लिए मुद्रा-प्रसार भी आवश्यक है क्योकि अधिकोषो को अपने जमा (Deposits) के विरुद्ध निश्चित प्रतिशत से द्रव्य-सचय रखना आवश्यक होता है। अधिकोष ऋण अधिकोष-जमा म परिवर्तित होने हैं और इस प्रकार जमा के विरुद्ध निर्धारित सचय हेतु अधिक मुद्रा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मुद्रा तथा साख-प्रसार दोनो साथ-साथ उपयोग किये जाते हैं।

घाटे के अर्थ-प्रबन्धन की सीमाएँ—उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विकास से सम्बन्धित घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा विवशतापूर्वक बचत होती है तथा प्रत्येक दशा मे वर्तमान उपभोग-स्तर मे कमी आ जाती है। उपभोग मे कमी होने के परिणामस्वरूप जनता मे विरोध-भावना जाग्रत होती है तथा निर्धन-वर्ग अपनी अनिवार्यताओ की पूर्ति करने मे भी असमर्थ रहता है। अतः राज्य को घाटे के अर्थ-प्रबन्धन का उपयोग अत्यधिक सावधानीपूर्वक करना चाहिए तथा उस पर कतिपय अनिवार्य सीमाओ का भार डाल देना चाहिए। कथित सीमाओ के आरोपण के समय निम्नलिखित तथ्यो को दृष्टिगत करना आवश्यक है—

किस सीमा तक विरोध होगा, इस पर ध्यान देना भी आवश्यक है । यदि सरकार की नीतियाँ प्रभावशील नहीं हुई, तो विकास-सम्बन्धी मुद्रा-प्रसार द्वारा मुद्रा-स्फीति भयानक रूप धारण कर सकती है ।

(ङ) राजकीय तथा निजी क्षेत्रो मे कर्मचारियो तथा श्रमिको के पारिश्रमिक को मुद्रा पर निश्चित करने के ढग तथा पारिश्रमिक को सीमित रखने की सम्भावना का भी अनुमान लगाना आवश्यक होता है। यदि पारिश्रमिक दर उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो पर आधारित होती है, तब यह नियन्त्रण रखना कठिन होगा । दूसरी ओर यदि पारिश्रमिक को मूल्यो के अनुसार नही बढाया जायगा, को श्रमिक की कार्यशीलता तथा उत्पादन-क्षमता को क्षति पहुँचेगी । इन दोनो सीमाओ के मध्य मे पारिश्रमिक निर्धारित किया जाना चाहिए । पारिश्रमिक-दर राष्ट्र की श्रमिक-सस्थाओ के सगठन तथा उनकी प्रवृत्तियो और सरकार द्वारा उनकी कार्यवाहियो पर नियन्त्रण रखने की क्षमता से भी प्रभावित होगी ।

(च) वर्तमान मूल्य-स्तर तथा प्रचलित मुद्रा की मात्रा के आधार पर भी यह निश्चय किया जा सकता है कि घाटे के अर्थ-प्रबन्धन का किस सीमा तक उपयोग सम्भाव्य है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य स्तर की तुलना मे राष्ट्रीय मूल्य-स्तर कम हो, तब मूल्य मे सामान्य वृद्धि से मुद्रा-स्फीति का कोई भय नहीं होगा और मुद्रा का अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुसार प्रसार किया जा सकता है । विकास-व्यय द्वारा अथ-व्यवस्था मे वस्तुओ के उत्पादन तथा पूर्ति मे वृद्धि के साथ-साथ मुद्रा का प्रसार होना भी आवश्यक होगा ।

उपर्युक्त घटको की आधार-शिला पर ही विकास-सम्बन्धी मुद्रा-प्रसार की सीमाओ का निर्माण होना चाहिए। उपर्युक्त घटको के प्रतिकूल होने की दशा मे मुद्रा प्रसार मुद्रा स्फीति का रूप धारण कर सकता है । इसलिए मुद्रा का प्रसार केवल उसी सीमा तक करना चाहिए, जहाँ मुद्रा-स्फीति का भय उपस्थित न हो । वस्तुओ के मूल्यो मे कुछ सीमा तक वृद्धि कोई भयसूचक नही बल्कि मुद्रा स्फीति की अवस्था उसी समय कही जानी चाहिए जबकि मूल्यो म वृद्धि और अधिक मूल्य वृद्धिकारक हो । ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर पूंजी-निर्माण के स्थान पर पूंजी का उपभोग होना प्रारम्भ हो जाता है तथा किसी भी प्रकार से आर्थिक विकास सम्भव नही होता । "जब घाटे का अर्थ-प्रबन्धन मुद्रा-स्फीति की अवस्था का रूप ग्रहण करले, उस समय इसके द्वारा न पूंजी का निर्माण होता है और न आर्थिक विकास ही होता है। घाटे की अर्थ-व्यवस्था

अपने आप मे न अच्छी है और न बुरी और न ही घाटे के अर्थ-प्रबन्धन मे मुद्रा-स्फीति स्वभावत निहित है ।"[1]

साधारण शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि विकास-व्यय, जो घाटे के अर्थ-प्रबन्धन द्वारा किया जाता है एव अस्थायी रूप से उस अवधि मे जो कि अतिरिक्त आय की पुष्टि करने के लिए उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि करने मे उपयोग किया जाता है, मूल्यो मे वृद्धि का कारण होता है। यदि *विकास-व्यय के अधिकतर भाग के लिए सरकार उत्तरदायी हो तथा वह* विकास-कार्यक्रमो को, बजट के साधनो को दृष्टिगत न करते हुए, प्रभावी एव कार्यशील युक्तियो एव विधियो से सचालित करती है, यदि वह निजी विनियोजन को नियन्त्रित करके निजी पूंजी को अविवेकपूर्ण उत्पादन से रोककर राष्ट्रीय विकास-कार्यों म विनियोग करती है, यदि वह मूल्यो की उच्चतम सीमा निश्चित करती है, यदि वह आवश्यक वस्तुओ आदि के वितरण का प्रबन्ध करके मूल्य-वृद्धि का रोकती है, यदि वह आयात की मात्रा तथा प्रकार पर नियन्त्रण कर सकती है, यदि उसके द्वारा विकास-कार्य युद्ध की आवश्यक परिस्थितिया के समान सचालित किया जाता है, तभी घाटे के अर्थ-प्रबन्धन का उपभोग आर्थिक विकास मे सराहनीय, वाछनीय एव सहायक सिद्ध हागा। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि घाटे का अर्थ-प्रबन्धन अनुभवी एव निपुण तथा कार्यकुशल हाथो मे विकास पथ पर अग्रसर-राष्ट्र हेतु वरदान सिद्ध होगा, अन्यथा विकास की चरम सीमा पर पहुँचे राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर सकने की क्षमता वाला अभिशाप भी हो सकता है।

(द) विदेशी मुद्रा की बचत—अर्ध विकसित राष्ट्रो के विकास के लिए पूंजीगत वस्तुओ का आयात सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। पूंजीगत तथा उत्पादक वस्तुओ के अभाव मे, जिनको अर्ध विकसित राष्ट्रो मे निर्मित नहीं किया जाता, आर्थिक-विकास के किसी भी कार्यक्रम का सफल सचालन सम्भव नहीं। जब तक कि लोहा एव इस्पात, इन्जीनियरिंग, यन्त्र एव कल, भारी रसायन आदि उद्योगो की प्रगति नहीं की जाती, औद्योगीकरण किया जाना असम्भव है। इन

---

1. "When deficit financing degenerates inflationary finance, it ceases to promote either capital formation or economic development .. ..By itself, deficit financing is neither good nor bad nor is inflation inherent in deficit finance." (Dr V K.R V. Rao, "*Eastern Economist Pamphlet*," *Deficit Financing, Capital Formation and Price Behaviour in an Under developed Economy*, p. 16.

सभी प्रमुख आधारभूत उद्योगों के लिए आवश्यक पूँजीगत वस्तुओं के आयात का प्रबन्ध विदेशों से किया जाना अनिवार्य है। अर्ध विकसित राष्ट्रों में प्राय कच्चे माल तथा कृषि-उत्पादन का निर्यात तथा निर्मित उपभोक्ता तथा अन्य वस्तुओं का आयात किया जाता है। यही अर्ध-विकसित राष्ट्रों की सबसे बड़ी आर्थिक दुर्बलता होती है जिसका साम्राज्यवादी राष्ट्र निरन्तर लाभ उठाते हैं तथा अर्ध-विकसित राष्ट्रों के विकास-कार्यों को विफल करने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। यदि विदेशी व्यापार में अनुकूल परिस्थितियाँ हो तो प्राथमिक वस्तुओं (Primary Goods) के निर्यात आधिक्य द्वारा पूँजी-निर्माण सम्भव है क्योंकि इससे विदेशी पूँजी की प्राप्ति होती है। यदि सरकार अपनी राजकर नीति (Fiscal Policy) द्वारा आवश्यक नियन्त्रण रखे तो यह आधिक्य उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पर व्यय नहीं किया जायगा। परन्तु इस प्रकार के आधिक्य से पूँजी निर्माण अत्यन्त अनिश्चित रहता है। क्योंकि यदि प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात लाभप्रद होता है तो लोग अपने साधनों को माध्यमिक व्यवसायों (Secondary Industries) अर्थात् उद्योगों में विनियोजित नहीं करते और अनुकूल विदेशी व्यापार की दशा में भी देश का औद्योगीकरण सम्भव नहीं होता।

राज्य-नीति एव विदेशी बचत—प्रत्येक परिस्थिति में यह आवश्यक होता है कि अर्ध विकसित राष्ट्र की सरकार का राजकर नीति द्वारा विदेशी व्यापार से अर्जित विदेशी मुद्रा का नियोजित अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकतानुसार उपयोग प्रतिबन्धित करना चाहिए। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण करना सरकार के लिए आवश्यक है। आयात के नियन्त्रणार्थ प्रशुल्क (Tariffs), कोटा निश्चित करना, अनुमति-पत्र (Licence) निर्गमित (Issue) करना, विदेशी मुद्रा पर नियन्त्रण रखना, मुद्रा-अवमूल्यन करना, राज्य द्वारा आयात पर एकाधिकार (Monopoly) प्राप्त करना आदि शस्त्र उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। प्रशुल्क अथवा राजकोष आय में वृद्धि हेतु तथा अथवा किन्हीं विशेष वस्तुओं के आयात-अवरोध हेतु लगाये जाते है। प्रशुल्क दर प्राय उन वस्तुओं पर ऊँची होती है जिनका उत्पादन राष्ट्र में हो सकता है तथा प्रारम्भिक अवस्था में विदेशी स्पर्द्धा हानिकारक होती हो। परन्तु प्रशुल्क का प्रभाव बडी सीमा तक नष्ट हो जाता है यदि राष्ट्रीय उत्पादक अधिक मूल्य पर स्वदेशी वस्तुएँ का विक्रय करते हैं अथवा निर्माण पर उत्पादक कर (Excise Duty) आरोपित किया जाता है। कोटा निश्चित करने के दो उद्देश्य होते हैं—प्रथम किसी विशेष वस्तु की समस्त आयात की मात्रा को सीमित करना तथा द्वितीय इस आयात की मात्रा को विभिन्न निर्यातक राष्ट्रों में वितरित

करना। अनुमति पत्र निर्गमन मे शासन अपन किसी अधिकारी को आयात करन की आवश्यकताओ की छानबीन करने तथा निश्चित सीमाओ के अ दर अनुमति पत्र निर्गमित करने के हेतु नियुक्त कर देता है। इस विधि द्वारा विदेशी मुद्रा की राशनिंग योजना भी कार्यान्वित की जाती है। विदेशी मुद्रा के उपयोग पर नियन्त्रण रखने के लिए प्राय केन्द्रीय बक को अधिकार दिया जाता है कि समस्त विदेशी व्यवहारो का शोधन (Payment) इसके द्वारा होना चाहिए। यदाकदा और प्राय साम्यवादी राष्ट्रो जैसे रूस म एक शासकीय अधिकारी अथवा सस्था की नियुक्ति का जाती है जा समस्त विदेशी व्यापार स्वय देश की आवश्यकतानुसार करन के लिए उत्तरदायी होता है। यह अधिकारी एक पूर्ण विभाग अथवा सहकारी सस्था भी हो सकती है। इस अधिकारी के अधिकार विदेशी व्यापार के साथ-साथ स्वदेशी उत्पादन क्रय विक्रय के नियन्त्रण तक विस्तृत होन चाहिए ताकि वह राष्ट्रीय उत्पादन तथा माँग की मात्रा के आधार पर आयात की मात्रा का निर्धारण कर सके

राजकीय आयात नीतिया एव पूँजी निर्माण—उपर्युक्त आयात नियन्त्रण की विधिया पूँजी निर्माण म निम्नलिखित रूपेण सहायक होती है —

(अ) प्रशुल्क तथा अनुज्ञापत्र निगमन द्वारा सरकार को अधिक आय प्राप्त होती है जिसका पू जीगत वस्तुओ के लिए उपयोग किया जा सकता है।

(आ) आयात नियन्त्रण द्वारा दो प्रकार के उद्योगो का विकास सम्भव किया जाता है—नवीन उद्योग और रक्षा सम्बन्धी तथा आधारभूत उद्योग। इन उद्योगो को सरक्षण प्राप्त होन पर इनमे विनियोजित पू जी कम जोखिमपूर्ण होती है। सुरक्षा के कारण विनियोजक को प्रोत्साहन मिलता है तथा उद्योगो की ओर आकर्षित होता है। इसके साथ ही सरक्षित उद्योगो द्वारा उत्पादित वस्तुओ का मूल्य प्रशुल्क लगाये जाने के कारण अथवा न्यून पूर्ति के कारण अधिक होता है तथा प्रारम्भिक अवस्था मे स्वदेशी उत्पादक भी समुचित विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के अभाव म अपनी वस्तुओ का विक्रय अधिक मूल्य पर करते हैं। इस प्रकार इन वस्तुओ का अधिक मूल्य होने के कारण इनका उपभोग कम होता है और लोग अपने साधनो को अन्य कामो म लगाते हैं अथवा बचत के रूप म रखते हैं। दूसरी ओर सरक्षित उद्योगो के विकास म रोजगार के अवसरो मे वृद्धि होती है एव श्रमिको तथा साहसी की आय म वृद्धि होती है। यह आय वृद्धि अधिक उपभोग अथवा अधिक बचत का रूप ग्रहण करती है। अधिक उपभोग भी दीर्घकाल म अधिक विनियोजन का कारण बन जाता है।

(इ) जब सरक्षण पू जीगत वस्तुओ के उद्योगो को प्रदान किया जाता है तो

थोडे ही समय मे पूंजीगत वस्तुए अधिक मात्रा म कम मूल्य पर उपलब्ध होगी हैं। परिणामस्वरूप *औद्योगिक इकाइयो म वृद्धि तथा नवीन उद्योगो की स्थापना* होती है। इस प्रकार जिस सचित पूंजी का विनियोजन पूंजीगत वस्तुग्रो की अनुपस्थिति म अभी तक सम्भव नहीं होता था, वह भी क्रियाशील होकर पूंजी-निर्माण का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग बन जाता है।

(ई) आयात की मात्रा सीमित करन स विदशी व्यापार का अनुकूल शेष (Favourable Balance of Trade) हो जाता है। इस प्रकार अर्जित विदशी मुद्रा का उपयोग पूंजीगत वस्तुग्रा के आयात हेतु किया जा सकता है।

(उ) आयात नियन्त्रण द्वारा अनावश्यक विलासिता तथा उपभोग की वस्तुग्रा क आयात को सीमित किया जाता है। इनके स्थान पर पूंजीगत वस्तुग्रा तथा ऐसे कच्चे माल के आयात म वृद्धि की जाती है जिनका उत्पादन देश म नहीं होता। इस प्रकार आयात के प्रकार म परिवर्तन स पूंजी निर्माण म सहायता प्राप्त होती है।

(ऊ) विलासिता की वस्तुग्रा के आयात को सीमित अथवा सवथा अवरुद्ध कर दिया जाता है और इस प्रकार धनिक वर्ग के हाथा की उस क्रय शक्ति का जो कि विलासिता की वस्तुग्रो पर निरर्थक अपव्यय होती पूंजी निर्माण की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

राजकीय निर्यात नीतियाँ एवं पूंजी-निर्माण—अब हम तटकर नीति मे निर्यात की ओर विचार कर सकते हैं। आधुनिक युग म प्रत्येक दश आयात को कम करन तथा निर्यात की वृद्धि करन को प्रयत्नशील रहता है। निर्यात-नियन्त्रणार्थ निर्यात कर, निर्यात अनुज्ञा पत्र, कोटा निश्चयीकरण आदि विधिया का उपयोग किया जाता है। ऐसे उद्योगो का आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है, *जो निर्यात योग्य पदार्थों का निर्माण करत ह। निर्यात-कर राजकीय आय* बढान तथा विभिन्न प्रकार की निर्यात वस्तुग्रा के निर्यात म भदभाव करन के लिए लगाया जाता है। औद्योगिक कच्चे माल जिनका उपयोग राष्ट्रीय उद्योगो म होना है तथा जिनका प्रदाय (Supply) अपर्याप्त हो, उनके निर्यात को प्रतिबन्धित करन के हेतु भी निर्यात-कर लगाये जाते हैं तथा कोटा निश्चित कर दिया जाता है। ऐसी वस्तुग्रा का निर्यात पूर्ण निषिद्ध घोषित किया जा सकता है, जो कि आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आवश्यकता की हो। वस्तुग्रो के निर्यात के साथ-साथ पूंजी-निर्यात पर भी प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है, अन्यथा पूंजीपति आर्थिक समानता के प्रयत्नो से बचन के लिए पूंजी का विनियोग विदशों म कर देते हैं, जब कि देश म ही पूंजी की अत्यधिक आवश्य

कता होती है। अधिक निर्यात द्वारा उद्योगों का विकास सम्भव होता है तथा पूंजीगत वस्तुओं को भी विदेशों से प्राप्त किया जा सकता है। उद्योगों के विकास से जनसमुदाय की आय में वृद्धि होती है जो अन्ततः बचत तथा उपभोग वृद्धि का कारण बन जाती है। इस प्रकार अधिक निर्यात पूंजी-निर्माण का मूल अंग है।

इस प्रकार उचित तटकर-नीति द्वारा विदेशी व्यापार विदेशी मुद्रा अर्जित करने का प्रमुख साधन होता है और तटकर-नीति पूंजी निर्माण में एक महत्वपूर्ण योगदान देती है। दूसरी ओर विदेशी मुद्रा की प्राप्ति विदेशी सहायता द्वारा भी हो सकती है। विदेशी सहायता तीन प्रकार से प्राप्त होती है—निजी ऋण, सरकार द्वारा प्राप्त ऋण तथा समता अंश-पूंजी (Equity Share Capital) में विनियोजन के रूप में।

आधुनिक युग में निजी रूप से विदेशों से ऋण प्राप्त करने की विधि अत्यन्त कम उपयोग की जाती है। विदेशों की पूंजी विपणियों (Capital Markets) में पूंजी प्राप्त करने वाले देशों द्वारा बॉन्ड निर्गमित करके पूंजी प्राप्ति विधि भी अब प्राचीन समझी जाती है एवं कम प्रयोग होती है। पूंजी-दाता देशों की सरकारें ऐसी वित्तीय संस्थाओं का संचालन करती हैं जो अर्ध-विकसित राष्ट्रों की सरकारों को पूंजी उपलब्ध कराती हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण अमेरिका का आयात निर्यात अधिकोष (Import Export Bank of U S A) है। यह संस्था सदैव अपने हितों को दृष्टिगत कर पूंजी प्रदान करती है और ऐसी योजनाओं को पूंजी देना हितकर समझती है जिनमें आयोपार्जन शीघ्र सम्भव होता है तथा विनियोजित पूंजी का शोधन उन योजनाओं से सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। परन्तु अर्ध विकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास हेतु सर्वाधिक प्राथमिकता आधारभूत प्रारम्भिक सेवाओं, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा गृह व्यवस्था आदि को प्रदान की जाती है। इन आधारभूत सेवाओं के विकास से प्रत्यक्ष रूप से अल्पकाल में आय अर्जित नहीं होती है। लगभग यही स्थिति ऋण प्रदाय के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय विकास एवं पुनर्निर्माण अधिकोष (International Bank for Reconstruction and Development) की है। इसका भी पूंजी सुरक्षा का अधिक महत्त्व देना स्वाभाविक है फिर भी इन दोनों संस्थाओं ने अर्ध विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास में बड़ी मात्रा में सहयोग प्रदान किया है।

आधुनिक युग में एक देश की सरकार से दूसरे देश की सरकार के लिए ऋण तथा अनुदान देने की प्रथा अधिक महत्वपूर्ण है। अमेरिका चतुर्मुखी

कार्यक्रम (American Point Four Programme) के अन्तर्गत अर्ध-विकसित राष्ट्रों को अमेरिका द्वारा सराहनीय आर्थिक सहायता प्रदान की गयी है। इसी प्रकार साम्राज्यवादी राष्ट्रों—विशेषकर ब्रिटेन द्वारा भी पिछड़े हुए राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि ने भी दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी राष्ट्रों ने आर्थिक विकास हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की है।

कुछ समय से अर्ध-विकसित राष्ट्रों की योजनाओं के साधारण अंशों मे भी विदेशी पूँजी-विनियोजन करने को अधिक महत्व प्राप्त हुआ है। इस प्रकार की विदेशी पूँजी के अनेक लाभ हैं। विदेशी पूँजी-विनियोजन द्वारा अर्ध-विकसित राष्ट्रों मे *विदेशी व्यावसायिक तथा औद्योगिक इकाइयों की स्थापना* होती है जिससे तांत्रिक ज्ञान का भी हस्तांतरण पिछड़े देशों को हो जाता है। *साधारण अंशों पर लाभ वास्तव मे उपार्जित हो जाने के उपरान्त* दिया जाता है। इस प्रकार पूँजी पर दिये जाने वाले लाभ का भार अर्थ-व्यवस्था पर नहीं पड़ता। साथ ही इस प्रकार के विनियोजन के परिणाम-स्वरूप मुद्रा तथा वस्तुओं का आयात होने के कारण मुद्रा-स्फीति के दबाव मे भी कमी हो जाती है।

परन्तु इसके विपरीत समता अंश-विनियोग प्राप्त करने से देश का अनवरत उत्तरदायित्व (Recurring Liability) बढ़ जाता है क्योंकि प्रत्येक वर्ष *लाभांश के शोधनार्थ विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है जो कि निर्यात* आधिक्य द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है। इस प्रकार निर्यात-आधिक्य का अधिकांश लाभांश शोधन मे प्रयोग कर लिया जाता है और देश की अपनी पूँजी संचय करने की शक्ति को क्षति पहुँचती है। फिर भी आधुनिक युग मे लगभग सभी अर्ध विकसित राष्ट्र विदेशी पूँजी-विनियोग को आवश्यक सुविधाएं प्रदान करते हैं क्योंकि राजनीतिक भय कुछ सीमा तक कम हो गया है। अब यह निश्चित रूपेण सर्वमान्य तथ्य है कि अर्ध विकसित राष्ट्रों के संतुलित बहुमुखी आर्थिक-विकास मे विदेशी पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान है।

द्वितीय अवस्था—वित्तीय क्रियाशीलता (*Financial Activity*—The Second Stage of Capital Formation)

अर्ध-विकसित राष्ट्रों मे व्यापारी वर्ग ही प्रायः विनियोग-सुविधाओं का उपयोग कर पाते हैं क्योंकि इन्हें वित्तीय विषयों का प्राविधिक ज्ञान होता है तथा विपणि की सूचना भी यथासमय प्राप्त होती रहती है। परन्तु बचत की

क्रिया जनसमुदाय के विभिन्न वर्गों द्वारा का जाती है ग्रन्तर केवल मात्रा का होता है। धनी वग की बचत की राशि व्यक्तिगत एव सम्पूर्ण दोनो ही रूपा से निर्धन वग की ग्रपेक्षा ग्रधिक होती है निधन वग की व्यक्तिगत बचत यद्यपि ग्रत्यन्त न्यून होती है पर न इस वग की जनसख्या ग्राधिक्य के कारण सम्पूर्ण रूप से बचत महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार उन लोगो द्वारा भी बडी मात्रा म बचत की जाती है *जिनका वित्तीय विषयो का ज्ञान नहीं क समान होता है* किन्तु यह बचत प्रभावशील वित्तीय विधान सस्थाग्रा साधना तथा सुविधाग्रो के ग्रभाव म विनियोजन के द्वार तक पहुचन म ग्रसमय रहती है ग्रौर इस प्रकार बचत करन वाला ग्रौर विनियोक्ता म पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित न हो सकने के कारण बचत राशि का उपयोग पू जी निर्माण क हेतु नहीं हो पाता। विकसित राष्ट्रो म वित्तीय क्रियाग्रा की क्रियाशीलता ग्रत्यधिक होती है तथा विभिन्न वित्तीय साधना जसे ग्रधिकोष व्यवस्था जीवन-बीमा विनियोजन ट्रस्ट ग्रादि द्वारा बचत करन वाला तथा व्यवसाय ग्रौर उद्योगो के मध्य सम्पक स्थापित कर दिया जाता है। ये वित्तीय सस्थाए विनियोजन सम्बन्धी सूचनाग्रा का प्रसार एव विज्ञापन करती ह तथा मध्यस्थ के रूप म महत्वपूर्ण शृ खला का काय करती है विनियोजन की सरलता म वृद्धि करती हैं जोखिम पूर्ण विनियोजन का जो कि उद्योगपतियो द्वारा बचत करन वाला के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते है बचत करने वालो की सुविधा एव सुरक्षानुसार सुरक्षित सम्पत्ति का रूप प्रदान करती है। कायशील तथा विस्तत वित्तीय व्यवस्था से व्यापार तथा उद्योगो के ग्रथ प्रबन्धन की लागत भी कम पडती है साथ ही राष्ट्रीय बचत को ग्रौद्योगिक तथा भौगोलिक दृष्टि से ग्रधिकतम गतिशीलता प्राप्त होती है। बचत की गतिशीलता स तात्पय है न्यूनातिन्यून जोखिम तथा व्यय पर विनियोजन का एक उद्योग ग्रथवा व्यवसाय से ग्रन्य उद्योग ग्रथवा व्यवसाय मे ग्रथवा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र म हस्तातरण सम्भव होना। नियोजित ग्रथ व्यवस्था म राज्य भी एक महत्वपूर्ण वित्तीय सस्था का काय सम्पादित करता है। उदाहरणाथ भारत म डाक विभाग, शासकीय कोषालय जीवन बीमा निगम ग्रधिकोष ग्रादि विनियोजन सम्बन्धी सुविधाए प्रदान करते हैं।

तृतीय ग्रवस्था—विनियोजन (*Investment—The Third Stage of Capital Formation*)

किसी व्यक्ति की किसी निश्चित ग्रवधि की बचत दो घटको पर निभर होती है। प्रथम उस निश्चित ग्रवधि म प्राप्त ग्राय तथा द्वितीय उस निश्चित ग्रवधि मे सेवाग्रा ग्रौर वस्तुग्रा पर किया गया व्यय। जब वह ग्रपने व्यय से

अधिक आयोपार्जन करता है, तभी उसकी पूंजी मे वृद्धि सम्भव है। आधुनिक काल मे लगभग सभी व्यक्तियो को पूंजी के सचयार्थ कतिपय सुविधाओ का त्याग करना पडता है। ऐसे भाग्यशाली विरले ही हैं जिनकी आय से पर्याप्त जीवन-स्तर बनाये रखने के पश्चात् भी कुछ बचत हो जाती है। यही सिद्धान्त एक राष्ट्र पर भी सम्यक्रूपेण कार्यान्वित होता है। यदि हम किसी राष्ट्र की एक निश्चित काल की व्यवस्था का अध्ययन करें तो हमे ज्ञात होगा कि पूंजीगत वस्तुओ का क्रय उपभोग अथवा सम्भावी उपभोग को दबा कर ही किया जाता है।

राष्ट्रीय आय मे से उपभोग तथा विनियोजन का भाग विनियोजन की लागत (Cost) तथा लाभ (Benefits) का तुलनात्मक अध्ययन निश्चित करता है। विनियोजन की लागत मे उन वस्तुओ के त्याग को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो कि विनियोजित आय की राशि से तत्कालीन इच्छाओ की सम्पूर्ति हेतु क्रय की जा सकती थीं। दूसरी ओर विनियोजन के लाभ मे उन अतिरिक्त वस्तुओ को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो विनियोग के परिणाम-स्वरूप भविष्य मे प्राप्त हो सकें। एक चतुर व्यक्ति आय के विनियोजन-अंश को निश्चित करने के पूर्व विनियोजनार्थ किये गये त्याग तथा उसके परिणामस्वरूप प्राप्य भविष्यत् सुविधाओ का तुलनात्मक अध्ययन करता है। एक राष्ट्र के लिए भी यही विचारधारा लागू होती है। राष्ट्र के लिए विनियोग की लागत का तात्पर्य उन उपभोग की वस्तुओ से है जो अतिरिक्त विनियोजन न करने की दशा मे उत्पादित की जा सकती हों तथा विनियोजन-लाभ का अर्थ उन उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन की सम्भावना से है जिनका उत्पादन अतिरिक्त विनियोजन द्वारा ही भविष्य मे किया जा सकता है। आधुनिक जटिल अर्थ-व्यवस्था के युग मे बचत करने का निश्चय कुछ विशेष विचारधाराओ, विशेषकर भविष्य की सुरक्षा के लिए किया जाता है तथा विनियोजन का निश्चय कुछ अन्य उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति मोटर-गाडी क्रयार्थ बचत करता है जिसे वह बैंक मे जमा कर देता है; बैंक उस बचत को ऐसे उद्योगपति को उधार दे देता है जो मोटरगाडी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यवसाय मे उस पूंजी को विनियोजित करता है। इस प्रकार बचत तथा विनियोजन करने के उद्देश्यो मे गहन अन्तर होता है तथा इस अन्तर के निवारणार्थ वित्तीय सस्थाएं जैसे अधिकोष, विनियोजन सस्थाएं, बीमा प्रमडल आदि मध्यस्थ का कार्य करती है।

आय तथा विनियोजन का सम्बन्ध (Relation Between Income and Investment)

कीन्स के सिद्धान्त (Keynesian Theory) के अनुसार विनियोजन मे

पुनरर्थापन होना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार किसी देश मे अधिक गति-वृद्धि-सूचक (accelerator) होने पर उसकी पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगो तथा सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे उच्चावचन होना अनिवार्य है, जिससे आय और रोजगार की स्थिति मे परिवर्तन होते हैं।

किसी भी राष्ट्र के तान्त्रिक ज्ञान के विकासानुकूल ही गति-वृद्धि-सूचक की सीमाएँ निश्चित होती हैं। सामान्यत उन्नतिशील देशो मे गति-वृद्धि-सूचक अधिक होती है और अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे कम। इस प्रकार उन्नत राष्ट्रो मे आय म वृद्धि करने तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने के लिए अधिक विनियोजन की आवश्यकता होती है क्योकि इनमे गति-वृद्धि सूचक अधिक होती है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो म, जहाँ उपभोग करने की सीमान्त क्षमता अधिक होती है, समस्त उत्पादन अथवा आय का अत्यल्प भाग विनियोजित होता है और इस प्रकार शुद्ध विनियोजन (Net Investment) मे परिवर्तन होने पर रोजगार की स्थिति पर कम प्रभाव पडता है। इसके विपरीत सम्पन्न राष्ट्रो मे उपभोगेच्छा कम होती है और आय का अधिकांश विनियोजित किया जाता है। ऐसी परिस्थिति मे विनियोजन की स्थिति म परिवर्तन होने पर रोजगार पर अधिक प्रभाव पडता है।

कीन्स के उपर्युक्त सिद्धान्त उन्नत राष्ट्रो म लागू हो सकते हैं परन्तु अर्ध-विकसित राष्ट्रो की परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न होने के कारण उपर्युक्त सिद्धान्तो को आधार नही बनाया जा सकता। कीन्स के सिद्धान्तानुसार अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे विनियोजन म तुलनात्मक उच्चावचन द्वारा ही पूर्ण रोजगार की स्थिति सम्भव है। पूर्ण रोजगार की स्थिति म ही अधिकतम उत्पादन होता है। अर्ध विकसित राष्ट्रो पर, जहाँ की अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान होती है, पूँजीगत सामग्री की न्यूनता होती है, तान्त्रिक ज्ञान का अधोस्तर होता है, पारिश्रमिक पर कार्य करने वाले श्रमिको की सख्या कम तथा स्वय एव परिवार के लिए काय करने वालो की सख्या अधिक होती है, कीन्स के सिद्धान्त पूर्णतः लागू नहीं होते। विनियोजन मे वृद्धि होने पर आय तथा रोजगार मे वृद्धि होती है परन्तु इस वृद्धि का अधिकांश उपभोग पर व्यय होता है। उपभोग-वृद्धि मे भी कृषि-उत्पत्ति का स्थान प्रमुख होता है। कृषि उत्पादन के मूल्यो मे वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार कृषक को अपने उत्पादन का अधिक मूल्य प्राप्त होता है। कृषक इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए अधिक अच्छे अन्नो का उपयोग करने लगता है और इस प्रकार अन्य क्षेत्रो की आवश्यकता-सम्पूर्ति

हेतु कृषि-उत्पादन बाजार मे कम उपलब्ध होता है। कृषक के लाभ मे वृद्धि होने पर कृषक अपने उत्पादन को एक निश्चित सीमा के पश्चात् माँग के समतुल्य बढा नहीं सकता क्योंकि क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है। साथ ही कृषि-उद्यम अधिकतर प्रकृति की कृपा का याचक है और अनुकूल जलवायु होने पर ही उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि सम्भव है, जब कि प्रतिकूल प्रकृति-दृष्टि समस्त आशाओं पर तुषारापात करने मे भी नहीं हिचकती। इनके अतिरिक्त इन देशो के कृषक को आवश्यक तान्त्रिक एव अन्य सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं होतीं ताकि वह कृषि उत्पादन म वृद्धि कर सके। इस प्रकार कृषक की आय म वृद्धि होने पर भी तथा कृषि-उत्पादन स अधिक लाभोपार्जन होने हुए भी कृषि उत्पादन म माँगानुसार वृद्धि नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप न तो रोजगार म वृद्धि होनी है और न वास्तविक विनियोजन म ही कोई सुधार होता है। इस प्रकार विनियोजन की वृद्धि होने पर आय म मौद्रिक दृष्टिकोण (Monetary View-point) से पर्याप्त वृद्धि हो जाती है किन्तु वास्तविक आय ज्यो की त्यो रहती है। इसक साथ ही कृषक अपनी अतिरिक्त आय का कुछ भाग कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो के उत्पादन पर भी व्यय करत है, परन्तु उन क्षेत्रो मे उत्पादन वृद्धि कठिन होती है, क्योंकि उपभोग वस्तुओं के उद्योगो की उत्पादन-क्षमता अधिक नहीं होती, कच्चे माल की पूर्ति म अधिक लोच नहीं होती तथा प्रशिक्षित श्रमिको की कमी होती है। इस प्रकार उपभोग वस्तुओं के उद्योगो की मौद्रिक आय माँग म वृद्धि के कारण बढ जाती है किन्तु उसके उत्पादन तथा रोजगार की स्थिति म विशेष परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार विनियोजन की प्रारम्भिक वृद्धि द्वारा कृषि तथा अन्य क्षेत्रो के उत्पादन तथा रोजगार स्थिति मे विशेष परिवतन नहीं होता है।

अदृश्य बेरोजगारी तथा विनियोजन—*अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे अन्य व्यवसायो की न्यूनता के कारण कृषि ही प्रमुख व्यवसाय होता है और बढती हुई जनसख्या कृषि उद्योग म लगती रहती है। इस प्रकार भूमि पर जनसख्या का भार निरन्तर बढता जाता है। अदृश्य बेरोजगारी म उस जनसख्या को सम्मिलित किया जाता है जिसको उस व्यवसाय स पृथक् कर देन पर भी उस व्यवसाय के उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पडता। भारत जसे कृषिप्रधान एव घनी जनसख्या वाले अर्द्ध विकसित राष्ट्रो म कृषि उद्योग म बहुत बडी जनसख्या केवल इसलिए लगी हुई है कि उसे अन्य व्यवसायो मे लाभप्रद रोजगार प्राप्ति के अवसर उपलब्ध नहीं। कृषि उद्योग म लगी हुई जनसख्या का एक महत्त्वपूर्ण भाग यदि उस व्यवसाय स हटा लिया जाय तो भी उस व्यवसाय के उत्पादन*

पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'अदृश्य बेरोजगार वे व्यक्ति होते है जो स्वय की जोखिम पर कार्य करते हैं तथा जिन साधनो से वे उत्पादन करते हैं, उनकी तुलना मे इनकी सख्या इतनी अधिक है कि यदि उनमे से कुछ अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे कार्य करने के लिए हटा लिये जायँ तो उस क्षेत्र के, जिसमे से उनको हटाया गया है, उत्पादन मे कोई कमी नहीं होगी, यद्यपि उस क्षेत्र का पुनर्सगठन भी न किया जाय और न ही उनका प्रतिस्थापन पूँजी द्वारा किया गया हो।"[1]

यदि कृषि-उद्योग का विकास किया जाय तथा सगठन सम्बन्धी सुधार किये जायँ तो अदृश्य बेरोजगार बारोजगार हो जायँगे। इन बेरोजगारो को रोजगार दिलाने के लिए रोजगार के अवसरो म वृद्धि की जाना अनिवार्य होगा। इनको उपभोग अथवा विनियोजन के क्षेत्र म रोजगार दिया जा सकता है। यदि इन्हे विनियोजन के क्षेत्र मे लगाया जाय तो इनकी आवश्यकतानुसार उपभोग की वस्तुओ की पूर्ति मे वृद्धि करना भी आवश्यक होगा, क्योकि ये अदृश्य बेरोजगार अपने पुराने रोजगार तभी छोडते हैं जब कि उनको नये व्यवसायो मे अधिक पारिश्रमिक प्राप्त होता हो। उनके पारिश्रमिक मे वृद्धि होन से उनके द्वारा उपभोग की वस्तुओ के हेतु की जान वाली माँग म भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार उनकी माँग पूर्ति के लिए उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि होनी चाहिए। यदि उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है तो उनके मूल्यो म वृद्धि हो जायगी और अदृश्य बेरोजगारो को अन्य व्यवसायो मे कार्य करन का कोई आकर्षण नहीं होगा और इस प्रकार न तो अदृश्य बेरोजगारी का निवारण ही सम्भव हागा और न कृषि उद्योग मे सुधार ही। दूसरी ओर विनियोजन के क्षेत्र के उत्पादन मे वृद्धि करन पर पूँजीगत सामग्री का उपभोग होने के लिए भी उपभोग की वस्तुओ के उद्योग का विकास होना चाहिए अन्यथा विनियोजन का क्षेत्र दीघकाल मे शिथिल हो जायगा और इसकी लाभोपार्जन शक्ति क्षीण हो जायगी। अर्ध विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास

1 The disguised unemployed are those persons who work on their own account and who are so numerous relatively to the resources with which they work, that if a number of them were withdrawn for work in other sector of the eco nomy the total output of the sector from which they were withdrawn would not be diminished even though no significant reorganisation occurred in this sector and no significant substitution of capital " (U N Committee, *Report on Measures of Economic Development of Under-developed Countries*, p 7.

का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार की प्राप्ति होती है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक विनियोजन का कार्यक्रम निश्चित किया जाता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करन के लिए उपभोग तथा विनियोजन दोनो ही क्षेत्रो का विकास होना आवश्यक है। परन्तु शीघ्र आर्थिक विकास हेतु विनियोजन के क्षेत्र का शीघ्र विकास भी अनिवार्य है। साथ ही बढती हुई जनसख्या को तथा अदृश्य बेरोजगारो को रोजगार प्राप्त होन के उपरान्त उनको आधारभूत आवश्यकताओ की सम्पूर्ति करने के लिए उपभोग-क्षेत्र का विकास भी आवश्यक है। साधनो की न्यूनता के कारण दोनो क्षेत्रो का समानान्तर विकास होना सम्भव नहीं होता है और इसलिए उपभोग के क्षेत्र का विकास कुछ समय तक सीमित रूप से किया जाता है और उपभोग की वस्तुओ की माँग पर राज्य द्वारा नियन्त्रण किया जा सकता है। इस प्रकार बाध्य बचत होती है और विनियोजन के साधनो मे वृद्धि होती है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि रोजगार तथा विनियोजन म घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनो को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। विनियोजन का विकास निश्चित करन के लिए केवल अतिरिक्त उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन ही पर्याप्त नहीं प्रत्युत् बाध्य बचत भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

प्रो० नर्क्स (Prof Nurkse) ने अदृश्य बेरोजगारी पर अपने सिद्धान्त स्पष्ट करते हुए बताया है कि कृषक के परिवार मे जो अनुत्पादक अदृश्य बेरोजगार सदस्य होते हैं, उनको आधारभूत उपभोग की वस्तुए परिवार के समस्त कृषि उत्पादन मे से ही दी जाती है। इस प्रकार उत्पादक सदस्यो को अपनी उपभोग की आवश्यकताओ का त्याग करना पडता है। इस प्रकार उत्पादक सदस्यो द्वारा अनुत्पादक सदस्यो के भरण पोषणार्थ जो बचत की जाती है, इसे प्रो० नर्क्स न सम्भाव्य बचत' (Saving Potential) का नाम दिया है। सम्भाव्य बचत के होते हुए भी इस प्रकार आधारभूत कृषि-क्षेत्र मे जन समुदाय की आय अत्यन्त न्यून होती है और सगठित औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओ की माँग कम होती है। ऐसी परिस्थिति मे आर्थिक विकास तभी सम्भव हो सकता है जबकि इस सम्भाव्य बचत का उपयोग सगठित औद्योगिक क्षेत्र के विकास हेतु किया जाय तथा अदृश्य बेरोजगारो को कृषि के क्षेत्र से हटा कर अन्य क्षेत्र मे रोजगार दिया जाय। परन्तु इन अदृश्य बेरोजगारो की ग्रामीण जीवन के प्रति विशेषाकर्षण होता है तथा वे अपने परम्परागत निवास-स्थानो को छोडना नहीं चाहते। प्रो० नर्क्स ने इसलिए यह सुझाव दिया है कि इन अदृश्य बेरोजगारो को प्रारम्भिक अवस्था मे साधारण योजनाओ, जैसे सडक-निर्माण, बाँध-निर्माण, नहर निर्माण आदि मे रोजगार देना चाहिए और

नियोजन-तरु का सफलतापूर्वक लहलहाना निहित है। जड का कोई भी अग कीट प्रभावित होना *अर्थात् लेशमात्र अविवेक भी भयकर परिणामो का कारण* हो सकता है और नियोजन-वृक्ष के सशक्त तने की कल्पना करना भी निरर्थक हो जायगा, उसका निर्माण तो दूर रहा। सीमित आय वाले एव अगणित आवश्यकताओ वाले एक व्यक्ति के सम्मुख जो समस्याएँ उपस्थित होती हैं, वे यदि कण कण मिलकर सामूहिक रूप धारण करें तो वही रूप राष्ट्र के समक्ष एक समस्या के समतुल्य होगा क्योंकि राष्ट के सम्मुख अधिकतम सामाजिक हित प्रश्नवाचक होता है न कि व्यक्तिगत स्वार्थ सत्वर बहुमुखी आर्थिक विकास उद्देश्य होता है *न कि एकागी उपभोग मात्र भविष्यत् स्वप्न भी साकार करने* होते है—एकमात्र वर्तमान सन्तुष्टि ही नहीं। एतदर्थ प्रत्येक समस्या का आमूल गहन अध्ययन परिणामो की जानकारी, तीव्रता का अनुमोदन एव विश्लेषणात्मक व्याख्या नियोजन एक आवश्यक अग है।

समस्या के दो पहलू—*प्राथमिकता की समस्या का अध्ययन दो वर्गों मे* विभाजित किया जा सकता है प्रथम अथ साधनो की उपलब्धि तथा द्वितीय उपलब्ध अथ साधनो का वितरण।

अर्थ की उपलब्धि पर ही विकास योजनाओ का कार्यान्वित किया जाना निर्भर रहता है, अत अथ को सवप्रथम प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। अथ सम्बधी प्राथमिकताएँ अन्य कृषि उद्योग आदि सम्बन्धी प्राथमिकताओ से भिन्न होती हैं क्योंकि *आर्थिक प्राथमिकताओ मे राष्ट के अथ साधनो को* एकत्रित करन की ओर ध्यान दिया जाता है। आर्थिक प्राथमिकताओ के दो पहलू है—राजकीय तथा निजी। राजकीय क्षत्र मे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो एव स्थानीय सस्थाओ द्वारा अधिकतम अथ साधन प्राप्त करन का प्रयत्न किया जाता है। कर व्यवस्था को पुनर्संगठित किया जाता है जिसस कर को कम से कम छिपाया जा सके तथा उसके क्षत्र म अधिकतम जनसख्या को लाया जा सके। अतिरिक्त करारोपण भी सम्भव है ताकि साधनो की कमी को पूरा किया जा सके। कर-वृद्धि तथा नवीन करारोपण के समय कतिपय आधार-भूत तथ्यो को दृष्टिगत करना आवश्यक है। प्रथम कर द्वारा केवल समर्थ एव उपयुक्त व्यक्तियो पर कर भार पडना चाहिए ताकि वे अपना जीवन स्तर बनाये रख सकें। द्वितीय, कर द्वारा जनता मे नये व्यवसायो की स्थापना करन तथा अधिक उत्पादन एवं लाभोपाजन के प्रति रुचि मे कमी न आये। तृतीय, कर-प्राप्ति के लिए दुराचारी कार्यों को वैधानिक सरक्षण प्राप्त नहीं होना चाहिए। अन्तत कर द्वारा धन के समान वितरण को सहायता प्राप्त होनी चाहिए। कर के अतिरिक्त राज्य के अन्य आर्थिक साधनो, जैसे जनता से ऋण, मुद्रा-

प्रसार आदि के हेतु भी निश्चय करना आवश्यक होता है। विदेशी पूंजी प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया जाना आवश्यक होता है। योजना के कार्यक्रमो के आधार पर यह निश्चय किया जाता है कि कितनी विदेशी पूंजी की आवश्यकता होगी और इसको किन किन देशो स उचित शर्तों पर प्राप्त किया जा सकता है।

आधुनिक युग मे निजी क्षेत्र को भी नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। *राजकीय साधन भी निजी क्षेत्र से ही प्राप्त होते हैं।* जब तक निजी क्षेत्र द्वारा उपभोग को सीमित कर बचत की मात्रा मे वृद्धि नहीं की जायगी, तब तक विनियोजन के कार्यक्रमो को मूर्तरूप प्रदान करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे जनता को विवशतापूर्ण बचत हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता।

अर्थ-साधनो का आवटन—प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक समस्याएं यद्यपि कुछ सीमा तक समान होती हैं तथापि उनकी तीव्रता प्रत्येक राष्ट्र मे भिन्न होती है। समस्या की तीव्रतानुसार ही साधनो का आवटन किया जाता है। अतएव एक राष्ट्र की निश्चित प्राथमिकताएं दूसरे राष्ट्र के लिए आवश्यक रूपेण लाभकारी नहीं हो सकती हैं। *प्राथमिकता का अर्थ यह कभी भी नहीं समझना* चाहिए कि इसम केवल एक क्षेत्र के विकास को ही महत्त्व दिया जाता है। आर्थिक नियोजन म राष्ट्र के सभी क्षेत्रो के विकास के लिए प्रयत्न किया जाता है परन्तु उन क्षत्रो को, जिनका विकास होना अत्यावश्यक हो, साधनो का अपेक्षाकृत अधिक भाग मिलना चाहिए और अन्य क्षेत्रो को उनकी तीव्रतानुसार साधनो का वितरण किया जाना है। साधनो के वितरण के सम्बन्ध म प्राथमिकताओ का अध्ययन निम्नलिखित समूहो म किया जा सकता है—

(क) क्षेत्रीय प्राथमिकताएं (Regional Priorities)

(ख) उत्पादन अथवा वितरण को प्राथमिकता (Priority either to production or to Distribution)

(ग) विनियोजन अथवा उपभोग को प्राथमिकता (Priority either to Investment or Consumption)

(घ) उद्योग अथवा कृषि को प्राथमिकता (Priority either to Agriculture or to Industry)

(ङ) सामाजिक प्राथमिकताएं (Social Priorities)

उपर्युक्त विभागो का अध्ययन पृथक्-पृथक् किया जाना विषय को सरल बनाने मे अति सहायक होगा। हम इन समूहो का विस्तृत किन्तु पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

(ग) विनियोजन अथवा उपभोग को प्राथमिकता—प्रजातान्त्रिक समाज मे विनियोजन तथा उपभोग मे प्राथमिकता निश्चित करना सबसे कठिन है। जनसमुदाय सदैव वर्तमान सुविधाओ को महत्व देता है जबकि नियोजन अधिकारी भविष्यगत् हित को अधिक महत्त्व देता है और इसीलिए अधिकतम साधनो को भविष्यगत् उपभोग के लिए विनियोजन करना चाहता है। जनसमुदाय को उपभोग कम करके अधिक बचत करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही *जनसमुदाय का जीवन स्तर न्यूनतम होता है तथा जीवन-निर्वाह* मात्र किसी भाँति सम्भव हो पाता है। अत उपभोग को और कम करना साधारण जनता की बडी कठिनाइयो का कारण बन जाता है और प्रारम्भिक काल मे इनका जीवन-स्तर और भी दयनीय हो जाता है जिससे राष्ट्रीय सरकार के प्रति दुर्भावना उत्पन्न हो जाती है। नियोजन की सफलता हेतु विनियोजन आवश्यक है और विनियोजन के लिए जनता द्वारा उपभोग मे कमी करना आवश्यक होता है। नियोजन अधिकारी को इसलिए प्रारम्भिक काल मे आन्तरिक बचत तथा विनियोजन के अवसर को विदेशी सहायता द्वारा पूरा करने की आवश्यकता *हो जाती है। विनियोजन के कार्य-क्रम के साथ उपभोक्ता-वस्तुओ की पूर्ति में* भी वृद्धि करना आवश्यक होता है।

(घ) कृषि अथवा उद्योग को प्राथमिकता—प्राय सभी अर्ध विकसित राष्ट्रो मे कृषि एक प्रमुख व्यवसाय है और इनकी अधिकाश जनसख्या भूमि से ही अपना जीविकोपाजन करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अर्धविकसित राष्ट्रो मे कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो का पर्याप्त विकास नहीं होता। जनसमुदाय को अपने जीवन निर्वाह के लिए कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो म रोजगार के साधन उपलब्ध नहीं होते। ऐसी परिस्थिति मे आर्थिक विकास का समारम्भ करने के लिए नवीन तथा अतिरिक्त औद्योगिक तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे रोजगार के अवसरो को उत्पन्न करना आवश्यक होता है, जिससे श्रम को अन्यत्र रोजगार दिया जा सके। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र के उत्पादन मे भी पर्याप्त वृद्धि हो। इस हेतु कृषि मे लगे हुए श्रमिको की उत्पादन-शक्ति मे वृद्धि करना और कृषि-विधियो में आवश्यक सुधार एव कृषि-व्यवसाय का पुनर्सगठन वाछनीय होता है। कृषि उत्पादन मे इतनी वृद्धि करना आवश्यक होगा कि जिससे कृषको के जीवन-स्तर में उन्नति के साथ-साथ अन्य व्यवसायो मे लगे व्यक्तियो को पर्याप्त खाद्य एव *अन्य कृषि-पदार्थ प्राप्त होते रहे तथा निर्यात-योग्य कृषि-उत्पादन का निर्यात* करके पूँजीगत वस्तुओ के आयात हेतु आवश्यक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।

अदृश्य बेरोजगारी का पता तभी चलता है जबकि उसके उत्पादक उपयोग

यदि प्रारम्भिक काल से ही बृहद् उद्योगो की स्थापना को प्राथमिकता दी जानी है परन्तु कृषि के क्षेत्र से हटाये गये अतिरिक्त श्रम को निपुण (Skilled) तथा अर्ध-निपुण (Semi Skilled) श्रम मे इतने शीघ्र परिवर्तित किया जाना सम्भव नहीं। साथ ही दृढ औद्योगिक आधार की स्थापना के लिए पूंजीगत वस्तुओ को आवश्यकता होती है और इन पूंजीगत वस्तुओ के निर्माण के लिये भी पूंजीगत वस्तुओ की आवश्यकता होती है। किसी भी अर्ध-विकसित राष्ट्र मे पूंजीगत वस्तुओ के उद्योग इतने विकसित नहीं होते और न अल्पकाल मे उनका इतना विकास ही किया जा सकता है कि वे राष्ट्र का औद्योगीकरण करने के लिए आवश्यक पूंजीगत सामग्री प्रदान कर सकें। ऐसी परिस्थिति मे पूंजीगत सामग्री का आयात करके ही औद्योगिक उत्थान सम्भव हो सकता है। पूंजीगत सामग्री के आयात का शोधन करने के लिए कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए जिसके निर्यात द्वारा आवश्यक्तानुकूल वैदेशिक मुद्रा अर्जित की जा सके। इसके साथ ही निपुण तथा अर्ध-निपुण श्रमिको को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है अत उनकी उपभोग आवश्यकताओ मे भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार औद्योगिक विकास के लिए कृषि का इतना विकास होना आवश्यक होगा कि उसके द्वारा विदेशी मुद्रा पर्याप्त मात्रा मे अर्जित की जा सके तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे लगे अन्य श्रमिको को आवश्यक उपभोग-सामग्री उपलब्ध हो सके। विलासिता की वस्तुओ के आयात को प्रतिबन्धित करके तथा कलात्मक वस्तुओ के निर्यात से पूंजगत सामग्री का आयात कुछ सीमा तक सम्भव हो सकता है।

दूसरी ओर एसे राष्ट्र मे जहाँ अतिरिक्त श्रम वर्ष मे केवल कुछ ही समय के लिए बेकार रहता हो, उसको लाभप्रद रोजगार का आयोजन करने के लिए स्थानीय रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करना आवश्यक होगा। उनको भूमि से स्थायी रूपेण पृथक् नहीं किया जा सकता क्योकि उनके कृषि से हटाये जाने पर कृषि-उत्पादन मे कमी होने की सम्भावना रहती है। ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास की योजनाओ मे इस अतिरिक्त श्रम को कार्य देना उचित होगा। छोटी-छोटी सिंचाई-योजनाओ, दलदली भूमि को कृषि योग्य बनाने, सहायक मार्गों का निर्माण करने, अच्छे कृषि औजारो का निर्माण करने, पेय जल का प्रबन्ध करने आदि कम पूंजी की आवश्यकता वाली योजनाओ मे अतिरिक्त श्रम को सुविधापूर्वक रोजगार दिया जा सकता है। इस प्रकार इन कार्यक्रमो को अधिक प्राथमिक्ता देना आवश्यक है। ग्रामीण तथा गृह-उद्योगो का विकास भी मौसमी तथा अदृश्य बेरोजगारो को लाभप्रद कार्य दिलाने मे सहायक होता है। इन उद्योगो के विकास हेतु तान्त्रिक प्रशिक्षण, इनके उत्पादन का प्रमापी-

प्राचीन अर्थशास्त्रियो (Classical Economists) ने औद्योगिक विकास के तीन क्रम निश्चित किये है— (१) प्राथमिक कच्चे माल का उत्पादन (२) उनका उपभोग की वस्तुओ मे परिवर्तन (३) पूँजीगत सामग्री का उत्पादन। अन्तर्राष्ट्रीय विकास बेंक (I. B R. D) तथा अमेरिकी सरकार ने भी श्रीलका, मिस्र, कोलम्बिया तथा अन्य अर्ध विकसित राष्ट्रो को छोटे उद्योगो को प्राथमिकता प्रदान करने का सुझाव दिया है। परन्तु आधुनिक युग मे केवल आर्थिक विचारधाराओ के आधार पर ही आर्थिक योजनाओ का निर्माण नहीं होता। योजनाओ । प्राथमिकता निश्चित करते समय राजनीतिक तथा सामाजिक विचारधाराओ को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। लघु उद्योगो के विकास को प्राथमिकता मिलना तव अधिक महत्त्वपूर्ण है जबकि राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था मे निजी साहस का विशेष स्थान प्राप्त होना है और राज्य केवल इनकी सहायता करने, प्रशिक्षण, सगठन, सरक्षण तथा आधारभूत सेवाओ के आयोजन करने तक ही अपना कार्यक्षेत्र सीमित रखता है। परन्तु निजी क्षेत्र (Private Sector) को विशेष स्थान देने से नियोजन की सफलता सन्देहजनक हो जाती है क्योकि निजी क्षेत्र सर्वंव अपने व्यक्तिगत लाभ को अधिक महत्त्व देता है। जब राज्य औद्योगिक क्षेत्र मे सक्रिय भाग लेता है और राजकीय क्षेत्र के विकास तथा वृद्धि को विशेष महत्त्व दिया जाता है, तब वृहद् उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी जा सकती है। वृहद् उद्योगा का प्राथमिकता दने के पूर्व यह भी दख लेना चाहिए कि राज्य की स्वय की नियोजन सम्बन्धी शक्तियाँ तथा अर्थ-व्यवस्था से निजी क्षेत्र का कम किये जाने पर उद्भूत विरोध को वहन करने की शक्तियाँ कितनी है।

वृहद् उद्योगो म कृषि क्षेत्र के अधिक श्रम को कार्य देन हेतु कृषि का अधिकतम विकास करना आवश्यक होगा क्योकि कृषि-उत्पादन से वढती हुई जनसख्या की खाद्यान्न आवश्यकताओ की पूर्ति होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है अन्यथा खाद्यान्न विदेशो से आयात करने की आवश्यकता होगी और विदेशो से पूँजीगत सामग्री के आयात मे बाधा पड जायगी। इसके साथ कृषि द्वारा वृहद् उद्योगो के कच्चे माल की पूर्ति भी होनी चाहिए। जब राष्ट्र मे खाद्यान्नो की न्यूनता हो तो वृहद् उद्योगो की स्थापनार्थ पूँजीगत सामग्री विदेशी ऋण द्वारा ही आयात की जा सकती है, जिसको खोजने का भार भी अल्प काल मे कृषि पर ही पडना सम्भव है। भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र म कृषि-उत्पादन मे वृद्धि हेतु रासायनिक उर्वरक, वैज्ञानिक नवीन कृषि विधियाँ तथा अन्य अच्छे औजारो की आवश्यकता होती है। इन सभी की पूर्ति के लिए उद्योगो की स्थापना आवश्यक है। इस प्रकार कृषि तथा उद्योगो के विकास मे

इतना पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है कि किसी भी एक का अन्य की सहायता की अनुपस्थिति मे विकास असम्भव है। पूर्णत आर्थिक विचारधाराओ के आधार पर भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र मे कृषि विकास को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

(ड) सामाजिक प्राथमिकताएँ—नियोजन अधिकारियो को योजना के कार्य-क्रम निश्चित करते समय यह निर्धारित करना भी आवश्यक होगा कि साधनो का कितना भाग उत्पादक सामग्री मे तथा कितना भाग जनसमुदाय पर विनियोजित किया जाना चाहिए। उत्पादक सामग्री उसी समय हितकर हो सकती है, जब जनसमुदाय को स्वास्थ्य, शिक्षा एव गृह सम्बन्धी सुविधाएँ भी आयोजन द्वारा प्रदान की जायें। अधिकतर यह विचार किया जाता है कि जनसमुदाय के लिए आधारभूत सुविधाओ का आयोजन करने के लिए जो विनियोजन किया जाता है, वह अनुत्पादक होता है। परन्तु प्रोफेसर शुल्ज (Prof. Schultz) जो कि लेटिन अमेरिकी राष्ट्रो के विशेषज्ञ समझे जाते हैं, उनके विचार मे जन-समुदाय को उत्पादन का एक घटक समझ कर उनको आधारभूत सुविधाओ का आयोजन करना चाहिए। जनसमुदाय का जीवन-स्तर सुधारने से जनसमुदाय की कार्य-कुशलता मे वृद्धि होती है तथा इन सुविधाओ मे विनियोजित राशि से अधिक लाभ प्राप्त होता है जितना कि पूँजीगत सामग्री मे विनियोजन द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक जनसमुदाय की उत्पादन शक्ति मे पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है, कोई भी आर्थिक विकास पूर्ण तथा सफल नहीं कहा जा सकता। भारत जैसे राष्ट्रो मे पिछडी जातियो के लोगो का सामाजिक सुधार करना आवश्यक होता है। इस प्रकार सामाजिक कार्य-क्रमो को उचित स्थान मिलना आवश्यक होता है।

(४) सामाजिक बाधाएँ एव सामाजिक पूँजी की समस्या—अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे सामाजिक सगठन इस प्रकार का होता है कि लोग अपने परम्परागत व्यवसायो मे ही कार्य करना अधिक उचित समझते हैं। कुछ व्यवसायो और विशेषकर व्यापार सम्बन्धी व्यवसायो को अच्छा नहीं समझा जाता। जाति-भेद अत्यधिक होता है और प्रत्येक जाति एक विशेष व्यवसाय से ही सम्बन्धित होती है। यदि कोई व्यक्ति अपनी जाति द्वारा अपनाये गये व्यवसाय से अन्य व्यवसाय करना चाहता है तो समाज इसकी आज्ञा नहीं देता और उसकी जाति वाले उसे बुरी दृष्टि से देखते हैं। क्षेत्रीय तथा धार्मिक भेद-भाव भी इतना अधिक होता है कि इसके द्वारा आर्थिक विकास मे गम्भीर बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार श्रमिको मे

क्षेत्रीय तथा व्यवसाय सम्बन्धी गतिशीलता का अत्यन्त अभाव होता है। श्रम को अपने परम्पागत निवासस्थान तथा अपनी जाति एव समूह से इतना आकर्षण होता है कि वह समय-समय पर अपने व्यवसाय से अवकाश लेना चाहता है, जिससे वह अपने सम्बन्धियो के साथ रह सके। इससे उद्योगो मे अनुपस्थिति की समस्या अत्यधिक गम्भीर होती है। भावी साहसी जो नवीन औद्योगिक इकाइयो को स्थापित करना चाहते हैं तान्त्रिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं परन्तु उनके जाति भाई उसे अनादर की दृष्टि से देखते है। शारीरिक श्रम तथा हस्तकला का कार्य करना समाज मे हेय समझा जाता है। पुस्तकीय ज्ञान को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। जनसमुदाय मे बाबूगीरी के कामो (White collar Jobs) को अधिक आदर प्राप्त होता है। लोग किसी कार्यालय मे लिपिक बनना पसन्द करते हैं किन्तु अधिक पारिश्रमिक वाले शारीरिक श्रम उनको रुचिकर नही होते। राष्ट्रीयता की भावना मे इस प्रकार की प्रवृत्ति से कुछ कमी हो जाती है। शिक्षा का प्रसार होने से शिक्षित बेरोजगारो की समस्या इसी प्रवृत्ति के कारण दिन प्रतिदिन बढता जाती है। जन-समुदाय मे कोई भी विवेकपूर्ण नवीन परिवर्तन स्वीकार करन की चाह नहीं होती। नियोजन अधिकारियो के अनुमानानुसार कोई भी योजना सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो पाती और विकास की प्रगति मद हो जाती है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे उपयोग की जाने वाली आर्थिक विकास की विभिन्न विधियो ने कुछ विशेष एव महत्वपूर्ण सामाजिक बाधाओ की जानकारी प्रदान की है। लगभग सभी अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे समाजवाद के अन्तिम लक्ष्य 'आर्थिक एवं सामाजिक समानता' की प्राप्ति हेतु प्रयास किये जाने लगे है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु इन देशो म विभिन्न प्रकार की विधियो का उपयोग परिस्थित्यानुसार होने लगा है। सामान्यत यह विश्वास अब दृढ हो गया है कि देश की सामाजिक एव आर्थिक सम्पन्नता के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाना अनिवार्य है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो की योजनाओ में आर्थिक एव सामाजिक दोनो ही प्रकार की उन्नति के लिए आयोजन किये जाते है। परन्तु दुर्भाग्यवश आर्थिक कार्यक्रमो को इस योजनाओ म अधिक महत्व दिया जाता है और सामाजिक उन्नति के कार्यक्रमों को आर्थिक कार्यक्रमो का सह-उत्पादक समझा जाता है। इन योजनाओ के सामाजिक कार्यक्रमो मे भी समाज की भौतिक सम्पत्तियो जैसे स्कूल, चिकित्सालय, मनोरजन गृह आदि के बढाने पर विशेष जोर दिया जाता है। नागरिको की व्यक्तिगत एव सामुदायिक बुराईयो को दूर करके सामाजिक क्रान्ति लाने के प्रति विशेष प्रयास नहीं किये जाते हैं। वास्तव मे अर्ध-विकसित राष्ट्रो की सर्वतोमुखी उन्नति के लिये ऐसी सामाजिक

सस्थाओ की अत्यधिक आवश्यकता होती है जो जन साधारण मे कर्तव्य-परायणता एव कर्तव्य के प्रति तत्परता उत्पन्न कर सके तथा उनमे अपने सामाजिक कर्तव्यो के पूर्ति के लिए जागरूकता उत्पन्न करे। आर्थिक विकास के साथ-साथ इन सामाजिक दोषो मे और भी वृद्धि होती जाती है। योजना अधिकारी को इन सामाजिक दोषो को दूर करने के लिये भौतिक सम्पन्नता के समान ही आयोजन करने चाहिए। योजनाओ के सामाजिक उद्देश्यो को आर्थिक उद्देश्यो के समान ही महत्व दिया जाना चाहिए। आर्थिक सम्पन्नता सामाजिक सम्पन्नता का केवल एक साधन अथवा अग है। केवल इस एक अग को पुष्ट करने से सामाजिक सम्पन्नता सम्भव नहीं हो सकती है। योजनाओ मे केवल भौतिक विनियोजन एवं उससे प्राप्त भौतिक उत्पादन को ही दृष्टिगत् नहीं करना चाहिए अपितु मानव मे किए जाने वाले विनियोजन को भी विशेष महत्व दिया जाना चाहिये। भौतिक विनियोजन को अर्थशास्त्री उत्पादक मानते है क्योकि इसके फल शीघ्र ही उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु मानव मे होने वाले विनियोजन का फल दीर्घकाल मे प्राप्त होता है और इसीलिए इसे कुछ अर्थशास्त्री अनुत्पादक मानते है।

प्रत्येक योजना की सफलतार्थ पूँजी-निर्माण अत्यन्त आवश्यक होता है। योजना के कार्यक्रम निर्धारित करते समय वित्तीय एव आर्थिक साधनो को दृष्टिगत् करके योजना के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। परन्तु प्राय राष्ट्र की सामाजिक पूँजी को दृष्टिगत् नही किया जाता है। वास्तव मे आर्थिक पूँजी-निर्माण के समान ही सामाजिक पूँजी-निर्माण की भी आवश्यकता योजना की सफलता के लिए होती है। जनसमुदाय के सामाजिक सचयो को दृष्टिगत् किये बिना जिन योजनाओ का निर्माण एव सचालन किया जाता है, वे कभी पूर्णत. सफल नहीं हो सकती हैं। इनमे राष्ट्र की भौतिक सम्पत्तियो मे वृद्धि हो सकती है परन्तु इस वृद्धि के लिए भी अधिक अपव्यय एव त्याग करना होता है। इनके द्वारा जन साधारण के चरित्र सम्बन्धी गुणो मे कोई सुधार सम्भव नहीं हो सकता है।

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक सम्पन्नता के लिए, उसके विकास की आर्थिक विधियो के अनुसार जन साधारण मे नैतिक, शील एव आध्यात्मिक गुणो की आवश्यक्ता होती है। ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी तथा सयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान प्रगति पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत हुई है। पूँजीवाद की आधार शिला व्यक्तियो एव वर्गों के अपन हित क लिए कार्य करने को आर्थिक स्वतन्त्रता है। इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक्ता वा प्रादुर्भाव उपक्रमियो के समाज

द्वारा हुआ। यह उपक्रमी नवीनता एव परिवर्तन की भावना से भरपूर थे। श्रम को अपना कार्य चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इसके लिये उसे जाति तथा भाषा सम्बन्धी एव वैधानिक कोई बाधाए नही थी। जब सयुक्त पूँजी वाली कम्पनियो का जन्म हुआ तो ऐसे विनियोगो के वर्ग की आवश्यकता हुई जो व्यवसायियो को अपनी पूँजी देने और जो व्यवसायियो का विश्वास करते कि व्यवसायी उनके साथ विश्वासघात नहीं करेंगे। यद्यपि इन देशो में भी बहुत सी कुरीतियो, कपट तथा अपूर्णताओ का प्रादुर्भाव औद्योगिक विकास-काल म हुआ परन्तु कुछ ही पीढियो के पश्चात् यह नैतिक बुराइयाँ कम हो गई और विकास की गति तीव्र हो गई। वास्तव म इन देशो की आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण वहाँ का सामान्य नैतिक स्तर है।

अर्ध विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास म निम्नलिखित सामान्य लक्षण उपस्थित रहते हैं—

(१) नकल की अर्थ व्यवस्था (Imitation Economy)—अर्ध-विकसित राष्ट्रो का आर्थिक विकास पूर्णत नकल पर आधारित है। इन देशो म किन्ही विशेष विधियो का बहुत कम आविष्कार हुआ है और प्राय मान्य तकनीको, जो कि विकसित राष्ट्रो द्वारा विकास के प्रारम्भिक काल मे उपयोग की गयी हैं और जिनम बाद मे अनुभव के आधार पर परिवर्तन किये गये हैं, का उपयोग किया जाता है। विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विवाद की विधियो को अपनाने के साथ वहाँ के सामाजिक सचयो के स्तर को अपनाना सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(२) अर्ध विकसित राष्ट्रो मे निजी व्यवसायियो द्वारा आर्थिक प्रगति के बहुत थोडे कार्यक्रमो का सचालन किया जाता है और अधिकतर कार्यक्रम सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा सचालित करने होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य-कुशलता सरकारी अधिकारियो की सचाई, ईमानदारी एव कार्यक्षमता, राज-नीतिक नताओ की सूझ-बूझ तथा जनसमुदाय की समाजिक जागरूकता एव सहयोग की भावना पर निर्भर होती है। सामाजिक जागरूकता का अर्थ जिम्मेदारी की भावना तथा सामाजिक जीवन के प्रति रुचि म है। दूसरी ओर निजी साहसियों को भी राजकीय प्रतिबन्धो एव नियमो के आधीन ईमानदारी से कार्य करना चाहिए। सरकारी नियमो एव प्रतिबन्धो की प्रभावशीलता सरकारी अधिकारियो एव निजी साहसियो के नैतिक स्तर पर निर्भर रहती है।

(३) अर्ध विकसित राष्ट्रो में जन-साधारण अपनी अनिवार्यताओ की पूर्ति भी नहीं कर पाते हैं। इन राष्ट्रो मे विभिन्न वर्गों एव व्यवसायो के लोगो की

आय मे अत्यधिक विषमता होती है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे विकास का अधिकतर लाभ समाज के उच्च वर्गो को प्राप्त होता है जो प्रायः सामाजिक दोषो से भरपूर रहते हैं और निम्न वर्गों को आर्थिक सम्पन्नता मे बाधायें खडी करते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक सम्पन्नता के फलस्वरूप जन-साधारण का दृष्टिकोण भौतिक सम्पन्नता की ओर अधिक आकर्षित होने लगता है। जन-साधारण उच्च वर्गो के आर्थिक एव सामाजिक स्तर की नकल करना चाहता है और वह धनोपार्जन को जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मानने लगता है। जन-साधारण धनोपार्जन के लिये निरन्तर प्रयास करता रहता है और इस बात पर कभी ध्यान नहीं देता कि इनके प्रयासो द्वारा क्या सामाजिक परिणाम होते हैं और उनके प्रयासो मे कौन-कौन से सामाजिक दोष निहित हैं। ऐसी परिस्थिति मे नियोजित अर्थ-व्यवस्था के सफलतार्थ जन साधारण के सामाजिक सचय बढाना अत्यन्त आवश्यक होता है।

(४) अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक गतिविधि राजनीतिक गतिविधि पर आधारित होती है। अधिकतर राष्ट्रो मे आर्थिक विकास के कार्यक्रमो का सचालन विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्त होने के पश्चात् ही सचालित किया गया है। राष्ट्रीय नेताओ को राजनीतिक सत्ता कठोर त्याग एव कठिनाई के पश्चात् प्राप्त होती है जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत हित राजनीतिक ढाँचे मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता है। राजनीतिक क्षेत्र मे सामाजिक सचयो मे गम्भीरता से कमी होती है जिससे समाज की सामाजिक सम्पन्नता मे बाधायें खडी हो जाती हैं।

उपर्युक्त लक्षणो से यह स्पष्ट है कि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे सामाजिक पूंजी का निर्माण उतना ही आवश्यक है जितना कि आर्थिक पूंजी का निर्माण। सामाजिक एव आर्थिक पूंजी का पर्याप्त सचय होने पर नियोजित अर्थ-व्यवस्था को पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है।

सामाजिक पूंजी की परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। यह बताना कि इसके अन्तर्गत कौन से गुणो को सम्मिलित करना चाहिये, यह भी एक कठिन समस्या है। प्रत्येक देश की सामाजिक-व्यवस्था एव वातावरण दूसरे राष्ट्रो की तुलना मे भिन्न होता है और इसी प्रकार सामाजिक पूंजी की सीमायें प्रत्येक राष्ट्र मे अलग ही होती है। फिर भी विषय का स्पष्ट परिचय देने हेतु निम्न-लिखित पदो को सामाजिक पूंजी म प्राय सम्मिलित किया जाता है—

(१) आत्मविश्वास, आत्मसयम तथा अवसरो के अनुकूल उन्नति करने की तत्परता।

(२) उन सामाजिक लक्ष्यो एव उद्देश्यो मे विश्वास जो कि देश प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है।

(३) शासन व्यवस्था, राजनीतिक नतृत्व, नियोजन अधिकारी, व्यापारी एव वे सब जिनका नियोजन के सचालन से सम्बध है उनमें जनता का विश्वास।

(४) कार्य के प्रति जन साधारण में ईमानदारी, सचाई तथा राष्ट्रीयता की भावना।

(५) हस्तकौशल एव शारीरिक कार्य के प्रति जन-साधारण म उदासीनता न होना।

(६) सहकारिता, एकता, सामाजिक समानता एव सहयोग की भावना।

(७) किसी व्यवसाय की प्रारम्भिकता का पैतृक व्यवसाय पर आधारित न होना।

(८) शिक्षा का उचित स्तर जिससे समाज एव देश के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो तथा चरित्र का निर्माण हो, आदि।

अध विकसित राष्ट्रो की नियोजित अर्थ-व्यवस्था की प्रारम्भिक अवस्था म उपरोक्त सामाजिक घटको का लोप होता है और जब तक सक्रिय प्रयत्न नहीं किये जायं, सामाजिक कठिनाइयाँ हमारे आर्थिक कार्यक्रमो पर विपरीत प्रभाव डालती रहती हैं। ऐसी परिस्थिति म यह अत्यन्त आवश्यक है कि सामाजिक सचयो का बढाने के भरसक प्रयत्न किये जांय। यह वास्तव म अध विकसित राष्ट्रो की कठिन समस्या है, जिसका हल अभी तक राजनीतिक एव सामाजिक नेता नहीं निकाल पाये हैं। सामाजिक पूंजी के सचयार्थ दीर्घकालीन एव अल्पकालीन दोनों ही प्रकार के कार्यक्रमो को अपनाया जा सकता है। दीर्घकालीन कार्यक्रमो के अन्तगत शिक्षा मे आवश्यक सुधार करना मुख्य रूप से महत्वपूर्ण है। शैक्षणिक योग्यता एव सैद्धान्तिक ज्ञान पर अत्याधिक जोर नही दिया जाना चाहिये। विद्यार्थियो मे शारीरिक काय के प्रति उदासीनता नही उत्पन्न होनी चाहिये। धम एव दर्शन शास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तो को हर प्रकार के अध्ययन की विषय-सामग्री म स्थान देना चाहिये जिससे विद्यार्थियों के शील एव आदर्श मे वृद्धि हो। विद्यार्थियों का अध्ययन काल समाप्त होने ही राज्य को योग्यतानुसार उनके रोजगार का आयोजन करना चाहिये। अध्ययन काल की गतिविधियो को रोजगार प्रदान करते समय दृष्टिगत रखना चाहिए। इन तरीको से विद्यार्थी अपने अध्ययन काल म भी तत्परता से कार्य करेंगे। व्यवहारिक ज्ञान को विशष महत्व दिया जाना चाहिये और उच्च सैद्धातिक शिक्षा केवल विशेष रूप से योग्य विद्यार्थियों के लिये ही दी जानी चाहिये। शिक्षा का प्रभाव निम्न स्तर स सुधारना आवश्यक होता है। शिक्षा के गुणो (Standard) पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये न कि स्कूलो की सख्या पर। शिक्षा क्षत्र के

इन सब सुधारो का फल दीर्घकाल में प्राप्त हो सकता है। जब नयी विधियों के अन्तर्गत पढे हुए विद्यार्थी देश की बागडोर सभालेंगे तो इस शिक्षा का लाभ ज्ञात हो सकेगा। इस मध्यवर्ती काल मे कुछ अल्पकालीन कार्यवाहियाँ सामाजिक सचयो की वृद्धि हेतु की जा सक्ती हैं। ऐसे प्रयास करने चाहिये कि समाजघाती लोग सामाजिक प्रतिष्ठा न बना' सकें। यदि वे समाज पर कुप्रभाव डालते हों और अपने सामाजिक दोषो को अपनी आर्थिक सम्पन्नता से छिपाते हो तो ऐसे लोगो को सामाजिक दण्ड देने की पद्धत्तियो को जन्म देना चाहिये।

अध्याय ६

अर्ध-विकसित राष्ट्र एवं नियोजन [२]

भूमि-प्रबन्ध मे सुधार की समस्या, राजकीय सत्ता की अस्थिरता, सरकारी प्रबन्ध के दोष, नियोजन के प्रति. जागरूकता, बेरोजगार की समस्या, क्षेत्र के चयन की समस्या—निजी अथवा सार्वजनिक क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र का सगठन एव प्रबन्ध, विभागीय व्यवस्था, सीमित दायित्व वाली सरकारी कम्पनियाँ, लोक निगम, सहकारी समितियाँ, रूप परिवर्तित निजी व्यवसाय, अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे नियोजन की सफलता हेतु आवश्यक तत्व—विश्व शान्ति, राजनीतिक स्थिरता, पर्याप्त वित्तीय साधन, सांख्यिकीय ज्ञान, प्राथमिकता एव लक्ष्य निर्धारण, राष्ट्रीय चरित्र, जनता का सहयोग, शासन सम्बन्धी कार्यक्षमता ,

(५) भूमि प्रबन्ध मे सुधार की समस्या—*अर्ध विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास हेतु कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होता है क्योकि इसी के द्वारा पूंजी का आवश्यकतानुसार सचय हो सकता है।* जब तक कृषि का उत्पादन इतना नही होता कि औद्योगिक श्रम को पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्न आदि प्राप्त हो सकें, औद्योगिक विकास म निरन्तर बाधाएं आती रहती हैं। कृषि के विकास की अन्य सुविधाओ के लिए भूमि प्रबन्ध मे आवश्यक परिवर्तन करना वाछनीय होता है। रासायनिक खाद, अच्छे बीज, सिंचाई की सुविधाएं, विपरिा की सुविधाएं आदि के लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि भूमि-प्रबन्ध में भी सुधार किये जायं।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे प्राय अनुपस्थित जमींदार (Absentee Land-lords), अधिक लगान (Rack Renting), कृषको की असुरक्षा आदि की

समस्याएं अत्यन्त गम्भीर होती हैं। यह अत्यावश्यक होता है कि कृषि करने वाले कृषक को भूमि की उपयोग-सम्बन्धी सुरक्षा तथा लगान सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त हो ताकि उसे अधिक उत्पत्ति हेतु प्रोत्साहन मिले। जो वास्तव मे कृषि करते हैं, उन्हे अपने उत्पादन का बहुत कम भाग मिलता है और शेष सभी भाग भूमि पर अधिकार रखने वाले जमींदार को चला जाता है। वह भी उस जमींदार को जो भूमि पर कुछ भी कार्य नहीं करता है। कृषि मजदूर भूमि-प्रबन्ध मे सुधार करने की माँग करता है और चाहता है कि भूमि उसकी होनी चाहिए जो उस पर कृषि करता है। इस माँग की पूर्ति के बिना कृषि उत्पादन मे वृद्धि होना अत्यन्त कठिन होता है। इसके अतिरिक्त जमींदारो के प्रति एक विरोध की भावना जनसमुदाय म जाग्रत रहती है क्योंकि यह अपने धन द्वारा राजनीतिक क्षेत्र मे अपनी सत्ता बनाये रखने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं। समाजवादी दृष्टिकोण से भी जमीदारो का अस्तित्व अनुसूचित ही समझा जाना है। भारत जैसे राष्ट्र मे जहाँ बहुत-सी भूमि-प्रबन्ध की विधियाँ है, भूमि-प्रबन्ध मे समानता लाकर सुधार करना अत्यन्त कठिन होता है। जमींदार वर्ग सदैव भूमि-प्रबन्ध के परिवर्तनो का विरोध करता है और ऐसी बाधाएं उत्पन्न करता है कि जिससे तत्कालीन स्थिति से न्यूनातिन्यून परिवर्तन हो। राज्य और कृषक के बीच के मध्यस्थो को हटाने के लिए राष्ट्र को अपने अर्थ साधनो को भी देखना पडता है क्योंकि क्षतिपूर्ति करन मे राज्य के अत्याधिक साधन उपयोग मे आ जाते हैं।

(६) **राजकीय सत्ता मे अस्थिरता**—आर्थिक-विकास एक निरन्तर गतिमान विधि है जिसके फल दीर्घकाल म ही प्राप्त हो सकते हैं। इसीलिए आर्थिक नियोजन की सफलतार्थ एक स्थायी सरकार को आवश्यकता होती है, जिसकी नीतियाँ समान एव अपरिवर्तित रहे। स्थायी सरकार का तात्पर्य यह है कि सरकार की सत्ता एक ही राजनीतिक दल अथवा उसी समान विचार वाले राजनीतिक दलो के हाथ मे दीर्घकाल तक रहनी चाहिए। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे योग्य तथा स्थायी सरकार का बना रहना अत्यन्त कठिन होता है। आर्थिक विकास गतिमान होने से तत्कालीन व्यवस्थाओ म भारी परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण बहुत से वर्गों को हानि होती है। राष्ट्र के आर्थिक प्रतिफलो का वितरण नयी विधियो से होता है और परम्परागत रीति-रिवाजो को शनै शनै समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। इन सब कारणो से सरकार की विकास की योजनाएं ही उसके विरोध का कारण बन जाती हैं और प्राय विरोध इतना दृढ हो जाता है कि सरकार मे परिवर्तन होना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अर्ध विकसित राष्ट्रो की राजनीति मे विदेशी सत्ताएं भी

सक्रिय भाग लेती हैं, विशेषत: उन देशो की जो विदेशी सत्ताओ के अखाडे बन जाते हैं। उनकी पारस्परिक मुठभेड के कारण अर्ध-विकसित राष्ट्रो की सरकारें परिवर्तित होती रहती हैं। मध्यपूर्व तथा सुदूरपूर्व और लेटिन अमेरिकी राष्ट्रो मे इस प्रकार के बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

(७) सरकारी प्रबन्ध के दोष—अर्ध-विकसित राष्ट्रो और विशेषकर उन राज्यो मे जहाँ दीर्घकाल तक विदेशियो ने राज्य किया, जनसाधारण का चरित्र उच्चकोटि का नही होता है। समस्त सरकारी प्रबन्ध इस प्रकार का होता है जोकि कृषि-प्रधान समाज के लिए उपयुक्त होता है। इस व्यवस्था मे प्रबन्धन तथा सत्ता के केन्द्रीयकरण को विशेष महत्व प्राप्त होता है। शासकीय कार्य की गति अत्यन्त धीमी होती है और यह व्यवस्था किसी भी प्रकार विकास-पथ विशेषत औद्योगिक पथ पर अग्रसर राष्ट्र के हित मे उपयोगी नहीं होती। इन राष्ट्रो की सरकार को विकास-योजनाओ को क्रियान्वित करने के लिए तथा प्रारम्भिक प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्र की प्रत्येक आर्थिक क्रिया पर नियन्त्रण रखना होता है तथा उद्योग, कृषि तथा वाणिज्य सभी क्षेत्रो मे हस्तक्षेप करना होता है। साथ ही निजी तथा राजकीय साहस में उचित समन्वय भी स्थापित करना होता है। इन सब कार्यों के लिए अनेक ईमानदार शिक्षित तथा योग्य कर्मचारियो की आवश्यकता होती है। उच्च अधिकारियो मे योजना बनाने, उसको कार्यान्वित करने, सामंजस्य स्थापित करने तथा आवश्यक समायोजन करने में भी योग्यता होना आवश्यक होता है। आधुनिक सरकारी शासन मे प्रबन्ध (Management) का विशेष स्थान है। शासन का उद्देश्य केवल जीवन को नियन्त्रित करना ही नही होता है प्रत्युत् जनसमुदाय के हित का आयोजन करना, शासन की कार्यप्रणाली का प्रमुख अग होता है। इन परिस्थितियो मे शासन का पुराना ढाँचा जो विदेशी सत्ता ने स्थापित किया है, परिवर्तित करना अनिवार्य होता है। इस परिस्थिति मे परिवर्तन करना अत्यन्त कठिन होता है क्योकि नयी व्यवस्था के लिए शासकीय कर्मचारियो को आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। पुराने कर्मचारियो के मस्तिष्क तथा दृष्टिकोण इतने कठोर एव सकुचित हो जाते हैं कि उनमे परिवर्तन लाना असम्भव होता है। वे अपनी रूढिवादी विचारधाराओ को सर्वोत्तम समझते हैं। पुराने कर्मचारियो के प्रशिक्षण के अतिरिक्त नये कर्मचारियो की नियुक्ति तथा पदोन्नति की विधियो मे भी परिवर्तन करना आवश्यक होता है जिससे भेद भाव तथा सिफारिश आदि त्रुटियो के प्रभाव को दूर किया जा सके।

यह कहना किसी प्रकार भी उचित न होगा कि अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे

जनसमुदाय का चरित्र उच्चकोटि का नहीं होता और इनमे ईमानदारी की कमी होती है अथवा उनमे बेईमानी वहन करने की तत्परता होती है। कृषि-प्रधान समाज तथा परम्परागत जीवन मे जब आधुनिक विचारधाराओ का सम्मिश्रण होता है, तो इस मध्य काल मे राष्ट्रीय चरित्र को क्षति पहुँचती है और नवीन व्यवस्था की स्थापना होने तक सरकारी अधिकारियो मे अपनी सत्ता का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। शासक तथा शासित मे *एक विशेष व्यक्तिगत भावना का प्रादुर्भाव होता है* और यह दोनो ही पक्ष अपने व्यक्तिगत हितो को राष्ट्रीय हितो से भी अधिक महत्त्व देने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति मे राज्य को सतर्कता से कार्य करने की आवश्यकता होती है जिससे इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ दीर्घकाल तक चलती रहने के कारण स्थायित्व ग्रहण न कर लें। मध्य काल मे अवश्य ही इन प्रवृत्तियो से राष्ट्र के अमूल्य साधनो का *क्षय होता है जिसको मात्रा मे समुचित राजकीय नियन्त्रण द्वारा कमी की जा* सकती है।

(८) नियोजन के प्रति जागरूकता—प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे जन-समुदाय को आर्थिक-विकास की योजनाओ को सफल बनाने के लिए त्याग करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। प्रजातन्त्र मे विकास योजनाओ की सफलता के लिए पर्याप्त अर्थ तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि जन-समुदाय अपने उपयोग की आवश्यकताओ को कम करने को तैयार हो। इसके साथ ही योजना के कार्यक्रमो के लिए जनसाधारण के क्रियाशील सहयोग की भी आवश्यकता होती है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे निरक्षरता तथा अज्ञान विस्तृत रूपेण होते है और ग्रामीण क्षेत्र को राज्य की कार्यवाहियो का ज्ञान नही हो पाता, जिसमे देश की अधिकतम जनसंख्या रहती है। जब तक जन-साधारण विकास की आवश्यकताओ, योजना के उद्देश्यो तथा योजना के सफलतार्थ उनके त्याग तथा महत्व से अवगत नहीं होगा, तब तक उन्हीं के लाभार्थ निर्मित विकास योजनाओ के प्रति जागरूकता उत्पन्न नहीं हो सकती। अर्ध-विकसित राष्ट्रो के अधिवासियों मे परम्परागत जीवन एवं आचार-विचार के प्रति अटूट श्रद्धा होती है। उनको नवीन उन्नतिशील जीवन को अपनाने का महत्त्व समझाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। जनसमुदाय को निरक्षरता के कारण नियोजन सम्बन्धी सूचनाओ को ग्रामीण क्षेत्रो तक पहुँचाना कठिन होता है और उसमे अधिक व्यय भी होता है।

प्रत्येक नियोजन को विदेशी पूँजी की आवश्यकता होती है। विदेशी पूँजी *प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि देश मे ऐसा वातावरण उत्पन्न* किया जाय जिससे विदेशी पूँजीपति तथा सरकारें अपनी पूँजी का विनियोजन

अत्यन्त सीमित होते हैं और बढती हुई श्रम-शक्ति कृषि पर ही भार बनती जाती है। धीरे-धीरे भूमि पर श्रम का भार इतना अधिक हो जाता है कि यदि उस श्रम का कुछ भाग कृषि के अतिरिक्त अन्य-व्यवसायो मे लगा दिया जाय और श्रम के प्रतिस्थापन हेतु सगठन सम्बन्धी एव तान्त्रिक सुधार भी कृषि मे न किये जायें तो भी उत्पादन का स्तर पहले के समान ही रहता है। इस प्रकार वह श्रम जिसको कृषि क्षेत्र से हटाने पर उत्पादन स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पडता, अदृश्य बेरोजगार कहलाता है। अदृश्य बेरोजगार के अतिरिक्त कृषि क्षेत्र मे आशिक बेरोजगार एव कृषि वर्ग के बेरोजगार की समस्या भी होती है। कृषि उद्यम ऐसा उद्यम है जिसे वर्ष भर श्रम की आवश्यकता समान नहीं रहती है। फसल काटने एव बोने समय ग्रामीण क्षेत्रो मे श्रम की कमी हो जाती है जबकि शेष समस्त वर्ष मे श्रम को रोजगार उपलब्ध नहीं होता है। ऐसे लोगो को जो केवल थोडे समय तक ही रोजगार पाते है, आशिक बेरोजगार कहते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो मे ऐसे भी लोग होते हैं जो लघु उद्योगो का सचालन करते हैं। परन्तु पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध न होने के कारण उन्हे अपने व्यवसाय बन्द करके बेरोजगार रहना पडता है। इसके अतिरिक्त अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे शिक्षित वर्गो मे बेरोजगार की समस्या बडी गम्भीर होती है। शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारी के मुख्य तीन कारण हैं—प्रथम जनसमुदाय मे इस विचारधारा का प्रचलन कि किसी व्यक्ति द्वारा शिक्षा मे किये गये विनियोजन का प्रतिफल पारिश्रमिक युक्त नौकरी के रूप म मिलना चाहिये। द्वितीय प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति उसके द्वारा प्राप्त विशेष शिक्षा के लिये उपयुक्त नौकरी चाहता है जिसके फल-स्वरूप कुछ व्यवसायो मे सेवाओ का अत्यन्त न्यूनता हो जाती है तथा कुछ में योग्य कर्मचारी उपलब्ध भी नहीं होते। तृतीय शिक्षित बेरोजगारो मे सामान्यत कार्यालय मे सेवा करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे कार्यालयो की नौकरियो की अत्यन्त कमी प्रतीत होती है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे श्रम-शक्ति मे प्रतिवर्ष तीव्रता से वृद्धि होती है। इसलिये नियोजन द्वारा इस प्रकार का आयोजन करने की आवश्यकता होती है जिससे वर्तमान बेरोजगार श्रम एव योजना काल मे होने वाली श्रम की वृद्धि दोनो को ही रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकें। इस प्रकार योजना बनाते समय केवल वर्तमान बेरोजगार का ही अनुभव लगाना पर्याप्त नहीं होता अपितु योजना काल मे होने वाली श्रम की वृद्धि का अनुमान भी आवश्यक होना है। इन अनुमानो के लिये योजना अधिकारी को विस्तृत सूचनायें एकत्रित करने की आवश्यकता होती है। इन अनुमानो के आधार पर रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने का आयोजन किया जाना चाहिये। रोजगार के अवसरो मे वृद्धि के लिये

अर्थ-व्यवस्था के समस्त क्षेत्रो के विकास एव विस्तार की आवश्यकता होती है। बड़े पैमाने का विनियोजन करके ही रोजगार के अवसर बढाये जा सकते हैं। अधिक विनियोजन करने हेतु अधिक घरेलू बचत एव विदेशी सहायता प्राप्त होनी चाहिये। आन्तरिक बचत की मात्रा बढाने के लिये, सामान्य उपभोग को कम करना आवश्यक होता है जिससे जनसाधारण के वर्तमान न्यून स्तर पर बुरा प्रभाव पडने का भय होता है। दूसरी ओर विनियोजन का प्रकार भी निश्चय करना होता है। रोजगार के अवसर बढाने हेतु औद्योगिक अथवा कृषि क्षेत्र के विकास मे अधिक विनियोजन किया जाना चाहिये। देश मे खाद्यान्नो की कमी के कारण कृषि विकास को अधिक महत्व देना आवश्यक होता है और इसके लिये कृषि क्षेत्र मे अधिक विनियोजन आवश्यक होता है। *परन्तु कृषि क्षेत्र मे बेरोजगार एवं आंशिक बेरोजगारो की बहुतायत होती है जिन्हे वहाँ से हटाकर ही कृषि व्यवस्था मे सुधार सम्भव होता है।* इस प्रकार कृषि क्षेत्र के बडे पैमाने के विनियोजन द्वारा रोजगार के अवसरो मे पर्याप्त वृद्धि नही की जा सकती है। परिणामस्वरूप रोजगार मे वृद्धि हेतु औद्योगिक क्षेत्र का विकास एव विस्तार आवश्यक होता है। यहाँ भी योजना अधिकारी को कुछ महत्वपूर्ण निश्चय करने होते हैं। औद्योगिक विनियोजन किस प्रकार के उद्योगो, वृहत अथवा लघु, में किया जाय। बडे पैमाने के उद्योगों के विकास के लिये अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है, क्योकि यह पूंजी-प्रधान होते हैं। इस प्रकार वृहत उद्योगो के विकास मे पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं बढाये जा सकते हैं। लघु उद्योगो के विकास द्वारा कम पूंजी के विनियोजन *से ही अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जा सकते हैं। परन्तु केवल लघु उद्योगो के विकास से देश को शक्तिशाली एव अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ नही बनाया* जा सकता है।

आधुनिक युग मे वही अर्थ-व्यवस्था सुदृढ है जिसमे लोहा, इस्पात, इन्जीनियरिंग, रसायन, मशीन निर्माण आदि उद्योग उन्नतिशील है। लघु उद्योगों एव कृषि-विकास के लिए बडे उद्योगो की स्थापना एव विस्तार आवश्यक होता है। इस प्रकार योजना अधिकारी को औद्योगिक विनियोजन राशि के सम्बन्ध मे बडे जटिल एव गम्भीर निश्चय करने होते हैं।

(१०) क्षेत्र के चयन की व्यवस्था—नियोजन के अन्तर्गत नियन्त्रण एव सगठन की समस्या अधिकार की समस्या से अधिक महत्वपूर्ण होती है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सफलतापूर्वक सचालन दोनो ही, निजी एव सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत किया जा सकता है। पूंजीवादी नियोजन मे निजी क्षेत्र को अर्थ-व्यवस्था के लगभग समस्त क्षेत्रो मे कार्य करने दिया जाता है परन्तु इस

निजी क्षेत्र पर सरकार का नियन्त्रण होता है। दूसरी ओर साम्यवादी नियोजन के अन्तर्गत नियोजन का सचालन सरकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे सरकारी क्षेत्र एव नियन्त्रित निजी क्षेत्र के द्वारा नियोजन का सचालन किया जाता है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे नियोजन का सचालन करने से पूर्व क्षेत्र का चयन करना भी एक समस्या होती है। नियोजन के वृहत विकास कार्यक्रमो के लिए अधिक विनियोजन की आवश्यकता होती है और इनमे अधिक जोखिम निहित होती है। निजी साहसी नवीन जोखिमपूर्ण कार्यो मे अपनी पूंजी लगाना अधिक पसन्द नहीं करता है। नियोजन के कार्य क्रमो को सफल बनाने हेतु एक या अधिक उत्पादक परियोजनाएँ संचालन करने की समस्या ही नही होती वरन् समस्त जनसमुदाय को नवीन वातावरण के लिये तैयार करना होता है । इन देशो के विभिन्न प्रयासो मे समन्वय स्थापित करने का कार्य विपणि तान्त्रिकताओ द्वारा नहीं किया जा सकता और सरकारी क्षेत्र का विस्तार आवश्यक होता है। दूसरी ओर सरकार को निजी क्षेत्र पर प्रभावशील नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं होता। निजी क्षेत्र सदैव नियन्त्रणो का विरोध करता है और इस नियन्त्रण की प्रभावशीलता को विफल करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। परन्तु निजी क्षेत्र को अर्थ-व्यवस्था म बनाये रखने की आवश्यकता प्रजातान्त्रिक ढांचे के अन्तर्गत पडती है। साहस की स्वतन्त्रता प्रजातान्त्रिक ढाचे का एक अग होती है। ऐसी परिस्थिति मे योजना अधिकारी को निजी एव सरकारी क्षेत्र के कार्य-क्षेत्र को निर्धारित करने की समस्या का निवारण करना होता है। यद्यपि नियोजन के लिए सरकारी क्षेत्र का होना आवश्यक नहीं होता परन्तु नियोजित अर्थ-व्यवस्था के केन्द्रीय नियन्त्रण मे सरकारी क्षेत्र की उपस्थिति एव विस्तार स्वाभाविक हो जाता है। अर्ध विकसित राष्ट्रो की नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्राय शक्ति का आयोजन यातायात, कृषि उत्पादन मे सुधार हेतु सिंचाई योजनायें, खाद के कारखाने, साख सस्थाओ, मार्केटिंग परिषदो, भारी एवं आधारभूत उद्योगो आदि का सचालन सरकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है। हेन्सन ने आर्थिक नियोजन एव सरकारी क्षेत्र के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुये कहा है, "सरकारी क्षेत्र योजना की अनुपस्थिति मे कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है, परन्तु एक योजना का सरकारी क्षेत्र की अनुपस्थिति मे एक कागजी योजना रहना सम्भव है।"[1]

1. "Public Sector without a plan can achieve something, a plan without public enterprise is likely to remain on paper."
Hanson, *Public Enterprise and Economic Development.*

नियोजित अर्थ व्यवस्था म निम्नलिखित कारणो के फलस्वरूप सरकारी क्षत्र के व्यवसायो का विस्तार होता है—

(१) यदि नियोजन अधिकारी समाजवाद का प्रतिपादन करता हो अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि राज्य जब समाजवाद का अनुसरण करता हो तो व्यवसायो के राष्ट्रीयकरण को अधिक महत्व दिया जाता है। जन साधारण भी समाजवादी सिद्धान्तो के अनुकूल अधिक से अधिक व्यवसायो के राष्ट्रीयकरण की माँग करता है समाजवादी उद्देश्यो आर्थिक एव सामाजिक समानता की पूर्ति हेतु सरकारी क्षत्र का विस्तार आवश्यक होता है

(२) ऐसे उद्योगो का सरकारी अधिकार म लिया जा सकता है जिनके विकास हेतु निजी व्यवसायी पूजी विनियोजन करने को तयार न हो।

(३) ऐसे व्यवसायो को जिनम केन्द्रीय नियन्त्रण आवश्यक एव अधिक कार्यशील समझा जाता हो सरकारी क्षत्र द्वारा सचालित किया जाता है।

(४) राजनीतिक अथवा राष्ट्रीय कारणो स जिन्ही उद्योगो को निजी क्षत्र के हाथ म छोडना उचित न समझा जाय तो इन उद्योगो को सरकारी क्षत्र म चलाया जाता है। उदाहरणार्थ रक्षा सम्बन्धी उद्योग।

(५) उन्त कारखानो का राष्ट्रीयकरण इसलिए भी किया जा सकता है कि उन उद्योगो म श्रमिक निजी पूजीपति के आधीन रहकर काम नहीं करना चाहते। सन् १९१७ के पश्चात् रूस म बहुत से कारखानो का राष्ट्रीयकरण इसी पर किया गया।

(६) निजी एकाधिकार सरकारी एकाधिकार की तुलना म अच्छा नहीं समझा जाता है। इसलिये ऐसे व्यवसायो को जिनमे एकाधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है सरकारी क्षत्र म ले लिया जाता है। इस प्रकार के व्यवसाय अधिकतर जनोपयोगी सेवाओ म सम्मिलित होते हैं जसे बिजली सप्लाई एव जल सप्लाई कम्पनियाँ आदि।

(७) अच्छे प्रशासन के लिये भी सरकारी क्षत्र की स्थापना एव विस्तार की आवश्यकता होती है। सरकारी क्षत्र मे व्यवसायो से कर वसूली मूल्य नियमन उपभोक्ता वस्तुओ के वितरण आदि म सुविधा होता है। सरकारी उत्पादन एव वितरण सम्बन्धी नीतियो को अधिक प्रभावशील बनाने के लिये भी सरकारी क्षत्र के विस्तार की आवश्यकता होती है।

प्रजातान्त्रिक व्यवस्था म व्यवसायो के संगठन एव प्रबन्ध मे विकेन्द्रीयकरण का आयोजन करना आवश्यक होता है। कभी-कभी राज्य के हाथो म मिलकियत

(Ownership) का केन्द्रीयकरण होने से राजनीतिक सत्ताओ का भी केन्द्रीयकरण हो जाता है और नियोजन की समस्त व्यवस्था पर राजनीतिज्ञो का पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है। उत्पादन के साधनो पर अधिकारो का कठोर केन्द्रीयकरण होने पर एक लगभग रयती (Feudal) समाज का निर्माण होता है जिसके अन्तर्गत एकाधिकार पूर्ण पूँजीवाद को शक्तिशाली बनाया जाता है, जिसमे कुछ ही राजनीतिज्ञ देश के समस्त साधना का पोषण अपने निजी हितो के लिए करने लगते है। ऐसे पूर्णत केन्द्रित अधिकार वाले समाज मे सगठित रूप मे शोषण होन लगता है। इस शोषण को प्रोपेगडा करने की सत्ता तथा जनसाधारण की अज्ञानता से सुरक्षा प्राप्त होती रहती है। इन कारणो के फलस्वरूप अब यह विचार किया जाने लगा है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था को अधिक उपयोगी एव सफल बनाने के लिये न केवल निजी साहस और सरकारी साहस उपयुक्त है, अपितु दोनो को ही अर्थ-व्यवस्था मे स्थान दिया जाना उचित है।

सरकारी क्षेत्र का सगठन एव प्रबन्ध—सरकारी क्षेत्र के व्यवसायो के सगठन का प्रकार चयन करने के हेतु अर्ध विकसित राष्ट्र विकसित राष्ट्रो के अनुभवो का लाभ उठाते हैं। विकसित राष्ट्रो मे व्यवसायो के सगठन के बहुत से प्रकार है। इन सब मे सरकारी व्यवसायो के लिये उपयुक्त सगठन व्यवस्था का चयन करने की समस्या का निवारण भी योजना अधिकारी को करना होता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे प्राय निम्न प्रकार की सगठन व्यवस्थाओ का उपयोग होता है—

१ विभागीय व्यवस्था।
२ सीमित दायित्व वाली सरकारी कम्पनियाँ।
३ वैधानिक अथवा लोक निगम।
४ सहकारी समितियाँ।
५ रूप परिवर्तित (Modified) निजी व्यवसाय।

(१) विभागीय व्यवस्था (Departmental Organisation)—विभागीय व्यवस्था सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों की परम्परागत व्यवस्था है। इसका उपयोग अर्ध-विकसित एव विकसित राष्ट्रो—दोनो मे ही किया जाता है। प्रारम्भ मे इस प्रकार की व्यवस्था का उपयोग केवल जनोपयोगी सेवा सम्बन्धी व्यवसायो के सगठन के लिये किया जाता था। धीरे-धीरे इस प्रकार की व्यवस्था का महत्व ससार के समस्त देशो मे बढता गया और जनहित के समस्त उद्योगो जैसे जल विद्युति शक्ति, गैस, यातायात एवं सचार आदि के सगठन हेतु

किया जाने लगा। विभागीय व्यवस्था के अन्तर्गत लोक एकाधिकार (Public Monopoly) का प्रादुर्भाव होता है और जनहित सम्बन्धी उद्योगो के सगठन हेतु स्वतत्र प्रतिस्पर्धा को हानिकारक मान कर विभागीय व्यवस्था के अन्तर्गत सचालन किया जाने लगा है। नियोजित अर्थ व्यवस्था जनहित सम्बन्धी उद्योगो मे भारी आधारभूत और विभिन्न प्रकार के अन्य उद्योगो को भी सम्मिलित किया जाने लगा है और कुछ राष्ट्रो म भारी आधारभूत उद्योगो का सचालन विभागीय सगठन के अन्तर्गत होता है। विभागीय व्यवस्था के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं[1]—

(१) व्यवसाय के अर्थ का आयोजन सरकारी खजाने से वार्षिक आवटन करके किया जाता है और व्यवसाय की समस्त आय और अधिकतर प्राप्ति को सरकारी खजाने म जमा किया जाता है।

(२) व्यवसाय पर अन्य विभागो के समान बजट, बही खाता रखने तथा अकेक्षण सम्बन्धी नियन्त्रण लागू होते हैं।

(३) व्यवसाय के स्थायी कर्मचारी सरकारी होते है और इनके चयन करने के तरीके तथा सेवा की शर्तें अन्य सरकारी कर्मचारियो के समान होती हैं।

(४) व्यवसाय का किसी सरकारी विभाग का एक बडा कक्ष (Sub-Division) समझा जाता है और यह व्यवसाय उस विभाग के अध्यक्ष के प्रत्यक्ष रूप से आधीन होता है।

(५) इन व्यवसायो को राज्य से प्राप्त छूटो की उपलब्धि होती है और इन पर बिना सरकार की अनुमति के कोई भी मुकदमा नही चलाया जा सकता। यह लक्षण उन्हीं देशो में होता है, जहाँकि उस देश के विधान मे इसका आयोजन किया गया हो।

विभागीय व्यवस्था औद्योगिक अथवा व्यापारिक लक्षणो वाले व्यवसायो मे राज्य की सत्ता को तो बढा देती है परन्तु प्रारम्भिकता (Initiative) एव लोचपन (Flexibility) को न्यूनतम स्तर पर ला देती है। यदि किसी व्यवसाय मे प्रारम्भिकता एव लोचपन की अधिक आवश्यकता हो तो विभागीय व्यवस्था उपयुक्त नहीं हो सकती है। विभागीय व्यवस्था ऐसे व्यवसायो के लिये सर्वश्रेष्ठ होती है जिनमे अधिकतर कार्यक्रम कार्यविधि (Routine)

---

1 United Nations, Some Problems—in the Organisation and d ministration of Public Enterprises in the Industrial eld, p 6

के अनुसार कार्य किया जाता है। इस व्यवस्था के दोषो को निम्न प्रकार अंकित किया जा सकता है—

(१) स्थायी कर्मचारी उन्हीं नियमो के आधीन होते हैं जो कि सरकारी कर्मचारियो पर लागू होते हैं जिसके फलस्वरूप योग्यता के आधार पर पदोन्नति तथा शीघ्र अनुशासन (Disciplinary) कार्यवाही करना सम्भव नहीं होता है।

(२) विभागो के लिये अर्थ की व्यवस्था करने के तरीके विलम्बी होते हैं।

(३) नक्द प्राप्तियो को सरकारी खाते म जमा करने पर उन्हे बिना सरकार की विशेष आज्ञा के निकाला नहीं जा सकता है।

(४) बहीखाता रखन का तरीका औद्योगिक व्यवसायों के लिये उपयुक्त नही होता।

(५) कच्चे माल के क्रय एव उत्पादित वस्तुओ के विक्रय की विधिया विभागीय व्यवस्था मे दोषपूर्ण एव बिलम्बी होत हैं।

(६) अर्ध विकसित राष्ट्रो म अच्छे, ईमानदार, कार्यकुशल कर्मचारी वर्ग की उपलब्धि कठिन हाती है जिसकी अनुपस्थिति म व्यवसायो का सचालन सफलतापूर्वक नहीं हो सकता।

विभागीय व्यवस्था का सबसे बडा लाभ होता है, जन उत्तरदायित्व (Public Accountability)। इस व्यवस्था के अन्तर्गत चलाय जान वाले व्यवसायो का व्यौरा लोकसभा मे प्रस्तुत किया जाता है और लोकसभा इसकी कार्यवाहियो के सम्बन्ध मे अन्तिम फैसला करती है। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था मे अन्य सरकारी विभागो से सहयोग प्राप्त करना सरल होता है।

(२) सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ (Limited Liability Companies)—इस प्रकार की सीमित दायित्व वाली कम्पनियो को राजकीय कम्पनियाँ (State Companies) भी कहा जा सकता है। यह कम्पनियाँ देश क कम्पनी के विधान के अन्तर्गत रजिस्टर की जाती हैं। यह अपने पापद अन्तर्नियम (Articles of Association) एवं कम्पनी विधान के आधीन कार्य करती हैं। इनका प्रथक वैधानिक अस्तित्व होता है। इनके लिये अर्थ या पूँजी या तो राज्य द्वारा इनके समस्त अश अथवा उनका ५०% से अधिक भाग क्रय करके उपलब्ध कराता है। इनके खातो का अकेक्षण या तो इनके द्वारा नियुक्त अकेक्षक द्वारा अथवा ऑडीटर एव कम्पट्रोलर जनरल (Auditor and Comptroller General) द्वारा किया जाता है। इनके अन्तर्गत सम्पूर्णत सरकारी व्यवस्था एव मिश्रित

व्यवसाय दोनो ही चलाये जा सकते हैं क्योकि इनमे सरकार समस्त अंश-पूँजी जुटा सकती है अथवा नियन्त्रण प्राप्त करने हेतु पर्याप्त अंश पूँजी क्रय कर सकती है और शेष अंश-पूँजी निजी व्यवसाय एव संस्थाओ द्वारा क्रय की जा सकती है। कभी-कभी राज्य निजी साहस के अन्तर्गत चलायी जाने वाली सीमित दायित्व की कम्पनियो पर नियन्त्रण प्राप्त करने हेतु पर्याप्त मात्रा मे अंश-पूँजी क्रय कर लेती है और इस प्रकार निजी व्यवसायो का राष्ट्रीयकरण किये बिना राज्य को इन व्यवसायो पर नियन्त्रण एव अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार की कम्पनियो के विस्तार के मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं—

(१) यदि निजी साहस किसी चालू व्यवसाय के विस्तार करने के लिये तैयार न हो और राज्य इसके विस्तार को राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिये आवश्यक समझता हो तो राज्य इस व्यवसाय पर इसकी अंश पूँजी क्रय करके अधिकार मे ले सकता है।

(२) जब किसी पूँजीगत अथवा उत्पादक वस्तुओ के व्यवसाय के लिये विदेशी पूँजी एव तान्त्रिक विशेषज्ञो की आवश्यकता हो और राज्य किसी विदेशी निजी कम्पनी अथवा सार्थ के साथ मिलकर इस व्यवसाय की स्थापना करना चाहता हो तो राज्य सीमित दायित्व वाली कम्पनी स्थापित करके इस कार्य को कर सकता है। भारत मे हिन्दुस्तान स्टील लिमिटड की स्थापना जर्मनी की क्रप्स-डेमग (Krupps-Demag) फर्म के साथ मिलकर राज्य ने स्थापना की है।

(३) यदि किसी नवीन औद्योगिक क्षेत्र मे व्यवसाय स्थापित करने को निजी साहसी तैयार न हो तो राज्य इस नवीन क्षेत्र म राजकीय कम्पनियो के स्वरूप मे व्यवसाय स्थापित कर सकता है जिसके अंश कुछ समय पश्चात् निजी साहसी को बेचे जा सकते हैं। लेटिन अमरीकी देशो मे राज्य को इस प्रकार की कार्यवाहियाँ उल्लेखनीय हैं। चिली मे बहुत से सरकारी व्यवसायो को निजी साहसी को बेच दिया गया है। पोर्टोरिको म औद्योगिक विकास कम्पनी के कारखानों को निजी साहसियो को १९५० मे बेचा गया। कोलम्बिया मे टायर निर्माण करने वाले कारखान (Industria Columbiana de Llantras) को जिसमे ७२ ६% अंश (Columbia Institute of Industrial Development) के थे पूर्णत निजी साहसियो को बेच दिया गया।

(४) यदि राज्य सरकारी क्षेत्र के व्यवसायो के लिए कुछ सहायक कारखाने खोलना चाहती है तो राजकीय कम्पनियो की स्थापना की जा सकती है।

भारत मे राजकीय कम्पनियो की स्थापना म पिछले १० वर्षों मे विशेष प्रगति हुई है। सिंद्री फर्टीलाइजर्स तथा केमीकल्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान केबिल्स

लिमिटेड, हिन्दुस्तान एग्रर क्राफ्ट लिमिटेड, भारत इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक लिमिटेड, हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, डी. डी. टी. फैक्ट्री ग्रादि सरकारी कम्पनियाँ हैं। इस प्रकार की कम्पनियो के दो मुख्य दोष हैं। प्रथम, यह कम्पनियाँ वैधानिक उत्तरदायित्वो (Constitutional Responsibilities) से बच जाती हैं ग्रौर राज्य एव लोकसभा को इनसे पर्याप्त सूचनाएं ग्रादि प्राप्त करना कठिन होता है। इनका द्वितीय दोष कम्पनी का स्वतंत्र ग्रस्तित्व वैधानिक दृष्टिकोण से होते हुए भी वास्तव मे नहीं होता है। कम्पनी सम्बन्धी समस्त ग्रधिकार ग्रंश-धारियो एवं प्रबन्ध को होते हैं। ग्रंशधारी एव प्रबन्धक दोनो राज्य होना है ग्रौर इनकी सीमाएं उस विधान द्वारा निर्धारित होनी हैं जिसके ग्राधीन इनकी स्थापना की जाती है। इस प्रकार इनका लोचपन जाता है ग्रौर इनका कार्य-सचालन भी सरकारी विभागो के समान ही होता है।

(३) लोक निगम (Public Corporations)—सरकारी साहस के संगठन मे लोक निगमो को सबसे ग्रधिक महत्व प्राप्त है। यह तुलनात्मक दृष्टिकोण से एक नयी सस्था है जिससे राज्य के पर्याप्त ग्रधिकार एवं निजी व्यवसाय का लोचन दोनो ही प्राप्त होने हैं। इनके मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) यह पूर्णत सरकारी ग्रधिकार मे होते है।

(२) इनकी स्थापना विशेष विधान द्वारा होती है जिसमे इनके ग्रधिकार, कर्त्तव्य, प्रबन्ध के कार्य तथा इसमे ग्रन्य विभागो एवं मत्रालयो के साथ सम्बन्ध निर्धारित किये जाते हैं।

(३) यह ग्रपने नाम मे व्यापार करते है ग्रौर वैधानिक दृष्टिकोण से इनका ग्रलग ग्रस्तित्व होना है।

(४) यह ग्रपने नाम मे दूसरो पर मुकदमा चला सकने हैं। दूसरे इन पर मुकदमा चला सकते है। यह प्रसंविदा कर सकने है तथा सम्पत्ति क्रय कर सकते हैं।

(५) पूंजी के ग्रायोजन एव हानियो की क्षतिपूर्ति के ग्रलावा यह ग्रपने ग्रर्थ-प्रबन्ध मे स्वतन्त्र होते हैं। यह ग्रर्थ जनता एव सरकारी खजाने दोनो से ही ऋण लेकर प्राप्त करते हैं। यह ग्रपने ग्रर्थ-साधनो एव वस्तुग्रा तथा सेवाग्रो के विक्रय पर होने वाले लाभ पर भी निर्भर रहने हैं।

(६) इनके कर्मचारी प्रायः सरकारी कर्मचारी नही होने ग्रौर इनकी नियुक्ति एव पारिश्रमिक का निर्धारण इनके द्वारा निर्धारित शर्तों के ग्रनुसार किया जाता है।

(७) यह लोक फण्ड के व्यय करने के सम्बन्ध मे लागू होने वाले बहुत से नियमो एव प्रतिबंधो से प्राय मुक्त रहते है।

(८) इन पर बजट, बहीखाता तथा अकेक्षण के वे विधान जो अन्य राजकीय विभागो पर लागू होते हैं, साधारणत लागू नहीं होते है।

निगमो का सबसे बडा लाभ यह है कि इनमे कार्य-संचालन एव अर्थ-सम्बन्धी लोचपन को लगभग उसी मात्रा तक बनाये रखा जा सकता है, जितना निजी क्षेत्र के व्यवसायो मे होता है। इनको विधान द्वारा विशेष अधिकार प्रदान किये जाते हैं जिससे यह उसी प्रकार जनता को अच्छी वस्तुयें एव सेवायें प्रदान कर सकें जैसा निजी क्षेत्र म सम्भव होता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत देश की प्राचीन व्यक्तिगत लाभ-प्रधान पूँजीवाद का प्रतिस्थापन करने का सवश्रेष्ठ साधन लोक निगमो की स्थापना करना है क्योंकि इनकी स्थापना द्वारा राज्य के हाथो म एकाधिकार की प्रवृत्तियाँ नही पहुँचती। सरकारी अधिकार एव प्रबन्ध की स्थिति म आर्थिक सत्ताओ के राजनीतिकरण होने का भय निहित रहता है। लोक निगमो द्वारा आर्थिक राजनीतिकरण पर रोक लगायी जा सकती है। लोक निगम मे राजकीय अधिकार के समस्त लक्षण होते हुए भी राजकीय प्रबन्ध का अभाव रहता है। यही इन निगमो की विशेषता है कि अधिकार एवं प्रबन्ध को प्रथक-प्रथक कर दिया जाता है जिससे राजकीय पूँजीवाद की स्थापना मे रोक लग जाती है। इनके मुख्य लाभ निम्न प्रकार वर्गीकृत किये जा सकते हैं—

(१) यह सरकारी प्रशासन की मद गति एव स्थिर कार्यविधि से मुक्त होते है और निजी साहस के समान ही लोचपन एव प्रभावशीलता बनाये रखी जा सकती है।

(२) व्यवसाय के आन्तरिक प्रबन्ध मे सरकारी अधिकारियो के हस्तक्षेप को रोका जा सकता है।

(३) यह लोकसभा एव सम्बन्धित मत्रालय के नियन्त्रण मे कार्य करते हैं जिससे इनके कार्य राष्ट्रीय नीति के अनुकूल होते हैं।

(४) इनकी कार्यकारिणी की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है और चुनाव आदि को कोई स्थान नहीं होता है।

(५) यह जन सेवा की भावना जाग्रत करते है और वित्तीय मामलो में स्वतन्त्र एव आत्मनिर्भर होते हैं।

सरकारी क्षेत्र के व्यवसायो के लिये किसी विशेष प्रकार के सगठन का चयन करते समय बहुत सी परिस्थितियो पर ध्यान देना आवश्यक होता है। प्रत्येक देश एव प्रत्येक व्यवसाय की परिस्थितियाँ अन्य देशो एव व्यवसायो से इतनी भिन्न होती हैं कि किसी भी एक प्रकार के सगठन को समस्त देशो एव व्यवसायो के लिये उपयुक्त कहना उचित नही होगा। सयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञो

द्वारा इस सम्बन्ध मे ग्रकित किया है कि राजकीय व्यवसायो के लिये किसी प्रकार के सगठन का चयन करते समय निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिये—

(१) कार्यक्रम का प्रकार।
(२) कार्य-सचालन सम्बन्धी एव वित्तीय ग्रावश्यकताएँ।
(३) राष्ट्रीय ग्रर्थ-व्यवस्था एव उस व्यवसाय का महत्व।
(४) कार्यो के प्रकार।
(५) राजनीतिक विचारधाराएँ एव वातावरण।
(६) योग्य नियोगी वर्ग (Competent Personnel)।

वास्तव मे किसी प्रकार के सगठन की सफलता को दो ग्राधारो पर ग्रांका जा सकता है। प्रथम कार्यकुशलता (Efficiency) तथा द्वितीय लोक उत्तर-दायित्व (Public Accountability)। लोक निगम मे भी जिनको कि सरकारी क्षेत्र के सगठन का सर्वश्रेष्ठ तरीका माना जाता है, यह तत्व पर्याप्त मात्रा मे नहीं पाये जाते हैं। इनके विशेष विधान एव व्यवस्था के होने हुए भी इनमे सम्बन्धित लोगो के स्वभाव एव परम्पराग्रो के कारण इन तत्वो के उचित मिश्रण को बनाये रखना सम्भव नहीं होता है। निगमो की कार्यकुशलता के बढाने हेतु इन्हें यथोचित Autonomy दी जानी चाहिए। Autonomy के दो प्रकार हो सकते हैं। प्रथम, कार्य सचालन सम्बन्धी एव द्वितीय, वित्तीय मामलो के सम्बन्ध मे। कार्य-सचालन सम्बन्धी Autonomy के ग्रन्तर्गत इनको क्रय, विक्रय, मरम्मत, पूँजीगत व्यय, सुधार, विस्तार, कर्मचारियो की नियुक्ति, पदोन्नति ग्रादि के सम्बन्ध मे वास्तविक स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिससे उचित कार्य उचित समय पर तथा उचित व्यक्ति का कार्य पर लगाया जा सके। निगमो के सम्बन्ध मे नौकरशाही (Bureaucracy) के दोष दुहराये जाते हैं। नौकरशाही को दूर करने हेतु ग्रधिकारियो का एक स्थान से दूसरे, एक कार्य से दूसरे कार्य एव एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय मे ट्रासफर करते रहना चाहिए। दूसरी ग्रोर वित्तीय स्वतन्त्रता (Autonomy) के ग्रन्तर्गत निगमो को वार्षिक ग्रावटन (Annual Appropriations) से मुक्त होना चाहिए। विशेष व्ययो के सम्बन्ध मे सरकारी कठोर नियमो से मुक्त होना चाहिए, राजकीय विभागो के समान खाते रखने एव ग्रकेक्षण के लिए बाध्य नहीं होना चाहिए ग्रपनी प्राप्तियो को एकत्रित करने एव व्यय करने का ग्रधिकार होना चाहिए तथा रुपया ऋण पर लेने का ग्रधिकार होना चाहिये।

लोक उत्तरदायित्व का ग्रर्थ है कि सम्बन्धित मन्त्री का लोकसभा मे निगमों के सम्बन्ध मे किए गये प्रश्नो का उत्तर देने का उत्तरदायित्व तथा इन निगमो की वार्षिक कार्यवाहियो के सम्बन्ध मे लोकसभा को सूचित करने का उत्तर-

दायित्व। लोकसभा जनता की सर्वोच्च संस्था होती है। समस्त सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों को जनता के प्रति उत्तरदायी रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। परन्तु निगमों को दिन प्रतिदिन के कार्यों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र होना चाहिए और सम्बन्धित मन्त्रियों को इनके इन कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसके साथ मन्त्रियों को लोकसभा में इन निगमों के सम्बन्ध में विवरणात्मक प्रश्नों का उत्तर देने के लिये विवश नहीं किया जाना चाहिये।

(४) सहकारी समितियाँ (Cooperative Societies)—*नियोजित अर्थ-व्यवस्था में सहकारी समितियों का विशेष महत्व होता है।* सहकारी समितियाँ एक ओर स्थानीय प्रारम्भिकता, साहस एवं साधनों का उपयोग करने के लिए अवसर प्रदान करती हैं और दूसरी ओर यह राष्ट्रीय नीतियों के अनुसार कार्य करती हैं। इस प्रकार सहकारिता द्वारा आर्थिक शक्तियों के विकेन्द्रीयकरण में सहायता मिलती है और जन सहयोग सुलभता-*पूर्वक उपलब्ध होता है। सहकारी संस्थाओं में व्यक्तिगत प्रोत्साहन एवं सामूहिक प्रयास का सम्मिश्रण हो जाता है।* स्थानीय विकास हेतु इस प्रकार की संस्थाएं अधिक उपयुक्त होती हैं। भारत की नियोजित अर्थ व्यवस्था में सहकारिता को विशेष स्थान दिया गया है। कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बड़े बड़े कारखाने एवं छोटे छोटे उद्योग दोनों का ही सहकारिता के आधार पर स्थापित किया जाने लगा है। वास्तव में भारतीय अर्थ व्यवस्था में राजकीय, निजी मिश्रित क्षेत्रों के अतिरिक्त सहकारिता का क्षेत्र शीघ्रता से विकसित हो रहा है। रूस में कृषि *सहकारी समितियों के अतिरिक्त उपभोक्ता एवं उत्पादक सहकारी समितियाँ* भी हैं। चीन में भी कृषक एवं दस्तकारों की बहुत सी सहकारी समितियाँ हैं। अलबानिया, बलगेरिया, जकोस्लावकिया, पूर्वी जर्मनी, हंगरी पोलण्ड एवं रूमानियाँ में सहकारी फर्मों की संख्या एवं इनका क्षेत्र निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

(५) रूप परिवर्तित निजी व्यवसाय (Modified Private Enterprises)—१६३० के लगभग नाजी जर्मनी में कुछ निजी व्यवसायों पर निजी अधिकार होते हुए भी इनके कुछ निजी अधिकारों को प्रतिबंधित कर दिया गया था तथा उनको कुछ अतिरिक्त कर्तव्य सौंप दिए गये थे। निजी व्यवसायियों को रोजगार दिये जाने वाले श्रमिकों की संख्या, श्रमिकों के प्रकार, उनके पारिश्रमिक के स्तर, कारखाने एवं संस्था को विशेष प्रकार से चलाने अथवा विशेष प्रकार की वस्तुएं उत्पादित करने आदि के सम्बन्ध में सरकार ने आदेश दिये थे। साहसी अथवा मालिक को कारखाने का नेता

(Works Leader) कहा जाता था। इसी प्रकार १६३३ के विधान द्वारा कृषि के क्षेत्र मे कृषको की एस्टेट (Peasants Estates) की स्थापना की गयी थी। इसके अन्तर्गत कृषको मे एस्टेट को कर्जे (*Indebtedness*) तथा उत्तराधिकारियों मे भूमि-विभाजन के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गयी थी। इसमे परिवारो की मिल्कियत एव व्यक्तिगत मिल्कियत का सम्मिश्रण किया गया था।

(६) मूल्य नियमन की समस्या (Problem of Price Regulation)—अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे विकास की गति के साथ साथ मूल्यो मे वृद्धि होना स्वभाविक होता है। जब तक यह वृद्धि जनसाधारण की मौद्रिक आय की वृद्धि के अनुपात से बहुत अधिक नहीं होती है, मूल्य नियमन सम्बन्धी कोई विशेष समस्या उपस्थित नहीं होती है। परन्तु जब मूल्यो की वृद्धि विनियोजन एवं राष्ट्रीय आय की वृद्धि की तुलना मे अधिक होने लगती है तो मुद्रा-स्फीति के दोषो से बचने हेतु *मूल्य नियमन की आवश्यकता पडती है। वास्तव मे मूल्य का* मुख्य कार्य माँग और पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित करना होता है। मूल्य-परिवर्तनो के स्वय शोध्य (Self Liquidating) होने पर इनके द्वारा माँग पूर्ति म सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। *स्वय शोध्य का अर्थ यह है कि मूल्यो म* वृद्धि होने पर पूर्ति की मात्रा बढ जानी चाहिए जो कि माँग के अनुकूल हो जाय और फिर पूर्ति बढते ही मूल्यो को अपने सामान्य स्तर पर आ जाना चाहिए। दूसरी ओर मूल्य घटने पर (माँग कम होने के कारण) पूर्ति की मात्रा घट जानी चाहिए और माँग के अनुकूल हो जानी चाहिए। पूर्ति कम होने पर मूल्य फिर अपने सामान्य स्तर पर आ जाते हैं। यह मूल्यो की एक सामान्य गति है और इस गति पर बहुत से घटको का प्रभाव पडता रहता है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे माँग बढने पर मूल्य तो बढ जाते है परन्तु पूर्ति शीघ्रता के साथ नहीं बढ पाती है जिसके कारण मूल्यो की एक वृद्धि दूसरी वृद्धि का कारण बनती रहती है और इस प्रकार मूल्य वृद्धि का एक दूषित चक्र बन जाता है। योजना अधिकारी को ऐसे प्रयत्न करने होने हैं कि इस दूषित चक्र का प्रादुर्भाव न हो और मूल्य सामान्य स्तर से अधिक ऊँचे न जाये।

वास्तव मे मूल्यो की वृद्धि अपने आप मे कोई दूषित स्थिति नहीं होनी है। जब मूल्यो की वृद्धि के साथ उत्पादन मे इसके अनुकूल वृद्धि नहीं होती है, तब *शोचनीय स्थिति उत्पन्न होती है।* आर्थिक विकास के साथ मूल्यो मे वृद्धि होना स्वाभाविक होता है। आर्थिक विकास हेतु राष्ट्रीय आय के कुछ अधिक भाग का विनियोजन उत्पादक उद्योगो मे करना आवश्यक होता है। इस विनियोजन के

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे समन्वित मूल्य नियमन नीति एव आवश्यक लक्षण है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत इसकी और भी अधिक आवश्यकता पडती है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे निजी क्षेत्र तथा स्वतत्र बाजार को सर्वथा नष्ट नहीं किया जाता है जिसके कारण बाजार के बहुत से घटक मूल्यो पर प्रभाव डालते रहते हैं। निजी व्यवसायी सदैव बढते हुए मूल्यों का अधिक लाभ उठाना चाहता है। वह वस्तुओ की अवास्तविक कमी का वातावरण उत्पन्न करने मे सदैव तत्पर रहता है। ऐसी परिस्थिति मे योजना अधिकारी को बडी तत्परता से मूल्यो पर नियन्त्रण रखना आवश्यक होता है। मूल्यो की अधिक वृद्धि मे केवल जनसाधारण को ही कठिनाई नहीं होती वरन् योजना के समस्त आँकडे, लक्ष्य, व्यय एव आय सम्बन्धी अनुमान गडबड हो जाते हैं और योजना पूर्णरूपेण दोहराना पडती है। साम्यवादी राष्ट्रो मे मूल्य नियमन की समस्या इतनी गम्भीर नहीं होती। मूल्यो को अपने आर्थिक कार्य 'माँग एवं पूर्ति मे सनुलन स्थापित करने' का अवसर नहीं दिया जाता है। समस्त उत्पादन के घटक एवं उत्पादक तथा उपभोक्ता वस्तुओ की पूर्ति एव उत्पादन राज्य के हाथ मे होता है। राज्य को मूल्य नियमन की समस्या का सामना नहीं करना पडता है क्योकि बाजार के किसी भी घटक को मूल्य पर प्रभाव नहीं डालने दिया जाता है। साम्यवादी राष्ट्रो मे राज्य को स्वय मूल्य निर्धारण करना होता है, अत मूल्य नियमन का प्रश्न ही नहीं उठता है।

अर्ध विकसित राष्ट्रो मे नियोजन की सफलता हेतु आवश्यक तत्व

आधुनिक युग की भीषण जटिलताओ की दुर्भेद्य शृ खलाओ म किसी कार्य का सुगम, सुलभ सम्पादन अत्यन्त कठिन है। नियोजन तो एक विधि है। वह कार्य है जो अनेक तत्वो के सहयोग, सम्मिश्रण एव सम्मेलन के उपरान्त एकीकृत रूप मे सम्मुख आ सकने मे समर्थ होता है। अधिकाशत यह देखने मे आता है कि यदाकदा निश्चित लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति तो दूर रही, मुख्य आयोजन कार्यक्रम का कार्यान्वित करना भी असम्भव हो जाता है। कारण हैं, अनेक एव विभिन्न लक्षणो वाले तत्व जो पूर्णतया नियोजन की कार्य-विधि एव क्रिया-कलापो को प्रभावित करते हैं। नियोजन की सफलता अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे तो और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है, उतनी ही कठिन भी। प्रभावी तत्त्वो का अध्ययन, जो निम्न प्रकारेण किया जा सकता है, नियोजन के मार्ग मे आने वाली बाधाओ के निवारण मे सहायक होगा।

(१) विश्व शान्ति—आज का आर्थिक-सगठन, राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक प्रारूप शताब्दियो पूर्व का नहीं रहा, जबकि मानव की आवश्यकताएँ स्वय द्वारा पूर्ति-योग्य मात्र थी। व्यक्तिगत स्वार्थी भी अपनी

प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से ज्ञात करेगा। आज प्रभावी तत्व मात्रा गृह, जाति, समाज अथवा देश तक ही नही अपितु सम्पूर्ण मानवता को समेटे रखते हैं। किसी भी देश के लिए बीसवीं सदी के आधुनिक विज्ञान-युग मे पूर्ण आत्मनिर्भर रहना नितान्त असम्भव है। किसी न किसी रूप मे उसे किसी न किसी विदेशी का मुँह ताकना पडता है और यह विश्वव्यापी अकाट्य सत्य है। रूस हो या अमेरिका, फ्रास हो या ब्रिटेन, भारत हो या जापान सभी किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु पारस्परिक सम्बद्ध है। आधुनिक काल मे राज्य की प्रत्येक कार्यवाही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया के आधीनस्थ होती है, चाहे वह किसी भी सीमा तक हो। फिर नियोजन—वह भी अर्ध विकसित राष्ट्रो मे—विदेशी सहायता की अनुपस्थिति मे सफल होना सर्वथा असम्भव है, इसलिए पारस्परिक सम्बन्ध न बिगडने पायें, इसका पूर्ण प्रयत्न किया जाना चाहिए। पूर्ण शान्ति की अवस्था मे ही नियोजन का विचार आ सकता है क्योकि युद्ध की विभीषिका आर्थिक व्यवस्थाएं को छिन्न भिन्न कर देती हैं। युद्ध या अशान्ति की दशा मे एक देश अन्य देश में अपना विनियोजन या सहयोग न देना चाहेगा और आर्थिक विकास का चक्र रुक जायगा। पूंजी की न्यूनता, तान्त्रिक ज्ञान का अभाव आदि अनव समस्याएँ अर्ध-विकसित राष्ट्रो को बाध्य करती हैं कि वे अन्य देशो से सहायता लें। अन्य देश विश्व-शान्ति की अवस्था मे ही अन्य देशो को सहायता या विनियोजन करने को तत्पर होगे।

(२) राजनीतिक स्थिरता—अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो के अनुकूल रहने पर राष्ट्रीय परिस्थितियो का अनुकूल रहना अधिक आवश्यक है क्योकि प्रतिकूल राष्ट्रीय परिस्थितियाँ अजेय एव अत्यन्त हानिकर होती हैं। किसी जीवन मे जन्मदाता रक्त ही कीटयुक्त हो तो सुजीवन की कल्पना ही निरर्थक है। नियोजक नियोजन के कार्यक्रम निश्चित कर रहे हैं, उनके मस्तको पर उनकी मृत्यु सूचक दुधारी तलवार लटक रही है। क्या इस अवस्था म कितना भी दृढ, देशभक्त, राजनीतिज्ञ एव नियोजक उन कार्यक्रमो के निर्माण मे कतिपय भी रुचि लेगा अथवा वह विचारो को एकाग्र करने म समथ होगा और भविष्य की सोच सकेगा ? निस्सन्देह उत्तर होगा नहीं ! कथन का तात्पर्य मात्र इतना है कि यदि नियोजक को प्रति क्षण अपने पदच्युत होने का भय रहे तो वह विवेकपूर्ण, पर्याप्त एव आवश्यक लक्ष्य एव प्राथमिकताओ का निर्धारण नहीं कर पायेगा और न कोई आकर्षण ही होगा। प्रलोभन एव प्रारम्भण भावनाएँ भस्मसात् हो जायंगी। दूसरी ओर राजनीतिक स्थिरता नियोजन के विचार मे स्थिरता की जन्मदाता होगी। नियोजन एक सतत् विधि है जो दीर्घकाल मे लाभदायक होती है। उस मध्यावधि मे किंचित आवश्यक समायोजन,

सम्मेलन, वृद्धियाँ आदि करना आवश्यक हो जाता है। वह राजनीतिक स्थिरता की अवस्था मे ही सम्भव है क्योकि अस्थिरता का तात्पर्य ही उद्देश्यो की विभिन्नता होगी और नियोजन का कार्यक्रम नये लक्ष्य, नये क्रम से स्थिर प्राथमिकताएं लिये सम्मुख आयेगा। वह भी क्रियान्वित किये जान के समय तक पुनर्परिवर्तन के भय को लिये हुए। यह उपहास होगा, ठोस निर्माण नही।

(३) पर्याप्त वित्तीय साधन—यदि वित्तीय साधन को नियोजन के जीवन का रक्त एव रीढ-अस्थियाँ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। सुनिश्चित लक्ष्य, सुनिर्धारित प्राथमिकताओ का क्रम सवथा निरर्थक है यदि अर्थ साधन नहीं। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो म आन्तरिक बचत, विनियोजन एव वित्तीय क्रिया-शीलता सभी का अत्यन्त अभाव होता है। पूंजी निर्माण नहीं के समतुल्य होता है। अर्थ-साधनो की उपलब्धि अनिवार्य है। उद्योगो का शीघ्र विकास पूंजी के अभाव एव कृषि-प्रधान अर्थ व्यवस्था के कारण सम्भव नहीं होता। कृषि भी अत्यन्त अलाभकारी उद्यम होता है। खाद्यान्नो का इतना अभाव होता है कि निर्यात का विचार करना भी मुश्किल है। फिर भी वित्तीय साधनो की व्यवस्था होनी ही चाहिए। विदेशो से सहायता की याचना की जाती है। सहायता का उपलब्ध होना, ऋणी राष्ट्र की सम्भाव्य नीतिक साधनो के अनुमान, नियोजन के प्रकार, निवासियों की प्रवृत्ति राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप आदि पर निर्भर करता है। अत अनुकूल वातावरण का निर्माण अत्यावश्यक है क्योकि वित्तीय साधनो के अभाव मे सत्वर, सुगम, सुलभ एव सफल नियोजन एव आर्थिक विकास असम्भव है। आर्थिक विकास की गति अर्थ साधनो की उपलब्धि पर निर्भर है।

(४) सांख्यिकीय ज्ञान—यद्यपि साख्य पर निर्भर रहना या विश्वास करना मूर्खों का कार्य कहा जाता है, किन्तु शायद यह कहने वालो के युग मे आज की परिस्थितियो का अदाज नहीं था। आज के युग में यदि साख्य उपलब्ध न हो अथवा उसका ज्ञान न हो तो क्या कोई किसी भी तथ्य का अनुमान अथवा भविष्यत् परिणामो का गुणन कर सकने म समर्थ होगा ? कदापि नहीं। लक्ष्यो को निश्चित करने मे, प्राथमिकताओ के निर्धारण में उपलब्ध वित्तीय साधनो के अनुमान म, सम्भाव्य अवस्थाओ के पूर्व ज्ञान, विदेशो से प्राप्य सहायता आदि किस क्षेत्र मे साख्य की उत्कट आवश्यकता न होगी ? यह अनिवार्य है कि नियोजक को देश मे उपलब्ध मानवीय एव प्राकृतिक शक्ति, कृषि उत्पादन की माँग एव प्रदाय, औद्योगिक उत्पादन आदि का पूर्ण ज्ञान हो। अन्यथा उसके सभी निर्णय आधारहीन होंगे जो निरर्थक होंगे। समय-समय पर आयोजन द्वारा प्राप्त परिणामो का अनुमान, उच्चावचन की

तीव्रता, कमी-वेशी की मात्रा तथा उसकी आवश्यकता समायोजन की सीमा आदि के लिए भी सांख्य आवश्यक है। यही नहीं साख्य एकत्रीकरण कार्यकुशल, प्रवीण एव प्रभावशील होना चाहिए, ताकि थोडी सी भूल से भयकर परिणामो का सामना न करना पडे। साख्यिकीय ज्ञान नियोजन की रक्त-प्रवाहिनी नालियाँ हैं।

(५) प्राथमिकता एव लक्ष्य-निर्धारण—*अर्ध-विकसित एव अविकसित* राष्टो मे, जैसा कि सज्ञा से ही ज्ञात होता है, अगणित समस्याएँ, कमियाँ एव आवश्यकताएँ होती है। सभी का एक साथ एक ही अनुपात मे वित्तीय साधनो के आवटन द्वारा एक ही समय पर निवारण एव सतुष्टि करना सर्वथा असम्भव है। नवीन स्वतन्त्रता की वायु म नूतन राजनीतिक चेतना, सामाजिक जागरण, प्राथमिकताओ के निर्धारण के समय नियोजन के सम्मुख समस्या बन जाती है। जातीय भेदभाव, न्यून आय, न्यून जीवन-स्तर, अतिशय बेरोजगार, कृषि की प्रधानता स्वभाव मे रूढिवादिता एव दासता, अशिक्षा, अज्ञानता, भोजन वस्त्र एव गृहादि जीवन की अनिवार्यताओ का भी अभाव एव शोषित मानवता आदि सभी एक साथ आयोजन के सम्मुख आते है। ऐसी परिस्थिति मे यह आवश्यक है लक्ष्यो का निर्धारण एसा हो जो अर्थ व्यवस्था का सर्वतोमुखी विकास कर सकन म समथ हा। इसके साथ ही वित्तीय साधनो की कठिनाई के कारण प्रत्येक समस्या की उत्कटता एव तीव्रता के आधार पर उसके निवारण । क्रम—जिस प्राथमिकता निर्धारण कहा जाता है—निश्चित किया जाना चाहिए। औद्योगिक युग की विकास दौड म भाग लेन का राष्ट्र तभी साहस कर सकता है जबकि उसका आर्थिक विकास अत्यन्त सत्वरगति से सुनिश्चित लक्ष्य एव प्राथमिकताओ को लेकर होता है। प्राथमिकताओ के क्रम के अभाव मे कोई विकास कायक्रम कार्यान्वित होना कठिन है तो लक्ष्यो की अनुपस्थिति मे विकास की गति एव उपलब्धियो का अनुमान असम्भव है।

(६) जलवायु का निरन्तर अनुकूल होना—अर्ध विकसित राष्ट्रो की कृषि प्रधानता उनका एक प्रमुख लक्षण है। उनकी अधिकाश जनसख्या कृषि से आय पैदा करती है। निर्यात-योग्य वस्तुएँ कृषि द्वारा ही उपलब्ध होती हैं ताकि पूँजीगत वस्तुओ का आयात सम्भव हो सके। फिर औद्योगीकरण की अवस्था मे कच्चे माल की पूर्ति भी कृषि पर निर्भर है अन्यथा पुन आयात का *प्रश्न उठेगा और देश का उत्तरदायित्व बढता जायगा। कृषि को प्राथमिकता* दी जानी चाहिए दी जाती है, लक्ष्य भी निर्धारित किये जा सकते हैं, किन्तु *प्रकृति की अनुकम्पा अनिवार्य है अन्यथा सभी आशाओ पर तुषारापात*

होते विलम्ब न लगेगा। वर्षा पर कृषि का निर्भर रहना स्वाभाविक है। लक्ष्यो की प्राप्ति मे प्रकृति का यह योगदान भी आवश्यक है।

(७) राष्ट्रीय चरित्र—योजना के हेतु प्रारम्भिक अनुसधान कार्य करने और उसके कार्यक्रमो को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के हेतु देश मे एक ऐसे समुदाय की आवश्यकता है जिसका नैतिक चरित्र दृढ एव उच्च हो, जो अपने कर्त्तव्य की पराकाष्ठा का ज्ञान रखता हो, देश की परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल अद्भुत आवश्यकताओ की सतुष्टि हेतु उसने अपने जीवन को ढाल लिया हो। नयी चेतना एव नवीन जागरण का साथ दे सके तथा मनसा-वाचा-कर्मणा आर्थिक विकास म अपना सहयोग दे सके क्योकि नियोजन विद्युत-शक्ति नहीं जो बटन दबाते ही सब कुछ कर सके। नैतिकता का स्थान जीवन के किस क्षेत्र मे नही? नियोजन जीवन से पृथक् होकर कुछ भी नहीं है। वह जीवन का प्रमुख अग है। अर्ध विकसित राष्ट्रो म प्राकृतिक अनुकम्पा के उपरान्त मानवीय भावनाओ की अनुकूलता ही अत्यन्त अनिवार्य है। नियोजन का क्रियान्वीकरण उन्ही पर होना है, उनके स्वभाव की अनुकूलता वाछनीय है।

(८) जनता का सहयोग—आज का नियोजन यदि असफल होगा तो केवल इसी कारण कि उसे जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त न हो सका। अर्ध-विकसित राष्ट्रो म विशेषत जहाँ प्रजातान्त्रिक समाज हो, जन-समुदाय का पूर्णतम सहयोग अत्यावश्यक है। जनता मे नियोजन के कार्यक्रमो के प्रति अक्षय जागरूकता एव विशेष प्रकार की श्रद्धा-भावना की आवश्यकता है। इसके लिए जनता को अपनी विचारधारा विस्तृत करनी होगी क्योकि नियोजन का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक हित होता है। समान भावना की दशा मे ही मतैक्यता आ सकती है और तभी सहयोग एव समर्थन सम्भव है। प्रजातन्त्र मे जनता सर्वोच्च सत्ता है। यदि उसका समर्थन एव सहयोग न होगा तो राज्य का प्रत्येक प्रयत्न विफल होगा। नियोजन काल सकट-काल (Transitional Period) होता है। जनता को अतिशय कष्टो एव कठिनाइयो का सामना करना पडता है। रूढिवादी, अशिक्षित जनता यह करने को सहर्ष तत्पर नहीं होती। नियोजक को यह प्रयत्न करना चाहिए तथा इस प्रकार की योजनाओ का निर्माण भी होना चाहिए जिससे उन्हे उसी जनता का अधिकतम सम्भव समर्थन एव सहयोग प्राप्त हो सके। जनता के हृदय मे परिणामो के प्रति एक विश्वास की भावना जाग्रत की जानी चाहिए।

(९) शासन-सम्बन्धी कार्यक्षमता—यदि वास्तव म देखा जाय तो यही तत्व नियोजन की सफलता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यक लक्षण है। प्रबन्ध-

सम्बन्धी अक्षमता समस्त ऊपर वर्णित तत्वा की प्राप्ति को निरर्थक सिद्ध कर सकती है। योजना के प्रारम्भिक निर्माण से लेकर अन्त तक यदि योजना का कभी विरोध होगा तो उसका कारण होगी प्रबन्ध अकुशलता। प्रबन्ध द्वारा ही उपर्युक्त तत्वो को एकत्र किया जा सकता है। फिर समस्त तत्व तो गौण हैं, प्रमुख तो यही है कि किस प्रकार योजना को कार्यान्वित किया जाय। यह क्षमता है प्रबन्ध म। लक्ष्या की प्राप्ति क्षमतानुसार ही होगा यह निश्चित है। क्योंकि समस्त जनता योजना का काय सम्पादन नहीं करेगी प्रत्युत् उनके प्रतिनिधि अधिकारी ही इस काय भार को वहन करेंगे। अध्ययन, ज्ञान, कुशलता एव प्रवीणता के साथ ही विवेक आता है। विवक ही सफल नियोजन है, यह कहना अनुचित न होगा। समस्त उपलब्ध साधना को एकत्रित करना, उनका विभिन्न मदो पर विवेकपूर्ण रीति से आवटित करना, प्रगति का निरीक्षण करना, काय विधि पर नियमन एव नियन्त्रण रखना आदि सभी कार्य प्रबन्धन की कायक्षमता पर आधारित है। ससार म व्यक्तिगत स्वार्थ से बढकर कुछ नहीं। ऐसा पूर्ण सम्भव है कि प्रबन्ध सम्बन्धी किंचित शिथिलता अधिकतम सामाजिक हित के स्थान पर अधिकतम व्यक्तिगत लाभ का स्थान ले ले और नियोजन अनियोजन हो जाय। प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यक्षमता ही अन्य आवश्यक तत्वा को सम्मिलित कर सफलता की ओर अग्रसर हो सकती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि सरकारी दृष्टि से देखने पर प्रत्येक तत्व पारस्परिक असम्बद्ध है। किन्तु तथ्य तो यह है कि योजना का सफल होना सभी तत्वो का एकीकृत एव सम्मिलित प्रयत्न है। सभी तत्वो की उपस्थिति अनिवार्य है। एक का अभाव समस्त तत्व शरीर को अकर्मण्य अथवा पगु बना देगा। जहाँ ये समस्त तत्व अपनी पूर्ण मात्रा के साथ सुगमता से उपलब्ध हैं, वहाँ नियोजन की सफलता गुरुतर होने की अपेक्षा सरल सा प्रतीत होगी।

भाग २

विदेशों में आर्थिक नियोजन

अध्याय ७

विदेशों में आर्थिक नियोजन [१]

१—(अ) रूस की पचवर्षीय योजनाये

१—प्रथम पंचवर्षीय योजना
२—द्वितीय ,,
३—तृतीय ,,
४—चतुर्थ ,,
५—पाँचवी ,,
६—छठी ,,
७—सातवी ,,

(आ) सोवियत नियोजित अर्थ-व्यवस्था

१—व्यवस्था
२—सगठन

१—(अ) रूस की पचवर्षीय योजनायें

रूस मे आर्थिक नियोजन सर्वप्रथम प्रारम्भ किया गया और इसलिये रूस को आर्थिक नियोजन का जन्मदाता कहना अतिशयोक्ति न होगा। रूस म आयोजित अर्थ-व्यवस्था रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना (१९२८-३२) के साथ प्रारम्भ हुई। १९१७ की बोलशेविक क्रान्ति (Bolshevik Revolution) के फलस्वरूप जार (Czar) की सत्ता समाप्त हो गयी और साम्यवादियो के हाथो मे राज्य सत्ता आ गयी। १९१७ से १९२० तक अपनी नीवो को दृढ करने के लिये साम्यवादियो न केवल देश के विरोधी पक्षो को ही नहीं दबाया अपितु विदेशी पूँजीवादी देशो के हस्तक्षेप का भी मुकाबला किया। १९२१ मे साम्यवादी सरकार न नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) की घोषणा की।

गोयलरो योजना (Goelro Plan)—रूस मे व्यवहारिक योजना का प्रारम्भ लेनिन (Lenin) द्वारा किया गया। उसके विचार मे रूस मे समाजवाद स्थापित करने हेतु देश की अर्थ-व्यवस्था को विद्युतकरण के आधार पर पुनसँगठित करना आवश्यक था। लेनिन की मान्यता थी कि साम्यवाद सोवियत शक्ति तथा सम्पूर्ण देश के विद्युतकरण का योग (Soviets plus electricity equals Communism) है। विद्युतकरण के कार्य को सम्पन्न करने हेतु एक राजकीय विद्युतकरण आयोग (State Commission for Electrification) अथवा गोयलरो (Goelro) की स्थापना मार्च १६२० मे हुई और इसके द्वारा निर्मित योजना को दिसम्बर १६२० मे स्वीकृति प्राप्त हुई। फरवरी १६२१ मे इसे गास्प्लान (Gosplan) मे मिला दिया गया। विद्युतकरण की योजना के अनुसार १० से १५ वर्षो मे सारे देश मे विद्युत शक्ति पहुँचानी थी। इसके अन्तर्गत ३० नवीन बिजलीघर बना कर विद्युत उत्पादन की क्षमता को १७५ लाख किलोवाट बढाना था जिससे देश के कारखानो द्वारा बिजली का उपयोग अधिक किया जा सके और देश का उत्पादन १६१३ की तुलना मे दुगना किया जा सके। इस योजना ने १६३० तक अपने उद्देश्यो की लगभग पूर्ति कर ली।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (१६२८-१६३२)—गोस्प्लान (Gosplan) को रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना बनाने का कार्यभार सन् १६२६ मे सौंपा गया। गोस्प्लान ने प्रथम योजना का निर्माण सन् १६२८ तक कर दिया जिसको सन् १६२८ के अक्टूबर माह से लागू कर दिया गया।

प्रथम योजना का सामान्य उद्देश्य देश मे एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना था जिससे उत्पादन के साधनो का अधिकतम विकास हो और सयोजित रूप से श्रमिको की दशा मे सुधार किया जा सके। नवीन आर्थिक नीति का पुनर्सगठन और समाज के औद्योगीकरण पर देश की अर्थ-व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने का मार्ग अपनाया गया। साथ ही पूंजीवाद का समूल नाश करने के लिये भी ठोस कदम उठाये गये। योजना मे राजनीतिक एवं सैनिक उद्देश्यो को विशेष स्थान दिया गया। वास्तव मे योजना के द्वारा सैनिक शक्ति के विस्तार के लिये प्रयत्न किये गये। यहाँ तक कि प्रथम योजना को रूस की दूसरी क्रान्ति कहा जा सकता है। प्रथम क्रान्ति मे लेनिन ने राज्य-सत्ता प्राप्त कर नवीन रूस का निर्माण किया और दूसरी क्रान्ति मे स्टालिन ने देश के औद्योगिक तथा सैनिक क्षेत्रो को मूल रूप से बदल कर नवीन समाजवादी राज्य-सत्ता को स्थायी बनाया।

प्रथम योजना मे कृषि के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। यह पूर्णतया मान लिया गया कि देश की अर्थ-व्यवस्था मे कृषि को उद्योगो के बाद स्थान दिया जाय तथा कृषि विकास का उद्देश्य सब प्रकार के औद्योगीकरण की गति को तीव्र करना होना चाहिये। स्टालिन ने घोषणा की कि रूस के पास उपनिवेश, साख तथा ऋण नहीं है और यह पूँजीवादी देश रूस को देंगे भी नहीं। ऐसी परिस्थिति मे रूस को घरेलू साधनो से पूँजी जुटाने हेतु कृषक पर कर लगाना आवश्यक होगा। प्रथम योजना मे कृषि सम्बन्धी दो मुख्य कार्य-क्रम थे—सामुदायिक कृषि का विकास तथा समृद्धशाली कृषक तथा कुलक वर्ग का समूल नाश। कृषि के क्षेत्र मे पूँजीवादी प्रवृतियो को समाप्त करने हेतु यह दोनो कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक थे। खेतो की बडी इकाईयो मे परिवर्तित करने से किसानो को राजनीतिक शिक्षा सगठित रूप से प्रदान करना सुलभ था। इसके अतिरिक्त बडे-बडे फार्मो के उत्पादन पर राज्य को पूर्ण सचालन तथा नियत्रण रखना सम्भव था। सामुदायिक कृषि के साथ उत्पादन के यन्त्रीकरण से राज्य को अनेक लाभ प्राप्त हुए। किसानो का विरोध, कम खेत जोतना और सरकार के हाथ मे अनाज बेचना सामूहिक कृषि प्रथा से सम्भव न था। राज्य मशीन, ऋण, बीज, खाद आदि के रूप जो सुविधाएँ देता था, उसके दायित्व का भुगतान करने के लिये किसानो को अपना अनाज निश्चित मूल्य पर राज्य के हाथो बेचने के लिये बाध्य होना पडता था। मार्च सन् १६३० तक सामुदायिक खेती की वृद्धि किसानो के विरोध के बावजूद भी निरन्तर होती रही। अधिकारियो द्वारा सम्पूर्ण जिले को सामुदायिक कृषि का क्षेत्र घोषित कर दिया जाता था और सभी किसान सामुदायिक फार्म अथवा कोलखोज (Kol Khoz) के सदस्य मान लिये जाते थे। इसका विरोध करने वालो को समाजवाद का शत्रु तथा देशद्रोही समझा जाता था। कुलक वर्ग को जो सम्पन्न किसान वर्ग था तथा शिक्षित एव कृषि कुशल उत्पादक होने के साथ व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली का खुला पोषक था, सामुदायिक कृषि मे सम्मिलित होने के लिये जब किसी प्रकार आकर्षित नहीं किया जा सका तब घोर दमन की हिंसक नीति का अनुसरण किया गया जिससे रूस की शक्ति का आधार लाल सेना मे जिसमे अधिकतर अफसर कुलक वर्ग के थे, असन्तोष फैलने लगा। मार्च सन् १६३० मे स्थिति अधिक बिगडने पर स्टालिन ने घोषणा की कि जहाँ कोलखोज के आवश्यक साधन न हो, वहाँ पुरानी पद्धति ही रहने दी जाय। इस घोषणा के पश्चात् जहाँ मार्च सन् १६३० मे ५५% कृषक परिवार सम्मिलित थे, मई सन् १६३० मे घट कर २४ १% रह गये। परन्तु सन् १६३० की अच्छी फसल ने सामुदायिक कृषि पर योजनाकर्त्ताओ

तथा जनता का विश्वास जमा दिया और सन् १९३५ मे ९१·५% कृषक परिवार कोलखोज की सदस्यता मे लाये गये।

पूँजी निर्माण—प्रथम योजना काल मे पूँजी विनियोग (Capital Investment) का निम्नलिखित रूप रहा—

तालिका संख्या ३—रूस मे पूँजी विनियोग (प्रथम योजना काल)

	विलियन रूबल मे	
	१९२३-२४ से १९२७-२८	१९२८-२९ से १९३२-३३
कुल विनियोग	२६·५	६४६
उद्योग	४४	१६.४
विद्युतकरण (केवल केन्द्रीय विद्युत गृह)	८	३·१
यातायात (पूँजीगत मरम्मत सहित)	२७	१००
कृषि	१५·०	२३·२

उपर्युक्त आँकडो से ज्ञात होता है कि योजना काल के पिछले पाँच वर्षों की तुलना मे योजना काल के पाँच वर्षों मे पूँजी विनियोग २½ गुना हुआ। योजना के आवश्यक साधन सचय करने मे राष्ट्रीय आय का ३० ५%भाग पूँजी-निर्माण के लिये बचाया गया। इतनी अधिक पूँजी की राशि बचाना *केवल समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे ही सम्भव था।*

उद्योग—प्रथम योजना मे प्रतिवर्ष २०% उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि वास्तविक उत्पादन की वृद्धि २४·४% रही। इतनी अधिक उत्पादन-वृद्धि ने समस्त ससार को चकित कर दिया। इस उत्पादन के पाँच कारण बताये गये—

१—नवीन विकास होने से यान्त्रिक कुशलता का स्तर रूस मे बहुत अधिक था। विज्ञान की नवीनतम खोजो के आधार पर उसमे उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने का निश्चय किया गया था।

२—१९१३ के पश्चात् उत्पादन इतना अधिक गिर गया था कि थोडी-सी वृद्धि से उत्पादन प्रतिशत ऊँचा उठ जाता था।

३—प्रबल केन्द्रीय नियन्त्रण के अन्तर्गत रूस के उद्योगो मे उत्पादन की मात्रा योजना द्वारा निर्धारित की जाती है और यह मात्रा उतनी ही होती है, जितनी क्रय-शक्ति उपभोक्ताओ के हाथो मे दी जाती है। इस प्रकार उद्योगो पर माँग के उतार-चढाव का प्रभाव नहीं पडता है।

४—रूस मे वस्तुग्रो के प्रमापीकरण को विशेष महत्त्व दिया गया ग्रौर उत्पादन के साधनो को कम प्रकार की ग्रधिक वस्तुयें उत्पादित करने के लिये विनियोजित किया गया जबकि ग्रन्य उन्नतिशील राष्ट्रो मे वस्तुग्रो के प्रकार बढाने मे साधनो का व्यय होता है।

५—मुद्रा ग्रौर साख पर पूर्ण नियन्त्रण होने से राज्य इच्छानुसार वस्तुग्रो के उत्पादन को निश्चित सीमाग्रो मे नियन्त्रित रखता है।

रूसी योजनाग्रो के लक्ष्य इतने गतिशील होने हैं कि प्राय उनको प्रतिवर्ष घटाया-बढाया जाता है। योजना काल मे कोयले के उत्पादन मे २१२·१% तथा पेट्रोल मे १८१ ५% की वृद्धि हुई। विद्युत एव मशीन तथा लोहा एव इस्पात उद्योगो पर विशेष ध्यान दिया गया। लगभग ३० भट्टियां (Blast-furnaces) स्थापित की गयी जिनमे प्रत्येक की उत्पादन-क्षमता दो लाख टन प्रतिवर्ष थी। इसी प्रकार इ जिन, रेल के डिब्बे ग्रौर जहाज-निर्माण तथा कृषि-ग्रौजार उद्योगो की ग्रत्यधिक उत्पत्ति हुई।

श्रम—श्रम के क्षेत्र मे प्रथम योजना मे ग्राशा से ग्रधिक सफलता प्राप्त हुई। शीघ्र ग्रौद्योगिक विकास के कारण १९३० तक बेकारी की समस्या समाप्त हो गयी ग्रौर श्रम की कमी का युग प्रारम्भ हो गया। १९२८ मे राष्ट्रीय ग्रर्थ-व्यवस्था मे लगे हुए श्रमिक एव कर्मचारियो की सख्या १,१५,३९,००० थी जो १९३४ म बढ कर ४,३६,८१,२०० हो गई[1]। १९३० के बाद से श्रमिको की इतनी माँग बढी कि शीघ्र काम करने से इन्कार करना एक ग्रपराध बन गया। योजना काल मे निरन्तर ग्रौद्योगिक प्रशिक्षण के ग्रवसर प्रदान करने के प्रत्येक उपाय किये गये। श्रमिको की कमी की पूर्ति करने हेतु स्त्रियो को बडी सख्या मे घर के बाहर कामो मे ग्राकर्षित किया गया। कारीगरो की कुशलता तथा परिश्रम मे उन्नति करने के लिये समाजवादी प्रतिस्पर्धा (Socialist Competition) का सिद्धान्त ग्रपनाया गया जिसमे प्रत्येक कारीगर मे ग्रधिकतम उत्पादन करने की इच्छा जागृत हुई। इसके लिये ग्रनेक प्रकार के ग्राथिक एवं दूसरे प्रलोभन दिये गये। वेतन की दर मे वृद्धि से भी ग्रधिक प्रभावशील प्रतिष्ठा व राजकीय सम्मान सिद्ध हुग्रा जिसे सार्वजनिक रूप से बडे धूमधाम से प्रदान किया जाता था। इन सबके साथ मजदूरो पर प्रबधक तथा मजदूर सघो का ग्रनुशासन बडी कठोरता से किया गया।

---

1. Voznesensky· *The Economy of U. S. S. R. During World War II*, p. 7.

व्यापार—वस्तु विनिमय एव उपभोग की सर्वथा नवीन व्यवस्थायें ग्रपनायी गयीं। योजना की पूंजी की ग्रावश्यकताग्रो की पूर्ति हेतु उपभोग पर पूर्ण नियन्त्रण कर दिया गया। इसके ग्रन्तर्गत राज्य ने सयोजित रूप से बिकने योग्य वस्तुग्रो का बंटवारा तथा जनता के उपभोग का सचालन ग्रपने हाथो मे ले लिया। नागरिक उपभाग की सीमाएं प्रत्येक व्यक्ति के कार्य के महत्व तथा मात्रा पर ग्राधारित की जाने लगीं। ग्रधिकतम प्रयास करने वाले को उपभोग सामग्री ग्रधिक दी जान लगी। उपभोग की सामग्री का मूल्य-निर्धारण इस प्रकार होता था कि जनता की मांग उन्ही वस्तुग्रों के प्रयोग तक सीमित रहे जो देश सुविधा-पूर्वक बना सकता है। इस प्रकार मूल्य-निर्धारण का एक लक्ष्य यह भी था कि जनता के हाथो से ग्रधिक से ग्रधिक ग्राय राज्य के पास ग्रा जाये। बचत का यह तरीका रूस की विशाल पूंजी निर्माण का एक मुख्य कारण था।

योजना म यातायात के साधनों के सुधार को विशेष स्थान नही दिया गया। साम्यवादी पार्टी के सत्रहवें ग्रधिवेशन १९३२ मे ग्रविकसित यातायात को प्रथम योजना की सबसे बडी दुर्बलता बताया गया। मजदूरो की कम उत्पादन-क्षमता ग्रौर वस्तुग्रो की ऊंची लागत का हल प्रथम योजना म नहीं मिला। वेतन प्रणाली की त्रुटियो ग्रौर ग्रनुभवी इंजीनियरो तथा कारीगरो की कमी इसका मुख्य कारण था। परन्तु प्रथम योजना मे रूस की कृषि प्रधान ग्रर्थ-व्यवस्था को उद्योग प्रधान ग्रर्थ-व्यवस्था म परिणत कर दिया गया। याजना क ग्रन्त में राष्ट्रीय ग्राय का ५७ ५% उद्योगो, यातायात तथा निर्माण से ग्रौर २२ ६% कृषि स प्राप्त हुग्रा।

द्वितीय पचवर्षीय योजना (१९३३-१९३७)—१९३१ के पश्चात् जर्मनी मे हिटलर का प्रभाव बढने लगा। हिटलर के भाषणो ग्रौर उसकी पुस्तक 'मेरा संघर्ष' (Mein Kempf) से स्पष्ट हो गया था कि जर्मनी वार्सेलीज की सन्धि (Treaty of Versallies) का विरोध करेगा ग्रौर क्षति-पूर्ति (Reparation) की शर्तों के ग्रनुसार हर्जाना नहीं देगा। इसके ग्रतिरिक्त हिटलर यूरोप के उन सभी हिस्सो पर ग्रधिकार करेगा जो जर्मनी से वर्सेलीज सन्धि के ग्रन्तर्गत छीन लिये गये थे। इन सबसे दूसरे महायुद्ध की ग्राशका का सकेत स्टालिन को होन लगा। यही कारण था कि रूस की दूसरी पचवर्षीय योजना म युद्ध-सामग्री का उत्पादन ग्रौर सैनिक ग्रावश्यकताग्रो पर विशेष ध्यान दिया गया। दूसरे महायुद्ध मे रूस की विजय का एक कारण दूसरी योजना का सैनिक उत्पादन था।

उद्योग—द्वितीय योजना मे औसत उत्पादन के कार्यक्रम को कुछ घटा दिया गया क्योकि इस योजना के अधूरे निर्माण-कार्यों पर अधिक पूंजी लगाने की आवश्यकता थी। वस्तु उत्पादन का प्रमापीकरण इस योजना के औद्योगिक सगठन की विशेषता थी। यह निश्चित किया गया कि प्रमापीकरण से अधिकतर साधन तथा श्रम की बचत की जा सकेगी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केवल चार प्रकार के ट्रैक्टर बनाये गये जबकि सयुक्त राज्य अमेरिका में ८० प्रकार के ट्रैक्टर बनाये जाते थे। इसी प्रकार १९२४ मे २६०० प्रकार के कपडे तैयार किये जाते थे जिन्हे घटाकर १८७ प्रकार का कर दिया गया। इसी योजना मे देश की यात्रिक कुशलता का बडे पैमाने पर विस्तार करने का प्रयत्न किया गया क्योकि इसके द्वारा ही बडे पैमानो की नवीनतम मशीनों का उत्पादन एव उपभोग सम्भव हो सकता था। इस योजना मे ३,६६,९०० विशेषज्ञो को प्रशिक्षण दिया गया। इन्जीनियरो की संख्या में ७७ गुनी, वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओ की ७·१ गुनी तथा कृषि विशेषज्ञो की ५ गुनी वृद्धि हुई।

श्रमिक कुशलता और प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि के लिये दो कदम उठाये गये। प्रथम स्तालिन के प्रसिद्ध नारे 'सब निर्णय कर्मचारी करें' (Personnel Decide Everything) को अपनाया गया। इससे दो फायदे हुए। प्रथम, कारखानो मे राजनीतिक हस्तक्षेप कम हो गया और द्वितीय, कर्मचारियो मे कारखाने के प्रति अपनेपन की भावना जागृत हो गयी। दूसरा कदम स्ताखनोव आन्दोलन (Stakhanov Movement) से प्रारम्भ हुआ। स्ताखनोव कोयले की खान मे कार्य करने वाला मजदूर था। अपनी खोज द्वारा इसने एक पारी (Shift) मे सात टन कोयले खोदने के स्थान पर १४२ टन कोयला खोद दिया। एक मास के अन्तर्गत ही इस नयी प्रणाली से एक पारी मे २२७ टन कोयला खोदा गया। राज्य द्वारा इसका अनुकरण प्रत्येक उत्पादन क्षेत्र मे होने लगा और इस आन्दोलन के अन्तर्गत उत्पादन मे ३०२% की वृद्धि हुई।

इस योजना म प्रथम बार उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि को कुछ महत्व दिया गया (परन्तु भारी उद्योगो के महत्व को कम नहीं किया गया)। उपभोग की सामग्री के प्रकार (variety) बहुत कम कर दिये गये परन्तु उनकी उत्पादन मात्रा बढा दी गयी। राजनैतिक शुद्धि (Political Purge) के कारण देश मे गहरा असन्तोष था जिसको शान्त करने हेतु यह छूट दी गयी।

कृषि—द्वितीय योजना में कृषि क्षेत्र के नवीन सोवियत संगठन को और पुष्ट बनाने का प्रयत्न किया गया। सामुदायिक कृषि की प्रगति ने किसानो का सन्तुलन बिगाड दिया था। सहानुभूति, कृषि सगठन मे एकरूपता तथा समान नियन्त्रण लाने हेतु फरवरी १९३५ मे कृषि आरटेल के आदर्श नियम (Model Rules of Agricultural Artel) बनाये गये। इनके अन्तर्गत कृषि-पद्धति, भूमि, उत्पादन का बँटवारा, प्रबन्ध, सदस्यता, कोष तथा श्रमिक अनुशासन आदि सभी अगो के लिये नियम बनाये गये जिनके आधार पर देश की सामुदायिक कृषि को संगठित किया जा सके। इन नियमो से किसानो मे आलस्य तथा गैर-जिम्मेदारी, अरुचि के साथ काम करना आदि त्रुटियो को दूर करने मे बडी सहायता मिली। अनाज वसूली के सिद्धान्तो मे भी सुधार किये गये। इसको प्रति एकड उत्पादन का पूर्व निश्चित अंश बना दिया गया जिससे किसानो को अधिक उत्पादन करने मे कोई रुकावट नही रही। कुलक वर्गों के उन्मूलन की कार्यवाहियाँ चलती रहीं। व्यक्तिगत किसानो से सामुदायिक खेतो के किसानो की तुलना मे अधिक कर लिया जाता था। सरकार को देने के पश्चात् किसान के पास जो अनाज बचता था, उसे खुले बाजार मे बेचा जा सकता था। इससे राशनिंग और अन्न-वितरण की समस्या सदा को हल हो गयी। १९३३ मे स्टालिन के विख्यात नारे का जन्म हुआ—"समस्त सामुदायिक किसानो को समृद्ध बनाओ"। स्टालिन का यह विचार था कि पहिले किसान दूसरो की मेहनत से, बेईमानी से तथा पडौसियो का शोषण करके समृद्ध बनने का प्रयत्न करते थे जिससे वे पूँजीवादी अथवा कुलक बन सकें। नयी सोवियत प्रणाली मे किसान केवल ईमानदारी और परिश्रम के साथ अपना कार्य करता है। अत सामुदायिक खेतो के किसान को समृद्धशाली बनने का पूर्ण अधिकार है। इस नवीन प्रणाली के अन्तर्गत किसान को पशु व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप मे रखने का अधिकार मिला तथा एक छोटा खेत भी व्यक्तिगत रूप मे दिया गया जिस पर किसान अपनी आवश्यकता की वस्तु उत्पन्न कर सके।

तृतीय पचवर्षीय योजना (१९३८-१९४२)—यह योजना उस समय बनायी गयी जब द्वितीय महायुद्ध की सम्भावनायें अत्याधिक थीं और रूसी नियोजकों ने इन योजना मे देश की रक्षा की आवश्यक सामग्री के उत्पादन एवं सग्रह को विशेष महत्व दिया। इस योजना के निम्न चार महत्वपूर्ण तत्व थे—

(१) यातायात—७००० मील लम्बी नवीन रेलवे लाईन डालने (जबकि द्वितीय योजना मे केवल २५०० मील लम्बी लाईन डाली गयी थी), ५००० मील लम्बी लाईन को दोहरा करना तथा १२०० मील लम्बी लाईन का विद्युतकरण

करने का आयोजन किया गया। जल एव सडक यातायात के विकास का भी आयोजन किया गया।

(२) अलौह (Alloy) धातुओ के शोधन के उद्योगो जैसे एल्युमिनियम (Aluminium), जस्ता (Zinc), सीसा (Lead), निकल (Nickle) आदि के विकास को विशेष महत्व दिया गया।

(३) इस्पात तथा मशीन-निर्माण उद्योगो का और अधिक विकास, तथा

(४) रसायन उद्योगो के विकास को विशेष महत्त्व दिया गया और यह नारा बुलन्द किया गया कि 'तृतीय योजना को रसायन योजना बनाओ।'

प्रथम दो योजनाओं ने रूस की सयोजित अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ बना दिया। अत मोलोतोव ने तृतीय योजना के उद्देश्यो का जिक्र करते हुये कहा कि यह योजना समाजवाद को साम्यवाद म बदल देगी। १९३६ के मूल्यो पर आधारित अनुमानो के अनुसार इस योजना पर १९२ मिलियर्ड। (१ मिलियर्ड= हजार मिलियन) रूबल का व्यय पूँजी के क्षत्र म रखा गया। इसम १११ ९ मिलियर्ड रूबल उद्योगो पर व्यय होन वाला था। औद्योगिक उत्पादन मे १२'४% प्रतिवर्ष वृद्धि करन का लक्ष्य रखा गया। भारी उद्योगो को प्राथमिकता पूर्वतः बनी रही। समाजवादी प्रतिस्पर्धा उत्पादन के प्रत्येक क्षत्र म प्रसारित हो गयी। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से आकर्षक आर्थिक पारितोषिक देन की नीति अपनायी गयी। किसी कारखान मे आज्ञा से अधिक उत्पादन होने पर उस कारखाने से सम्बन्धित राजनीतिक नेताओ, प्रबन्धक तथा मजदूर सभी को उदार अर्थ-लाभ के रूप म आर्थिक पारितोषिक दिये जात थे। नेताओ की प्रेरणा, प्रबन्धको का कौशल एव मजदूरो का परिश्रम वैज्ञानिको से सहायता पाकर श्रम उत्पादन मे लगभग ६५% की वृद्धि का कारण बने। औद्योगिक उत्पादन मे ८८ ५ मिलियड रूबल की वृद्धि हुई।

तृतीय योजना म कारखानो की आर्थिक आत्मनिर्भरता को बहुत जोर दिया गया। मैट्रिक मूल्याकन, व्यवस्थित लेखा, और लाभपूर्ण उत्पादन की मदद से यह उद्देश्य निश्चित किया गया कि प्रत्येक कारखाना आर्थिक आवश्यकताओ को बिना राजकीय सहायता के पूरा करले। इससे राज्य पर आर्थिक दबाव तथा कारखानो के प्रबन्ध म लापरवाही—दोनो पर नियन्त्रण हो गया। उत्पादन लागत एव राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य के अन्तर से होने वाली हानि को राज्य पूरा करता था।

तृतीय योजना लगभग ३½ वर्षो तक चली। परन्तु इतने ही समय मे सोवियत उद्योगो म भारी प्रगति हुई। औद्योगिक उत्पादन मे प्रतिवर्ष १३% वृद्धि हुई। बडे उद्योगो का विशेष विकास हुआ। देश के पूर्वी भाग मे ३ वर्षो

मे विशेष औद्योगीकरण हुआ । यूराल, वोल्गा क्षेत्र, साईबेरिया, मध्य एशिया और कज़ाखस्तान का औद्योगिक उत्पादन ३ साल म लगभग ५०% बढ गया । दक्षिणी पूर्वी प्रदेशों मे विज्ञान की सहायता से अपूर्व अन्न उत्पादन किया गया । सामुदायिक कृषि अपना लगभग पूर्णरूपेण प्रभाव जमा चुकी थी । पूंजी-निर्माण कार्य (Capital Construction Programme) मे १३० मिलियन रूबल का काम हुआ । इसका ½ भाग देश के पूर्वी भाग को विकसित करने पर व्यय किया गया । इसके अन्तर्गत लगभग २००० राजकीय मिल-कारखाने, बिजलीघर तथा दूसरे उद्योगो ने उत्पादन प्रारम्भ किया । पूर्वी क्षेत्रो के विकास का महत्व सकट के आने के पूर्व ही समझ लिया गया और इसीलिये रूस द्वितीय महायुद्ध मे विजयी हो सका । हिटलर के आक्रमण के पश्चात् केवल एक वर्ष मे लगभग एक हजार तीन सौ बडे कारखाने बढती हुई जर्मन सेनाओ के सामने से उखाड कर एक हजार मील पूर्व म पुनर्स्थापित किये गये ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना (१९४६-१९५०)—इस योजना के मुख्य उद्देश्य थे—

१—युद्धकालीन विध्वस का पुनर्निर्माण ।

२—१९३९ ४० का उत्पादन-स्तर कृषि एव उद्योगो के क्षेत्र मे प्राप्त करना ।

३—उत्पादन स्तर को १९३९-४० से भी यथा सम्भव अधिक बढाना ।

४—भारी उद्योगो एव रेल यातायात के विकास की प्राथमिकता बनाये । ।

५—जनता के कल्याण हेतु कृषि एव उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो का विस्तार एव विकास ।

६—पूंजी का शीघ्र सचय तथा

७—श्रम की उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि ।

योजना के पाँच वर्षो मे पूंजी का विनियोग २५० बिलियन डालर निर्धारित किया गया जो कि राष्ट्रीय आय का लगभग ३०% था ।

इस योजना के विभिन्न लक्ष्य निम्न थे—

१—इस्पात के उत्पादन म १९४० के स्तर से ५०% वृद्धि १९५० तक प्राप्त करना । ४५ इस्पात भट्टियो (Blast furnaces), १६५ खुली भट्टियाँ Open Health Furnaces), १५ कनवर्टर (Converter), और ९० बिजली की भट्टियाँ बनायी जानी थी । इन सबका उत्पादन १६ मिलियन टन इस्पात से भी अधिक था ।

२—महायुद्ध के पूर्व के स्तर से कोयले के उत्पादन मे योजना के अन्त

तक ५०% वृद्धि करना। दक्षिण-पूर्व मे कोयले की नयी खानो का पता लगाया गया। १९४६-५० तक १८३ मिलियम टन कोयला पैदा करने वाली खानें उत्पादन करने लगीं।

३—पेट्रोल के उत्पादन को १९४९ तक महायुद्ध के पूर्व के स्तर तक लाना तथा १९५० मे इससे अधिक उत्पादन करना।

४—विद्युत उत्पादन में १९४० के स्तर से ७०% अधिक उत्पादन का लक्ष्य रखा गया।

५—मशीन-निर्माण उद्योगों की उत्पादन क्षमता १९४० के स्तर से दुगनी करनी थी।

६—रसायन उद्योग के उत्पादन स्तर को १९४० की तुलना मे दुगना करना था।

७—राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा विध्वस हुये यातायात का पूर्ण निर्माण तथा उसका विस्तार करना।

८—कृषि उत्पादन मे १९४० के स्तर से २७% वृद्धि का लक्ष्य था।

९—वस्त्र एव अन्य छोटे उद्योगो के उत्पादन को १९४० के स्तर पर लाकर उसे आगे बढाने का लक्ष्य था।

योजना के लक्ष्यो की पूर्ति अनुमान से अधिक हुई और योजना की पूर्ति मे ५ वर्ष के स्थान मे ४ वर्ष एव ३ मास ही लगे। लक्ष्यो की पूर्ति निम्न प्रकार रही—

तालिका स० ४—चतुर्थ योजना में लक्ष्यो की पूर्ति[1]

	१९४०	१९५०	
		योजना का लक्ष्य	वास्तविक पूर्ति
(१) १९२६-२७ के मूल्यो पर राष्ट्रीय आय	१००	१३८	१६४
(२) मजदूर एव कर्मचारी	१००	—	१२६
(३) औद्योगिक उत्पादन	१००	१४८	१७३
(४) रेल यातायात	१००	१२८	१४६
(५) विद्युत शक्ति	१००	१७०	१८९

पाँचवी पंचवर्षीय योजना (१९५०-१९५५)—रूसी अर्थशास्त्री प्रयत्नशील थे कि देश मे विकास की गति इतनी अधिक रखी जाय कि १० या १५ वर्षो मे कुल उन्नति उतनी हो जाय जितनी विश्वयुद्ध न होने पर सम्भव

1. Strumilin · *Planning in the Soviet Union*, p. 52

हो सकती थी। पंचम पचवर्षीय योजनाएं औद्योगिक उत्पादन मे ७२% वृद्धि करने का लक्ष्य था जबकि वास्तविक उत्पादन वृद्धि ८५% हुई थी। पूंजी के साधनो मे ५ वर्षों मे ८०% वृद्धि का लक्ष्य था जबकि विशेष प्रयत्नो द्वारा यह वृद्धि ९१% हुई थी। उपभोग की सामग्री के उत्पादन मे ६५% वृद्धि का लक्ष्य था और वास्तविक वृद्धि ७६% हुई थी। विशेष ध्यान देने की बात यह थी कि युद्ध के पश्चात् उत्पादन तथा उपभोग की सामग्री के उत्पादन की वृद्धि समानता की ओर बढ रही थी। उत्पादन की वृद्धि की गति पूंजीवादी देशो के विकास की तुलना मे लगभग ५०% अधिक थी। १९५०-१९५५ के मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका के विकास की गति की तुलना मे रूस की प्रगति दुगनी थी।

पचम योजना मे पूंजी विनियोग की मात्रा ६८६.७ मिलियर्ड रूबल थी। यह विनियोग प्रथम योजना का १० गुना से भी अधिक था। यह योजना लगभग ४ वर्ष और ४ माह मे पूरी कर ली गयी थी। योजना की सफलता निम्न प्रकार रही[1]—

तालिका स० ५—पांचवी योजना के लक्ष्यो की पूर्ति

	१९५०	योजना का लक्ष्य	वास्तविक पूर्ति
(१) राष्ट्रीय आय	१००	१६०	१६८
(२) रोजगार	१००	११५	१२०
(३) औद्योगिक उत्पादन	१००	११७	१८५
(४) भारी उद्योग	१००	१८०	१९१
(५) अन्य उद्योग	१००	१६५	१७६
(६) विद्युत शक्ति	१००	१८०	१८७

इजीनियरिंग उद्योग म १२०% वृद्धि हुई। तेल का उत्पादन ८०%, कच्चा लोहा ७४% और कोयले का उत्पादन ५०% बढा। स्तालिन की मृत्यु के पश्चात् कृषि का विकास तथा उपभोग के उद्योगो का महत्व राज्यशक्ति के झगडो का केन्द्र बन गये और १९५३ तक कृषि उत्पादन मे नाममात्र की वृद्धि हुई। परन्तु इसके पश्चात् कृषि पर पूरा ध्यान दिया गया और इसके उत्पादन मे १००% की वृद्धि हुई।

छठी पंचवर्षीय योजना (१९५६-१९६०)—फरवरी १९५६ मे कम्युनिस्ट पार्टी के अधिवेशन मे रूसी शासन मे बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गये तथा आर्थिक ढांचे को पुनर्संगठित करने का निश्चय किया गया। इसके साथ ही छठी पचवर्षीय योजना के प्रारूप को स्वीकार किया गया। इस योजना के

1. Strumilin: Planning in the Soviet Union, p. 54.

लक्ष्य अव्यवहारिक थे और उनमे कई बार परिवर्तन किये गये। योजना का अन्तिम लक्ष्य जनसमुदाय के जीवन-स्तर मे पर्याप्त वृद्धि करना था जो कि अर्थ-व्यवस्था का सर्वतोमुखी विकास करके प्राप्त करना था। औद्योगिक उत्पादन मे ६५% वृद्धि करने का लक्ष्य था। उत्पादक उद्योगो के उत्पादन मे ७०% तथा उपभोक्ता सामग्री के उत्पादन मे ६०% वृद्धि का निश्चय किया गया। निकेता खु्श्चेव ने रूसी इतिहास मे प्रथम बार उपभोक्ता सामग्री के उत्पादन पर अत्यधिक जोर दिया। उन्होने अपनी रिपोर्ट मे कहा कि रूस के पास बहुत शक्तिशाली भारी उद्योग स्थापित हो चुके हैं और अब यह सम्भव है कि उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन को बढाया जाय। इस योजना के लक्ष्य निम्न प्रकार थे—

१—इस्पात के १९५५ के उत्पादन ४५ मिलियन टन को बढाकर ६८ मिलियन टन करने का लक्ष्य था जो महायुद्ध के पूर्व के स्तर से ३ ७ गुना अधिक था।

२—कोयले के उत्पादन म १९५५ के स्तर से ५२% वृद्धि, तेल के उत्पादन को दुगना तथा गैस के उत्पादन को ४ गुना करने का निश्चय किया गया।

३—विद्युत शक्ति के १९५५ के उत्पादन १,७०,००० मिलियन K.W.H. को बढा कर १९६० तक ३,२०,००० मिलियन K.W H करने का लक्ष्य रखा गया।

४—इजीनियरिंग तथा धातु उद्योगो मे अत्यधिक वृद्धि करना था।

५—उद्जन शक्ति (Atomic Power) का उत्पादन दो से ढाई मिलियन K.W.H. करना था तथा एक उद्जन शक्ति से चलने वाले इजन, जिसमें वर्फ तोडने का यत्र लगा हो, का निर्माण करना था। इसके साथ ही उद्जन शक्ति का उपयोग कृषि, औषधि तथा अन्य वैज्ञानिक एव शोध-कार्य के लिए होना था।

६—उपभोक्ता सामग्री के अन्तर्गत सूती वस्त्र उत्पादन मे २०%, ऊनी वस्त्र उत्पादन मे ५०% तथा रेशमी वस्त्र उत्पादन मे १००% वृद्धि करनी थी। रेडियो तथा टेलिविजन सेट के उत्पादन मे १५०% से भी अधिक वृद्धि का लक्ष्य था।

७—खाद्य सामग्री के उत्पादन मे महत्वपूर्ण वृद्धि करने का लक्ष्य था। मास के उत्पादन मे ७८%, मछली के उत्पादन म ५७%, शक्कर के उत्पादन को दुगना, अन्य फसलो के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करने का लक्ष्य था।

८—पूंजी निर्माण व्यय योजना काल मे ९९०,००० मिलियन रूबल रखा गया जो प्रथम योजना के विनियोजन का १८ गुना था।

छठी योजना का अंतिम लक्ष्य जीवन स्तर मे महत्वपूर्ण वृद्धि करना था। राष्ट्रीय आय मे ६०% वृद्धि, औद्योगिक एव अन्य श्रमिको की वास्तविक मजदूरी मे ३०% वृद्धि तथा सामुदायिक खेतो के किसानो की औसत रोकड आय में ४०% वृद्धि करने का लक्ष्य था। छठी योजना के अन्तर्गत विभिन्न मदो मे वार्षिक वृद्धि निम्न प्रकार हुई—

तालिका स० ६—सोवियत अर्थ-व्यवस्था की वार्षिक उन्नति दर

	छठी योजना की वृद्धि की वार्षिक प्रतिशत
(१) राष्ट्रीय आय	१००
(२) औद्योगिक उत्पादन	१०५
(३) उत्पादन के साधनो का उत्पादन	११२
(४) उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन	१०७
(५) कृषि उत्पादन	११०
(६) श्रम उत्पादकता	
(अ) उद्योग	८४
(ब) निर्माण	८७
(स) कोलखोज	१४६
(७) फुटकर व्यापार	८४
(८) रेल यातायात	७·३

सातवी पचवर्षीय योजना (१९५९-१९६५)—रूस की छठी पचवर्षीय योजना पूरे पाँच वर्ष नहीं चली और १९५९ मे सातवीं योजना की घोषणा कर दी गयी। कम्युनिस्ट पार्टी के २१ वें अधिवेशन म इस योजना को स्वीकार किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि रूसी उत्पादन उद्योग एव कृषि दोनो ही क्षत्रो म इतना बढाया जाय कि रूसी नागरिक सुविधापूर्वक जीवन बिता सकें। वास्तव मे यह योजना १५ वर्षीय साम्यवादी निर्माण का एक भाग है। योजना के मुख्य उद्द श्य थे अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में विकास जिसमे भारी उद्योगो को प्राथमिकता दी जाती थी तथा देश के सम्भावी अर्थ साधनो मे पर्याप्त वृद्धि जिसमे जनता के जीवन मे निरन्तर सुधार होता रहे। योजना के मुख्य लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

१—राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का द्रुत गति से एव सतुलित विकास।

२—राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु लोहे एव अलौह धातुओ के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि।

३—रसायन उद्योग का शीघ्र विकास।

४—ईधन के क्षत्र में सस्ते ईधनो जैसे तेल एव गैस के निकालने एव उत्पादन को प्राथमिकता।

५—बडे पैमाने के विद्युत शक्ति के थर्मल स्टेशन बनाकर राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की समस्त शाखाओ मे विद्युत शक्ति का विकास।

६—रेलो का तान्त्रिक पुनर्निर्माण जिसमे इनको विद्युत शक्ति तथा डीजिल द्वारा चलाया जा सके।

७—कृषि के सभी क्षेत्रो मे और विकास जिससे देश की खाद्यान्न एव कृषि के कच्चे माल की आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके।

८—गृह-निर्माण का शीघ्र विकास जिससे मजदूर-वर्ग के मकानो की कमी दूर की जा सके।

९—सात वर्षो मे देश के प्रचुर प्राकृतिक साधनो की खोज एव विकास। लाभपूर्ण उत्पादन शक्ति का बँटवारा करने का प्रयत्न किया जायगा जिससे प्रत्येक क्षेत्र विकसित हो और उद्योग, कच्चा माल, ईंधन, बाजार के अधिकतम निकट पहुँचाये जायें। पूर्वी रूस के विकास को विशेष स्थान दिया जाय।

पूंजी-निर्माण एवं विनियोजन—सन् १९५९-६५ के दौरान मे राज्य द्वारा लगायी रूसी पूंजी सन् १९४० से १९७० मिलियर्ड रूबल होगी। यह विनियोजन लगभग उतना ही होगा जितना कि सन् १९१७ से १९५८ के मध्य विनियोजन किया गया था। विनियोजन सम्बन्धी यह सिद्धान्त निश्चित किये गये कि जहाँ पर नवीन प्राकृतिक साधनो का पता लगे, वहीं नवीन कारखानो की स्थापना की जाये। इस वर्ग मे तेल, गैस, विद्युत, खनिज पदार्थ आदि सम्मिलित किये गये। निर्माण उद्योगो मे नवीन कारखानो पर पूंजी न लगा कर वर्तमान कारखानो के आधुनिकीकरण व पुनर्संगठन को अधिक लाभप्रद समझा गया। सन् १९५९-६५ के मध्य कुल पूंजी विनियोजन मे ८०% की वृद्धि होगी। लगभग १०० मिलियर्ड रूबल लोहे एव इस्पात उद्योगो मे विनियोजित किये जायेंगे। तेल एव गैस उद्योग के विकास के लिये १७०-१७३ मिलियर्ड रूबल और विद्युत उत्पादन पर १२५-१२९ मिलियर्ड रूबल खर्च होगा। हल्के एव खाद्य उद्योग मे पिछले सात वर्षों मे दुगनी प्रगति की जायगी। मकान-निर्माण के लिये ३७५-३८० मिलियर्ड की राशि तय की गयी। कृषि के क्षेत्र मे राज्य ने १५० मिलियर्ड रूबल लगाने की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त सामुदायिक फार्मों को भूमि तथा पशु-उत्पादन से उत्पन्न पूंजी कृषि विकास मे लगायी जायेगी। यह अनुमान था कि इन साधनो से कृषि क्षेत्र पर ३४५ मिलियर्ड रूबल व्यय किया जायगा। इस प्रकार कृषि के विकास के लिये समस्त राशि ५०० मिलियर्ड रूबल निर्धारित की गयी।

कृषि—सातवीं योजना इस बात का प्रयत्न करेगी कि कृषि की उन्नति और

समाजवादी उत्पादन मे और अधिक घनिष्टता उत्पन्न की जा सकेगी। इसका तात्पर्य यह होगा कि राजकीय फार्म और कोलखोज राष्ट्र की समाजवादी सम्पत्ति होने के नाते एकरूपता की ओर अग्रसर होगे। इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु सामुदायिक फार्म पद्धति की उन्नति, उसके स्टाक मे वृद्धि, अविभाजनीय कोष का विकास व उचित सामाजिक प्रयोग, सामूहिक फार्मो मे पारस्परिक सहयोग द्वारा औद्योगिक उत्पादन करना तथा बिजलीघर, नहरें, कृषि उत्पादन का सग्रह, स्कूल एव अस्पताल बनवाना आदि कार्यवाहियाँ की जायँगी। नवीन नीति का आशय यह प्रतीत होता है कि भविष्य मे कोलखोज और सोवखाज के मिलाने का निश्चय किया गया है। राजकीय फार्मों का स्थान समाजवादी कृषि मे और ऊँचा कर दिया गया है। यह अपन आदर्श प्रबन्ध, कम लागत पर उत्पादन और श्रम तथा साधनो मे बचत का प्रतीक बन कर सामने आयेंगे। इनके प्रबन्ध सगठन मे श्रम का प्रत्यक्ष सहयोग और भी बढा दिया जायगा। प्रत्येक क्षेत्र मे जलवायु तथा भूमि को देखते हुये उत्पादन म विशिष्टीकरण किया जायगा जिससे राजकीय फार्म अधिक लाभप्रद बनाये जा सकें। इस योजना के कृषि सम्बन्धी लक्ष्य इस प्रकार हैं—

१—अन्न के उत्पादन मे १६०-१८० मिलियन टन की वृद्धि।

२—रासायनिक खाद का उत्पादन सन् १६५८ के स्तर १० ६ मिलियन टन से बढ कर सन् १६६५ तक ३१ मिलियन टन हो जायगा।

३—औद्योगिक फसलो के उत्पादन मे इस प्रकार वृद्धि के लक्ष्य हैं। कपास ५·७ से ६·१ मिलियन टन अथवा सन् १६५७ से ३५ से ४५% तक की वृद्धि, चुकन्दर ७० से ७८ मिलियन टन, तिलहन का उत्पादन ५·५ मिलियन टन हो जायगा अर्थात् ७०% वृद्धि होगी।

४—आलू का उत्पादन सन् १६५७ के उत्पादन ८८ मिलियन टन से बढ कर १४७ मिलियन टन हो जायगा।

५—जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु सब्जी के उत्पादन मे वृद्धि।

६—फल आदि का उत्पादन दुगने करने का लक्ष्य है।

७—मास का उत्पादन दुगना, दूध का उत्पादन १·७ से १·८ गुना, ऊन का उत्पादन ५,४८,००० टन अथवा १ ७ गुना तथा अण्डा का उत्पादन ३३,००० मिलियन टन अथवा १ ७ गुना हो जायगा।

कृषि के कुल उत्पादन मे सन् १६५८ के उत्पादन की तुलना मे सन् १६६५ में १ ७ गुना होगा। पशु (Cattle) २०%, गाय ६०% तथा भेड़ें लगभग ५०% बढ जायँगी।

कृषि-कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु सात वर्षों में १० लाख ट्रैक्टर और चार लाख हारवेस्टर और बहुत बड़ी मात्रा में कृषि के अन्य यंत्र बनाने का लक्ष्य है। योजना काल में समस्त सामूहिक फार्मों में बिजली पहुँच जायगी जिससे बिजली का प्रयोग ३००% बढ़ जायगा। यह भी सम्भावना की जाती है कि सात वर्षों में सामूहिक फार्म में श्रमिकों की उत्पादन क्षमता दुगनी करदी जायगी और राजकीय फार्मों में ६०% से ६५% तक बढ़ जायगी।

उद्योग—सातवीं योजना में औद्योगिक विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं किया गया। भारी उद्योगों को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। रासायनिक उद्योगों को योजना में विशेष महत्व प्राप्त है क्योंकि इसके द्वारा प्राकृतिक साधनों की कमी का पूरा किया जा सकता है। समस्त औद्योगिक उत्पादन में ७ वर्षों में ८०% वृद्धि करने का लक्ष्य है जिसमें उत्पादन के साधनों का उत्पादन ८५%-८८% और उपभोग की सामग्री के उत्पादन में ६२%-६५% वृद्धि होगी। औसत वार्षिक उत्पादन का मूल्य लगभग १३५ मिलियर्ड रूबल होगा जबकि पिछले सात वर्षों में यह उत्पादन ६० मिलियर्ड रूबल प्रति वर्ष था। योजना के विभिन्न लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

१—१९६५ में ६५ से ७० मिलियन टन पिग्ड लौह तथा ८६ से ९१ मिलियन टन तक इस्पात उत्पन्न करने का लक्ष्य जो १९५८ के उत्पादन से क्रमशः ६५%-७७% एवं ५६%-६५% अधिक होगा।

२—अलौह धातुओं में अलुमिनियम का उत्पादन २८ गुना, शोधे हुये ताँबे का उत्पादन १९ गुना तथा निकिल, मैंगनीज आदि के उत्पादन में काफी वृद्धि होगी।

३—रसायन उद्योग के उत्पादन में ३ गुनी वृद्धि होगी।

४—१९६५ तक २३० से २४० मिलियन टन तेल निकाला जायगा, जोकि १९५८ के स्तर का लगभग दुगना होगा। गैस का उत्पादन ५ गुना तथा कोयले का उत्पादन ५९६-६०९ मिलियन टन अर्थात् १९५८ से २०% से २३% वृद्धि होगी। इसी प्रकार बिजली के उत्पादन में २ से २·२ गुनी वृद्धि होगी।

५—मशीन-निर्माण एवं धातु सम्बन्धी उद्योगों में लगभग दुगना उत्पादन करने का लक्ष्य है।

६—उपभोक्ता सामग्री के अन्तर्गत हल्के उद्योगों का उत्पादन सात वर्षों में १½ गुना होजायगा। सूती वस्त्र का उत्पादन १९५८ के उत्पादन—५८०० मिलीमीटर्स

से बढ कर ७७००-८००० मिलिमीटर्स हो जायगा अर्थात् बढ कर १३३% से १८८% हो जायगा। ऊनी वस्त्र का उत्पादन ३०० मिलिमीटर्स से ५०० मिलीमीटर्स हो जायगा अर्थात बढ कर १६७% हो जायगा, रेशमी वस्त्र उत्पादन ८१४ मिलीमीटर्स से बढ़ कर १४८५ हो जायगा अर्थात १८२% की वृद्धि होगी। इसी प्रकार चमडे के जूते का उत्पादन १४५% बढ जायगा।

७—खाद्य सामग्री के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करने का लक्ष्य है। मास का १९५८ का उत्पादन २८३० हजार टन से बढ कर १९६५ म ६१३० हजार टन अर्थात् २१७% की वृद्धि, मक्खन का उत्पादन ६२७ हजार टन से बढ कर १००६ हजार टन अर्थात् १६०% की वृद्धि, ग्रेन्युलेटेड (Granulated) शक्कर का उत्पादन ६०१७ हजार टन से बढ कर १३५४६ हजार टन अर्थात् २२५% की वृद्धि का लक्ष्य है।

८—घरेलू उद्योग की मशीनें एव औजारो के उत्पादन को दुगना करने का लक्ष्य है।

९—औद्योगिक श्रमिक के उत्पादन मे ४५% से ५०% की वृद्धि होने का अनुमान है।

इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि होने से रूसी अर्थ-व्यवस्था वस्त्र-उत्पादन, चमडे के जूते तथा खाद्य सामग्री के उत्पादन मे ससार के अधिक विकसित पूंजीवादी राष्ट्रो से आगे बढ जायगी।

यातायात एवं संचार—सातवी योजना का एक महत्वपूर्ण विषय रेल एव वायु यातायात भी है। माल ढोने की क्षमता मे रेल यातायात ३९% से ४३% तक वृद्धि करेगा। रेलो मे बिजली एवं डीजल शक्ति का अधिक उपयोग किया जायगा। १९५८ मे ७४% मालगाडियाँ कोयले से चलने वाले इ जन प्रयोग करती थीं जबकि १९६५ मे ८५% से ८७% मालगाडियाँ बिजलो और डीजल इ जिन से चलेंगी। नवविकसित पूर्वी औद्योगिक क्षेत्रो—कजखस्तान, यूराल, वोल्गा तथा साईबेरिया मे ट्रान्स साईबेरियन रेलवे के अतिरिक्त दक्षिणी साईबेरिया और मध्य साईबेरिया तक विशाल रेल लाईन का निर्माण होगा। रेल-यातायात के आधुनिकीकरण से माल ढोने की लागत मे २२% की कमी होगी।

सात वर्षों मे समुद्री जहाज द्वारा ढोये जाने वाले माल की मात्रा दुगनी हो जायगी। नदी यातायात का विकास साईबेरिया के क्षेत्रो मे किया जायगा। मोटर गाडियो द्वारा ढोये जाने वाले माल की मात्रा मे १·६ गुनी वृद्धि होगी तथा मोटर से सफर करने वाली सवारियो की संख्या तीन गुनी हो जायगी। वायुयानो की सवारी की सख्या ५०० प्रतिशत बढ जायगी। तेल के वाहन के

रूप मे पाइप लाईन का जाल समूचे देश में बिछा दिया जायगा जिसमे तेल वाहन मे किसी प्रकार के यातायात की आवश्यकता नहीं रहेगी। पाइप द्वारा तेल ले जाने मे ४५०% की वृद्धि का आयोजन है।

जन-कल्याण—सातवीं योजना काल मे राष्ट्रीय आय ६२% से ६५% तक बढेगी जिससे राष्ट्र की उपभोग क्षमता मे ६०% से ६३% की उन्नति होगी। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि वर्तमान योजना मे जीवन-स्तर को ऊँचा उठान हेतु उपभोग के विस्तार का विशेष प्रयोजन है। मजदूर एव कर्मचारियो की सख्या मे १२० लाख व्यक्तियो की वृद्धि होगी। १९६५ तक इनकी कुल सख्या ८६५ लाख हो जायगी। मूल्यो मे कमी तथा वेतन, पेन्शन व सहायता मे वृद्धि होने से मजदूर कर्मचारियो की वास्तविक आय ४०% बढ जायगी। उद्योगो को छोड कर सामूहिक फार्मों के किसानो की आय भी ४०% बढ जायगी। निम्न तथा मध्यम वर्ग के मजदूर कर्मचारियो के वेतन मे वृद्धि कर उच्च वर्ग से विषमता को कम कर दिया जायगा। इसके लिये न्यूनतम वेतन २७० ३५० रूबल प्रति मास से बढा कर ५००-६०० रूबल प्रति मास तक कर दिया जायगा। औद्योगिक स्वास्थ्य तथा कारखानो मे मशीनो से रक्षा मे प्रगति, मजदूर कर्मचारियो को विशेष सुविधायें, नर्सरी तथा किण्डरगार्टन स्कूल, नि शुल्क शिक्षा, इलाज, सामाजिक बीमा, बडे परिवार की माताओ को अनुदान, पेन्शन, वृद्ध लोगो के लिये विश्राम भवन इत्यादि पर राजकीय व्यय २१५ मिलियर्ड रूबल (१९५८) से बढाकर ३६० मिलियर्ड रूबल कर दिया जायगा। कम्युनिस्ट पार्टी के २०वें अधिवेशन के अनुसार ५ दिन प्रति सप्ताह मे ६ से ७ घन्टे का कार्यकाल माना गया है। खानो मे काम करने वाले कर्मचारियो का कार्यकाल ६ घन्टे कर दिया जायगा।

(आ) सोवियत नियोजित अर्थ-व्यवस्था एव सगठन

रूस की नियोजित अर्थ-व्यवस्था मार्क्सवाद पर आधारित है। इस व्यवस्था मे निजी सम्पत्ति का उन्मूलन करना रूसी योजना का मुख्य लक्ष्य है। उत्पादन के प्रत्येक साधन पर राज्य का पूर्ण स्वामित्व है जिससे लाभोपार्जन हेतु होने वाले सामाजिक शोषण को रोकने का प्रयत्न किया जा सकता है। भविष्य मे धन-सम्पत्ति एकत्रित करने को रोकने के लिये बहुत से उपाय किये गये हैं। उत्तराधिकार के नवीन नियमो से धन-सम्पत्ति के हस्तान्तरण को कम से कम करा दिया गया है। उद्योग व्यापार तथा कृषि म निजी सम्पत्ति का उपार्जन प्राय समाप्त हो गया है। नवीन आर्थिक नीति के फलस्वरूप ब्याज, लाभ तथा किराया पाना असम्भव तथा अवैधानिक बन गया है। उत्पादन के साधनो पर राज्य स्वामित्व या सामुदायिक स्वामित्व

अर्थ यह नहीं कि सभी उत्पादन या काय केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार चलायें अपितु कुछ प्रमुख को छोड कर अन्य उद्योगो को राज्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं चलाता। वे सहकारी तथा व्यक्तिगत क्षत्र के लिये छोड दिये गये हैं परन्तु इन पर राज्य का पूरा और प्रत्यक्ष निर्देशन रहता है। निजी सम्पत्ति के उन्मूलन का अथ यह है कि प्रत्येक नागरिक व्यक्तिगत सम्पत्ति केवल उपभोग के लिये रख सकता है न कि उत्पादन के लिये। कृषि क्षत्र मे सामुदायिक किसानो को थोडी व्यक्तिगत भूमि रखने का भी अधिकार है जिसकी उपज उनकी निजी आय होती है।

सामुदायिक निर्णय एव साधनो का बंटवारा—पूंजीवाद म आर्थिक साधनो का बंटवारा उपभोक्ताओ की रुचि के अनुसार असख्य व्यापारियो के निर्णय द्वारा होता है। व्यक्तिगत उपभोक्ता, उत्पादक पूंजीपति व्यापारी तथा कितन ही मध्यस्थो म स्वाथ सघप (Clash of Interests) होना पूंजीवाद का मुख्य लक्षण है। इस स्वाथ सघप से बचन के लिये सोवियत रूस न कठोर केन्द्रीय संचालन तथा निणय का माग अपनाया। रूस मे समस्त आर्थिक निणय तथा लक्ष्य निर्धारण व्यक्तिगत प्रभाव से हटा कर एक केन्द्रीय सस्था को सौप दिये गये है। इस केन्द्रीयकरण के फल स्वरूप व्यक्तिगत एव वर्गों के स्वार्थपूर्ण हितो का स्थान दश और समाज के हित न ले लिया अर्थात् समस्त आर्थिक निर्णय एव लक्ष्य समस्त देश एव समाज के हित को दृष्टिगत कर केन्द्रीय अधिकारी द्वारा किये जाते हैं। इस व्यवस्था मे उपभोक्ता की रुचि उसकी मात्रा गुण एव प्रकार को उचित सीमाओ मे बांधना पडता है। राशनिग, उपभोग के साधनो की बनावटी कमी तथा प्रमापीकरण (Standardization) इसके लिये मुख्य साधन हैं। अत योजनाओ मे जनता की आवश्यकताओ एव रुचि व्यक्तिगत-रूप से निर्धारित नहीं होती है अपितु सामूहिक रूप से निर्धारित की जाती है। योजनाओ मे निर्धारित प्राथमिकताओ के अनुसार अथ-साधनो को अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे बाँटा जाता है। साधनो के बंटवारे के पूर्व यह भी निश्चय करना आवश्यक होता है कि देश की योजना मे उत्पादक एव उपभोक्ता उद्योगो मे क्या अनुपात रखा जाय। रूसी-योजनाकर्त्ताओ को यह निश्चय करना भी आवश्यक था कि देश के आर्थिक विकास का आधार कृषि को बनाया जाय या उद्योगो को। स्टालिन न समाजवादी योजनाओ का आधार औद्योगीकरण निश्चित किया था। इस निश्चय का मुख्य आधार शत्रुतापूर्ण पूंजीवादी देशो से अपनी सुरक्षा करन के लिये नवीनतम अस्त्रो का निर्माण करने को प्राथमिकता दना था। इसके अलावा औद्योगीकरण द्वारा जनता का मजदूरी

मूल्य निर्धारण—समाजवाद मे अर्थ के नियम (Law of Value) का उतना महत्व नहीं होता जितना कि पूँजीवाद मे। समाजवाद मे उत्पादन के साधनो और श्रम-शक्ति का बँटवारा अर्थ के सिद्धान्त के आधार पर नहीं होता प्रत्युत योजनाकर्त्ताओ द्वारा होता है। सोवियत रूस मे वस्तु के अर्थ एवं मूल्य मे निश्चित सम्बन्ध होना आवश्यक नही है क्योकि मूल्य निर्धारण करते समय योजना की आवश्यकताओ पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसलिये उत्पादन एव उपभोक्ता की वस्तुओ के मूल्यो मे काफी अन्तर पाया जाता है। मूल्य पर माँग एवं पूर्ति का प्रभाव अत्यन्त सीमित रहता है। वस्तुओ की माँग एव पूर्ति का सन्तुलन जनता की माँग पर नहीं छोडा जाता है। इसलिये माँग का इतना प्रभाव नहीं होता कि वह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन की मात्रा निर्धारित करें। पारस्परिक सतुलन हेतु फुटकर मूल्य के स्थान पर योजना द्वारा सचालित उत्पादन से सकेत लिया जाता है। उत्पादन की मात्रा माँग से सदैव कम रखी जाती है जिससे माँग और पूर्ति का सतुलन कभी बिगडने न पाये। उपभोग वस्तुओ की मात्रा और माँग मे अधिक से अधिक अन्तर रखा जाता है। राष्ट्रीय साधनो को उपभोग के क्षेत्र से हटा कर भारी उद्योगो मे लगाने की यह प्रचलित विधि है। रूस मे मूल्य के स्तर मे स्थिरता रखी जाती है। रूसी योजनाओ मे जनता की क्रय-शक्ति एव वस्तुओ की पूर्ति मे सतुलन बनाये रखा जाता है। इस सन्तुलन की गडबडी को कानून द्वारा, टैक्स द्वारा तथा राशनिग द्वारा ठीक कर दिया जाता है।

व्यापार—सोवियत रूस में व्यापार का उद्देश्य केवल लाभ प्राप्त करना या उपभोक्ताओ की रूचि का ही पता लगाना नही है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के समान क्रेताओ को न तो बाजार मे नवीन माडल व डिजाइन की वस्तुयें ही मिलती हैं और न क्रेताओ के पास अधिक क्रय-शक्ति ही होती है। क्रान्ति के पश्चात् ही देशी एव विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। देश का थोक व्यापार राजकीय सस्थाओ के हाथ मे है। विभिन्न उत्पादनो को आयोजित मूल्य पर खरीद कर सहकारी समितियो तथा कारखाना स्टोर्स द्वारा निर्धारित मूल्य पर उपभोक्ताओ तक पहुँचाया जाता है। फुटकर मूल्य जो बदलते रहते है, के द्वारा लोगो की आय एव बाजार मे उपलब्ध वस्तुओ का विक्रय मूल्य सतुलित रखने का प्रयत्न किया जाता है।

नियोजन का सगठन—सोवियत सघ की स्थापना के पश्चात् अर्थ-व्यवस्था पर राजकीय नियन्त्रण प्राप्त करने हेतु एक उच्चतम आर्थिक समिति वेसेन्खा (Supreme Economic Council Vesenkha) की स्थापना की गयी। इसके कार्यक्षेत्र मे आर्थिक मामलो का अध्ययन तथा अर्थ-व्यवस्था

को साम्यवादी उद्देश्यो के लिए तैयार करना सम्मिलित किये गये। १६२६ मे नवीन आर्थिक नीति की घोषणा की गयी और योजनाबद्ध आर्थिक विकास हेतु एक राजकीय योजना आयोग जिसका नाम गोसप्लान (Gosplan) था, की स्थापना की गयी। अर्थशास्त्री, विशेषज्ञ, वैज्ञानिक तथा कुछ राज्य कर्मचारी इसके सदस्य थे। इनका मुख्य कार्य आर्थिक पुनर्संगठन तथा नीति के विषय पर राज्य के लिए प्रसविदा तैयार करना, विशेष समस्याओ पर सलाह देना और विस्तृत योजना के लिए आंकडे एकत्रित करना था। धीरे धीरे इस सस्था के अधिकार बढा दिये गये। १६४१ के विधान ने इसका अधिकार-क्षेत्र इस प्रकार निश्चित किया—

१—दीर्घ अवधि तथा वार्षिक, तिमाही तथा मासिक राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओ को तैयार करना।

२—अन्य सस्थाओ द्वारा तैयार की गयी योजनाओ का साराश राज्य को देना। इन सस्थाओ मे राजकीय विभाग तथा प्रजातत्र (Republics) राज्य प्रमुख थे।

३—राज्य द्वारा स्वीकृत योजना की सफल पूर्ति हेतु नियन्त्रण।

४—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था को विशेष समस्या का अध्ययन।

५—समाजवादी लखा (Socialist Accounting) का निर्देशन।

गोसप्लान के पश्चात् महत्व के अनुसार राज्यो की योजना समितियाँ और क्षेत्रीय योजना समितियाँ होती हैं। इनके अतिरिक्त नगरो मे नगर योजना सस्थायें तथा ग्रामीण क्षेत्रो के लिये जिला योजना सस्थायें होती हैं। इन सब शाखाओ के सहयोग द्वारा गोसप्लान देश के प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यक्ताओ एव योजना की प्रगति आदि के बारे मे सूचना प्राप्त करता रहता है। जनवरी १६४८ म केन्द्रीय योजना व्यवस्था को पुनर्संगठित किया गया। गोसप्लान के सबसे महत्वपूर्ण कार्य, उद्योगो के बीच साधनो का बंटवारा करने का कार्य एक नवीन सस्था को दिया गया जिसका नाम गासनैप था। इसी समय एक तीसरी सस्था की स्थापना की गयी जिसका नाम गास्टेक था। इसका कार्य आधुनिक, यांत्रिक तथा कुशल प्रणालियो का रूसी अर्थ व्यवस्था से मेल करना था। यह आशा थी कि यह समिति आधुनिकीकरण मे प्राप्य शिथिलता को दूर कर देगी। परन्तु गास्टेक सफलतापूर्वक कार्य न कर सका और इसे १६५१ म भग कर दिया गया। इस प्रकार गास्पलान का कार्य उत्पादन एव सामाजिक जीवन तथा दूसरे अगो की योजना तैयार करने तक सीमित हो गया।

प्रारम्भ म रूसी योजनाओ को कार्यान्वित करन का दायित्व राज्य के विभिन्न मत्रालयो पर था। इससे उद्देश्य तथा विचारो में भिन्नता आने लगी

प्रारम्भ मे कारखानो की व्यवस्था के दो रूप थे—आन्तरिक प्रबन्ध और बाहरी प्रबन्ध। कारखानो के आन्तरिक प्रबन्ध सुचारुरूप से सचालित करने हेतु कारखानो को पृथक-पृथक विभागो मे विभक्त किया जाता था। इन विभागो के अध्यक्ष अपने-अपने क्षेत्र मे निर्णय करने और आज्ञा देने मे पूर्ण स्वतत्र थे। सचालक एक प्रकार से इन अध्यक्षो के बीच सम्पर्क स्थापित करने का साधन मात्र था परन्तु इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था अधिक सफल नहीं हुई। बाहरी प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रत्येक कारखाने को केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकार के विभिन्न मत्रालयो, आयोग विभाग आदि से आज्ञा लेनी पडती थी। इस प्रबन्ध मे बहुत अधिक दोप थे। कारखाना संचालक के अधिकार और कर्तव्यो का निर्धारण होना अत्यन्त कठिन था।

सन् १६२४ मे स्टालिन ने प्रबन्ध सुधार की ओर ठोस कदम उठाये। एक व्यक्ति को प्रबन्ध लागू करने हेतु पृथक्-पृथक विभागो के अध्यक्षो के अधिकारो मे कटौती कर दी गयी। स्वतन्त्र निर्णय और आज्ञा देने का अधिकार उनसे सर्वथा ले लिया गया। अब वे केवल अपने विभाग म आवश्यक परिवर्तनो और दूसरे कार्यों के लिये सचालको के पास अपनी सलाह ही भेज सकते थे। समस्त आज्ञायें सचालक के नाम पर ही निकलती थीं। सन् १६३४ म कम्युनिस्ट पार्टी के १७ वें अधिवेशन मे यह भी निश्चय किया गया कि उत्पादन का क्षेत्रीय संचालन किया जाय। इसके द्वारा एक क्षेत्र म एक ही वस्तु क उत्पादन म लगे हुये जितने भी कारखाने हो, उनको केन्द्रीय औद्योगिक प्रबन्ध समिति के पूर्ण सचालन म दे दिया गया। इसमे प्रबन्धक को अब योजना आयोग और राज्य के पृथक्-पृथक् विभागो से सम्पर्क न रख कर केवल ग्लावक् (Glavk) केन्द्रीय औद्योगिक प्रबन्ध समिति से आज्ञा लेनी होती थी। कारखानो के उत्पादन लक्ष्य की पूर्ति की देखभाल कारखानो की पूंजी की आवश्यकताओ का अनुदान और व्यय की सीमा तैयार करना, उत्पादन प्रणाली, मशीन और मजदूरो का चुनाव तथा दूसरी आन्तरिक प्रबन्ध की बातो का निर्णय करना आदि गलवाक् के कार्य थे।

सोवियत कारखाना सगठन दो विशेष धाराओ से प्रभावित हो कर बना है—अधिक उत्पादन का सतत् प्रयत्न तथा कारखाने द्वारा साम्यवादी सिद्धान्तो की शिक्षा तथा प्रसार का प्रयत्न। उत्पादन और सिद्धान्त शिक्षा के सफल मिश्रण के लिये यह आवश्यक हो गया कि तात्रिक विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ मे सहयोग उत्पन्न किया जाय। इसी कारण से कारखाना सगठन मे प्रबन्धक के अतिरिक्त इन दो प्रभावो का समावेश किया गया है। प्रत्येक कारखाने मे एक साम्यवादी दल समिति होती है जिसका अस्तित्व संचालक से स्वतन्त्र होना है। इस समिति की नियुक्ति साम्यवादी दल का केन्द्र करता है तथा इसका उत्तरदायित्व केवल

दिया जाता है। ग्राय का ग्राधार सदस्य के द्वारा उपार्जित कार्य-दिवस की संख्या होती है। कार्य-दिवस एक काल्पनिक माप होती है जो भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये ब्रिगेडियर निश्चित करता है।

कोलखोज का प्रबन्ध—कोलखोज का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक होता है। प्राय: प्रत्येक पदाधिकारी का चुनाव होता है। १६ वर्ष के ऊपर के सभी सदस्यों की सार्वजनिक सभा मे एक सभापति, प्रबन्ध-समिति, ग्रकेक्षण समिति, वार्षिक ग्राय-व्यय का ग्रनुमान, वार्षिक उत्पादन लक्ष्यो का निर्धारण, कृषि बैंक से ऋण, राज्य तथा मशीन ट्रैक्टर स्टेशन से समझौता ग्रादि सभी कार्यों पर विचार तथा निर्णय होता है। प्रबन्ध-समिति के सभापति पर सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था का उत्तर-दायित्व रहता है। परन्तु सभापति को स्वतन्त्रता के साथ कार्य नहीं करने दिया जाता है। गाँव की सोवियत, जिला सोवियत, मशीन ट्रैक्टर स्टेशन तथा कोलखोज समिति, कोलखोज के कार्यों मे सलाह के नाम पर नियन्त्रण करते हैं। कोलखोज समिति ग्रपने निरीक्षको द्वारा जिन्हे विस्तृत ग्रधिकार होते हैं, कोल-खोज के कार्यों की देखभाल करती है। इसके ग्रतिरिक्त कोलखोज के साम्यवादी नेता कोलखोज की सार्वजनिक सभा तथा प्रबन्ध-समिति के कार्यों की ग्रालोचना करते रहते है तथा इन्हे सलाह देने का ग्रधिकार भी रहता है। इस प्रकार कोल-खोज के प्रजातांत्रिक प्रबन्ध पर राज्य एव साम्यवादी दल का नियन्त्रण रहता है।

सोवखोज—राजकीय कृषि फार्म गुण एव विशेषताग्रो मे राजकीय कारखानों के समान ही है। इनका प्रबन्ध ग्रौद्योगिक कारखानो के समान ही होता है। एक कारखाने के समान इनके प्रबन्धक राज्य द्वारा नियुक्त किए जाते हैं ग्रौर उनका उत्तरदायित्व भी राज्य के प्रति रहता है। किसी एक प्रकार के उत्पादन या कृषि कार्य मे सोवखोज ध्यान देता है। एक क्षेत्र मे एक ही प्रकार के उत्पादन करने वाले सोवखोज एक ट्रस्ट मे बाँधे जाते हैं। ग्रधिकतर ट्रस्ट सोवखोज मत्रालय के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Ministry of Sovkhoz) ग्रथवा ग्लावक के ग्राधीन कार्य करते है। विशेष वस्तुग्रो का उत्पादन करने वाले सोवखोज ग्रन्य मत्रालयो से भी सम्बन्धित होते है। ग्रार्थिक प्रबन्ध, हिसाब ग्रौर लागत लेखा के लिए प्रशिक्षित एकाउन्टेण्ट तथा ग्राडीटर को सोवखोज का मुख्य ग्रधिकारी समझा जाता है। सोवखोज में भी कारखानों के समान कम्युनिस्ट पार्टी तथा श्रमिक सघ ग्रपना पृथक ग्रस्तित्व रखते है।

मशीन ट्रैक्टर स्टेशन, मट्रस—मट्रस राजकीय संस्थायें हैं। इनका मुख्य कार्य सामुदायिक फार्मों को सहायता देना है। मशीन-ट्रैक्टर के ग्रतिरिक्त यह सिंचाई, सडक-निर्माण, तालाबो का निर्माण, चरागाह की उन्नति तथा नयी भूमि

को खेती योग्य बनना आदि का भी प्रबन्ध करते हैं। मट्रस का प्रबन्ध-संगठन सोवखोज से मिलता है। कृषि मन्त्रालय का मट्रस केन्द्रीय बोर्ड (Glavok) सभी मट्रसो मे सन्तुलन कोलखोज से सम्बन्ध तथा राजकीय नीति निर्धारण करता है। १ मट्रस ५ या ६ कोलखोज को सहायता देता है। मट्रस तथा कोलखोज के प्रतिनिधियो की एक समिति घनिष्ट पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये कार्य करती है। प्रत्येक मट्रस मे एक सचालक, तीन सह-संचालक और एक एकाउन्टेन्ट होता है। सह-सचालको मे राजनीतिक कार्यकर्त्ता, कृषि, वैज्ञानिक और इजीनियर मेकेनिक नियुक्त होते हैं।

श्रमिक संघ—श्रमिक संघो का जन्म पुराने रूसी शासन मे हुआ। प्रथम श्रमिक सघ कीव (Keev) मे सन् १९०३ म हुआ। वास्तव मे श्रमिक सघो का प्रारम्भ सन् १९०५ के आन्दोलन से माना जाता है। श्रमिक सघो के दो *विशेष कार्य हैं*—

१—मजदूरो को कठोर अनुशासन मे रखना तथा

२—उनको मिलन वाली सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध।

सन् १९४९ मे श्रमिक सघ विधान का निर्माण कम्युनिस्ट पार्टी ने किया। सन् १९५७ मे इनको सरकारी मान्यता प्राप्त हुई। इसके अनुसार श्रमिक सघ के मुख्य कार्य निम्न हैं—

१—श्रमिक तथा अन्य कर्मचारियो मे समाजवादी प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त का विस्तार।

२—श्रम उत्पादन को अधिकतम प्रोत्साहन देना।

३—योजना के लक्ष्यो की पूर्ति तथा लक्ष्य से अधिक उत्पादन।

४—उत्पादन के गुण मे उन्नति।

५—वेतन-निर्धारण मे सहयोग।

६—कारखाने के साथ सामुदायिक समझौता करना।

७—आर्थिक साधनो का अधिकतम उपयोग।

८—उत्पादन की लागत मे कमी।

९—सामाजिक बीमा तथा जन-कल्याण के कार्य प्रबन्ध।

१०—सदस्यो की शिक्षा, प्रशिक्षण, तथा समाजवादी सिद्धान्तो की जानकारी।

११—स्त्रियो को औद्योगिक और सामाजिक जीवन मे आकर्षित करना, तथा

१२—मजदूरो के प्रतिनिधि के रूप मे उनकी समस्याओ का अध्ययन करना और सुझाव देना।

अध्याय ८

विदेशों में आर्थिक नियोजन [२]

१ चीन मे आर्थिक नियोजन
२ नाजी जर्मनी मे आर्थिक नियोजन
३ ब्रिटेन मे आर्थिक नियोजन
४ सयुक्त राज्य अमेरिका मे आर्थिक नियोजन
५ इन्डोनेशिया मे आर्थिक नियोजन
६. सीलोन मे आर्थिक नियोजन
७. बर्मा मे आर्थिक नियोजन
८ फिलीपाईन्स मे आर्थिक नियोजन
९. पाकिस्तान मे आर्थिक नियोजन
१० सयुक्त अरब गणराज्य मे आर्थिक नियोजन

चीन मे आर्थिक नियोजन—चीन की क्रान्ति सन् १९४८ मे सफल हुई और साम्यवादी राज्य स्थापित किया गया। इस समय देश की वित्तीय एवं आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। सन् १९३१ से १९३६ के औसत कृषि उत्पादन मे लगभग २०% उत्पादन कम हो गया था और गृह-युद्ध के कारण इस्पात उत्पन्न करने की क्षमता का ९०% भाग नष्ट हो गया था। यातायात के साधनो का भी बडी सीमा तक विनाश किया गया था। KMT सरकार ने घाटे की अर्थ-व्यवस्था का अधिकतम प्रयोग किया और मुद्रा-स्फीति का दबाव अत्यधिक हो गया था। मूल्यो मे लगभग १०% की वृद्धि प्रतिदिन हो रही थी। ऐसी परिस्थितियो का सामना करने हेतु सन् १९४९ म आर्थिक पुनर्वास (Economic Rehabilitation) का कायक्रम बनाया गया जिसमे आर्थिक विनाश के बढते हुए चरण रुक गये। सन् १९५२ तक आर्थिक स्थिति मे काफी सुधार हुए और कृषि एव औद्योगिक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। मई सन् १९४९ मे देश भर के लिए समान मुद्रा का चलन किया गया जिसने धीरे-धीरे जनता का विश्वास प्राप्त कर लिया। समस्त देश के लिए मार्च सन्

१९५० म प्रथम बार राष्ट्रीय बजट बनाया गया। जून सन् १९५० मे भूमि-सुधार विधान बनाया गया और दो वर्षों मे भूमि सुधार पूरे कर लिए गये। ३ वर्षों मे कृषि एव औद्योगिक उत्पादन, रेल एव यातायात के साधनो जल-सचय (Water Conservation) मे इतना विनियोजन किया गया कि जो पिछले २२ वर्षों मे मिला कर भी नहीं किया गया था। सन् १९४९-५२ तक चीनी अर्थ-व्यवस्था म निम्न पाँच क्षेत्र थे—

(१) राजकीय क्षेत्र, जिसम भारी उद्योग, यातायात, वितरण एव वित्त सम्मिलित थे।

(२) सहकारी क्षेत्र, जिसमे कृषि उत्पादन सहकारी समितियाँ विपणन एव सप्लाई समितियाँ आदि सम्मिलित थी।

(३) पूँजीपति अधिकार क्षेत्र, जिसम वे हल्के उद्योग जो अभी निजी पूँजीपतियो के अधिकार मे थे, सम्मिलित थे।

(४) निजी अधिकार क्षेत्र, जिसमे दस्तकार, व्यक्तिगत किसान तथा स्वय अपना कार्य करन वालो के व्यवसाय सम्मिलित थ।

(५) राज्य एव पूँजीवादी क्षेत्र म वे व्यवसाय सम्मिलित थे जो राज्य एव पूँजीपतियो द्वारा सामूहिक रूप से चलाए जाते थे।

सन् १९५३ म चीन मे आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ किया गया और चीन की प्रथम पचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया। चीन मे सर्वोच्च राजनीतिक अधिकारी "नेशनल पीपुल्स काग्रेस" है और यह काग्रेस सभी बडे बडे निर्णय करती है। इसके नीचे 'स्टेट काउन्सिल' होती है जो कि भारत के केन्द्रीय मन्त्रियो की कैबिनेट के समान है। इस काऊन्सिल का उप-प्रधान देश के आर्थिक नियोजन का सर्वोच्च अधिकारी होता है। योजना सम्बन्धी समस्त कार्यक्रम स्टेट प्लानिंग कमीशन द्वारा किये जाते है और यह कमीशन स्टेट काऊन्सिल के उप प्रधान के आधीन होता है। रूस के समान चीन मे भी दीर्घकालीन एव अल्पकालीन योजनाएँ बनायी जाती है। दीर्घकालीन योजना बनाने का कार्य स्टेट प्लानिंग कमीशन करता है और अल्पकालीन योजनाएँ राजकीय आर्थिक कमीशन द्वारा बनायी जाती हैं। प्रत्येक प्रान्त मे एक प्रान्तीय योजना कमीशन होता है जो प्रान्त के योजना सम्बन्धी कार्यक्रम की देखभाल करता है। प्रान्तीय कमीशन के नीचे काउन्टी स्तर पर योजना तथा सांख्य विभाग होते हैं। योजना का विवरण आधारभूत इकाईयो द्वारा तैयार किया जाता है। सहकारी तथा राजकीय क्षेत्र के व्यवसाय आधारभूत इकाईयाँ कहलाते है और वे अपने लिए योजना बना सकते हैं। पूँजीवादी क्षेत्र के व्यवसायो के सम्बन्ध मे आधारभूत इकाई प्रत्येक व्यवसाय के

व्यवसायो का जो कि कृषि के लिए सामग्री दें, पर्याप्त विकास जिसमे जनता की मांगो की ग्रावश्यकतानुसार पूर्ति की जा सके।

(३) वर्तमान ग्रौद्योगिक व्यवसायो का उपयुक्त एव पूर्णतम उपयोग तथा उनकी उत्पादन-क्षमता म वृद्धि।

(४) कृषि मे धीरे धीरे सहकारिता का उपयोग। इसके लिए कृषि की उत्पादक सहकारी समितियो की स्थापना तथा जल के सचय (Water Conservancy) का प्रबध तथा विशेष फार्म उत्पादन की वृद्धि का प्रबन्ध करना।

(५) यातायात, डाक व तार ग्रादि का ग्रर्थ व्यवस्था के विस्तार के ग्रनुसार विकास। रेल-निर्माण को सर्वोच्च महत्व दिया गया।

(६) व्यक्तिगत दस्तकारी को धीरे धीरे सहकारी समितियो मे सगठित करना।

(७) पूंजीवादी ग्रर्थ व्यवस्था की तुलना मे समाजवादी ग्रर्थ-व्यवस्था के प्रभुत्व को दृढ एव विस्तृत करना।

(८) राजकीय ग्राय तथा व्यय मे सतुलन करके नगरो एव ग्रामो मे वस्तु-विनिमय मे वृद्धि करने तथा वस्तुग्रो के वितरण को बढा कर, बाजार म स्थिरता उत्पन्न करना।

(९) सास्कृतिक, शैक्षणिक तथा वैज्ञानिक ग्रन्वेषण का विकास तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण हेतु लोगो को प्रशिक्षण देना।

(१०) कठोर मितव्ययता ग्रपनाना, ग्रपव्यय को दूर करना तथा राष्ट्रीय-निमाण हेतु पूंजी-सचय मे वृद्धि।

(११) उत्पादन तथा श्रमिक की उत्पादकता की वृद्धि के ग्राधार पर श्रमिको के भौतिक तथा सास्कृतिक जीवन स्तर मे वृद्धि।

(१२) चीन की विभिन्न राष्ट्रीयताग्रो (Nationalities) मे पारस्परिक ग्रार्थिक एव सास्कृतिक सहयोग तथा सहायता को सुदृढ बनाना।

विनियोजन—प्रथम पचवर्षीय योजना मे राज्य को ७६,६४० मिलियन यौन का विनियोजन करना था। इसमे से ७४,१३० मिलियन यौन राज्य को ग्रपने बजट से देय था तथा २,५१० मिलियन यौन विभिन्न ग्रार्थिक विभागो, केन्द्रीय ग्रधिकारियो तथा प्रान्तीय एव नगरपालिकाग्रो के प्रशासनो द्वारा जुटाना था। यह विनियोजन विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार होना था।

तालिका सं० ७—चीन की प्रथम योजना में विनियोजन

मद	मिलियन यौन	योग से प्रतिशत
(१) औद्योगिक विभाग	३१,३२०	४०.६
(२) कृषि एवं जल-सचय तथा वन विभाग	६,१००	८ ०
(३) यातायात, डाक व तार विभाग	८,६६०	११.७
(४) व्यापार अधिकोषण, संग्रह विभाग	२,१६०	२.८
(५) सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा जन-स्वास्थ्य विभाग	१४,२७०	१८ ६
(६) नगरो की जन सेवाएँ	२,१२०	२.८
(७) आर्थिक विभागो की चालू पूँजी	६,६००	६.०
(८) आर्थिक विभागो की सामग्री की मरम्मत आदि	३,६००	४ ७
(९) अन्य आर्थिक मदें	१,१८०	१ ५
योग—	७६,६४०	१०० %

उपर्युक्त समस्त विनियोजन राशि ७६,६४० मिलियन यौन मे से ४२,७४० मिलियन यौन अर्थात् ५५.८% पूँजीगत विनियोजन होगा। पूँजीगत विनियोजन विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार होना था—

तालिका स० ८—चीन की प्रथम योजना मे पूँजीगत विनियोजन

विभाग	मिलियन यौन	योग से प्रतिशत
(१) औद्योगिक विभाग	२४,८५०	५८.२
(२) कृषि, जल-सचय तथा वन विभाग	३,२६०	७.६
(३) यातायात, डाक व तार विभाग	८,२१०	१६.२
(४) व्यापार अधिकोषण, संग्रह विभाग	१,२८०	३.०
(५) सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा जन-स्वास्थ्य विभाग	३,०८०	७.२
(६) नगरो की जन सेवाएँ (Public Utilities)	१,६००	३.७
(७) अन्य मदें	४६०	१.१
योग—	४२,७४०	१००.०%

प्रथम योजना मे पूँजीगत विनियोजन सबसे अधिक उद्योगो पर होना था। २४,८५० मिलियन यौन की राशि के अतिरिक्त १,७७० मिलियन यौन का

पूँजीगत विनियोजन उद्योग मत्रालय के अतिरिक्त अन्य मत्रालयो को उद्योगो पर विनियोजन करना था। इस प्रकार उद्योगो मे पूँजीगत विनियोजन की राशि २६,६२० मिलियन यौन थी। इसमे निजी तथा राजकीय एव निजी औद्योगिक व्यवसायो का विनियोजन सम्मिलित नहीं था। विनियोजन की इस राशि का ८८ ८% भाग ऐसे उद्योगो म विनियोजित होना था, जिनम उत्पादन वस्तुएँ उत्पन्न होनी थीं तथा शेष उपभोक्ता वस्तुएँ उत्पन्न करन वाले उद्योगो मे विनियोजन होना था।

उत्पादन लक्ष्य—योजना के उत्पादन लक्ष्य निम्न प्रकार थे—

तालिका स० ६—चीन की प्रथम योजना के प्रथम उत्पादन लक्ष्य

मद	१९५२ का उत्पादन	१९५७ का लक्ष्य	वृद्धि का प्रतिशत (१९५२=१००)
(१) खाद्यान्न की फसलें (मिलियन कैटीज)	३,२७,८३०	३,८५ ६२०	११७ ६
(२) कपास ,,	२ ६१०	३,२७०	१२५.४
(३) गन्ना ,,	१४,२३०	२६,३५०	१८५ १
(४) बनी हुई तम्बाकू ,,	४४०	७८०	१७६ ६
(५) विद्युत शक्ति (मिलियन KWH)	७,२६०	१५,९००	२१९.०
(६) पिग्ड लौह (हजार टन)	६३,५२८	१,१२,९८५	१७८ ०
(७) क्रूड तेल ,,	४३६	२,०१२	४६२.०
(८) इस्पात ,,	१,३५०	४,१२०	३०६.०
(९) इस्पात की वस्तुएँ,,	१,११०	३,०४५	२७५ ०
(१०) धातु काटने की मशीन व औजार (टन)	१६,२९८	२६,२९२	१८०.०
(११) रेल इ जिन (सख्या)	४०	२००	१,००० ०
(१२) [illegible]ट (हजार टन)	२,८६०	६,०००	२१० ०
(१३) सू[illegible] इत्यादि (हजार वोल्ट)	१,११,६३४	१,६३,७२१	१४७ ०
(१४) शक्कर (हजार टन)	२४९	६८६	२७६.०
(१५) मशीन का बना कागज ,,	३७२	६५५	१७६.०

प्रथम पचवर्षीय योजना मे तीन इस्पात के बड बडे कारखान अशान (Anshan), वुहान (Wuhan) तथा पाओटोव (Paotow) स्थापित करन का लक्ष्य था। देश भर की बोयी जाने वाली भूमि २,२७३,७७१,००० मो (Mou) करने का लक्ष्य अर्थात् सन् १९५२ की भूमि से १५४,९३४,००० मो

(Mou) अधिक। राजकीय फार्मों की संख्या ३,०३८ तक बढाने का लक्ष्य था, तथा सिंचित भूमि मे ७२ मिलियन मो की वृद्धि होनी थी। इसी प्रकार से यातायात के क्षेत्र म रेल स ढोये जाने वाले माल का वजन २४५,५००,००० टन होना था तथा माल ढोयी जाने वाली दूरी १२०,६०० मिलियन टन किलोमीटर्स हो जानी थी। मोटर लॉरी द्वारा ढोये जाने वाला माल ६७,४६३,००० टन हो जाना था तथा आर्थिक जहाजरानी से ३६,८६४,००० टन माल ढोये जाने का लक्ष्य था। ४०८४ किलोमीटर्स को नयी रेलवे लाइनें डालन का भी लक्ष्य था। श्रम उत्पादन म सन् १९५७ तक ६४% वृद्धि, राजकीय उद्योगो मे होनी थी तथा श्रमिको की मजदूरी मे ३३% वृद्धि करने का लक्ष्य था।

अर्थसाधन—चीन की प्रथम योजना के लिए अर्थसाधन अधिकतर घरेलू साधनो से ही जुटाए थे। रूस से (१९५४ मे) ५२० मिलियन रूबल का ऋण चीन को प्राप्त हुआ था, जिसे पूंजीगत विनियोजन मे व्यय किया गया। विदेशी पूंजीपतियो की समाप्ति से तथा जमींदारो एव घरेलू पूंजीपतियो से विकास के लिए बडी राशियाँ प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त राजकीय व्यवसायो का लाभ, राजकीय व्यापार निगम का लाभ तथा औद्योगिक एव व्यापारिक करो द्वारा अर्थसाधन प्राप्त किये गये। यह बात विवादपूर्ण है कि चीन म योजनाओ को कार्यान्वित करन क लिए घाट की अर्थ-व्यवस्था का उपयोग किया गया अथवा नहीं।

प्रथम पचवर्षीय योजना की प्रगति—योजना म पूंजीगत विनियोजन राशि (अनुमानित) ४२,७४० मिलियन योन के स्थान पर ४८,७७७ मिलियन योन हुआ। ५०० एवव नौर्म (Above Norm) नवीन तथा पुनर्निमित औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति की गयी। लगभग ५,५०० किलोमीटर लम्बी नवीन तथा पुनर्निमित रेलवे लाईना का कार्य पुरा होने का अनुमान था। औद्योगिक उत्पादन लक्षित मात्रा से ४१% अधिक हुआ। अन्न का उत्पादन ३७० ००० मिलियन कैटीज तथा कपास का ३२,८००,००० टन हुआ। सन् १९५६ की तुलना म उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की संख्या मे सन् १९५७ तक ६ ७% की वृद्धि हुई तथा माध्यमिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी १५% बढ गये। सन् १९५६ के स्तर की तुलना मे अस्पताल के पलग ११·७% बढे। सन् १९५७ के अन्त तक कृषि एव दस्तकारी के क्षेत्र मे देश भर म सहकारिता का विस्तार हो गया। लगभग सभी पूंजीवादी औद्योगिक व्यवसाय राज्य एव निजी क्षेत्र के आधीन आ गए। श्रमिको की मजदूरी मे औसतन ३३·५% की वृद्धि हुई। राजकीय उद्योगो मे श्रमिको के उत्पादन मे ७० ४% की वृद्धि हुई।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—चीन की द्वितीय योजना द्वारा उन्हीं उद्देश्यों

के प्रति आगे बढना था जो प्रथम योजना म निर्धारित किये गए थे। द्वितीय योजना के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य निर्धारित किये गए—

(१) औद्योगिक निर्माण जिसमे भारी उद्योगो के महत्व को जारी रखना तथा राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था मे तात्विक पुनर्निर्माण एव समाजवादी औद्योगीकरण की दृढता के लिए कायवाही करना।

(२) समाजवादी परिवतन के अन्तर्गत सामूहिक अधिकार (Collective Ownership) तथा समस्त जनसमुदाय के अधिकार की वृद्धि का विस्तार करना।

(३) कृषि उद्योग तथा दस्तकारी के उत्पादन म वृद्धि तथा इसके अनुरूप यातायात एव वाणिज्य का पूँजीगत निर्माण के आधार पर समाजवादी परिवतनो के द्वारा विकास करना।

(४) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था एव सस्कृति के विकास के लिए वैज्ञानिक अन्वेषण को सुदृढ बनाना तथा लोगो को निर्माण-काय म प्रशिक्षण प्रदान करन का अधिकतम प्रयत्न करना।

(५) राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए शक्ति बढाना तथा जनसमुदाय के भौतिक एव सास्कृतिक जीवन मे अधिक कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन के आधार पर वृद्धि।

उपयुक्त उद्देश्यो की पूर्ति हेतु निम्न कायवाहियाँ की जानी थी—

(१) सन् १९५७ की तुलना म कृषि एव औद्योगिक उत्पादन के समस्त मूल्य (Total Value) म ७५% वृद्धि।

(२) औद्योगिक उत्पादन की समस्त मूल्य राशि प्रथम योजना के लक्षित मूल्य राशि की दुगुनी हो कृषि उत्पादन की मूल्य राशि को सन् १९५७ के लक्षित मूल्य राशि से ३५% अधिक करना।

(३) द्वितीय योजना मे भी पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन वृद्धि की दर उपभोक्ता वस्तुओ की उत्पादन वृद्धि की दर से अधिक होगी।

(४) सन् १९५७ की तुलना म सन् १९६२ तक राष्ट्रीय आय मे ५०% वृद्धि करना सभव होगा। राष्ट्रीय आय के वितरण के सम्बन्ध म उपभोग तथा सचय मे उचित अनुपात रखा जायगा। प्रथम योजना की तुलना म सचय की दर कुछ अधिक होगी जिससे जनसमुदाय के जीविकोपार्जन म धीरे धीरे सुधार किया जा सके और समाजवादी निर्माण की गति तीव्र हो सके।

(५) यथासभव राष्ट्रीय सुरक्षा तथा प्रशासन सम्बन्धी व्यय को कम किया जाय और आर्थिक निर्माण तथा सास्कृतिक विकास के व्यय को बढाया जाय जिससे समाजवादी निर्माण द्रुतगति से सभव हो सके।

(६) राजकीय एव पूँजीगत निर्माण मे विनियोजन की जाने वाली राशि राज्य द्वारा होने वाले समस्त व्यय को ४०% किया जा सकेगा। यह अनुपात प्रथम योजना मे ३५% था। कृषि एव उद्योगो के शीघ्र विकास के लिए पूँजी-निर्माण सम्बन्धी समस्त विनियोजन का ६०% भाग उद्योगो पर विनियोजित किया जा सकेगा जबकि यह प्रतिशत प्रथम योजना मे ५८.२% थी। कृषि आदि पर पूँजी-निर्माण सम्बन्धी विनियोजन समस्त विनियोजन का १०% होगा जबकि प्रथम योजना मे यह केवल ७.६% था।

उत्पादन लक्ष्य—

तालिका सं० १०—चीन की द्वितीय योजना के उत्पादन लक्ष्य

मद	इकाई	लक्ष्य सन् १९५७ का	लक्ष्य सन् १९६१ का
(१) अनाज	(दस करोड कैंटीज)	३६,३१.८	५,०००
(२) कपास	(दस हजार)	३२७०.०	४,८००
(३) सोयाबीन	(दस करोड कैंटीज)	२२४ ४	२५०
(४) बिजली	(„ „ KWH)	१५९.०	४०० ४३०
(५) कोयला	(दस हजार टन)	११,२९८.५	१९००-२१००
(६) क्रूड तेल	(„)	२०१.२	५०० ६००
(७) इस्पात	(„)	४१२.०	१०५० १२००
(८) अल्यूमिनियम के इगट	(„)	२.०	१० १२
(९) रासायनिक खाद	(„)	५७.८	३००-३२०
(१०) धातु शोधन सामग्री	(„)	०.८	३ ४
(११) शक्ति उत्पादन सामग्री	(दस हजार Kwt)	१६ ४	१४०-१५०
(१२) धातु काटने के औजार एव मशीनें	(„ इकाई)	१.३	६-६ ५
(१३) सीमेन्ट	(„ टन)	६०० ०	१२५०-१४५०
(१४) सूती धागा	(„ गाँठें)	५००.०	८००-९००
(१५) सूती वस्तुएँ	(„ बोल्ट)	१६,३७२ १	२३५००-२६०००
(१६) नमक	(„ टन)	७५५.४	१०००-११००
(१७) शक्कर (हाथ द्वारा बनी सहित)	(दस हजार टन)	११०.०	२४०-२५०
(१८) मशीन का बना कागज	(दस हजार टन)	६५ ५	१५०-१६०

विकसित देश की यातायात सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु द्वितीय

योजना में ८०० से ९०० किलोमीटर लम्बी नवीन रेलवे लाईनें डालने तथा १५०० से १८०० किलोमीटर लम्बी ट्रक (Trunk) सड़कें बनाने का आयोजन किया गया। यह भी अनुमान लगाया गया कि फुटकर व्यापार की मात्रा में ५०% की वृद्धि करनी होगी। यह भी निश्चय किया गया कि राजकीय बाजारो के अतिरिक्त कुछ स्वतत्र बाजार भी रखे तथा विकसित किये जायेंगे जिससे वस्तुओ का विनिमय ग्रामो एव नगरो मे सुलभता से हो सके। द्वितीय योजना मे श्रम उत्पादन मे ५०% वृद्धि करने का लक्ष्य था तथा श्रमिको की मजदूरी मे औसतन २५% से ३०% तक वृद्धि होने का अनुमान था।

चीन की सन् १९५८ की योजनाएँ—रूस की भाँति चीन मे भी अल्पकालीन योजनाओ को विशेष महत्व दिया जाता है। चीन की सन् १९५८ वर्ष की योजना का उद्देश्य चीन की अर्थ-व्यवस्था मे अत्यधिक सुधार करना था। इस योजना मे पूँजी-निर्माण सम्बन्धी विनियोजन १४,५७७ मिलियन यौन निर्धारित किया गया (इसमे सहकारी सस्थाओ का विनियोजन सम्मिलित नही है)।

सन् १९५८ की योजना के लक्ष्य व प्रगति निम्न प्रकार थी—

तालिका स० ११—चीन की सन् १९५८ वर्ष की योजना के लक्ष्य एव प्रगति

मूल्य राशि	सन् १९५७ का उत्पादन	सन् १९५८ का योजना लक्ष्य	सन् १९५८ का वास्तविक उत्पादन	सन् १९५७ मे वृद्धि का प्रतिशत
(१) कृषि एव सहायक पेशो का उत्पादन (मिलियन यौन)	५३,७००	६८,८३०	८८,०००	६४%
(२) पूँजीगत विनियोजन (मिलियन यौन)	१२,६००	१४,५७७	२१,५००	७०%
(३) अनाज का उत्पादन (मिलियन कैटीज)		३,९२,०००	७,१४,०००	१००%
(४) औद्योगिक उत्पादन तथा दस्तकारी (मिलियन यौन)	७०,४००	७४,७४०	१,१७,०००	६६%

कृषि उत्पादन मे आश्चर्यजनक विकास के साथ साथ, वनस्पति, पशुपालन तथा मछली पकडने मे पर्याप्त विकास हुआ। कृषि में आश्चर्यजनक विकास, अनुकूल मौसम, सिंचित भूमि मे वृद्धि, खादो का अधिक उपयोग, गहरी जुताई, अच्छे बीज का उपयोग, फार्म की प्रबन्ध-व्यवस्था सुदृढ होना आदि जन-जागृति

के कारण ही सम्भव हुआ। सन् १९५८ वर्ष मे इस्पात का उत्पादन ११ मिलियन टन हुआ जो सन् १९५७ के उत्पादन से १००% अधिक था। इस्पात के उत्पादन की वृद्धि का बहुत बडा भाग छोटी छोटी धमन भट्टियो ने प्राप्त किया। कोयले का उत्पादन २७० मिलियन टन हो गया जो कि सन् १९५७ के दुगुने से भी अधिक था। बिजली का उत्पादन ७ मिलियन किलोवाट था। जो कि प्रथम योजना के उत्पादन-लक्ष्य के बराबर था। रासायनिक खाद का उत्पादन सन् १९५८ की प्रथम छमाही मे सन् १९५७ के उसी काल की तुलना मे १½ गुना था। पेट्रोलियम का उत्पादन सन् १९५८ की प्रथम छमाही मे सन् १९५७ मे उसी काल की तुलना मे ३२% अधिक था।

चीन की सन् १९५९ वर्ष की योजना—इस योजना मे समस्त पूँजीगत विनियोजन जो राजकीय बजट से होना था २७,००० मिलियन यौन निश्चित किया गया जो कि सन् १९५८ की तुलना मे २६% अधिक था। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन मे ४०% वृद्धि करने का लक्ष्य था। कृषि उत्पादन १,२२,००० मिलियन यौन तथा औद्योगिक एव दस्तकारी उत्पादन १,६५,००० मिलियन यौन होने का अनुमान था। इस्पात का उत्पादन ११ मिलियन टन से बढकर १८ मिलियन टन, कोयले का उत्पादन सन् १९५८ वर्ष के उत्पादन की तुलना मे ४०% अधिक होगा। अनाज, जिसमे गेहूँ, चावल तथा आलू सम्मिलित है, के उत्पादन मे ४०% वृद्धि करना, अर्थात् ५२५ मिलियन टन करना। कपास के उत्पादन को सन् १९५८ के स्तर से ५०% बढा कर ५ मिलियन टन करने का लक्ष्य था। रेल के एजिन तथा रेलवे वैगन के उत्पादन मे ५०% से भी अधिक वृद्धि करने का अनुमान था। ५५०० किलोमीटर्स लम्बी नवीन रेलवे लाइनें डालने का भी आयोजन किया गया। गन्ने के उत्पादन मे ४०% वृद्धि; खाने के तेल मे ४०% वृद्धि, शक्कर म ४०% जूट तथा हैम्प के उत्पादन मे ४०% वृद्धि करने का आयोजन था।

सन् १९५९ म औद्योगिक एव कृषि उत्पादन की कुल उत्पादन राशि ४०% बढ जायगी अर्थात् सन् १९५८ मे जो २,०५,००० मिलियन यौन था, वह २,८७,००० मिलियन यौन हो जायगा। इस उत्पादन की मूल्य-राशि मे से १,६५,००० मिलियन यौन उद्योगो का तथा १,२२,००० मिलियन यौन कृषि का उत्पादन होगा। सन् १९५९ वर्ष मे पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे ४६% तथा उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे ३४ वृद्धि होने का अनुमान था। दैनिक जीवन के प्रयोग की वस्तुओ मे पर्याप्त वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने हेतु अधिक सिचाई के साधन सिचाई की मशीनें, ट्रैक्टर्स, अनाज एव कृषि सम्बन्धी

अन्य यत्र, रबर के टायरो वाली दो पहियो की ठलागाडी, रासायनिक खाद तथा कृषि के घातक कीटाणुओ को मारने वाली औषधि प्रदान करने का आयोजन किया गया था।

चीनी जन-कम्यून (Communes)—सन् १९५८ के मध्य मे चीन सरकार ने एक नवीन क्रान्ति को जन्म दिया, जिसके अन्तर्गत ६५ करोड चीनियो को कम्यून मे सगठित करके आश्चर्यजनक आर्थिक सफलताएं प्राप्त करने का आयोजन किया गया। कम्यून द्वारा १० वर्षो म ही चीनी समाजवाद को साम्यवाद म परिवर्तित करने का लक्ष्य रखा गया। चीन मे लगभग २४,००० जन-कम्यून है जिनमे चीन के लगभग ९०% कृषक सम्मिलित है। १९५९ के अन्त तक समस्त चीन को कम्यून पर आधारित करने का लक्ष्य था।

एक कम्यून मे ४,००० से १०,००० तक परिवार सम्मिलित होते है। कम्यून का कार्य-सचालन एक प्रशासनिक काउन्सिल (Administrative Council) द्वारा किया जाता है। यह काउन्सिल कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि सभी का प्रबन्ध एव सगठन करती है। प्रत्येक कम्यून मे अपना सामूहिक फार्म, कारखाने, स्कूल दुकानें आदि होती हैं, जिनका नियत्रण एव प्रशासन काउन्सिल के हाथ मे होता है। कम्यून के अन्तर्गत रहन वाले प्रत्येक वयस्क को एक विशेष कार्य करन को दिया जाता है। स्त्रियाँ भी घर से बाहर कार्य करती है। स्त्रियो को घर के कार्यो से बचाने के लिए सामूहिक रसोईयाँ चलायी जाती है, जिनमे कम्यून के प्रत्येक निवासी को नि शुल्क खाना दिया जाता है। बच्चो की देखभाल करने हेतु सामूहिक नर्सरी तथा शिशु पाठशाला (Kinder Garten) चलाये जाते है, जिनमे स्त्रियाँ अपने कार्य पर जाने के पूर्व बच्चो को छोड सकती है। बच्चो को इन्हीं नर्सरी तथा शिशु पाठशाला (Kinder Garten) मे सामूहिक रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। वृद्ध एव बीमारो की देखभाल करने के लिए वृद्धो के लिए आदर के घर (Homes of Respect for Aged) सामुदायिक अधिकारियो द्वारा चलाये जाते हैं।

जन-कम्यून अपने-अपने क्षेत्रो मे विभिन्न आर्थिक क्रियाओ का सचालन एव नियत्रण करते हैं। इनके द्वारा केवल कृषि का ही सचालन नहीं होता है अपितु कृषि के सहायक उद्योगो का विकास भी इनके द्वारा किया जाता है। नगरो के बड-बडे कम्यून विभिन्न प्रकार के उद्योगो जैसे वस्त्र, शक्कर, कागज, खाद, रसायन आदि उद्योगो का विकास एव सचालन भी करते है। कम्यून के अन्तर्गत उच्चतम श्रम विभाजन सम्भव हो सका है एव उत्पादन की नवीनतम विधियो का उपयोग भी किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रो मे उत्पादन क्रियाओ को अत्यधिक प्रोत्साहन

प्राप्त हुआ है तथा उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि करने के हेतु निरन्तर कठोर कार्य-वाहियाँ की जा रही हैं।

पश्चिमी देशो मे कम्यून की अत्यधिक आलोचना की गयी है। विकास की इस विधि को एक अविवेकपूर्ण विधि बतलाया गया है जिसका सचालन अर्ध-सैनिक सगठन द्वारा किया जाता है और जिससे सगठित दासता (Mass Slavery) का विस्तार हुआ है। कम्यून के अन्तर्गत एक व्यक्ति को व्यक्ति न मान कर उत्पादन मे काम आने वाली भौतिक इकाई मान लिया जाता है, जो सरकार के मजदूर के रूप मे कार्य करता है। वह समस्त सम्पत्ति खोने के साथ-साथ अपना घर एव परिवार भी खो बैठता है। इस आलोचना के प्रत्युत्तर मे चीनी अधिकारियो ने बताया कि कम्यून के अन्तर्गत चीनी कृषक केवल बेरोजगार एव भूखे रहने की स्वतन्त्रता को खोता है। इनके द्वारा पूँजीवादी परिवार विधि को समाप्त करने का आयोजन है क्योकि इसमे पारस्परिक सम्बन्ध धन पर आधारित होते हैं। चीनी अधिकारियो का कथन है कि पश्चिमी राष्ट्रो ने जिसे दासता (Slavery) का नाम दे दिया है कदाचित् वह अनुशासन (Decipline) से कार्य करने तक ही सीमित है। इन दोनो विचारधाराओ से तथ्य ज्ञात करना संभव नही है क्योकि उपलब्ध सूचनाएँ इतनी पर्याप्त नही होती हैं कि कुछ भी निश्चित रूप से कहा जा सके परन्तु अभी हाल के अकाल एव खाद्यान्नो की कमी से कम्यून की सफलताओ के सम्बन्ध म कुछ सदेह होना स्वाभाविक है। यह अनुमान भी लगाना जाना अस्वाभाविक न होगा कि कम्यून सगठन ने कृपको मे अधिक उत्पादन करने की प्रवृति को ठेस पहुँचायी है जिसने खाद्यान्नो की कमी को इतनी गम्भीर समस्या बना दिया है।

चीन और भारत की नियोजित अर्थ-व्यवस्था की तुलना—चीन के नियोजन के इतिहास के इस सक्षिप्त विवरण से साथ इसका भारतीय नियोजित विकास से सक्षिप्त मे तुलना करना उचित ही होगा। तुलना के दृष्टिकोण से ऐसे काल का अध्ययन करना उचित होगा जिसके लिए दोनो ही राष्ट्रो के साख्य उपलब्ध हो। १९५३ से १९५६ तक चीनी राष्ट्रीय आय ४३ ८% अर्थात् औसतन ९.५% प्रति वर्ष बढी। इसी काल मे प्रथम योजना के अन्तर्गत भारत मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर ३ ६% प्रति वर्ष थी। इस प्रकार भारत के विकास की गति चीन की तुलना मे एक तिहाई रही। भारत को द्वितीय एवं तृतीय योजनाओ मे भी राष्ट्रीय आय को वृद्धि की दर इतनी अधिक नहीं है जबकि चीन की द्वितीय योजना मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर ९.५% प्रति वर्ष से कहीं अधिक होने को सभावना है। विभिन्न मदो के पृथक-पृथक अध्ययन

करने से भी यह ज्ञात होगा कि भारत का उत्पादन चीन की तुलना में बहुत कम है। चीन का इस्पात का उत्पादन १९५८ मे ११ मिलियन टन था, जबकि भारत मे तृतीय योजना के ग्रन्त तक (१९६५-६६) इस्पात का उत्पादन ६ ६ मिलियन टन होने का लक्ष्य है। इसी प्रकार चीन का कोयले का उत्पादन १९५८ मे २७० मिलियन टन था, जबकि भारत मे १९६१ तक ६० मिलियन टन कोयले के उत्पादन का लक्ष्य था। इस प्रकार की स्थिति ग्रन्य उद्योगो के उत्पादन के सम्बन्ध मे भी है। इस प्रकार चीन को विकास की गति भारत की तुलना मे निस्सन्देह ग्रधिक तीव्र है।

'नाजी जर्मनी मे ग्रार्थिक नियोजन"

जर्मनी मे नाजी दल जनवरी १९३२ में सत्तारूढ हुग्रा ग्रौर द्वितीय महायुद्ध के ग्रन्त तक सत्ता इस दल के हाथ मे रही। सन् १९३३ मे Herr Hitler द्वारा Chancellor का पद ग्रहण करने के पश्चात् नाजी शासन का प्रारम्भ हुग्रा। नाजी शासन के ग्रन्तगर्त उत्पादन के साधनो पर निजी ग्रधिकार तथा निजी साहस दोनो को ही चालू रखा गया। परन्तु इन पर पूर्ण सरकारी नियन्त्रण का ग्रायोजन किया गया। सरकार द्वारा भी कुछ उद्योग चलाये जाते थे, परन्तु ग्रधिकाश व्यवसाय निजी क्षेत्र के ग्रधिकार मे ही थे। परन्तु सरकार को यह ग्रधिकार था कि वह किसी समय ग्रावश्यकता पडने पर निजी सम्पत्ति एव धन को ग्रधिकार म ले सकती थी। नागरिक ग्रपने धन का उपयोग ग्रपनी इच्छानुसार नही कर सकते थे। राज्य उनको धन व्यय करने के तरीके निर्देशित करता था। यद्यपि लिखित रूप से निजी व्यवसायियो को ग्रपने व्यवसाय ग्रपनी इच्छानुसार चलाने का ग्रधिकार था परन्तु वास्तव मे व्यापार एव उद्योगो के सचालन मे सरकारी हस्तक्षेप ग्रधिक था। सरकार किसी भी व्यक्ति पर कोई व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा सकती थी। इसके ग्रतिरिक्त बहुत सी वस्तुग्रो के मूल्य एव वितरण भी सरकार द्वारा *नियन्त्रित किये जाते थे। सरकार को श्रमिको का पारिश्रमिक तथा व्यवसायियो का लाभ निर्धारित करने का भी ग्रधिकार था। इस प्रकार राष्ट्रीय समाजवाद के ग्रन्तर्गत सरकार को प्रत्येक क्षेत्र पर विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त थी।*

प्रथम चारवर्षीय योजना—सन् १९३३ मे जब नाजी दल ने सत्ता संभाली थी, उस समय तो जर्मनी मे बेरोजगार एव मदी की समस्या ग्रत्यन्त गम्भीर थी। नाजी सरकार को रोजगार मे वृद्धि करना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक था। इस समस्या का निवारण करने हेतु १ मई १९३३ को प्रथम चारवर्षीय योजना की घोषणा की गयी। यह एक विस्तृत योजना थी जिसमे समस्त ग्रर्थ-

व्यवस्था की कार्य-प्रणाली निर्धारित की गयी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य बेरोजगारो को किसी लागत पर रोजगार प्रदान करना था। नाजी सरकार का लक्ष्य रोजगार प्राप्त लोगो की सख्या बढाना था, चाहे उनको मजदूरी कितनी भी क्यो न दी जाये। जो लोग सहायता कार्य (Relief Work) अथवा श्रमिक कैम्प (Labour Camp) मे कार्य करते थे, उनको केवल जीवन-निर्वाह के लिये ही पारिश्रमिक दिया जाता था। रोजगार के अवसर बढाने के लिए निर्माण-कार्यों को अधिक महत्व दिया गया। अनुपयोगी भूमि को उपयोगी बनाने हेतु खाईयो तथा नालियो का निर्माण किया गया, नवीन इमारतो का निर्माण नाजी सरकार के कार्यालय के लिए किया गया रहन के लिए घरो का निर्माण किया गया, कृषि मजदूरो के लिए क्वार्टर्स बनाए गए, सडक यातायात के लिए नवीन सडको का निर्माण किया गया। एक बहुत बडा कारखाना पीपुल्स कार बनाने के लिए स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त रोजगार के अवसर बढाने के हेतु, भवन-निर्माण के लिए आर्थिक सहायता, औद्योगिक सामग्री मे नवीनीकरण करने की छूट, कार्य को अधिक श्रमिको मे फैलाना, कृषको के बेरोजगारो को रोजगार दन पर आर्थिक सहायता, उन मालिको को कर देय मे छूट जो अधिक श्रमिको को रोजगार प्रदान करे, श्रमिको को पदच्युत करने पर प्रतिबन्ध, पुराने श्रमिको को रोजगार देना, एक ही परिवार मे विभिन्न रोजगारो से आय उपार्जन करने पर प्रतिबन्ध, नवीन विवाहित दम्पत्तियो को बोनस, यदि पत्नी अपने पुराने रोजगार को न करने के लिये अनुमति दे। अनिवार्य सैनिक सेवा तथा हथियारबदी आदि के कार्यक्रम चालू किये जायें।

इन सब कार्यक्रमो के फलस्वरूप दो वर्षों मे रोजगार प्राप्त लोगो की सख्या ११.५ मिलियन से १६.५ मिलियन हो गयी तथा बेरोजगारो की सख्या ६ मिलियन से घट कर २ मिलियन रह गयी। सन् १९३६ के अन्त तक बेरोजगार की समस्या सर्वथा समाप्त हो गयी और योजना सफलतापूर्वक समाप्त हुई।

द्वितीय चारवर्षीय योजना—वर्सेल्स (Versailles) की सधि के अनुसार यद्यपि जर्मनी का अशस्त्रीकरण कर दिया गया था परन्तु सधि के अन्य पक्षो ने अपनी सैनिक शक्ति को कम नही किया और अशस्त्रीकरण का सम्मेलन भी कोई ठोस कार्यवाही इस सम्बन्ध मे न कर सका। सन् १९३५ मे हिटलर ने जर्मनी को लीग आफ नेशन्स से अलग कर दिया और जर्मनी की सैनिक शक्ति बढाना प्रारम्भ कर दिया। सितम्बर १९३६ मे हिटलर ने जर्मनी की द्वितीय चारवर्षीय योजना की घोषणा की। इस योजना का मुख्य लक्ष्य जर्मनी को सैनिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली राष्ट्र बनाना था तथा आर्थिक मामलो मे

आत्मनिर्भर करना था। पुनर्शस्त्रीकरण तथा आत्मनिर्भरता इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे। जर्मनी की सेना को आधुनिक शस्त्रो से लैस करना था जिससे वह भूमि, समुद्र तथा वायु सभी प्रकार के युद्ध के योग्य बन सके। आर्थिक बायकाट की कठिनाइयो से बचने के लिए खाद्यान्नो एवं कच्चे माल में आत्मनिर्भरता पर जोर दिया गया था। जनसमुदाय को देश के आत्मनिर्भर करने हेतु कठोर परिश्रम करने को कहा गया तथा उनसे उपभोग की मात्रा को कम करने को भी कहा गया जिससे युद्ध सम्बन्धी उद्योगो मे अधिक साधनो का उपयोग किया जा सके। योजना के प्रशासन का कार्य हरमन गोयरिंग (Herman Goering) को दिया गया। इसको विस्तृत अधिकार दिये गये तथा अर्थ-व्यवस्था के समस्त महत्वपूर्ण स्थानो पर सेना के अधिकारियो को नियुक्त किया गया। उद्योगपतियो तथा व्यापारियो को सेना मे पद दिए गए जिससे वे योजना के सचालन मे सहायता कर सके। इस प्रकार समस्त राष्ट्र को आगामी युद्ध के लिए तैयार किया गया।

द्वितीय योजना के मुख्य लक्ष्य निम्न प्रकार थे—

(१) कच्चे माल के उत्पादन मे वृद्धि।

(२) कच्चे माल का योजनाबद्ध वितरण जिससे आधारभूत एव युद्ध की सामग्री से सम्बन्धित उद्योगो को पर्याप्त मात्रा मे कच्चा माल मिल सके।

(३) कृषि उत्पादन, विशेषकर खाद्यान्नो का उत्पादन।

(४) श्रम का विभाजन युद्ध सम्बन्धी उद्योगो की आवश्यकतानुसार करना।

(५) मजदूरी और मूल्यो को स्थिर रखना।

(६) विदेशी मुद्रा पर नियन्त्रण रखना।

द्वितीय योजना के कार्यक्रमो के संचालन के फलस्वरूप मई १९३९ तक बेरोजगार सर्वथा समाप्त हो गये और श्रमिको की कमी गम्भीर रूप धारण करने लगी। श्रमिको की पूर्ति हेतु स्त्रियो को बाहर कार्य करने के लिए लाया गया। अवकाश प्राप्त (पेन्शनर) कर्मचारियो को फिर काम पर बुलाया गया। प्रशिक्षणता (Apprenticeship) के समय मे कमी कर दी गयी तथा विश्वविद्यालय के कोर्सों मे कमी कर दी गयी। इसके अतिरिक्त विदेशो से भी हजारो श्रमिक लाये गए।

जर्मनी की दो योजनाओ के फलस्वरूप कृषि एव उद्योगो के उत्पादन मे अत्यधिक वृद्धि हुई। सन् १९२८ वर्ष के उत्पादन को १०० के बराबर मान कर सन् १९३२ का निर्माण सम्बन्धी उद्योगो का उत्पादन ५८ था जो सन् १९३८ मे १२६ हो गया। इस प्रकार कृषि उत्पादन सन् १९३२ म १०६ था जो बढ कर सन् १९३८ मे ११५ हो गया। जर्मनी मे योजना कार्य के सचालन हेतु

कोई पृथक सस्था नहीं नियुक्त की गयी और न प्रत्येक वर्ष की प्रगति को ही आँका एव प्रकाशित ही किया गया। जन सहयोग को योजना के कार्यों मे कोई स्थान नहीं दिया गया। नाजी योजना का उद्देश्य विकास के स्थान पर शीघ्र सशस्त्रीकरण था जिससे ससार पर विजय प्राप्त कर ली जाय।

"ब्रिटेन मे आर्थिक नियोजन"

ब्रिटेन मे आर्थिक नियोजन का जन्म आर्थिक कठिनाईयों के कारण हुआ था। इसकी आधारशिला किन्हीं गम्भीर सिद्धान्तो पर आधारित नहीं है। आर्थिक नियोजन का उपयोग ब्रिटेन मे प्रयोगात्मक है। ब्रिटेन मे आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ द्वितीय महायुद्ध मे हुआ, जबकि मिलीजुली सरकार (Coalition) ने युद्ध का सामना करने हेतु अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र मे नियोजित अर्थ व्यवस्था का संचालन किया। युद्ध काल मे समस्त ससार मे साधनो की अत्यन्त कमी थी और इस कमी का सामना करने हेतु राशनिंग, साधनो का सरकारी नीति के अनुसार वितरण, लाइसेन्स एव परमिट जारी करना आदि के रूप मे सरकार ने अर्थ-व्यवस्था को नियोजित किया जिससे उपलब्ध साधनो का उपयोग युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु चलाये जाने वाले कार्यक्रमो पर किया जा सके। युद्ध के पश्चात् मन्दी एव बेरोजगारी के भय पर गभीरता-पूर्वक विचार किया गया और उस समय की मिलीजुली सरकार (Coalition) ने अपनी रोजगार नीति के सम्बन्ध मे एक श्वेत पत्र (White Paper) जारी किया जिसमे बताया गया कि मन्दी से अर्थ-व्यवस्था को बचाने हेतु युद्धकालीन नियत्रण युद्ध के पश्चात् भी लागू रहेगे और बेरोजगार के दबाव को रोकने के लिए सरकारी व्यय मे वृद्धि की जायगी। १९४५ मे युद्ध समाप्त होने पर मन्दी एव बेरोजगारी को समस्याओ का प्रादुर्भाव होने के बजाय मुद्रा-स्फीति, बढते हुए मूल्य तथा वस्तुओ एव साधनो की कमी आदि समस्यायें सामने आयीं। १९४६ एव १९४७ मे मुद्रास्फीति, वस्तुओ एव साधनो की सामान्य कमी, सग्रहो मे कमी आदि समस्याएँ अत्यन्त तीव्र बन गयीं। इन अपूर्णताओ के निवारण हेतु लेबर सरकार ने आर्थिक नियोजन की शरण ली। आर्थिक नियोजन द्वारा देश के उपलब्ध साधनो का वितरण समस्त राष्ट्र के अधिकतम हित के लिए किया जाना था। साधनो की उपलब्धि एव उनकी आवश्यकता के अन्तर को कम आवश्यक कार्यक्रमो मे साधनो का उपयोग न करके दूर किया जाना था। साधनो के उपयोग को विपणि तान्त्रिकता (Market Mechanism) के आधीन नहीं छोडा जाना था, अन्यथा अनावश्यक कार्यक्रमो की पूर्ति में साधनो के उपयोग का अवसर मिल सकता था। इस प्रकार लेबर सरकार ने आर्थिक नियोजन को युद्धोपरान्त

अपूर्णताओं का सामना करने के लिए उपयोग करने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के धन, साधन, पूँजीगत सामग्री तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति जिसकी युद्ध म क्षति हुई थी, उसकी पूर्ति करने हेतु भी आर्थिक नियोजन को अपनाया गया। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी लेबर सरकार को देश मे समाजवाद स्थापित करने हेतु आर्थिक नियोजन की शरण लेना स्वाभाविक था। १६४६ एव १६४७ मे कुछ उद्योगो एव सेवाओ के राष्ट्रीयकरण न आर्थिक नियोजन के सचालन को सुलभ बना दिया।

ब्रिटेन म आर्थिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय साधनों का राष्ट्र की आवश्यकतानुसार उपयोग करना था। इसके अतिरिक्त पूर्ण रोजगार, कल्याणकारी राज्य (Welfare State) का निर्माण तथा राष्ट्रीय आय का और अधिक समान वितरण नियोजन के सहायक उद्देश्य थे। ब्रिटेन मे आर्थिक नियोजन के विस्तृत रूप को नही अपनाया गया। वास्तव म यह एक रूप मे आंशिक नियोजन कहा जायगा। इसके अन्तर्गत ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था के कुछ ही क्षेत्रों के लिए आयोजन किये गये। विभिन्न उत्पादन के क्षेत्रों के लिए विस्तृत लक्ष्य भी निर्धारित नहीं किये गये। केवल कुछ वृहत् उद्योगो के लिए ही उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किये गये। नियोजको को इन लक्ष्यो की पूर्ति हेतु कोई विशेष कार्य नहीं करने थे। इनकी पूर्ति निजी साहसियो को करनी थी जिन्हे सरकार द्वारा सुविधाएँ एव प्रलोभन प्रदान किय गये। सरकार निजी साहसियो को सलाह भी देती थी। सरकार को उत्पादको को कोई आदेश नही देने थ। फिर भी कहीं कही सरकार ने उत्पादको एव श्रमिको को आदेश जारी किये जिसस आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति होती रहे। ब्रिटेन मे योजनाएं दीर्घकाल के लिए निर्धारित नहीं की गयी। ये एक वर्ष या उससे भी कम काल के लिए बनायी गयी। इन योजनाओ म अल्पकालीन समस्याओ के निवारण का आयोजन किया गया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रिटेन के आर्थिक नियोजन को वास्तविक नियोजन नहीं कहा जा सकता, वह तो केवल एक ढाँचा मात्र था। ब्रिटेन के आर्थिक नियोजन के तीन मुख्य तत्व थ—

(१) एक ऐसी सस्था का निर्माण, जिसके पास विस्तृत साख्य एव सूचनाएँ हो जिससे राष्ट्र के भौतिक एव वित्तीय साधनो का अनुमान लगाया जा सके और उपलब्ध साधनो के आधार पर, अर्थ-व्यवस्था के बृहत् क्षेत्रों म लक्ष्य निर्धारित किये जायें।

(२) विभिन्न कच्चे माल, वित्त, श्रम आदि के लिए आर्थिक अनुमान

पत्रक (Economic Budgets) तैयार करना जिससे उपलब्ध साधनो में तथा नियोजन के लक्ष्यो मे सम्बन्ध स्थापित किया जा सके ।

(३) उन प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष विधियो का निर्धारण जिनसे राज्य अर्थ-व्यवस्था को इच्छित दिशाओ मे प्रवाहित करने हेतु प्रभावित कर सके परन्तु उत्पादनो के दिन प्रति-दिन के कार्यों मे सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना था ।

नियोजन सम्बन्धी निर्णयों का सर्वोच्च अधिकार मन्त्रीमण्डल (Cabinet) को था । कैबीनेट की सहायतार्थ दो महत्वपूर्ण समितियाँ बनायी गयीं—आर्थिक नीति समिति तथा उत्पादन समिति । आर्थिक नीति समिति के अध्यक्ष स्वय प्रधान मन्त्री थे और यह समिति आर्थिक नीतियाँ निर्धारित करती थी । उत्पादन समिति के अध्यक्ष चान्सलर ऑफ एक्सचेकर (Chancellor of Exchequer) थे और यह समिति विनियोजन के कार्यक्रम निर्धारित करती थी। आर्थिक मामलो पर विभिन्न मन्त्रालयो को सलाह देने हेतु केन्द्रीय सास्य कार्यालय तथा आर्थिक सचिवालय (Economic Secretariat) दो सरकारी सेवाएं थीं । इसके अतिरिक्त आर्थिक नियोजन का कार्यालय जो मुख्य नियोजन अधिकारी के आधीन था, नियोजन सम्बन्धी मामला पर केवल सलाह देन का कार्य करता था । यह अधिकारी राष्ट्रीय हित के आर्थिक मामलो पर विचार करके नवीन कार्यक्रमो पर सलाह देता था । इनके अतिरिक्त एक प्रतिनिधि सस्था आर्थिक नियोजन परिषद थी, जिसमे सरकार श्रम तथा उद्योगो क प्रतिनिधि थे । यह सस्था नियोजन सम्बन्धी समस्याओ का अध्ययन करती थी । सरकारी विभाग तथा अन्तर्विभागीय समितियाँ भी नियोजन व्यवस्था का मुख्य भाग थीं । ये उत्पादन तथा विनियोजन सम्बन्धी कार्यक्रम बना कर, उच्च अधिकारियो एव सस्थाओ के पास भेजनी थीं ।

प्रत्येक वर्ष वार्षिक बजट लोकसभा मे भाषण करन क पूर्व आर्थिक गतिविधि की जाँच (Economic Survey) (फरवरी के अन्त अथवा मार्च के प्रारम्भ म) म प्रकाशित की जाती थी । इसम आगामी वर्ष की योजना भी सम्मिलित होती थी । प्रत्येक वर्ष योजना निर्माण का कार्य एक वर्किङ्ग पार्टी (Working Party) द्वारा किया जाता था जिसका अध्यक्ष आर्थिक विभाग का अध्यक्ष होता था और जिसमें आर्थिक विभाग, केन्द्रीय सास्य कार्यालय तथा नियोजन स्टाफ तथा सरकारी विभाग के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होते थे । वर्किङ्ग पार्टी (Working Party) द्वारा बनायी गयी प्रस्तावित योजना पर आर्थिक विभाग के स्थायी अध्यक्ष भी विचार करते थे। इसके पश्चात् इस

योजना को आर्थिक नियोजन परिषद को भेजा जाता था जिससे इसके कार्यक्रमो मे यह परिषद सलाह दे सके। इस परिषद की सलाह सहित प्रस्तावित योजना को कैबीनट की उत्पादन समिति के पास भेज दिया जाता था जो इसको अन्तिम स्वीकृति देती थी और फिर यह नियोजन स्टाफ को वापस कर दी जाती थी।

सयुक्त राज्य अमेरिका म आर्थिक नियोजन'

जिस प्रकार रूस का अथ-व्यवस्था का नियोजित अथ व्यवस्था का आदश रूप समझा जाता है बिल्कुल उसी प्रकार सयुक्त राज्य अमेरिका को पूँजीवाद का आदर्श स्वरूप कहा जा सकता है। सयुक्त राज्य की अर्थ-व्यवस्था का नियोजित अर्थ-व्यवस्था कहना किसी प्रकार उचित नही है, क्याकि इस अर्थ व्यवस्था म स्वतत्र साहस को विशेष स्थान प्राप्त है। परन्तु नियोजन के कुछ तत्वा को अवश्य ही सयुक्त राज्य अमेरिका मे अपनाया गया है। सन् १६३० म ही अमेरिका क शासन न कानून के इस सिद्धात को स्वीकार कर लिया था कि राज्य का उत्तरदायित्व है कि वह राष्ट्र की अथ व्यवस्था म स्थिरता तथा विकास का प्रबन्ध करे। इस सिद्धात को कायरूप देने हेतु राज्य को स्वतत्र साहस के लिए आर्थिक नीतिया के विस्तृत सिद्धान्त निर्धारित करना आवश्यक था। इसीलिए प्रसीडन्ट रूजवेल्ट न नवम्बर सन् १६३२ मे सत्ता सभालन के पश्चात् मदी का निवारण करन हेतु New Deal के नाम से कुछ कायक्रम निर्धारित किए। New Deal के अन्तर्गत तीन प्रकार के कायक्रम निर्धारत किये गये—

(अ) *सहायता सम्बन्धी कायक्रम* (*Relief Programmes*)
(आ) *पुर्ननिर्माण सम्बन्धी कायक्रम* (*Recovery Programmes*)
(इ) *सुधार सम्बन्धी कायक्रम* (*Reform Programmes*)

प्रसीडेन्ट रूजवल्ट न निम्नलिखित कायवाहियाँ की—

(१) मन्दी के कारण बैंको के फल होने को रोकन के हेतु अस्थायी रूप से समस्त बैंको को बन्द रखन का आदेश दिये गये।

(२) स्कन्ध विपणियो पर कठोर नियत्रण रखन हेतु प्रतिभूतियो के क्रय एव विक्रय सम्बन्धी नियम निर्धारित कर दिये गए।

(३) *व्यवहारिक दृष्टिकोण से स्वर्णमान को अस्थायी रूप से रोक दिया गया और कागजी मुद्रामान को चालू किया। यह कायवाही नियत्रित मुद्रा स्फीति को अथ व्यवस्था मे स्थान देने के लिए की गयी जिससे मूल्य स्तर मे वृद्धि हो सके।*

(४) मई सन् १६३३ मे Federal Emergency Relief

Administration की स्थापना की गयी। यह सस्था बेरोजगारो को खाना, वस्त्र तथा रहन के स्थान के रूप मे सहायता देती थी। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र मे बहुत से कार्य चालू किये गए जिनमे अस्थायी रूप से रोजगार प्रदान किया जा सके।

(५) कृषि के विकास हेतु सरकार द्वारा पर्याप्त ऋण तथा आर्थिक सहायता प्रदान करने का आयोजन किया गया और कृषि म उपयोग आने वाली भूमि म होने वाली कमी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(६) National Industrial Recovery Act पास किया गया जिसमे सरकारी औद्योगिक कार्यक्रमो का विस्तार किया जा सके तथा निजी उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जा सके। उद्योगो का विकास करके १२ मिलियन लोगो को रोजगार के अवसर प्रदान करना था।

(७) Social Security Act सन १९३५ के अन्तर्गत फैडरल सरकार वृद्ध लोगो की सहायतार्थ आर्थिक सहायता देता था। वृद्ध एव अवकाश प्राप्त श्रमिको म वार्षिक वृद्धि की योजना भी सचालित की गया तथा बेरोजगारो मे बीमा का भी आयोजन किया गया।

इन समस्त कार्यवाहियो के फलस्वरूप अर्थ-व्यवस्था म पर्याप्त सुधार हुए परन्तु सन् १९३७ म एक बार फिर मन्दी का वातावरण उत्पन्न हुआ। इस मन्दी का सामना करने हेतु New Deal का सस्थाओ को फिर कार्यशील बनाया गया। इसी समय द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया जिसस वस्तुओ और सेवाओ की माँग म वृद्धि होने स मूल्य बढन प्रारम्भ हो गये। द्वितीय महायुद्ध म विजय प्राप्त करने हेतु अमरीकी शासन न जो नियोजित कार्यवाहियाँ की, उनके मुख्य उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(१) १३ जनवरी सन् १९४२ को एक युद्ध उत्पादन बोर्ड (War Production Board) की स्थापना की गयी जिसे सैनिक एव असैनिक उत्पादन सम्बन्धी समस्त अधिकार दिये गये। बाद म यह सस्था अत्यन्त शक्तिशाली हो गयी और उत्पादन की प्राथमिकताओ के साथ उत्पादन के विभिन्न दुर्लभ (Scarce) साधनो एव घटको के बटवारे का निश्चय करने लगा।

(२) उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्य नियन्त्रित करने हेतु मूल्य प्रशासन के कार्यालय (Office of the Price Administration) की स्थापना की गयी। इसको उपभोक्ता वस्तुओ के क्रय को नियन्त्रित करने का भी अधिकार था।

(३) राष्ट्रीय युद्ध श्रम बोर्ड की स्थापना की गयी। इस बोर्ड को युद्ध काल म

श्रमिका एव प्रब धका के झगडा म पच फसला (Arbitrate) करन का भी अधिकार था।

(४) विदेशो से युद्ध सामग्री प्राप्त करने तथा शत्रु देशा को युद्ध सामग्री न भेजने के लिए आर्थिक कल्याण परिषद (Board of Economic Wel f re) की स्थापना की गयी।

युद्धकालीन इस व्यवस्था से यह स्पष्ट है कि अमरीकी अथ व्यवस्था ने नियोजित अथ व्यवस्था का रूप ग्रहण कर लिया। युद्धोपरा त भी अमरीकी प्रशासन न नियोजित व्यवस्था को जारी रखा युद्धोपरा त बेरोजगार तथा मुद्रा स्फोति दोनो समस्याओ की समान सम्भावना थी। युद्ध समाप्त होन पर मुद्रा स्फीति का दबाव बढ़ने लगा और मूल्य प्रशासन कार्यालय न उपभोक्ता वस्तुओ के नियमन के लिए कायवाहियाँ कीं।

सन् १९४६ का रोजगार एक्ट Empl yment Act 1946)— इस एक्ट को आर्थिक नियोजन का एक स्वरूप बताया जाता है। रोजगार एक्ट के अन्तर्गत फडरल सरकार का उत्तरदायित्व था कि अधिकारी रोजगार उत्पन्न तथा क्रय शक्ति का आयोजन करे। एक्ट म एक विशेष स्थायी अधिकारी नियुक्त करन का आयोजन था। प्र सीडेण्ट को एक आर्थिक सलाहकारो की काउन्सिल (Council of Ec omic Advisors) जिसम तीन आर्थिक विशेषज्ञ हो को नियुक्त करन का अधिकार था। प्र सीडेण्ट इस काउन्सिल की सहायता से प्रत्येक वर्ष जनवरी म अथवा जितनी बार प्र सीडेण्ड चाहे वतमान आर्थिक स्थिति को दर्शाने वाली एक आर्थिक रिपोट अमरीकी कांग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत करे और अथ व्यवस्था म सुधार करन हेतु आवश्यक सिफारिश कर। अमरीकी कांग्रेस की दोनो सभाएँ (Houses) एक Standing Joint Committee नियुक्त करते थे जो प्र सीडेण्ट द्वारा प्रस्तुत आर्थिक रिपोर्ट एव सिफारिशो का अध्ययन करके अपने विचार अमरीकी कांग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत करता था। तत्पश्चात अमरीकी कांग्रेस अपने निश्चय घोषित कर सकती थी और उस सम्बन्ध मे विधान बना सकती थी। प्र सीडेण्ट की Council of Economic Advisors को अपनी आर्थिक रिपोट तयार करन हेतु उद्योग कृषि श्रम, राज्य एव स्थानीय सरकारो तथा अन्य संस्थाओ एव व्यक्तियो स विचार विनिमय करन का अधिकार था। एक्ट के अनुसार प्र सी डेण्ट की आर्थिक रिपोट म आर्थिक कायक्रमा का विवरण जिसम रोजगार उत्पादन एव क्रय शक्ति के लक्ष्य तथा एक्ट म निर्धारित नीति का कार्यान्वित करन हेतु कायक्रम देना आवश्यक था। सन् १९४६ का रोजगार एक्ट अब एक

शक्तिशाली सस्था बन गया है जिसके द्वारा अमरीकी अर्थ-व्यवस्था मे स्थिरता लाना सम्भव हो सका है। इसके द्वारा अमरीकी अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख दोष मन्दी एव तेजी (Recession and Booms) को दूर करना सम्भव हो सका है।

"इन्डोनेशिया मे आर्थिक नियोजन"

इन्डोनेशिया देश ३,००० Islands से मिलकर बना जो कि ४.००० मील के क्षेत्र मे फैले हुए हैं। यह एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ चावल, रबर, शक्कर नारियल तथा खनिज तेल का बहुत उत्पादन होता है। चावल के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ को अधिकतर निर्यात कर दिया जाता है। निर्माण सम्बन्धी बडे उद्योग अत्यन्त कम हैं और दस्तकारी उद्योगो का इन्डोनेशिया की अर्थ-व्यवस्था मे अधिक महत्व है।

इन्डोनेशिया की पंचवर्षीय योजना—सन् १६५५ तक इन्डोनेशिया मे आर्थिक विकास के लिए कोई समन्वित योजना नही कार्यान्वित की गयी। सन् १६५५ से पूर्व इन्डोनेशिया सरकार ने आर्थिक विकास हेतु कभी-कभी परियोजनाएं (Projects) एव विकास कार्यक्रमो को प्रथक-प्रथक सचालित किया। सन् १६५५ वर्ष के अन्त मे राजकीय नियोजन ब्यूरो (State Planning Bureau) द्वारा एक पचवर्षीय योजना बनायी गयी जिसका कार्यकाल सन् १६५६ से सन् १६६० तक निर्धारित किया गया। इसको पूर्णरूपेण कार्यान्वित करने के लिए सरकार ने इसे विधान के रूप मे घोषित किया। योजना के कार्यक्रमो को सरकार द्वारा कार्यान्वित करना था। सरकार की आर्थिक नीति थी कि उत्पादन के साधनो को यथासम्भव पूंजीपतियो के हाथ मे जाने से रोका जाय।

योजना के अन्तर्गत सरकार को १२'५ विलियन रुपिहा (Rupiahs) सरकारी व्यवसायो एव परियोजनाओ के विकास एव विस्तार हेतु तथा निजी क्षेत्र मे पूंजी एव श्रम के विनियोजन को प्रोत्साहित करने हेतु व्यय करना था। इसके अतिरिक्त योजना काल मे निजी साहसियो को १० विलियन रुपिहा की पूंजीगत वस्तुयें प्राप्त करने का अधिकार था। साथ ही ग्रामीण समुदाय की पारस्परिक सहायता से योजना काल मे ७·५ विलियन रुपिहा का विनियोजन करने का लक्ष्य था। इन सब विनियोजनो द्वारा राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय एव उत्पादन मे वृद्धि करनी थी।

योजना मे सिचाई एव शक्ति की परियोजनाओ को अधिक प्राथमिकता दी गयी और दूसरा स्थान उद्योग एव खानिज को दिया गया। इनमे से प्रत्येक मद पर सरकार द्वारा ३१५५ मिलियन रुपिहा विनियोजन करना था। दूसरे शब्दों

मे यह कह सकते है कि सरकारी विनियोजन की समस्त राशि अर्थात् १२,५०० मिलियन रुपिहा का ५०% भाग शक्ति एव सिचाई तथा उद्योग एव खनिज पर विनियोजित होना था। इन दो मदो को अधिक प्राथमिकता देने का कारण यह था कि इन्डोनसी अर्थ व्यवस्था इन दो क्षत्रो मे अत्यन्त पिछडी हुई थी। सिचाई एव शक्ति के साधनो मे वृद्धि करन हेतु बहुत सी बहुउद्देशीय परियोजनाओ को इस योजना मे सम्मिलित किया गया। सिचाई के साधनो को इतना बढाने का लक्ष्य था कि चावल का उत्पादन ७१२६३२९ टन (सन् १९५५) से बढ कर सन् १९६० म ८२ लाख टन हो जाय। शक्ति के साधनो को बढाने का लक्ष्य ८६० KW घन्ट (सन् १९५५ म) से बढकर १,३००० मिलियन KW घन्ट हो जाय। औद्योगिक कायक्रमो को इस प्रकार निर्धारित किया गया कि वर्तमान उद्योगो का विकास करन के लिए विदशी मुद्रा की बचत हो सके तथा लोहा, इस्पात, रसायन आदि के उद्योग को सरकारी क्षत्र म स्थापित किया जा सके। सरकारी क्षत्र मे सुमात्रा रा आशान कम्पलेक्स (Ashan Complex) सयुक्त लोहा इस्पात परियोजना (Joint Iron and Steel Projects), रसायन एव खाद परियोजना तथा रेयन (Rayon) उद्योग की स्थापना की जानी थी। सरकारी क्षत्र के कारखानो म २३ मिलियन रुपिहा का विनियोजन किया जाना था। आशान कम्पलेक्स मे शक्ति उत्पादन करने का एक प्लाट अल्यूमिनियम का कारखाना सुपर फास्फट खाद का कारखाना, सीमेट का कारखाना, इन कारखानो स सम्बधित यातायात तथा हारबर (Harbour) की सुविधाए तथा पर लुग्दी एव कागज का कारखाना भी सम्मिलित थे। खाद एव रसायन परियोजना म कास्टिक सोडा असेटिक एसिड, गधक का तेजाब अमोनिया यूरिया (Urea) खाद तथा सुपर फास्फट के कारखान भी सम्मिलित थे। रेयन उद्योग के विस्तार हेतु पालेमबाग (दक्षिणी सुमात्रा) म ७०० मिलियन रुपिहा की लागत से एक रेयन के कारखाने की स्थापना करनी थी।

खनिज के क्षत्र मे ७५७ मिलियन रुपिहा का आयोजन वतमान राष्ट्रीय खनिज व्यवसायो मे सुधार करन के लिए किया गया। देश के अन्य क्षत्रो मे उपस्थित खनिज के सम्बन्ध मे अधिक सूचना एकत्रित करन का आयोजन किया गया। तत्कालीन तेल कोयला टिन बॉक्साईट आदि खनिज उद्योगो के विकास का भी प्रबन्ध खनिज कायक्रमो म किया गया।

योजना के विभिन्न कायक्रमो के सचालन के लिए अर्थ का प्रबन्ध देश के आन्तरिक साधनो से किया जाना था। सरकार को यह विश्वास था कि योजना

के लिए ग्रावश्यक वित्त देश के साधनो से प्राप्त हो सकेगा ग्रौर विदेशी सहायता की ग्रावश्यकता नहीं पडगी। इन्डोनेशिया के नियोजन व्यूरो ने चार पचवर्षीय योजनाग्रो द्वारा सन् १९७५ तक राष्ट्रीय ग्राय से ६५% तथा प्रति व्यक्ति ग्राय मे ४०% वृद्धि करन का ग्रनुमान लगाया। प्रथम पचवर्षीय योजना के ग्रन्त तक राष्ट्रीय ग्राय मे १५% तथा प्रति व्यक्ति ग्राय म ८% वृद्धि होन का लक्ष्य रखा गया।

"सीलोन मे ग्रार्थिक नियोजन"

सालान चाय, रबड एव नारियल के निर्यात के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु इस देश की बढती हुई जनसख्या के कारण देश को खाद्यान्नो का ग्रायात करना पडता है। खाद्यान्ना का ग्रायात देश के ग्रार्थिक विकास म बाधक बन गया है क्योकि विदेशी मुद्रा का ग्रधिकाश भाग विकास सामग्री के स्थान पर खाद्यान्नो के ग्रायात पर व्यय हो जाता है। सीलोन न पिछले १२ वर्षो म ग्रपनी दो छै वर्षीय योजनाग्रो से देश के ग्रार्थिक साधनो म वृद्धि करन का प्रयास किया है।

प्रथम छै वर्षीय योजना (१९४७ ४८ से १९५२ ५३)—इस योजना मे १,२४६ मिलियन रुपया व्यय किया गया जो निम्न प्रकार से है—

तालिका स० १२—सीलोन की प्रथम योजना का व्यय

मद	व्यय (मिलियन रुपया)	योग से प्रतिशत
(१) यातायान एव सचार	३०२ ४	२४ २
(२) ई धन एव शक्ति	७४ २	६ ०
(३) सामाजिक पूंजी	२५१ ५	२० २
(४) कृषि, मछली उद्योग तथा वन	५१८ ८	४१ ६
(५) उद्योग	६५ ४	५ ३
(६) ग्रन्य	३४ १	२ ७
	१ २४६ ४	१००%

इस प्रकार लगभग ५० % ग्राधारभूत सेवाग्रा जैसे यातायात एव सचार, ई धन एव शक्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास गृह ग्रादि पर व्यय हुग्रा। ४१·६% कृषि एव मछली पालन तथा वन सम्पत्ति ग्रादि उद्योगा क विकास पर व्यय हुग्रा।

इस योजना के ग्रन्तर्गत ४०,००० हक्टर (Hectors) भूमि का सुधार धान की खेती क लिए किया गया जो कि याजना के लक्ष्य स १२,००० हेक्टर कम थी। कोरिया के युद्ध के कारण देश से ग्रधिक निर्यात किया गया ग्रौर निर्यात करन से सरकार को ग्राय प्राप्त हुई। इसीलिए योजना का दो तिहाई

विकास व्यय सरकार की चालू आय मे से किया गया। प्रथम योजना मे प्रति-व्यक्ति आय सन् १९३८ के मूल्यो के आधार पर १३१ रुपये (सन् १९४८ मे) से बढ कर सन् १९५१ म १६४ रुपये हो गई। परन्तु सन् १९५३ मे यह आय घट कर १४९ रुपये हो गयी।

द्वितीय छै वर्षीय योजना (सन् १९५४-५५ से सन् १९५९-६०)—द्वितीय योजना, कोलम्बो योजना तथा अन्तर्राष्ट्रीय निर्माण एव विकास बैंक के विकास कार्यक्रमो से समन्वित की हुई थी। इस योजना का व्यय २५२९ मिलियन रुपया निर्धारित किया गया जिसका वितरण निम्न प्रकार किया गया—

तालिका स० १३—सीलोन की द्वितीय योजना का व्यय

मद	(मिलियन रुपया)	योग से प्रतिशत
यातायात एव सचार	८५०·०	३३ १
सामाजिक पूंजी	४०२·७	१५ ९
कृषि, मछली उद्योग तथा वन	९२२ ६	३६ ५
ग्रामीण विकास	५७ ६	२·३
उद्योग	१११ ८	४ ४
अन्य	८९ ५	४ ०
रक्षा (Defence)	९४ ६	३ ८
	२५२८ ८	१०० ०%

योजना के समस्त व्यय की राशि मे से लगभग आधा भाग नवीन परियोजनाओं पर व्यय होना था, तथा शेष तत्कालीन चालू योजनाओ को पूरा करने हेतु रखा गया था। योजना का उद्देश्य उत्पादन क्षमता मे द्रुतगति स वृद्धि करना था। यह वृद्धि की गति जनसख्या की वृद्धि की गति से अधिक होनी थी। आधार-भूत आर्थिक सेवाओ मे पर्याप्त वृद्धि का आयोजन किया गया तथा इससे कुछ नवीन योजनाओ को चालू करना था। कृषि के क्षेत्र म सबसे अधिक प्राथमिकता धान उत्पादन हेतु सिंचाई तथा पुनर्वास को दी गयी। ग्राम विस्तार योजनाओ द्वारा १,४०,००० परिवारो को नवीन सिंचित भूमि पर पुनर्वासित करने का आयोजन था। ४८,००० हेक्टर भूमि को सिंचित करने का भी आयोजन था। रबर एव नारियल को पुन पौध (Replanting) लगाने को भी अधिक प्राथमिकता दी गयी थी।

सरकार की नीति के अनुसार उद्योगो का विकास निजी क्षेत्र म होना था। इसीलिये योजना मे औद्योगिक विकास हेतु कम राशि निर्धारित की गयी।

योजना मे ३५ मिलियन रुपया सरकार के निजी उद्योगो मे Participation करने हेतु आयोजित किया गया।

योजना की अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध म कोई निश्चित कार्यक्रम निर्धारित नहीं किये गए। विकास व्यय के आयोजन प्रत्येक वर्ष की परिवर्तित आर्थिक स्थिति के अनुसार बजट ने किया जाना था। सीलोन की सरकारी आय का अधिकाश भाग निर्यात-कर से प्राप्त होता है और निर्यात-कर की प्राप्ति मूल्यो मे परिवर्तन करने के कारण सदैव अनिश्चित होती है। यद्यपि सीलोन ने विदेशो से तात्रिक एव वित्तीय सहायता प्राप्त की परन्तु योजना के सचालन हेतु सीलोन सरकार अपने ही साधनो पर अधिक निर्भर थी।

'बर्मा मे आर्थिक नियोजन"

बर्मा म प्राकृतिक साधनो की बहुतायत है। वन एव खनिज सम्पत्ति तथा जल विद्युत शक्ति के साधन बडी मात्रा म मौजूद हैं, जिनका अभी तक शोषण नहीं किया गया है। द्वितीय महायुद्ध म जापान द्वारा आक्रमण के कारण बर्मा की अर्थ-व्यवस्था को अत्यधिक क्षति पहुँची। द्वितीय महायुद्ध के बाद बर्मा पर फिर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया और राजनीतिक सघर्ष प्रारम्भ हो गया। भारत के साथ बर्मा को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और महायुद्ध एव आन्तरिक अशान्ति के कारण हुए आर्थिक विध्वस को पुनर्निर्माण हेतु विकास योजनाओ को कार्यान्वित किया गया।

आठवर्षीय विकास योजना—घरेलू उत्पादन को युद्ध के पूर्व के स्तर पर लाने हेतु बर्मा सरकार के आर्थिक एव तंत्रीय सलाहकारो ने आठवर्षीय आर्थिक विकास कार्यक्रम बनाया। बर्मा के राजनीतिक नेता रूस की नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत हुए आर्थिक विकास म बहुत प्रभावित हुए और बर्मा के सन् १९४८ के सविधान म पूर्णरूपेण नियोजित अर्थ-व्यवस्था का आयोजन किया गया। आठवर्षीय विकास योजना अक्टूबर सन् १९५१ मे प्रारम्भ होनी थी, परन्तु योजना को कार्यान्वित करने हेतु पर्याप्त तैयारियाँ न होने के कारण योजना का प्रारम्भ एक वर्ष बाद अक्टूबर सन् १९५२ म हो सका। इस योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय सकल उत्पादन जो सन् १९५१ ५२ म ३६०० मिलियन क्यात् (Kvat) था, को बढा कर सन् १९५९-६० तक ७,००० मिलियन क्यात् करने का लक्ष्य था। प्रति व्यक्ति आय सन् १९५१ ५२ के स्तर २०१ क्यात् से बढ कर सन् १९५९ ६० तक ३४० क्यात् (सन् १९५१-५२ के मूल्यो पर) होने का अनुमान था अर्थात् प्रति व्यक्ति आय मे योजना काल मे ६९% की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति उपभोग भी १४६ क्यात्

से बढ कर २२४ क्यात होन का अनुमान था अर्थात ५४% की वृद्धि करन का लक्ष्य रखा गया था।

योजना म ७५०० मिलियन क्यात का विनियोजन आठ वर्षो मे किया जाना था। इस राशि मे २४०० मिलियन क्यात निजी साहस तथा ३१०० मिलियन क्यात सरकार द्वारा विनियोजन किया जाना था। योजना की विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओ का अनुमान २५०० मिलियन क्यात था। ७५०० मिलियन क्यात के विनियोजन मे म ५५०० मिलियन क्यात उत्पादक पूंजी, २००० मिलियन क्यात सामाजिक पू जी (*अर्थात निवास गृह स्कूल, चिकित्सा की सुविधाएं आदि*) के लिए निर्धारित किया गया था। योजना का निर्माण करते समय दो मान्यताओ को आधार बनाया गया था। प्रथम था चावल का मूल्य योजना काल मे ४५ पौड प्रति टन स कम नही होगा और बर्मा चावल का निर्यात करके योजना क लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा उपार्जित कर सकेगा परन्तु चावल क मूल्यो मे गिरावट हा गयी और योजना के कायक्रमा के लिए विदेशो मुद्रा की कमा पडी। विदेशी मुद्रा की कमी की पूर्ति करन हेतु बर्मा को भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय बक मे ऋण प्राप्त करन पड। योजना का दूसरी मान्यता यह थी कि बर्मा सरकार विद्रोहियो के अधिकार म रहन वाले क्षत्रो पर अधिकार प्राप्त कर लेगा और विद्रोहियो का सतुष्ट कर सकेगा। परतु योजना काल मे विद्रोहियो की गतिविधि और तीव्र हा गयी और बर्मा सरकार को अपनी आगम आय का लगभग ४०% रक्षा पर व्यय करना पडा। रक्षाव्यय बढन के कारण विकास व्यय को कम करना आवश्यक हा गया। योजना म सन् १९५९ ६० तक धान उगाए जान वाल क्षत्र म युद्ध के पूव की तुलना मे ४% की वृद्धि करना था। पर तु विद्रोहियो के अधिकार म बडा क्षत्र रहन के कारण, इस लक्ष्य की पूर्ति करना सभव नही हो सका है। इसके अतिरिक्त तात्रिक विशषज्ञो की कमी के कारण सिचाइ की सुविधाओ म भा पर्याप्त वृद्धि नही की जा सकी।

उद्योगो के क्षत्र म योजना म निम्न उद्द श्य निर्धारित किये गये थ—

(१) बढती हुई जनसख्या को अधिक स अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जाय।

(२) औद्योगिक आत्म निभरता प्राप्त करन के लिए विदेशो पर निभर न रहा जाय।

(३) बर्मा की राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ बनाया जाय। औद्योगिक कायक्रमा मे आधारभूत उद्योगो को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी। इसक पश्चात उन

उद्योगो को स्थान दिया गया जो इन आधारभूत उद्योगो की निर्मित वस्तुओ का उपयोग करते हो। सन् १९५३ की विदेशी मुद्रा की कठिनाइयो के कारण इन उद्योगो के विकास कार्यक्रमो मे काट-छाँट की गयी। दूसरी ओर प्रशिक्षित कर्मचारियो की कमी के कारण औद्योगिक क्षेत्र म लक्ष्य के अनुसार विकास नहीं किया जा सका और बर्मा की सरकार को औद्योगिक नवीन इकाईयो को निजी क्षेत्र म स्थापित करने की अनुमति देनी पडी। सन् १९५५ मे रूसी नेताओ से औद्योगिक विकास हेतु आर्थिक सहायता का आश्वासन मिलन पर औद्योगिक कार्यक्रमो मे कुछ वृद्धि भी की गयी, फिर भी औद्योगिक विकास की गति लक्ष्य के अनुसार न रह सकी और आधारभूत उद्योग जैसे, लोहा एव इस्पात आदि की स्थापना भी सुदृढ न हो सकी। यातायात एव सचार के लिए १७५ मिलियन क्यात का आयोजन किया गया था। इस राशि म से आधा भाग सडक यातायात तथा शेष आन्तरिक जल यातायात के विकास क लिए निर्धारित किया गया था। रेल यातायात क क्षेत्र म लगभग १०० रेलवे स्टेशनो को फिर चालू करन तथा रौलिग स्टॉक के सग्रह का प्रबन्ध किया गया था। परन्तु विद्रोहियो की कायवाहिया क कारण इस क्षेत्र म लक्ष्य के अनुसार विकास नहीं हो सका।

"फिलीपाइन्स मे आर्थिक नियोजन"

फिलीपाइन्स का क्षेत्र लगभग ३ लाख किलोमीटर है जिसम से लगभग आधा भाग वनो स ढके पहाड है। समस्त क्षेत्र का लगभग $\frac{1}{6}$ भाग कृषि के लिए उपयोग किया जाता है। देश म सोना, कच्चा लोहा, कोयला तथा क्रोमाइट की खानें ह। कृषि उत्पादन की मुख्य मदे चावल, नारियल, शक्कर, अबाका (Mannila hamp) हैं। कृषि द्वारा लगभग ७५% जनसख्या को रोजगार मिलता है। उद्योगो के क्षेत्र म यह देश पिछडा हुआ है और अधिकतर औद्योगिक वस्तुएं सयुक्त राज्य अमरीका से प्राप्त होती हैं।

पचवर्षीय विकास कार्यक्रम (सन् १९५४ १९५९)—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ४१०६ मिलियन पेसो (Peso) का विनियोजन किया जाना था। योजना के मुख्य उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय को पाँच वर्षों म ३६% तथा बेरोजगार जो समस्त श्रम शक्ति का १५% था, को कम करके ६% करना था। विनियोजन की $\frac{1}{6}$ म भी अधिक कृषि विकास के लिए निर्धारित किया गया। योजना के कार्यक्रमो के फलस्वरूप कृषि उत्पादन राष्ट्रीय आय का सन् १९५२ में ४०% था, १९५९ म ३२% हो जायगा, निर्माण-उद्योगो का उत्पादन राष्ट्रीय आय का ३ ४% से बढ कर १३ ७% और निर्माण सम्बन्धी उद्योगो (Manufacturing Industries) का उत्पादन ७.५% से बढ कर १५.१% हो

जायगा। इस प्रकार योजना मे उद्योगो के विकास को अधिक प्राथमिकता दी गयी थी। योजना की विनियोजन राशि को विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार *वितरित किया गया—*

विनियोजन कार्यक्रम (सन् १९५४-५५ से १९५८-५९) (*मिलियन पैसो मे*)

तालिका १४—फिलीपाइन की योजना में विनियोजन

मद	सरकारी विनियोजन	निजी विनि-योजन	योग	योग से प्रतिशत
कृषि	१७५	६५३	८२८	२०.२%
खनिज	——	२२०	२२०	५.४%
निर्माण उद्योग	५५५	६९३	१२४८	३०.४%
यातायात एव संचार	६६	३२६	३९२	९.५%
निर्माण	८५०	४४७	१३२७	३२.३%
अन्य	९१	——	९१	२.२%
	१७३७	२,=३६	४,१०६	१००.०%

कृषि कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य निर्यात होन वाली फसलो के उत्पादन मे प्रतिस्पर्धी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत वृद्धि करना था। प्रथम दा वर्षों मे खाद्यान्नो मे आत्म निर्भरता प्राप्त करना था। कच्चे माल जैसे कपास तथा अन्य रेशेदार फसलो के उत्पादन मे देश की कच्चे माल की आवश्यकताओ का कम से *कम ५०% पूर्ति के लिए वृद्धि करना थी। कम लागत की लकडी का आयोजन करना था जिससे १,००,००० घरो का निर्माण किया जा सके।* खाद्यान्नो के उत्पादन को ७ ३ मिलियन टन (सन् १९५५) से बढा कर ११ ३ *मिलियन टन (सन् १९५९) करने का लक्ष्य था। सिंचित भूमि को ४,८०,०००* हेक्टर (सन् १९५३) से बढा कर ७,००,००० हेक्टर (सन् १९५९) करना था।

उद्योगो के क्षेत्र मे शक्ति एव ईधन को सर्वाधिक महत्व दिया गया। २६ *जल विद्युत शक्ति योजनाओ द्वारा ४,४८,४२५ KWH अतिरिक्त शक्ति* उत्पादन करने का आयोजन किया गया था। लोहा एव इस्पात उद्योग का विकास करके १,२०,००० टन पिण्ड लौह तथा १,००,००० टन इस्पात उत्पन्न *करने का लक्ष्य था। सन् १९५९ तक रसायन एव खाद के उत्पादन को* ३ लाख टन करने का अनुमान था। सूती वस्त्र एवं रेयन उद्योग के विकास के लिए भी कार्यक्रम निर्धारित किये गये थे।

ग्रामीण क्षेत्रो मे यातायात की सुविधाएं प्राप्त करने तथा माल ढोने का

प्रबन्ध करने के लिये भी आयोजन किये गये थे। बन्दरगाहो के पुनर्वास, (Rehabilitation), वाटर वर्क्स का विकास, हवाई मार्गों, सरकारी भवनो, शिक्षा तान्त्रिक प्रशिक्षण, अन्वेषण, जन-स्वास्थ्य, समाज-कल्याण आदि सभी के विकास के लिये कार्यक्रम नियोजन मे सम्मिलित किये गए थे।

विनियोजन की समस्त विनियोजन राशि मे से २३६९ मिलियन पैसो अर्थात् ५८% निजी क्षेत्र मे विनियोजन होना था और शेष सरकारी क्षेत्र का विनियोजन था। विनियोजन राशियाँ निम्न प्रकार उपलब्ध करने का अनुमान था—

निजी विनियोजन	मिलियन पेसो मे	
निजी बचत	१,८२२	
बैंको से ऋण	४४७	
सरकार से ऋण	१००	
योग		२३६९
सरकारी विनियोजन		
सामान्य, विशेष एवं पूरक वितरण (Appropriation)	९५९	
सरकारी निगमो स आय	१२८	
बौंड जारी करके	५००	
विदेशी अनुदान एव ऋण	१५०	
योग		१७३७
महायोग		४१०६

"पाकिस्तान मे आर्थिक नियोजन"

पाकिस्तान के राजनीतिक नेता स्वतंत्रता के पश्चात् लम्बे समय तक पारस्परिक दलबन्दी तथा सत्ता प्राप्त करने के प्रयासो मे व्यस्त रहे और अर्थ-व्यस्था के विकास हेतु कोई ठोस कार्यवाहियां नहीं की जा सकीं। जन-साधारण मे वहाँ की बदलती हुयी सरकारें विश्वास उत्पन्न न कर सकीं, जिससे नियोजित कार्यक्रमो के लिए जन-साधारण को त्याग करने के लिए प्रोत्साहित न किया जा सका। पाकिस्तानी शासक अपनी राजनीतिक सत्ता पर दृढ न होने के कारण कोई दृढ आर्थिक नीति निर्धारित न कर सके। इन सब कारणो के फलस्वरूप पाकिस्तान की प्रथम पचवर्षीय योजना स्वतन्त्रता के ८ वर्षों के पश्चात् १ जुलाई सन् १९५५ मे प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। परन्तु राजनीतिक अस्थिरता के कारण इस योजना को सरकार की स्वीकृति सन् १९५७ तक भी नहीं मिल पायी। इस योजना का

तरीको द्वारा प्रोत्साहित करके तीव्र किया जाय तथा अर्थ-व्यवस्था को व्यर्थ के प्रतिबन्धो से मुक्त किया जाय ।

(३) सभी स्तरो पर शिक्षा का विस्तार किया जाय, जिससे पर्याप्त मात्रा मे योग्य नियोगी वर्ग (Personnel) प्राप्त हो सकें।

द्वितीय योजना का समस्त व्यय १९,००० मिलियन रुपया निर्धारित किया गया। यह व्यय विभिन्न क्षेत्रो मे निम्न प्रकार वितरित किया गया—

	(मिलियन रुपयो मे)
सरकारी क्षेत्र का व्यय	९,७५०
अर्ध-सरकारी क्षेत्र का व्यय	३,२५०
निजी क्षेत्र का व्यय	६,०००
योग	१९,०००

इस व्यय की राशि को विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार आवटित किया गया—

तालिका स० १५—पाकिस्तान की द्वितीय योजना का व्यय

(मिलियन रुपयो मे)

मद	सरकारी क्षेत्र	अर्ध-सरकारी क्षत्र: सरकार से अनुदान	अर्ध-सरकारी क्षत्र: अपने साधनो से निजी विनियोजन एव ऋण	निजी क्षेत्र	योग
कृषि	१,६६०	—	—	८८०	२,५४०
जल एव शक्ति	३,१४०	—	१६०	६०	३,३६०
उद्योग	१२५	१,०४५	५००	२,३८०	४,०५०
ई धन एव खनिज	१२५	१७५	—	५५०	८५०
यातायात एव सचार	१,९९०	११०	४२०	८३०	३,३५०
गृह एव पुनर्वास (Housing & Settlement)	८९५	४२०	३९०	१,१३५	२,८४०
शिक्षा एव प्रशिक्षण	८९०	—	—	१००	९९०
स्वास्थ्य	३५०	—	—	५०	४००
जन-शक्ति एव समाज सेवाएं	९५	—	—	१५	११०
ग्रामीण सहायता	४८०	—	—	—	४८०
योग	९,७५०	१,७५०	१,५००	६,०००	१९,०००

भारत के समान ही अरब गणराज्य की योजना का उद्देश्य अर्थ-व्यवस्था का विकास करना तथा समाजवादी सहकारी एव प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित एक विषमताहीन (Egalitarian) समाज की स्थापना करना, आर्थिक विषमताओ को समाप्त करना, समस्त नागरिको को समान अवसर प्रदान करना तथा ग्रामीण एव नागरिक बेरोजगारो को रोजगार प्रदान करना आदि उद्देश्यो की पूर्ति करना है। पंचवर्षीय योजना द्वारा दस वर्षो मे राष्ट्रीय आय को दुगुना करने, राष्ट्रीय उत्पादन को अधिक महत्व देने, राष्ट्रीय उपभोग, बचत एव विनियोजन को बढाने तथा रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने का लक्ष्य है। इस योजना का समस्त व्यय २००४ मिलियन मिश्री पौंड है जिसमे से १६६७ मिलियन पौंड मिश्र प्रदेश के विकास के लिए तथा ३०७ मिलियन पौंड सीरिया प्रदेश के विकास के लिए निर्धारित किया गया। दोनो क्षेत्रो की विनियोजन राशि अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे आवंटित की गयी जिनमे सिंचाई, कृषि, उद्योग, यातायात, सचार, सग्रह, गृह-निर्माण, जनोपयोगी सेवाएं सम्मिलित थीं। विनियोजन का विभिन्न क्षेत्रो मे वितरण इस प्रकार किया जाना निश्चय किया गया कि अधिकतम सफलता प्राप्त हो सके। योजना के विनियोजन कार्यक्रम निर्धारित करते समय सीरिया-प्रदेश के कृषि उत्पादन मे वृद्धि की समस्या तथा मिश्र प्रदेश की भूमि समस्याओ को भी ध्यान मे रखा गया। देश की बढती हुई जनसख्या से उत्पन्न होने वाली समस्याओ पर योजना बनाते समय विचार किया गया था।

पचवर्षीय योजना के अन्त तक अरब गणराज्य की राष्ट्रीय आय मे ६२० मिलियन मिश्री पौंड की वृद्धि होने का अनुमान था, जिसमे से सीरिया प्रदेश की राष्ट्रीय आय १०७ मिलियन मिश्री पौंड तथा मिश्र प्रदेश की राष्ट्रीय आय मे ५१३ मिलियन मिश्री पौंड की वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार अरब गणराज्य की राष्ट्रीय आय मे ४०% की वृद्धि करने का लक्ष्य था। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे वर्तमान राष्ट्रीय आय मे ६०% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा जायगा।

मिश्री प्रदेश म ६७५ मिलियन मिश्री पौंड, विद्युत एव उद्योगो के विकास के लिए निर्धारित किया गया। कृषि जिसमे असवान बाँध परियोजना सम्मिलित थी, के लिए ४०० मिलियन पौंड निर्धारित किया गया। इन दो मदो के पश्चात् व्यय के आधार पर यातायात एव सचार गृह निर्माण, जन सेवाओ, आर्थिक सगठन तथा जनोपयोगी सेवाओ का प्राथमिकता दी गयी, सीरिया-प्रदेश मे कृषि विकास को सबसे अधिक महत्व दिया गया है और इस प्रदेश की योजना के

समस्त व्यय का लगभग ३०% भाग कृषि विकास के लिए निर्धारित किया गया है। दूसरा स्थान उद्योगों के विकास के लिए दिया गया और इस मद के लिए समस्त व्यय का लगभग २०% भाग निर्धारित किया गया है।

पचवर्षीय योजना तैयार करने के साथ-साथ अरब गणराज्य की प्रथम जनगणना की गयी। जनगणना के आँकड़ो के अनुसार देश की जनसख्या ३ करोड है जिसमे से २.५ करोड से भी अधिक जनसंख्या मिश्र प्रदेश मे रहती है। बढती हुई श्रम शक्ति को उपयोगी रोजगार बढ़ते हुए उद्योगों अथवा कृषि के विस्तार मे उपलब्ध कराया जायगा। योजना मे अभिलाषी औद्योगिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त दोनो प्रदेशों के लिए कई बडी सिंचाई तथा भूमि को कृषि योग्य बनाने की परियोजनाएं भी सम्मिलित की गयी हैं। सीरिया प्रदेश मे कृषि का नवीनीकरण करने तथा मिश्र प्रदेश मे मरुस्थलीय प्रदेशो को रहने योग्य चरागाह बनाने की योजनाओ पर भी जोर दिया गया है। मिश्र प्रदेश के असवान उच्च बांध के समान ही सीरिया मे एक ऊँचा बांध बनाने की योजना है जिसका नाम यूफ्रेट्स (Euphrates) परियोजना है। सीरिया प्रदेश मे तेल उद्योग का विस्तार करने, खाद्य उद्योग का विकास, बन्दरगाहो और डॉक यार्ड तथा पाइप लाईन के विकास को अधिक महत्व दिया गया है। दूसरी ओर मिश्र प्रदेश में बहुत से नवीन उद्योग जिनमे मोटरगाडी निर्माण, लोहा एव इस्पात, सीमेन्ट, रबर की वस्तुएं, शीशे के वर्तन आदि सम्मिलित हैं, के लिए आयोजन किया गया है। पचवर्षीय योजना मे ग्रामीण-सुधार के विशेष कार्यक्रम सम्मिलित किये गये हैं।

भाग ३

भारत में आर्थिक नियोजन

अध्याय ६

भारत में नियोजन का इतिहास

[राष्ट्रीय योजना समिति—उद्योग, कृषि, बम्बई योजना—उद्देश्य, मान्यताएँ, उद्योग, कृषि, यातायात के साधन, शिक्षा, अर्थ प्रबन्धन, सामाजिक व्यवस्था, योजना के दोष, जन योजना—उद्देश्य, कृषि, औद्योगिक विकास, यातायात, अर्थ प्रबन्धन, आलोचना; विश्वेसरैया योजना—उद्देश्य एवं कार्यक्रम; गांधीवादी योजना—मूल सिद्धान्त, उद्देश्य, कृषि, ग्रामीण उद्योग, आधारभूत उद्योग, अर्थ प्रबन्धन, आलोचना; द्वितीय महासमरोपरान्त भारत में नियोजन का इतिहास—सलाहकार योजना मण्डल, अन्तरिम सरकार की नीतियाँ, औद्योगिक नीति प्रस्ताव, सन् १९४८; औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, सन् १९५१; कोलम्बो योजना—उद्देश्य एवं कार्यक्रम]

राष्ट्रीय योजना समिति

भारत में नियोजन की आवश्यकता की ओर सर्वप्रथम सन् १९३४ में प्रसिद्ध इन्जीनियर तथा राजनीतिज्ञ, सर विश्वेसरैया द्वारा संकेत किया गया। उन्होंने अपनी पुस्तक Planned Economy for India में यह बताया कि भारत का पुनर्निर्माण योजनाबद्ध कार्यक्रम द्वारा किया जाना आवश्यक है। इस पुस्तक में बताया गया है कि राष्ट्र के सर्वोपरि आर्थिक विकास के हेतु आर्थिक नियोजन आवश्यक है। भारतीय आर्थिक सभा (Indian Economic Conference) ने अपनी सन् १९३४-३५ की वार्षिक सभा में इस पुस्तक में दिए गए सुझावों पर विचार किया। इस पुस्तक में एक दस वर्षीय योजना का कार्यक्रम बताया गया था जिसके द्वारा राष्ट्रीय आय तथा समस्त उद्योगों के

उत्पादन को अल्प समय मे दुगुना करने का आयोजन किया गया था। विस्तृत शिक्षा तथा औद्योगीकरण जिसमे भारी उद्योगो को विशेष महत्व दिया जाय, सांख्य तथा आवश्यक सूचना का एकत्रीकरण, व्यवसायो मे सतुलन स्थापित करना, ग्राम्यीकरण की प्रवृत्तियो को रोकना आदि कार्यक्रम इसमे सम्मिलित किये गये थे। यद्यपि यह योजना समुचित समय पर प्रस्तुत की गयी परन्तु आर्थिक कठिनाई, साख्य की अपर्याप्तता, विदेशी जन असहयोग आदि कारणो से इसे कार्यान्वित नहीं किया गया। इसके लगभग चार वर्ष पश्चात् २ तथा ३ अक्टूबर सन् १६३८ को अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष, श्री सुभाषचन्द्र बोस ने दिल्ली मे प्रान्तीय उद्योग मत्रियो का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन ने निश्चय किया कि निर्धनता, बेरोजगारी, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्मेलन मे ऐसी राष्ट्रीय योजना पर जोर दिया गया जिसमे वृहत्, आधारभूत, लघु तथा कुटीर उद्योगो का समन्वित विकास आवश्यक समझा जाय। इस सम्मेलन के सुझावो को कार्यान्वित करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस द्वारा राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) की स्थापना श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे की गयी। यह देश मे सर्वप्रथम कार्यवाही थी जिसके द्वारा राष्ट्र की महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओ का अध्ययन तथा उनके हल के लिए समन्वित योजनाओ का निर्माण करने का प्रयत्न किया गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र के विभिन्न आर्थिक पहलुओ का अध्ययन करके एक ऐसी व्यवस्था अथवा योजना निश्चित करना था जिसके द्वारा ऐसे समाज का निर्माण किया जाय कि जनसमुदाय को विचार व्यक्त करने तथा अपनी इच्छाओ की पूर्ति करने के समान अवसर प्राप्त हो तथा उचित समय पर पर्याप्त न्यूनतम जीवन-स्तर का आयोजन किया जा सके।

इस समिति ने देश के विभिन्न आर्थिक पहलुओ का अध्ययन करने तथा विकास योजनाएँ प्रस्तुत करने के लिए २६ उप समितियाँ नियुक्त की, जिनका प्रतिवेदन (Report) समय-समय पर प्रकाशित किया गया। समिति के विचार मे नियोजन का सचालन उचित राष्ट्रीय अधिकारी की अनुपस्थिति मे नहीं किया जा सकता था। इस अधिकारी को प्रभावशाली योजना बनाने तथा सचालित करने के लिए राष्ट्र के समस्त साधनो पर पूर्ण नियत्रण प्राप्त होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय सरकार जिसमे विदेशी सत्ता को कोई हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं हो, का निर्माण करना आवश्यक समझा गया। मई सन् १६४० मे समिति के अध्यक्ष ने घोषणा की कि समिति एक स्वतन्त्र सरकार स्थापित करना चाहती है जिसमे व्यक्ति

तथा समुदाय के मूलभूत अधिकारों—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक को सुरक्षित रखा जायगा और नागरिकों के तदनुसार कर्त्तव्य भी निश्चित किये जायेंगे।

उद्योग—राज्य का आधारभूत उद्योगो तथा सेवाग्रो, खनिज साधनो, रेलों, जल एवं वायु गमनागमन साधनो, जन-उपयोगी उद्योगों आदि पर एकाधिकार रहना आवश्यक होगा और वह उनको अपने नियन्त्रण में रखेगा। जो उद्योग निजी साहसियो द्वारा सचालित होंगे, उनको नियंत्रित रूप से राज्य की नीतियो के अनुसार चलाया जायगा। औद्योगिक श्रम के उचित प्रतिफल का आयोजन किया जायगा। सरकारी क्षेत्र के उद्योगो के सचालन के लिए स्वतन्त्र सघों (Autonomous Public Trusts) की स्थापना की जायगी। निजी क्षेत्र के उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने पर उचित क्षति पूर्ति की जायगी। समिति ने सुझाव दिया कि गृह तथा वृहद् उद्योगो—दोनो का ही विकास किया जायगा परन्तु इन दोनो मे इस प्रकार सामजस्य स्थापित किया जायगा कि इनमे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा न हो। राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था की विचित्रता के कारण जनता के हित के हेतु लघु तथा ग्रामीण उद्योगो के विकास को अत्यावश्यक समझा गया। साथ ही यह भी स्पष्ट मान लिया गया कि राष्ट्र की आर्थिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता एवं जनसमुदाय के जीवन मे सुधार करने के लिए औद्योगीकरण अनिवार्य है। इसलिए इन दोनो प्रकार के उद्योगो मे इस प्रकार योजनाबद्ध विकास करना आवश्यक होगा कि वह एक-दूसरे के सहायक के रूप मे कार्य कर सके। लघु उद्योगो द्वारा ग्रामीण क्षत्र मे रोजगार के अवसरो मे वृद्धि, सामान्य रोजगार के अवसरो मे वृद्धि, सहायक व्यवसाय की उपलब्धि तथा जनसमुदाय की रुचि एव स्वभाव के अनुकूल रोजगार के अवसर प्रदान किये जा सकते हैं।

कृषि—राष्ट्रीय योजना समिति ने कृषि उद्योग के अध्ययन के लिए सात उप-समितियो की स्थापना की। इन समितियो के कार्यक्षेत्र मे भूमि-सुधार, कृषि, श्रमिक तथा कृषि बीमा, सिचाई, भूमि सुरक्षा तथा वन लगाना, ग्रामीण विपणि एव वित्त-व्यवस्था (Rural Marketing And Finance), नियोजित फसल तथा उत्पादन, पशु चिकित्सा, डेरी फार्मिंग, मत्स्योद्योग, उद्यान-सम्बन्धी कार्यक्रम आदि सम्मिलित थे।

इस सम्बन्ध में समिति ने सिफारिश की कि—

(क) कृषि भूमि, खानें, नदियाँ तथा वन प्राकृतिक सम्पत्तियाँ हैं। उन पर भारत के सम्पूर्ण जनसमुदाय का सामूहिक अधिकार होना चाहिए।

(ख) सहकारिता के सिद्धान्तो का उपयोग भूमि के शोषणार्थ किया जाय

तथा सामूहिक तथा सहकारी फार्मों का विकास किया जाना चाहिए जिससे जनसमुदाय मे पारस्परिक सहयोग की भावना जाग्रत हो सके।

(ग) सरकार उपयोग मे न आने वाली कृषि योग्य भूमि पर सामूहिक फार्मों की स्थापना करे।

(घ) सहकारी कृषि को महत्त्व दिया जाय परन्तु भूमि के निजी अधिकार को समाप्त न किया जाय और उत्पादन का वितरण प्रत्येक सदस्य की भूमि के अनुसार किया जाय।

(ड) सरकार प्रयोगात्मक, शैक्षणिक तथा प्रदर्शन कार्य के लिए कृषि फार्मों का सगठन करे।

(च) निजी साहसिया को फार्म स्थापित करन के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

(छ) जमीदारी तथा ताल्लुकेदारी को समाप्त किया जाय तथा सरकार उचित प्रतिफल देकर इन मध्यस्थो के अधिकार क्रय करले।

(ज) नदियो तथा सिचाई से सम्बंधित उप समिति न सुझाव दिया कि एक राष्ट्रीय जल साधन परिषद् (National Water Resources Board) की स्थापना की जाय। यह परिषद् जल यातायात बाढ नियन्त्रण नदियो का प्रबन्धन, विद्युत शक्ति तथा पेय जल के लिये सचालित आयोजना म सामजस्य स्थापित करे। ग्रामीण समाज को ग्राम की छोटी छोटी सिंचाई योजनाओ को ठीक रखन तथा सुधारन का काय दिया जाय।

(झ) गाय को आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बनान के लिए प्रति पशु दूध म वृद्धि की जाय। ऐसे पशुओ की सख्या बढाने का प्रयत्न किया जाय जो दूध दे सकें तथा कृषको को अन्य कार्यों मे भी सहायक हो सकें।

(ञ) सरकार को भूमि तथा वनो की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपन ऊपर लेना चाहिए। भूमि सुधार मडल की स्थापना की जाय तथा प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें भूमि कटाव (Soil Erosion) को रोकन तथा भूमि सुधार की योजनाओ का निरीक्षण करन का प्रयत्न करें। वन सम्बन्धी नीति इस प्रकार की हो कि इनके द्वारा औद्योगिक जलवायु तथा अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ति होती रहे।

(ट) ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विषय म समिति ने दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन ऋणा म भेद करने पर जोर दिया तथा भूमि बंधक अधिकोष (Land-Mortgage Banks) तथा अन्य शासकीय सहायता प्राप्त अधिकोषो की

स्थापना का सुझाव दिया जिनके द्वारा दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये जायें। अल्पकालीन ऋण प्रबन्ध हेतु सरकारी समितियो की स्थापना की जाय।

राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना के कुछ समयोपरान्त ही कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल ने त्याग पत्र दे दिया। इसी समय द्वितीय महासमर छिड गया। परिणामस्वरूप इस समिति का कार्य केवल सुझावो तक सीमित रह गया। महासमरोपरान्त राष्ट्र की आर्थिक समस्याओ मे भी परिवर्तन हो गये और नवीन समस्याओ का प्रादुर्भाव हुआ। इसी बीच सरकार, उद्योगपतियो तथा राजनीतिक पक्षो ने अपनी अपनी योजना का निर्माण कर उनका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय योजना समिति के सुझावो को कार्यान्वित करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ।

बम्बई योजना

१९४४ मे भारत के आठ प्रमुख उद्योगपतियो ने एक सूत्रबद्ध योजना प्रकाशित की। यह भारत के आर्थिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। इसके पूर्व योजना के सम्बन्ध मे विचार तो बहुत हुए थे परन्तु कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत नही किया गया था। इन आठ उद्योगपतियो मे सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्री ज० आर० डी० टाटा, श्री जी० डी० बिडला, सर अर्देशिर दलाल, सर श्रीराम, सेठ कस्तूर भाई लाल भाई, श्री ए० डी० श्रॉफ तथा डा० जान मथाई सम्मिलित थे। यह एक १५ वर्षीय योजना थी और नियोजको ने इसका नाम A Plan of Economic Development for India दिया, परन्तु यह बम्बई योजना के नाम से प्रसिद्ध है। योजना का कार्यक्रम ५ वर्षीय तीन अवस्थाओ मे पूर्ण करना था तथा इसका समस्त अनुमानित व्यय १०,००० करोड रु० था।

उद्देश्य—योजना का उद्देश्य तत्कालीन प्रति व्यक्ति आय को १५ वर्षों मे दुगुना करना था। यह भी अनुमान लगाया गया कि जनसख्या की वृद्धि को दृष्टि मे रखते हुए प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने के लिये राष्ट्रीय आय को तिगुना करना आवश्यक होगा। योजना मे न्यूनतम जीवन-स्तर के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डाला गया। न्यूनतम जीवन स्तर मे निम्नलिखित सुविधाएँ सम्मिलित की गयीं—

(अ) सन्तुलित भोजन के क्षेत्र मे निम्नलिखित वस्तुएँ सम्भावित होनी चाहिए—

प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन

पदार्थ	औंस
अन्न	१६
दालें	३
शक्कर	२
शाक-सब्जी	६
फल	२
तेल, घी आदि	१'५
दूध	८
अथवा अडे, मछली तथा मांस	२'३

भोजन के इन समस्त पदार्थों द्वारा २६०० कैलोरी पतिदिन प्रति व्यक्ति को प्राप्त होगा। इस प्रकार के सन्तुलित भोजन के लिये प्रति व्यक्ति ६५ रु० प्रति वर्ष का अनुमान लगाया गया और २१०० करोड रु० समस्त जनसख्या को सन्तुलित भोजन प्रदान करने के लिए व्यय का भी अनुमान लगाया गया।

(क) वस्त्र-आवश्यकता के विषय मे राष्ट्रीय योजना समिति के अनुमानो के अनुसार प्रति व्यक्ति को ३० गज कपडे की न्यूनतम आवश्यकता होगी और १९४१ की जनगणना के आधार पर १,१६,७०० लाख गज कपडे की आवश्यकता होगी जिसकी लागत लगभग २५५ करोड रु० होगी।

(ख) गृह की आवश्यकताओ को पूर्ति के लिए प्रति व्यक्ति १०० वर्ग फीट के गृहो के निर्माण का लक्ष्य रखा गया। यह अनुमान लगाया गया कि इस प्रकार के गृह पाँच व्यक्तियो के निवास हेतु पर्याप्त होगे तथा ग्रामीण क्षेत्र के प्रति भवन की लागत लगभग ४०० रु० होगी।

(ग) योजना मे स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सुविधाओ के लिये कार्यक्रम को दो भागो मे विभाजित किया गया। अवरोधक कार्यक्रमो (Preventive Measures) मे सफाई, जल की उपलब्धि, टीका लगाना, छूत के रोगो को रोकने के लिए प्रयत्न, प्रसूति तथा शिशु-कल्याण आदि सम्मिलित किये गये। आरोग्यकर (Curative) कार्यक्रमो मे चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ मे पर्याप्त वृद्धि करने का आयोजन किया गया। योजना मे प्रत्येक ग्राम मे एक चिकित्सालय तथा नगरो मे अस्पताल तथा प्रसूति गृहो और क्षय रोग, केन्सर तथा कुष्ठ रोग आदि की चिकित्सार्थ विशेष सस्थाओ का सुझाव रखा गया।

(घ) बम्बई योजना मे प्राथमिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया। प्राथमिक शिक्षा पर ८८ करोड रुपया आवर्त्तक (Recurring) तथा ८६ करोड रुपया अनावर्त्तक व्यय का अनुमान लगाया गया।

इस प्रकार न्यूनतम जीवन-स्तर मे उपर्युक्त पाँच आधारभूत सुविधाओ को सम्मिलित किया गया और इस न्यूनतम स्तर की लागत निम्न प्रकार अनुमानित की गयी—

मद	लागत (करोड रु० में)
खाद्य पदार्थ	२१००
वस्त्र	२६०
गृह-निर्माण पर आवर्तक व्यय	२६०
स्वास्थ्य तथा चिकित्सा पर आवर्तक व्यय	१६०
प्राथमिक शिक्षा पर आवर्तक व्यय	९०
योग	२६००

योजना मे राष्ट्रीय आय को १५ वर्षों मे तीन गुना करने का लक्ष्य रखा गया। यह वृद्धि निम्न प्रकार होने का अनुमान लगाया गया—

तालिका स० १६—राष्ट्रीय आय मे वृद्धि (बम्बई योजना-काल में)

	शुद्ध आय १९३१-३२ (करोड रु० म)	शुद्ध आय १५ वर्ष पश्चात् अनुमानित (करोड रु०)	वृद्धि का प्रतिशत
उद्योग	३७४	२२४०	५००
कृषि	११६०	२६७०	१३०
सेवाएँ	४८४	१४५०	२००
अवर्गीकृत मदें	१७६	२४०	३६
योग	२२००	६६००	लगभग २१६.५

मान्यताएँ—योजना के कार्यक्रमा को निम्नलिखित मान्यताओ के आधार पर निर्धारित किया गया।

(१) द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जायगी और इस सरकार को आर्थिक विषयो म पूर्ण अधिकार होगा।

(२) भारत की भविष्य की सरकार सघात्मक प्रकार की होगी जिसे समस्त राष्ट्र के आर्थिक विषयो पर प्रभुत्व प्राप्त होगा।

योजना के कार्यक्रम—अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे निम्न आयोजन किये गये—

उद्योग—योजना मे आधारभूत उद्योगो को सर्वप्रथम प्राथमिकता दी गयी। आधारभूत उद्योगो म शक्ति, विद्युत, भारी रसायन, खनिज तथा धातु शोधन रासायनिक खाद, इजीनियरिंग तथा मशीन उद्योग, शस्त्र, यातायात, प्लास्टिक, औषधियाँ तथा सीमेंट उद्योग सम्मिलित किये गए। नियोजको के विचार मे भारत में औद्योगिक साधनो की अधिकता थी जिनका शोषण करने मे औद्योगिक उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो सकती थी।

नियोजको ने लघु तथा गृह उद्योगो के विकास का आयोजन किया। "इनका विकास केवल रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए ही महत्वपूर्ण साधन नहीं है प्रत्युत योजना के प्रारम्भिक काल में पूंजी और विशेषत विदेशी

पूंजी की आवश्यकताओं म कमी का साधन भी हो सकता है ।"[1] नियोजकों ने *उपभोक्ता-वस्तुओं के उपलब्धि का आश्वासन* दिया। इनके विचार से लघु तथा गृह उद्योगों के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का क्षेत्र विस्तृत था और यह उद्योग वृहद् उद्योगों के साथ साथ सामजस्य स्थापित करके सचालन किये जा सकते हैं।

कृषि—यद्यपि योजना म औद्योगिक विकास को मुख्यरूपेण महत्व दिया गया था फिर भी कृषि विकास को सर्वथा भुलाया नहीं गया था। कृषि उत्पादन म १३०% वृद्धि करने का लक्ष्य योजना म निश्चित किया गया। इसके लिए (१) कृषि भूमि की इकाइयों को आर्थिक इकाइयों म परिवर्तित करने के लिये भूमि के पुनर्वितरण का सुझाव दिया गया। सहकारी कृषि तथा भूमि के एकीकरण द्वारा आर्थिक इकाइयों की स्थापना करने की सिफारिश की गयी, (२) फसलों के पुनर्वितरण को आवश्यक समझा गया, (३) ग्रमीण ऋण की समाप्ति सहकारी समितियों द्वारा किए जाने का सुझाव था, (४) भूमि कटाव के निवारण तथा अन्य भूमि-सुधारों के हेतु योजना म २०० करोड़ रु० की व्यवस्था की गयी (५) सिचाई के साधनों की वृद्धि हेतु नवीन सिंचाई योजनाएँ सम्मिलित की गयीं जिनके द्वारा सिंचित भूमि म २००% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया, तथा (६) इसके साथ ही वैज्ञानिक कृषि पर जोर दिया गया। कृषि-उत्पादन के लक्ष्यों को स्वेच्छा से कम रखा गया था तथा योजना के प्रारम्भिक काल म कृषि उत्पादन के निर्यात को कोई स्थान नहीं दिया गया था। कृषि विकास हेतु पूंजी की आवश्यकता निम्न प्रकार थी –

तालिका स० १७—कृषि विकास हेतु पूंजी की आवश्यकता

मद	आवर्तक राशि (करोड़ रु० म)	अनावर्तक राशि (करोड़ रु० म)
१—भूमि सुरक्षा	१०	२००
२—कार्यशील पूंजी	२५०	—
३—सिचाई		
(अ) नहरें	१०	४००
(ब) कुएँ	—	५०
(स) आदर्श फार्म (Model Farms)	१३०	१६५
	योग ४००	८४५

1 'This is important not merely as a means of affording

(Contd next page)

यातायात के साधन—कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्र मे आन्तरिक व्यापार मे वृद्धि होगी, एतदर्थ यातायात एव सम्वाद परिवहन के साधनो मे पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होगा। इस विचार से यह योजना यातायात तथा सम्वाद परिवहन के विकास हेतु निम्न कार्यक्रमो से सज्जित थी—

(१) भारत की ४१,००० मील लम्बी रेलवे लाइनो को ६२,००० मील तक बढाने का आयोजन किया गया था। इस २१,००० मील की वृद्धि के लिए ४३४ करोड रु० का पूंजीगत व्यय तथा ९ करोड रु० आवर्त्तक व्यय करने का आयोजन किया गया।

(२) ब्रिटिश भारत की ३,००,००० मील लम्बी सडको को १५ वर्षों मे दुगुना करने का सुझाव था। नवीन सडको के निर्माण पर ३०० करोड रु० अनावर्त्तक तथा ३५ करोड रु० आवर्त्तक व्यय होने का अनुमान किया गया। ११३ करोड रु० अनावर्त्तक व्यय सडको के पुर्ननिमाण तथा कच्ची सडको को पक्का करने को निश्चित था। समस्त मुख्य मुख्य ग्रामो को महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों से जोडने का सुझाव था।

(३) बन्दरगाहो के सुधार तथा नवीन बन्दरगाहो के निर्माण एव विकास हेतु ५० करोड रु० अनावर्त्तक तथा ५ करोड रु० आवर्त्तक व्यय का आयोजन किया गया था।

शिक्षा—एक विस्तृत आर्थिक विकास की योजना को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियो की बडी आवश्यकता होती है। इस योजना मे इसीलिए शिक्षा के विकास हेतु विस्तृत कार्यक्रम सम्मिलित किया गया। योजना मे २० करोड अशिक्षित प्रौढो को शिक्षित करने का लक्ष्य था। ६ से ११ वर्ष की आयु के लडके तथा लडकियो के लिए अनिवार्य शिक्षा का आयोजन किया गया था। योजना मे उच्च शिक्षा अर्थात् विश्वविद्यालयीन शिक्षा, तान्त्रिक तथा वैज्ञानिक प्रशिक्षण तथा शोधकार्य हेतु २० करोड रु० आवर्त्तक व्यय का अनुमान किया गया था।

अर्थ प्रबन्धन—योजना का सम्पूर्ण व्यय १०,००० करोड रु० अनुमानित किया गया था जिसका आवटन निम्न प्रकारेण किया गया था—

---

employment but also of reducing the need for capital, particularly external capital in the early stages of the Plan.

—*A Plan for Economic Development for India*, pp. 24-25.

तालिका सं० १८—बम्बई योजना का व्यय

मद	व्यय की जाने वाली राशि (करोड रुपयो मे)
उद्योग	४४८०
कृषि	१२४०
यातायात	६४०
शिक्षा	४६०
स्वास्थ्य	४५०
गृह व्यवस्था	२२००
विविध	२००
	१०,०००

नियोजकों का समस्त सम्भव आन्तरिक एवं बाह्य साधनों को उपयोग करने का सुझाव था। बाह्य अर्थ-साधनों मे उस अर्थ को सम्मिलित किया गया था जो कि विदेशो की वस्तुओ के क्रय तथा सेवाओ के उपयोग के हेतु शोधन करने के लिए किया जा सकता था। आन्तरिक अर्थ-साधनो से तात्पर्य उस अर्थ से था जो राष्ट्र मे ही उद्भूत होता है। बाह्य तथा आन्तरिक साधनो से निम्नलिखित राशियाँ एकत्र करने का अनुमान था—

तालिका स० १९—बम्बई योजना के अर्थ-साधन

बाह्य साधन	करोड रुपये
भूमिगत (Hoarded) धन	३००
पौंड पावना (Sterling Securities)	१०००
व्यापार शेष (Balance of Trade)	६००
विदेशी ऋण (Foreign Loan)	७००
योग	२६००
आन्तरिक साधन	
बचत	४०००
मुद्रा प्रसार	३४००
योग	७४००
महायोग	१०,०००

बम्बई योजना के निर्माणकर्ताओ के मत मे वस्तुओं तथा सेवाओ की वृद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण थी और अर्थ-साधनो को सर्वथा अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओ के आधीन रखना उचित था। अर्थ-साधनो की उपलब्धि के आधार पर आर्थिक विकास की योजनाओ का निर्माण नहीं किया गया था, प्रत्युत् राष्ट्र की आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार कार्यक्रम निश्चित करके, उनकी पूर्ति हेतु आवश्यक अर्थ-साधनो की खोज की गयी थी। इसी कारण मुद्रा-प्रसार को अर्थ-प्रबन्धन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। नियोजको का विश्वास था कि मुद्रा-प्रसार के परिणामस्वरूप राष्ट्र की उत्पादन-शक्ति मे वृद्धि होगी तथा अन्तत मुद्रा प्रसार स्वयमेव अपना शोधन कर सकेगा। नियोजन अधिकारी का अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो पर पूर्ण नियन्त्रण होगा और मूल्यो पर नियन्त्रण रखने के कारण अर्थ-व्यवस्था के योजनाबद्ध विकास मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होगी।

सामाजिक व्यवस्था—योजना के कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने के पूर्व यह भी निश्चय करना आवश्यक होता है कि किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना योजना का अन्तिम लक्ष्य होगा। बम्बई योजना के निर्माणकर्ताओ ने अपनी द्वितीय पुस्तिका (Brochure) मे इस सम्बन्ध मे विचार प्रकट किये। बम्बई योजना के लेखको के विचार म आधुनिक युग मे पूंजीवाद म राजकीय हस्तक्षेप के कारण उसके स्वरूप मे परिवर्तन हो गया है। दूसरी ओर समाजवाद से भी कुछ पूंजीवाद की विचारधाराओं को मान्यता मिलने लगी है। इस कारण से भारत मे पूंजीवादी तथा समाजवादी अर्थ-व्यवस्था क न्यायपूर्ण सम्मिश्रण का सुझाव रखा गया था। योजना म इसलिए व्यक्तिगत साहस को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा सार्वजनिक हित तथा राज्य को राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था पर नियन्त्रण रखने का आयोजन किया गया। इस प्रकार समाजवादी नियोजन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता म समन्वय स्थापित करने का प्रबन्ध किया गया। नियोजको के विचार मे नियोजन तथा लोकतन्त्रीय समाज—दोनो एक साथ सचालित किये जा सकते हैं। योजना मे इसी आधार पर दो मुख्य उद्देश्यो को सम्मिलित किया गया। प्रथम, अर्थ-व्यवस्था का इस प्रकार का सगठन कि जन-समुदाय के न्यूनतम जीवन-स्तर का आयोजन किया जा सके तथा द्वितीय, आय का समान वितरण हो सके। प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य को पूर्ण रोजगार, कार्य-क्षमता म वृद्धि, श्रमिको के पारिश्रमिक मे वृद्धि, कृषि-उत्पादन के मूल्यो मे स्थिरता, भूमि सुधार आदि की व्यवस्था करना आवश्यक होगा। द्वितीय उद्देश्य की पूर्ति मृत्यु कर, कर व्यवस्था के सुधार, उत्पादन के साधनों के अधिकारो का विकेन्द्रीयकरण, राज्य द्वारा उद्योगो पर नियन्त्रण

तथा अधिकार द्वारा की जाती थी। बम्बई योजना के लेखको ने राज्य द्वारा अर्थ-व्यवस्था पर पूर्ण अधिकार को उचित नहीं समझा तथा उत्साही साहसियो को व्यक्तिगत रूपेण कार्य करने की स्वतन्त्रता प्रदान करने की आवश्यकता को महत्व दिया गया।

राज्य द्वारा नियोजित अर्थ व्यवस्था मे हस्तक्षेप करने को मान्यता दी गयी तथा राज्य पर आर्थिक कार्यवाहियो म समन्वय स्थापित करना, मुद्रा व्यवस्था, राजस्व तथा आर्थिक दृष्टिकोण से निर्बल वर्ग की सुरक्षा का भार डाला गया था। इसके अतिरिक्त राज्य को कुछ उद्योगो तथा व्यवसायो पर अधिकार नियन्त्रण तथा प्रबन्धन करना भी आवश्यक बताया गया। राज्य केवल ऐसे ही उद्योगो पर अधिकार प्राप्त करे जिनमे सरकारी धन का विनियोजन होता हो। योजना मे युद्धकालीन नियन्त्रणो को चालू रखने की सिफारिश की गयी परन्तु इनका प्रबन्ध व्यवस्थित तथा समन्वित रूप से करने पर जोर दिया गया।

योजना के दोष

(१) पूँजीवादी प्रकार—यद्यपि योजना मे निजी तथा सरकारी क्षेत्र के सामजस्य का आयोजन किया गया था, परन्तु निजी क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया था। सावजनिक हित तथा समान वितरण के दृष्टिकोण से भारत जैसे अर्ध-विकसित राष्ट्र म सरकारा क्षेत्र निरन्तर बढा कर ही अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। योजना द्वारा १५ वर्षों मे एक ऐसे समाज की स्थापना करना, जिसमे निजी क्षेत्र को अर्थ-व्यवस्था के अधिकाश भाग पर अधिकार प्राप्त हो, उचित नहीं कहा जा सकता है।

(२) कृषि को कम महत्व—योजना मे औद्योगिक उत्पादन को विशेष महत्त्व दिया गया है। औद्योगिक उत्पादन मे ५००% वृद्धि की तुलना मे कृषि उत्पादन मे १३०% की वृद्धि के लक्ष्य अत्यन्त कम प्रतीत होते है। नियोजको के विचार मे सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था का निर्माण आवश्यक था, इसीलिए उन्होने राष्ट्रीय आय मे कृषि तथा उद्योग—दोनो के भाग को समान करने का आयोजन किया। नियोजको के अनुमानानुसार कृषि तथा उद्योगो से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय क्रमश ११६६ करोड रु० तथा ३७४ करोड रु० थी। परन्तु औद्योगिक उत्पादन मे ५००% वृद्धि करने के लिए कृषि का समानान्तर विकास करना आवश्यक था क्योकि कृषि द्वारा उद्योगो को कच्चा माल उपलब्ध होता है। योजना मे कृषि उत्पादन के निर्यात का आयोजन नहीं किया गया। औद्योगिक विकास के लिए विदेशी पूँजीगत वस्तुओ की बडी मात्रा मे आवश्यकता होती

के लिए अस्थायी स्थान दिया जबकि इन उद्योगो को अर्थ-व्यवस्था मे स्थायी स्थान मिलना चाहिए था क्योकि इनके द्वारा उत्पादन के साधनो के विकेन्द्रीयकरण तथा आय के समान वितरण को प्रोत्साहन मिलता है।

(५) यातायात—*योजना मे भारतीय जहाजी यातायात तथा जहाजरानी निर्माण उद्योग के विकास हेतु पर्याप्त आयोजन नहीं किये गये। वायु यातायात को भी योजना मे कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया था।*

(६) अन्य—इस योजना के समस्त अनुमान तथा गणनाएं महायुद्ध के पूर्व के मूल्यो पर किये गये थे जबकि यह स्पष्ट था कि योजना का कार्यान्वित किया जाना महायुद्धोपरान्त ही सम्भव था। महायुद्ध के आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभावो को दृष्टिगत करते हुए योजना के अनुमानो मे आवश्यक समायोजन किये जान चाहिए थे। योजना मे पुनर्वास की आवश्यकताओ के लिए कोई आयोजन नही किया गया तथा सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं, जो नियोजन का मूलाधार होना चाहिए, को भी योजना मे कोई स्थान प्राप्त नहीं था।

जन-योजना (The People's Plan)

जन योजना भारतीय श्रम सघ (Indian Federation of Labour) की युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण समिति (Post war Reconstruction Committee) द्वारा निर्मित की गयी थी। इस समिति के प्रमुख श्री एम० एन० राय थे, अत इस योजना को रायवादी योजना भी कहते हैं। इस योजना मे साम्यवादी सिद्धान्तो के लक्षणो का समन्वय किया गया था और नियोजको ने योजना के कार्यक्रमो को श्रमिको के दृष्टिकोण से बनान का प्रयत्न किया था। इस योजना के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं—

(१) लाभ हेतु (Profit Motive) पर आधारित अर्थ-व्यवस्था समाज के हितो के विरुद्ध होती है।

(२) लाभ-हेतु व्यवस्था पर राज्य को कठोर नियन्त्रण रखना चाहिए, तथा

(३) *उत्पादन उपभोग के लिए होना चाहिए न कि विनिमय के लिए।*

जन-योजना १६४४ मे निर्मित तथा प्रकाशित की गयी और इसके कार्यक्रमो को रैडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी की *सहमति प्राप्त हुई।* इस *योजना मे* निर्माणकर्ताओं के विचार मे भारत की मूलभूत समस्या निर्धनता थी जिसे अधिक उत्पादन तथा समान वितरण द्वारा ही दूर किया जा सकता था। राष्ट्र की समस्त आर्थिक कठिनाइयो का कारण पूंजीवाद बताया गया। पूंजीवाद मे उत्पादन जन-समुदाय की क्रय शक्ति पर निर्भर रहता है क्योकि उतनी ही वस्तुएँ उत्पादित की जाती थीं जितनी कि लाभ सहित विक्रय की जा सकती थीं।

विक्रय योग्य वस्तुओ की मात्रा भारत की जनता की निर्धनता के कारण सीमित रहती थी । इस प्रकार पूंजीवाद मे धन का अधिकतम उत्पादन नहीं किया जा सकता है, तथा पूंजीवाद व्यवस्था मे धन का समान वितरण भी सम्भव नहीं हो सकता है । इस प्रकार पूंजीवाद मे जन समुदाय के जीवन स्तर मे वृद्धि उसी सीमा तक हो सकती है, जहाँ तक क्रय शक्ति के वितरण का आयोजन किया गया हो । क्रय शक्ति का वितरण पारिश्रमिक तथा कच्चे माल के क्रय के माध्यम द्वारा किया जाता है, ये दोनो तत्व उत्पादन पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार यह पूंजीवाद का एक दोषपूर्ण चक्र होता है । पूंजीवाद के दोषो के निवारणार्थ इस योजना म योजनाबद्ध उत्पादन पर जोर दिया गया था, जिसका उद्देश्य जन-समुदाय की क्रय शक्ति मे वृद्धि करना था । प्रभावशील मांग उत्पन्न करने का उद्देश्य न होकर मानवीय आवश्यकताओ का अनुमान लगाकर तदनुसार उत्पादन करने का उद्देश्य था ।

उद्देश्य—योजना का मूल उद्देश्य दस वर्ष की अवधि में जनता की तत्कालीन आधारभूत आवश्यकताओ की पूर्ति करना था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादन मे वृद्धि तथा उत्पादित वस्तुओ का समान वितरण किया जाना था । योजना म इसीलिए उत्पादन के सभी क्षेत्रो का विकास करने का आयोजन किया गया था । नियोजको के विचार में जन समुदाय की क्रय शक्ति मे वृद्धि करने के लिए कृषि का विकास अधिक महत्वपूर्ण था क्योकि भारत की ७०% जनसख्या कृषि व्यवसाय से जीविकोपार्जन करती थी । कृषि को लाभप्रद व्यवसाय बनाने को नियोजको ने सर्वोच्च प्राथमिकता दी । इनके विचार मे कृषि के विकास द्वारा ही श्रमिको मे अर्ध रोजगारी तथा बेरोजगारी को दूर किया जा सकता था । भारतीय जनसख्या की निर्धनता का निवारण करने के लिए कृषि-विकास को ही योजना का आधार बताया गया । दूसरी ओर औद्योगिक विकास हेतु इस प्रकार से आयोजन किये गए कि उसके द्वारा जन-समुदाय की उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके । निजी क्षेत्र मे सचालित उद्योगो पर राज्य के नियन्त्रण को आवश्यक बताया गया । योजना का इस प्रकार मुख्य उद्देश्य दस वर्षो म जनसख्या की आधारभूत आवश्यकताओ की पूर्ति करना था । "इन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए, राष्ट्र के वर्त्तमान धन के उत्पादन मे वृद्धि करना आवश्यक होगा । नियोजित व्यवसाय का उद्देश्य राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को पर्याप्त पौष्टिक भोजन, पर्याप्त वस्त्र, अच्छे निवास-स्थान, रोग तथा अज्ञान से स्वतन्त्रता प्रदान कराने के लिये उत्पादन मे वृद्धि करना होना चाहिए ।"[1]

1. "In order to satisfy these needs it will be necessary to

(contd next page)

कृषि—योजना मे कृषि को सर्वाधिक महत्व दिया गया है और कृषि-उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए प्राचीन भूमि प्रबंधन (Land Tenure) में आवश्यक परिवर्तन, जमींदारी अधिकारो की समाप्ति तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण को आवश्यक बताया गया। राज्य तथा कृषक म प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना तथा मध्यस्थो को समाप्त करना कृषि विकास का मुख्य कार्यक्रम था। योजना मे भूमिधरा (Landlords), जमींदारो तथा अन्य लगान प्राप्त करने वालो को १७३८ करोड रु० मुआवजा देने का आयोजन किया गया था। यह क्षति पूर्ति ३% स्वत शोधन होन वाल ४० वर्षीय बॉण्डा का निगमन करके किया जाना था। योजना मे ग्रामीण ऋण को अनिवार्यत घटाने की सिफारिश की गयी। इन ऋणो का राज्य को ले लना था और इसके लिए राज्य को लगभग ५५० करोड रु० का उत्तरदायित्व लेना था।

इसके अतिरिक्त योजना म कृषि के उपभोग म आने वाली भूमि मे १० वर्षों म १० करोड एकड की वृद्धि करन का आयोजन भी किया गया था। गहरी (Intensive) कृषि के लिए सिंचाई के साधनो म ४००% की वृद्धि करने तथा अच्छे बीज और खाद का भी आयोजन किया गया था। इसमे सामूहिक तथा राजकाय कृषि को स्थान दिया गया। प्रत्येक आठ या दस हजार एकड कृषि योग्य भूमि के मध्य मे एक राजकीय फार्म स्थापित करन की सिफारिश की गयी। इस फार्म में आधुनिक यन्त्रो का उपयोग किया जाना था तथा ये फार्म इन यन्त्रो को आसपास के कृपको को किराये पर दें, इसका भी आयोजन था। प्रत्येक फार्म पर विशपज्ञ तथा योग्य व्यक्तियो को रखे जाने तथा शोधन कार्य सस्था की स्थापना करने की भी सिफारिश थी।

इन राजकीय फार्मों पर कृपको को प्रशिक्षण प्रदान करने का भी प्रबंध किया जा सकता था। सामूहिक कृषि के लिए जन समुदाय पर किसी दबाव तथा वैधानिक वाछनीयता को उचित नहीं बताया गया। कृपको को सामूहिक कृषि के लाभ समझा कर ही सामूहिक फार्मों की स्थापना की जानी थी। कृषि विकास के लिए निम्न प्रकार राशियाँ निर्धारित की गयी—

---

expand the present production of wealth of country To achieve this expansion of production with the object of ensuring to everybody in the country adequate nutritive food, sufficient clothing a decent shelter and freedom from dis ease and ignorance, should be the purpose of the planned economy ' (*People's Plan*, published by M N Roy, p 6)

तालिका सं० २०—जन-योजना का कृषि विकास पर व्यय

मद	करोड़ रुपयो मे अनावर्त्तक व्यय	आवर्त्तक व्यय
अतिरिक्त भूमि को कृषि योग्य बनाना (Land Reclamation)	६००	—
सिंचाई	६००	१५
राजकीय फार्म	३७५	१२५
भूमि कटाव को रोकने तथा वनो का विकास	३००	१५
ग्रामीण उद्योग	२००	—
खाद बीज आदि	७२०	—
योग	२७९५	१५५
	महायोग २९५०	

औद्योगिक विकास—योजना मे उपभोक्ता-उद्योगो को विशेष महत्व प्रदान किया गया। नियोजको के विचार म जन-समुदाय की आवश्यक वस्तुओ की माँग की पूर्ति करना अत्यन्त आवश्यक था तथा नियोजित व्यवस्था मे इसकी पूर्ति सर्वप्रथम होनी चाहिए थी। वस्त्र, चर्म, शक्कर, कागज, रसायन, तम्बाकू, फर्नीचर आदि उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो के विकास के लिए ३००० करोड रु० का आयोजन किया गया। आधारभूत उद्योगो मे विद्युत शक्ति, खनिज तथा धातु शोधन, लोहा तथा इस्पात, भारी रसायन, मशीन तथा मशीनो के औजार, सीमेंट, रेल के एंजिन तथा डिब्बे आदि उद्योग सम्मिलित किये गये। इन उद्योगो के विकास पर २६०० करोड रुपया व्यय का अनुमान था। योजना काल म स्थापित किये जाने वाले नवीन उद्योगो म राज्य को अर्थ लगाना था तथा इन पर राज्य का नियन्त्रण तथा अधिकार होना था। निजी क्षेत्र के उद्योगो पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगना था, परन्तु इनके कार्य-क्षेत्र पर राज्य द्वारा नियन्त्रण करना आवश्यक बताया गया। राज्य को वस्तुओ का मूल्य निर्धारण करना था तथा लाभ की दर अधिक स अधिक ३% रखनी थी। योजना मे गृह तथा लघु उद्योगो के विकास को विशेष महत्व नहीं दिया गया। श्रमिक की उत्पादन शक्ति मे वृद्धि करने के लिये मशीनो के उपयोग को अधिक महत्व दिया गया था और इसी कारण से लघु उद्योगो को अधिक

महत्व नही दिया गया था और इनके विकास के लिए योजना मे आयोजन भी नहीं किया गया।

यातायात—योजना मे रेलवे, सडक तथा जल यातायात के विकास को विशेष महत्व दिया गया। यातायात के साधनो मे तीव्रता से वृद्धि करने का आयोजन किया गया, जिससे वस्तुओ का यातायात ग्रामो तथा नगरो के मध्य सुविधापूर्वक किया जा सके। दस वर्षों मे रेल यातायात म २४,००० मील तथा सडक यातायात म ४ ५०,००० मील की वृद्धि करने का आयोजन किया गया। जहाजी यातायात के विकास के लिए १५५ करोड रुपया निर्धारित किया गया। यातायात के विकास के हेतु व्यय का निम्न प्रकारेण आयोजन किया गया—

तालिका स० २१—जन-योजना मे यातायात पर व्यय

मद	करोड रुपया मे	
	अनावर्तक व्यय	आवर्तक व्यय
रेलें	५६५	११
सडके (नवीन निर्माण)	४५०	५३
कच्ची सडको को पक्का बनाना	१००	—
जल यातायात	१२५	६
बन्दरगाह	५०	५
अन्तर्देशीय जल यातायात	५०	५
डाक, तार आदि	५०	—
	योग १,४२०	८०
	महायोग १५००	

अर्थ प्रबन्धन—इस योजना म दस वर्षों म कुल १५,००० करोड रु० व्यय होने का अनुमान था, जिसका वितरण निम्न प्रकार किया गया था—

तालिका स० २२—जन योजना का व्यय

मद	व्यय करोड रुपयो मे
कृषि	२,९५०
उद्योग	५,६००
गृह निर्माण	३,१५०
यातायात	१,५००
शिक्षा	१,०४०
स्वास्थ्य	७६०
	योग १५,०००

उपर्युक्त १५,००० करोड रु० की राशि का प्रबन्ध निम्न प्रकार किया जाना था—

तालिका सं० २३—जन-योजना का अर्थ-प्रबन्धन

आय का माध्यम	आय करोड रु० मे
पौण्ड पावना	४५०
कृषि आय	१०,८१६
औद्योगिक आय	२,८३४
प्रारम्भिक अर्थ-व्यवस्था (सम्पत्ति कर, उत्तराधिकार कर, मृत्यु कर आदि)	८१०
भूमि का राष्ट्रीयकरण	९०
	योग १५,०००

नियोजकों के विचार मे अर्थ-प्रबन्धन मे कोई विशेष कठिनाई उपस्थित होने का कोई कारण नहीं था क्योंकि राष्ट्रीय नियोजन अधिकारी को जनता के सचित अतिरिक्त धन को विनियोजन के लिए प्राप्त करने का अधिकार होगा। इनके विचार में योजना के कार्यक्रमो के फलस्वरूप भारत का जन-समुदाय वर्त्तमान जीवन-स्तर की तुलना मे चार गुने अच्छे जीवन-स्तर का लाभ प्राप्त कर सकेगा।

आलोचना—योजना मे कृषि विकास को विशेष महत्त्व दिया गया है। परन्तु कृषि-विकास हेतु औद्योगीकरण भी आवश्यक होना है, क्योंकि कृषि मे आधुनिक मशीनों तथा यत्रो के उपयोग से उत्पन्न अतिरिक्त श्रम को रोजगार देना भी आवश्यक है। भारत मे कृषि भूमि पर जनसख्या का दबाव अत्यधिक है और कृषि विकास के लिए इस अतिरिक्त श्रम को अन्य व्यवसायो मे रोजगार का आयोजन करना आवश्यक है। दूसरी ओर कृषि के लिए मशीनो तथा यत्रो की उपलब्धि के लिए राष्ट्र मे आधारभूत उद्योगों की स्थापना करना आवश्यक होना है। योजना मे आधारभूत उद्योगो की अपेक्षा उपभोक्ता-उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी। उपभोक्ता-वस्तु उद्योगो के विकास के लिए भी उत्पादक मशीनों तथा पूँजीगत वस्तुओ की आवश्यकता होती है जिनको बडी मात्रा मे आयात करना न तो न्यायोचित होता है और न सम्भव ही। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास का आधार आधुनिक युग मे उत्पादक तथा पूँजीगत वस्तुओ के उद्योग होते हैं और इन्हे ही सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। योजना के कृषि विकास तथा उपभोक्ता उद्योगो के विकास के लिए भी पहले

आधारभूत तथा पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगो की बडी मात्रा मे स्थापना का आयोजन किया जाना चाहिए।

योजना मे एक ओर कृषि मे यन्त्रो के प्रयोग को महत्त्व दिया गया तथा दूसरी ओर गृह एव लघु उद्योगो के विकास को कोई स्थान नहीं दिया गया। इस प्रकार बेरोजगारी के बढने की सम्भावना पर कोई विचार नहीं किया गया और न रोजगार के अवसरो म पर्याप्त वृद्धि का ही आयोजन किया गया है।

योजना मे १०,८१६ करोड रुपया पुनर्विनियोजन हेतु कृषि से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। कृषि के पुनर्संगठन तथा यन्त्रो के उपयोग के कारण पूंजीगत व्यय की राशि अत्यधिक होगी और इसके पश्चात् भी कृषि से इतनी बडी राशि प्राप्त करने की आशा करना उचित प्रतीत नही होता।

विश्वेस्वरैय्या योजना (Visveswaraya's Plan)

यह योजना सन् १९४४ म अखिल भारतीय निर्माणकर्ता सगठन (All *India Manufacturers' Association) द्वारा भारत का युद्धोत्तर* पुनर्निर्माण करने के लिए प्रकाशित की गयी। इसके मुख्य उद्देश्य जन-समुदाय के जीवन स्तर म वृद्धि करना तथा देश की आर्थिक कुशलता का उस सीमा तक विकास करना था कि सामान्य नागरिक को अपनी जीविकोपार्जन योग्य रोजगार प्राप्त हो सके। इस योजना म प्रत्येक नागरिक का राजनीतिक कर्त्तव्य जन प्रतिनिधि सरकार की स्थापना करना आर्थिक कर्त्तव्य—आय तथा उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करने के लिए कार्यक्षमता म वृद्धि करना तथा सामाजिक कर्त्तव्य—राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र म यथोचित जीवन-स्तर, आराम मनोरजन आदि का प्रबन्ध करना बताये गये थे।

उद्देश्य—इस योजना म सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए बढती हुई जन-सख्या पर अप्राकृतिक तरीको से रोक लगाना, जन समुदाय के हितार्थ अधिक शिक्षा का आयोजन करना, कृषि के क्षेत्र से अतिरिक्त जनसख्या को हटा कर उनके लिए अन्य व्यवसायो म रोजगार का आयोजन करना ग्रामीण क्षेत्र म प्रतिनिधि सरकार (Village Self-goverment) की स्थापना करना आदि का आयोजन किया गया था।

इस योजना में एक राष्ट्रीय पुनर्निर्माण मडल (National Reconstructive Board) *की स्थापना की सिफारिश की गयी थी। इस मडल* मे ६ जनता के प्रतिनिधि तथा ३ शासकीय अधिकारी रखने की सिफारिश की गयी थी। इस मडल को विभिन्न क्षेत्रो का अध्ययन तथा उनका विश्लेषण करना था। मडल को निम्नांकित वर्गीकरण के आधार पर अध्ययन करना था—

(१) कृषि तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्र के उत्पादन मे वृद्धि,

(२) उद्योगो तथा अन्य सम्बन्धित क्रियाओ के उत्पादन मे शीघ्र वृद्धि,

(३) शिक्षा—सार्वभौम शिक्षा तथा व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा का विकास,

(४) इजीनियरिंग, औद्योगिक, तान्त्रिक व कृषि, वाणिज्य तथा अन्वेषण आदि से सम्बन्धित उच्च शिक्षा,

(५) उत्पादन, बेरोजगारी, व्यवसाय तथा आय सम्बन्धी साख्य का एकत्रित करना,

(६) वित्त तथा अधिकोषण,

(७) निर्यात—औद्योगिक नीति, सरक्षण आदि,

(८) यातायात—सडकें, रेल, जहाज तथा वायु यातायान,

(९) गृह निर्माण, स्वास्थ्य, ग्राम तथा नगर नियोजन आदि,

(१०) सुरक्षा सेवाएं तथा प्रशिक्षण—सुरक्षा सम्बन्धी औजार, हथियार, मशीनें ट्रक, हवाई जहाज आदि का निमाण,

(११) सामान्य जीवन म अधिक यत्रो एव औजारा का उपयोग, तथा

(१२) भारतीय जनसख्या म कार्य करन की शक्ति, चरित्र-निर्माण, आधुनिक व्यापारिक स्वभाव का निर्माण आदि।

इस मडल को प्रत्येक क्षेत्र के लिए समितियाँ आदि नियुक्त करने तथा उनम काय करन के लिए कर्मचारियो का चयन करन आदि का अधिकार था। इसका मुख्य उद्देश्य लोगो को और विशेषकर जन नताओ को इस प्रकार प्रशिक्षित करना था कि वे उत्तरदायी स्थानो पर कार्य कर सकें।

योजना म एक राष्ट्रीय आर्थिक सस्था की स्थापना की भी सिफारिश की गयी। यह सस्था पचवर्षीय योजना का सचालन करती है। प्रथम पाँच वर्षों मे १,००० करोड रु० से कम राशि का विनियोजन नहीं होना था। इस सस्था को उद्योगपतियो की पिछड हुए उद्योगो के विकास के लिए सहायता करना था। कृषि तथा उद्योग के उत्पादन म १००% वृद्धि ७ से १० वर्षों म करने का लक्ष्य रखा गया जिससे राष्ट्रीय आय २,५०० करोड रु० से बढ कर ५,००० करोड रु० हो जाय। औद्योगिक क्षत्र के उत्पादन को ४०० करोड रु० से बढा कर २,००० करोड रु० करन का लक्ष्य था। योजना म यत्र निर्माण, नवीन उद्योगो की स्थापना, शक्ति उत्पादन क यत्रो का निर्माण तथा युद्ध सामग्री के उद्योगो को भी विकसित करने की सिफारिश की गयी थी। उद्योगो के पश्चात् योजना मे कृषि को प्राथमिकता दी गयी थी। योजना मे एक पृथक् कृषि विभाग, जो कि एक मत्री के आधीन हो, की स्थापना करने की सिफारिश थी।

इसका समस्त व्यय निम्न प्रकार विभाजित किया गया था—

तालिका सं० २४—विश्वेस्वरैय्या योजना का व्यय

मद	करोड रु० मे व्यय
उद्योग	७६०
कृषि	२००
यातायात	११०
शिक्षा	४०
स्वास्थ्य	४०
गृह निर्माण	१६०
अन्य	३०
	योग १४००

इस प्रकार योजना मे तीन सस्थाओ की स्थापना की सिफारिश की गयी जिनको पारस्परिक सहयोग तथा सामजस्य के साथ योजना को सचालित करना था । *पुनर्निर्माण आयोग को एक नये प्रगतिशील सविधान के निर्माण का कार्य* करना था । आर्थिक परिषद् (Economic Council) को राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र मे आर्थिक विकास की देखभाल करना था तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण हेतु प्रयत्न करने थे ।

गाँधीवादी योजना

मूल सिद्धान्त—गाँधीवादी योजना गाँधीजी की आर्थिक विचारधाराओ पर आधारित श्री श्रीमन्नारायण द्वारा सन् १९४४ मे निर्मित तथा प्रकाशित की गयी । गाँधीजी न भारत की आर्थिक समस्याओ तथा उनकी अवस्था के सम्बन्ध मे जो भाषण तथा लेख समय-समय पर दिये तथा लिखे उनको समन्वित करके एक योजना का रूप दिया गया और इस योजना को ही गाँधीवादी योजना कहा जाता है । वास्तव म गाँधीजी द्वारा स्वय किसी योजना का *निर्माण नहीं किया गया । गाँधीवादी अर्थ व्यवस्था के सिद्धान्त अन्य सभी* मान्य अर्थशास्त्रियो की विचारधाराओ तथा सिद्धान्तो से भिन्न है । गाँधीवादी अर्थ व्यवस्था के चार मुख्य अग है—

(१) सादगी (Simplicity)
(२) अहिंसा (Non-violence)
(३) श्रम का महत्त्व (Sanctity of Labour)
(४) मानवीय मूल्य (Human Value)

सादगी द्वारा जीवन की कभी तृप्त न होने वाली इच्छाओं पर आत्म-प्रतिरोध (Self Restraint) लगाया जा सकता है और मनुष्य की निरन्तर बढ़ने वाली भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योजना के समस्त साधनो को व्यय करने की आवश्यकता नहीं होनी एवं आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था को इस प्रकार संगठित किया जा सकता है कि जन-समुदाय के सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों की पूर्ति हो सके। भारत का रहन-सहन भौतिक सम्पन्नता पर ही आधारित नहीं है; इसमे आत्मा के उत्थान तथा चरित्र-निर्माण को भौतिक सम्पन्नता से अधिक महत्त्व दिया जाता है। गाँधीवादी योजना मे इस प्रकार की व्यवस्था के निर्माण का लक्ष्य था जिसमे आर्थिक सम्पन्नता के साथ नैतिक उन्नति भी हो सके।

गांधीजी के विचार मे पूँजीवाद मानव जीवन का विभिन्न प्रकार से शोषण करता है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे मशीन से उत्पादन होता है, श्रमिक वर्ग का शोषण होता है तथा पूँजीपति, पूँजी का संचय श्रमिक वर्ग के शोषण द्वारा ही करता है। इस प्रकार पूँजीपतियो द्वारा पूँजी एकत्रित करने के लिए, गांधीजी के विचार मे हिंसक साधनो का उपयोग होता है। इसके साथ ही पूँजीपति अपनी सचित पूँजी की सुरक्षा के लिए भी हिंसक साधनो को अपनाता है। अर्थ-व्यवस्था से इस हिंसा को दूर करने के लिए पूँजीवाद की समाप्ति आवश्यक है। उत्पादन तथा वितरण का विकेन्द्रीयकरण तथा इसके द्वारा प्रजातान्त्रिक समाज का निर्माण किया जाना चाहिए।

श्रम को अर्थ-व्यवस्था मे उचित महत्त्व देने के लिए समस्त मानव समाज को लाभप्रद कार्य मे लगाना गाँधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य है। समाज के साधनो तथा अवसरो का समान वितरण होना भी आवश्यक बताया गया है। गाँधीजी आर्थिक क्रियाओ को सदाचार तथा मानवीय सम्मान से पृथक् नहीं समझते थे। उनका विचार था कि आर्थिक क्रियाओं को हमे केवल साधन समझना चाहिए *जिनके द्वारा मानव-कल्याण के उद्देश्यो की पूर्ति होती है। समाज की* आर्थिक क्रियाओ को इस प्रकार सगठित किया जाना चाहिए कि मानव मे मानवता का अश न्यून अथवा समाप्त न हो जाय।

गाँधीजी के विचार मे औद्योगीकरण भौतिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्न मात्र है जिसमे मानवीय सम्मान तथा चरित्र का शोषण होता है। इसलिए उन्होने सदैव ग्राम इकाइयो के विकास एव उत्थान को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया। गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था मे यत्र को विशेष स्थान नहीं दिया जाता। चरखा एव कुटीर उद्योगो के विकास को विशेष महत्त्व दिया गया है।

उद्देश्य—गाँधीवादी योजना एक दसवर्षीय योजना थी जिसका अनुमानित व्यय ३५०० करोड रुपये था। यह योजना नतिक एव सास्कृतिक उत्थान के लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनायी गयी थी। इसका मुख्य उद्देश्य १० वर्षों मे जन समुदाय के भौतिक तथा सास्कृतिक जीवन म उन्नति करना था। योजना मे मुख्यत देश के सात लाख ग्रामो म नवीन जीवन का सचार करना था और इसलिए वज्ञानिक कृषि तथा गृह उद्योगो के विकास को विशेष महत्व दिया गया। योजना का मुख्य लक्ष्य जन समुदाय के जीवन स्तर को निर्धारित न्यूनतम सीमा तक लाना था। न्यूनतम जीवन-स्तर म निम्नलिखित सुविधाए सम्मिलित की गयी थीं—

(१) नियमित भोजन जिसम २६०० कलोरी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति का प्रबध हो तथा जिसकी लागत ५ रु० प्रति मास (युद्ध के पूर्व के मूल्यो के आधार पर) ग्रामीण क्षत्रो म हो।

(२) प्रत्येक व्यक्ति को २० गज वस्त्र वार्षिक प्राप्त हो जिसकी लागत ३ आना प्रति गज से ४ रु० वार्षिक हो।

(३) घरेलू औषधि एव अन्य सामान्य व्ययो पर ८ रु० प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति का प्रबध हो

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का न्यूनतम वार्षिक व्यय ७२ रु० रखा गया और योजना के अनुमानो के आधार पर उस समय की प्रति व्यक्ति आय को जो १८ रु० थी ४ गुना बढान की आवश्यकता बतायी गयी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना म कृषि तथा गृह उद्योगो का वनानिक स्तर पर विकास करन का आयोजन किया गया।

कृषि—खाद्यान्नो म राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता तथा अधिकतम क्षत्रीय आत्म निर्भरता के उद्देश्यो की पूर्ति के आधार पर कृषि विकास की योजना निर्मित की गयी थी। इसके लिये जमीदारी तथा रय्यतवारी को हटा कर ग्रामवादी बन्दोबस्त (Village Settlement) का आयोजन किया गया। ग्रामवादी भूमि प्रबन्ध म सम्पूर्ण ग्राम समाज सामूहिकरूपेण ग्राम की भूमि का लगान राज्य को देन का उत्तरदायी था। ग्राम पचायत ग्रामीणो म भूमि का वितरण करे तथा उनसे लगान वसूल करे। लगान उत्पादित अन्न के रूप म लिया जाय जिसकी मात्रा उत्पादित फसल का $\frac{1}{6}$ अथवा $\frac{1}{4}$ भाग हो। सरकार धीरे धीरे भूमि का मुआवजा देकर उस पर अधिकार प्राप्त कर ले। यह भी सुझाव दिया गया था कि उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई भूमि की ५०% पूजीगत लागत उत्तराधिकार कर के रूप म ली जा सकती है। योजना मे भूमि के ऐच्छिक एकीकरण सहकारी कृषि आदि को भी स्थान दिया गया।

ग्रामीण ऋण की समाप्ति के लिए विशेष न्यायालयो की स्थापना का सुझाव था। ये न्यायालय ग्रामीण ऋणो की छानबीन करें तथा अनुचित ऋणो की राशि को कम कर दें और दस वर्ष से पुराने ऋणों को रद्द करदें। ऋण-दाताओ की सरकार २० वर्षीय बौण्ड प्रदान करे तथा इन बौण्डो का भुगतान कृषक से किश्तो मे प्राप्त किया जाय। कृषक को साख सम्बन्धी अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाएं। निजी रूप से रुपया उधार देने के व्यवसाय को प्रतिबन्धित कर दिया जाय। योजना में सिंचाई की सुविधाओं को दुगुना करने के लिए १७५ करोड रुपए अनावर्त्तक तथा ५ करोड रुपये आवर्त्तक व्यय का आयोजन किया गया। योजना मे ४५० करोड रुपये भूमि सुधार, भूमि को कृषि योग्य बनाने, भूमि कटाव को रोकने आदि पर व्यय किए जाने का आयोजन किया गया था। कृषि विकास के विभिन्न कार्यक्रमो पर निम्न प्रकार से व्यय किये जाने का प्रबन्ध किया गया था—

तालिका स० २५—गाँधीवादी योजना मे कृषि-विकास पर व्यय

(व्यय करोड रु० में)

मद	अनावर्त्तक	आवर्त्तक
१ भूमि का राष्ट्रीयकरण	२००	—
२ भूमि कटाव और कृषि भूमि सुधार	४५०	१०
३ सिंचाई	१७५	५
४ अन्वेषण फार्म	१००	२५
५ साख सुविधाएं	२५०	—
योग	११७५	४०
महायोग	१२१५	

ग्रामीण उद्योग—ग्रामीण समाज को आत्मनिर्भरता के स्तर पर लाने के लिए गृह उद्योगो के पुनर्स्थापन तथा विकास का आयोजन किया गया था। कातना तथा बुनना कृषि के सहायक उद्यम समझे गये एवं प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की आवश्यकतानुसार वस्त्रोत्पादन करना आवश्यक बताया गया। अन्य गृह उद्योगो, जैसे कागज बनाना, तेल निकालना, धान कूटना, साबुन बनाना, दियासलाई बनाना, गुड बनाना तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगो के विकास का भी आयोजन किया गया। गृह उद्योगो के विकास हेतु राज्य को शिल्पी की निम्नप्रकारेण सहायता करना आवश्यक था—

(१) सहकारी समितियों को कम ब्याज पर साख प्रदान करना।

(२) कुटीर-उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करना।

(३) गृह उद्योगो को वृहद् उद्योगो से सरक्षण प्रदान करना।

(४) कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित माल के विक्रयार्थ सहकारी समितियों की स्थापना करना।

(५) तान्त्रिक प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करना।

आधारभूत उद्योग (Basic Industries)—योजना म निम्नलिखित वृहद् उद्योगों के विकास का आयोजन किया गया—

(१) रक्षा सम्बन्धी उद्योग,

(२) जन विद्युत शक्ति उद्योग,

(३) खानें खोदना, धातु शोधन तथा वन उद्योग,

(४) मशीन तथा मशीनों के औजार बनाने के उद्योग

(५) वृहद् इन्जीनियरिंग उद्योग तथा

(६) बड़ रसायन उद्योग।

वृहद् उद्योगों को इस प्रकार नियमित रूप से संचालित किया जाय कि वे गृह उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने के स्थान पर गृह-उद्योगों के विकास म सहायक हों। इन आधारभूत उद्योगों को राज्य द्वारा संचालित किया जाय। सरकार द्वारा अधिकार तथा नियन्त्रण प्राप्त करने के समय तक ये उद्योग अलोक साहसियों (Private Entreprenuers) द्वारा संचालित रहें परन्तु राज्य इनके *द्वारा निर्मित वस्तुओं के मूल्य साहसी का लाभ तथा श्रम व्यवस्था पर* नियन्त्रण रखे। वृहद् उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण आर्थिक सामाजिक तथा सैनिक आवश्यकताओं के आधार पर किया जाय।

अर्थ-व्यवस्था—इस योजना का समस्त आवर्तक व्यय २०० करोड़ रुपये तथा अनावर्तक व्यय ३५०० करोड़ रुपये निश्चित किया गया। उसका विभिन्न मदों पर वितरण इस प्रकार था—

तालिका सं० २६—गाँधीवादी योजना का व्यय

मद	व्यय (करोड़ रुपयों मे) अनावर्तक	आवर्तक
कृषि	११७५	४०
ग्रामीण उद्योग	३५०	—
आधारभूत तथा वृहद् उद्योग	१०००	—
यातायात	४००	१५
जन स्वास्थ्य	२६०	४५
शिक्षा	२९५	१००
अन्वेषण	२०	—
	योग ३५००	२००

कृषि पर व्यय होने वाली निर्धारित राशि द्वारा कृषि का विकास इतना होने की सम्भावना थी कि कृषि आय दस वर्षों में दुगुनी हो जाय। यह भी अनुमान लगाया गया कि ग्रामीण उद्योगों क विकास के लिए प्रति ग्राम ५००० रु० की आवश्यकता होगी और यह राशि राज्य द्वारा ग्राम पंचायतों अथवा सहकारी अधिकोषों को दीर्घकालीन ऋण के रूप म प्रदान की जानी थी जो २० वर्ष म दय होती थी। यह भी अनुमान था कि लगभग १०० करोड रु० राज्य द्वारा निजी साहसियों तथा विदेशियों द्वारा सचालित आधारभूत उद्योगों को क्रय करन पर व्यय होगा तथा शेष ५०० करोड रु० आधारभूत तथा रक्षा सम्बन्धी उद्योगों क विकास पर व्यय किया जायगा। रेल यातायात म २५% वृद्धि तथा ग्रामीण क्षेत्रों म २००,००० मील लम्बी अतिरिक्त सडकें बनाने का लक्ष्य रखा गया। भारतीय तथा विदेशी जहाजी कम्पनियों को भी क्रय करन का आयोजन किया गया। ग्रामीण चिकित्सालयों तथा नगरों म प्रत्येक १०,००० व्यक्तियों पर एक अस्पताल स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया था। शिक्षा के व्यय को पाँच भागों म विभाजित किया गया—वसिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, प्रौढ शिक्षा, विश्वविद्यालयीन शिक्षा तथा प्रशिक्षण।

योजना की निर्धारित अनावर्त्तक राशि को तीन साधनों—आन्तरिक ऋण तथा बचत, मुद्रा-प्रसार तथा अतिरिक्त कर द्वारा प्राप्त करने का लक्ष्य था। आवर्त्तक व्यय की राशि का राजकीय उद्योगों तथा जन-सेवाओं की आय द्वारा प्राप्त किया जाना था। विभिन्न साधनों से निम्न प्रकार अर्थ प्राप्त होने का अनुमान था—

तालिका स० २७—गाँधीवादी योजना के अर्थ-साधन

साधन	आय (करोड रु० म)
आन्तरिक ऋण	२०००
मुद्रा-प्रसार	१०००
कर	५००
	योग ३५००

आलोचना—इस योजना के दो पक्ष हैं—ग्रामीण तथा नागरिक। इन दोनों ही क्षेत्रों का विकास विभिन्न आधारों पर करने का आयोजन किया गया। ग्रामीण क्षेत्र म परम्परागत जीवन को बनाये रखने का सुझाव था परन्तु कुछ आधुनिक सुविधाओं म वृद्धि करने का भी आयोजन किया गया। दूसरी ओर नागरिक क्षेत्र मे राज्य द्वारा सचालित वृहद् तथा आधारभूत उद्योगों क विकास का आयोजन था। नगर-निवासियों के जीवन का तदनुसार आधुनिक विकास

होना भी अनिवार्य था। इस प्रकार आधुनिक नागरिक जीवन तथा परम्परागत ग्रामीण जीवन म सामंजस्य स्थापित करना एक कठिन समस्या का रूप ग्रहण कर सकती थी जिसके हल के लिए योजना म प्रयास नहीं उठाया गया।

योजना म व्यक्तिगत आधारभूत स्वतन्त्रताओं को अक्षुण्ण बनाये रखने को विशेष महत्त्व दिया गया। इसीलिए कठोर आर्थिक प्रबन्धों तथा नियन्त्रणों को योजना म स्थान नहीं दिया गया आर्थिक समानता के लक्ष्य की पूर्ति हेतु आर्थिक नियन्त्रणों का नहीं प्रत्युत आत्म प्रतिरोध एव सामान्य चरित्र निर्माण ही समुचित समझे गये थे।

ग्रामीण क्षेत्र म आत्मनिर्भरता के स्तर पर पहुँचने के लिए ग्रामीण सवनो मुखी उन्नति की आवश्यकता थी और इस कार्य के लिए प्रति मास ८००० रुपये की राशि पर्याप्त नहीं हो सकती थी। योजना म न्यूनतम पारिश्रमिक की नीति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ग्रामों म निजी व्यवसायों के विकास के साथ राज्य द्वारा न्यूनतम पारिश्रमिक निश्चित करना आवश्यक था जिससे ग्रामीण शिल्पियों तथा श्रमिकों को छोटे छोटे पूँजीपतियों द्वारा शोषण किए जाने की सम्भावना न रहे।

अर्थ साधना म मुद्रा प्रसार को विशेष स्थान दिया गया था। मुद्रा प्रसार, आर्थिक नियन्त्रणों की अनुपस्थिति म मुद्रा स्फीति का घातक रूप धारण कर सकती थी। दूसरी ओर योजना के ग्राम आरिक आय साधना पर ही अवलम्बित रहा गया था। विदेशियों द्वारा संचालित उद्योगों को नष्ट करके पूँजीगत वस्तुओं का विदेशों से आयात करने आदि के लिए जो विदेशी पूँजी की आवश्यकता होगी उस हेतु कोई विशेष आयोजन नहीं किया गया।

इस योजना की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमे भारत द्वारा अपनी योजना के माध्यम से एशिया के तथा अन्य पिछड़े हुए राष्ट्रों का पथ प्रदर्शन करने का लक्ष्य भी रखा गया था। सिंचाई वस्त्र लोहा तथा इस्पात उद्योग जल विद्युत तथा कृषि से प्राप्त अनुभवों से अन्य राष्ट्रों को अवगत कराया जाना था। एशिया के अन्य राष्ट्रों के युवकों को तांत्रिक संस्थाओं म प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करने का भी आयोजन था। विभिन्न पिछड़े राष्ट्रों के मध्य संयुक्त रूप से पाश्चात्य राष्ट्रों के तांत्रिक विशेषज्ञ नियुक्त किए जाने की भी सिफारिश की गयी थी।

द्वितीय महासमरोपरान्त भारत म नियोजन का इतिहास

बम्बई जन तथा गांधीवादी योजनाएं युद्ध काल म निर्मित तथा प्रकाशित की गयी थीं। सन् १९४४ म भारत सरकार ने देश म पुनर्निर्माण कार्य हेतु योजना बनाने के लिए सर अर्देशीर दलाल को नियुक्त किया। उन्होंने अपनी

योजना यलो बुक (Yellow Book) के रूप मे प्रकाशित की। सन् १९४५ मे युद्ध की समाप्ति पर विश्व की आर्थिक परिस्थितियो मे परिवर्तन हो गया और उपर्युक्त किसी भी योजना को कार्यरूप मे परिणत नही किया जा सका। दिसम्बर १९४६ मे श्री के० सी० नियोगी की अध्यक्षता में सलाहकार योजना मण्डल (Advisory Planning Board) की स्थापना की गयी।

सलाहकार योजना मण्डल—इस बोर्ड को राज्य के नियोजन कार्यों, राष्ट्रीय नियोजन समिति की सूचनाओ तथा सिफारिशो तथा अन्य नियोजन प्रस्तावो की समालोचना करके अपने सुझाव देने का काय सौपा गया। इस बोर्ड के प्रतिवेदन (Report) म विनियोजन के दो मुख्य उद्देश्य निश्चित किए गये—जन समुदाय के सामान्य जीवनस्तर म उन्नति करना तथा समस्त कार्य करने योग्य जन समुदाय को उपयोगी रोजगार के प्रबन्ध का आयोजन करना। इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु समस्त साधनो का अधिकतम तथा विवेकपूर्ण विकास तथा उपयोग होना चाहिए तथा इनके द्वारा उत्पादित धन के समान वितरण का आयोजन किया जाना चाहिए। उद्योगा तथा अन्य आर्थिक क्रियाओ का क्षेत्रीयकरण (Regionalization) होना चाहिए जिससे सभी क्षेत्रो मे प्राकृतिक परिस्थितियो के अनुसार सन्तुलित विकास हो सके। इस प्रकार के विकास से राष्ट्रीय सुरक्षा का सुप्रबन्ध हो सकता था तथा उस नियोजन का एक सहायक किन्तु महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी समझा जा सकता था। बोर्ड ने एक प्राथमिकता बार्ड (Priorities Board) की स्थापना की सिफारिश की जो कि राष्ट्र के आधारभूत साधना का बंटवारा शासकीय योजनाओ के विकासानुसार करे। कृषि तथा उद्योग का विकास, सिंचाई के साधनो मे वृद्धि, विद्युत शक्ति-उत्पादन म वृद्धि, कोयले के उत्पादन मे वृद्धि तथा उसका विकास, यातायात के साधना म सुधार, शिक्षा के स्तर म उन्नति, जन-स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा आदि म समस्त राष्ट्रीय साधनो तथा शक्तिया का उचित वितरण करने की सिफारिश की गयी।

रिपोर्ट मे बताया गया कि सरकार द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् के प्रथम पाँच वर्षो मे १००० करोड रुपया पुनर्निर्माण कार्य करने मे लगा सकती है। यह राशि अतिरिक्त कर, अधिक ऋण तथा मुद्रा-प्रसार द्वारा प्राप्त की जा सकती है। बोर्ड के विचार म भारत मे पर्याप्त ज्ञान तथा सांख्यिकीय सूचना की अत्यन्त कमी है और अर्थ-व्यवस्था पर सरकार का कोई नियन्त्रण नही है। इसलिए योजना का इस प्रकार बनाना तथा सचालित करना कठिन है जिसका सामूहिक फल प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि हो। रिपोर्ट म पृथक् पृथक् उद्योगो के

लिए लक्ष्य निश्चित करने पर जोर दिया गया। कठिनाइयो को तीन वर्गों मे विभाजित किया गया—अर्थ उपलब्धि की कठिनाइयाँ, पूंजीगत सामग्री प्राप्त करने की कठिनाई तथा प्रशिक्षित श्रम की उपलब्धि की कठिनाई। अर्थ की कठिनाइयो को अनिरिक्त कर, अधिक ऋण, मुद्रा-प्रसार तथा राज्य एव केन्द्रीय सरकार के सहयोग द्वारा दूर किया जा सकता है। पूंजीगत सामग्री विदेशो से प्राप्त की जा सकती है और इसके लिए पौड-पावना तथा विदेशी ऋण का उपयोग किया जा सकता है। प्रशिक्षित श्रम की उपलब्धि के लिए भारत म प्रशिक्षण सस्थाओ की स्थापना की सिफारिश की गयी।

उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के बारे म बोर्ड न कोई स्पष्ट सिफारिश नही की क्योकि यह काय उस नही सौंपा गया था। परन्तु बोर्ड के मत म औद्योगिक उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि उद्योगो के राष्ट्रीयकरण द्वारा नही प्राप्त की जा सकती है। बोर्ड के विचार म चुने हुए आधारभूत उद्योगो का धीरे-धीरे राष्ट्रीयकरण उचित था।

बोर्ड ने एक योजना कमीशन की स्थापना की सिफारिश की जिसमे पाँच से अधिक और तीन से कम सदस्य नहीं होन चाहिए थे। योजना कमीशन एक राजनीतिक सस्था नही होनी चाहिए थी अपितु उसमे जन-कार्यों के अनुभवी व्यक्ति, उद्योग, कृषि तथा श्रम के अनुभवी व्यक्ति, सरकारी अधिकारी जिन्हे अर्थ तथा शासन सम्बन्धी अनुभव हो, तथा विज्ञान तथा टैक्नोलॉजी के प्रसिद्ध तथा योग्य विशषज्ञो को सम्मिलित किये जाने की सिफारिश की गयी थी। यह योजना आयोग राष्ट्र के लिए योजना बनाये और अपनी सिफारिशें दे। परन्तु उन सिफारिशो पर निश्चय करना सरकार का अधिकार होना चाहिए था। योजना की प्राथमिकताओ के विषय मे योजना आयोग के निश्चय को ही अन्तिम समझने की सिफारिश की गयी थी। इसके अतिरिक्त एक सलाहकार समिति (Consultative Body), जिसम २५ से ३० तक सदस्य हो, की स्थापना का भी सुझाव दिया गया। इस समिति को योजना आयोग की प्रगति का निरीक्षण करना तथा विभिन्न राजनीतिक पक्षो का सहयोग प्राप्त करना था।

अन्तरिम सरकार की नीतियाँ

भारत मे २४ अगस्त सन् १९४६ को अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। इस समय देश म खाद्यान्नो का अत्यन्त अभाव था तथा देश के कुछ भागो म अकाल की अवस्था उपस्थित थी। इस कठिन परिस्थिति का सामना करने के लिए विदेशो स अन्न प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया गया। भारत सरकार न अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्याम, हिन्दचीन, इण्डोनेशिया, ईरान,

टर्की, मिश्र, ब्राजील आदि से लगभग १७ लाख टन अन्न का आयात किया परन्तु आयात पर निर्भर रह कर अन्न के अभाव को दूर नहीं किया जा सकता था। सरकार ने इसीलिए राशनिंग तथा मूल्य नियन्त्रण द्वारा अन्न के वितरण को नियन्त्रित किया। इसके साथ ही साथ 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन को नवीन रूप मे प्रारम्भ किया गया। इसका कार्यक्रम दो भागो मे बांटा गया—एक उपस्थित न्यूनता को दूर करने के लिए कृषको को साख, अच्छे बीज, खाद आदि की सुविधाएँ देना और दूसरे दीर्घकाल मे अन्न के अभाव को दूर करने तथा जनता को अच्छे खाद्य-पदार्थ उपलब्ध कराने के लिए योजना आदि का आयोजन करना जिससे बाढ और सूखे से होने वाली हानि को रोका जा सके और सिचाई तथा विद्युत-शक्ति के साधनो म वृद्धि की जा सके।

१६ सितम्बर सन् १९४६ को वाणिज्य सदस्य श्री सी० एच० भाभा ने घोषणा की कि विदेशी व्यापार को इस प्रकार नियन्त्रित किया जायगा कि देश का औद्योगीकरण शीघ्र किया जा सके। निर्मित वस्तुओ के निर्यात को प्रोत्साहन दिया जायगा और आयात केवल उन वस्तुओ का किया जायगा जिनसे औद्योगिक विकास मे सहायता मिलती है। साथ ही विदेशी व्यापार मे किसी भेद-भाव की नीति को स्थान नहीं दिया जायगा।

अन्तरिम सरकार के सत्ता सम्भालते समय हडतालो तथा हडतालो की धमकियो का बोलवाला था। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए मालिक तथा कर्मचारी के पारस्परिक सम्बन्धो को नियमित किया गया तथा श्रम की कार्य करन की दशाओ मे सुधार करने के लिए कानून बनाये गये। एक पचवर्षीय कार्यक्रम बनाया गया जिसके द्वारा उचित मजदूरी, समझौते, औद्योगिक प्रशिक्षण, कार्य करने की दशाओ मे सुधार, अनुबन्ध भृत्ति को कम करना, गृह-सम्बन्धी सुविधाएँ, औद्योगिक शान्ति, महँगाई की दरो मे वृद्धि, चिकित्सा तथा धार्मिक सुविधाओ का आयोजन किया गया। साथ ही झगडे के समय सरकार के न्यायालय द्वारा न्याय कराने का अधिकार औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक (Industrial Relations Bill) द्वारा प्राप्त किया। देश भर म समान श्रम अधिनियम बनाये जाने की सिफारिश भी की गयी।

यातायात के क्षेत्र म रेल, सडक तथा जल यातायात मे समन्वय स्थापित किया गया, जिससे राष्ट्र के आर्थिक साधनो का अधिकतम विकास हो सके और इन साधनो मे इस प्रकार वृद्धि की जाय कि राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र म यातायात की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। साथ ही रेल उतना ही किराया ले जो कि यात्री सहन कर सके। रेलो मे आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग किया जाय।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १६४८

स्वतन्त्रता के पश्चात् ही भारत सरकार न आयोजित अर्थ व्यवस्था तथा उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के लिए कार्यवाही की। प्राचीन पूंजीवादी व्यवस्था पर आवश्यक नियन्त्रण रखना आवश्यक समझा गया और राष्ट्र के सन्तुलित विकास तथा जन-कल्याण के लिए यह आवश्यक था कि सरकार औद्योगिक क्षेत्र म हस्तक्षेप करे तथा औद्योगिक विकास हेतु अधिकतम प्रयत्न करे। दिसम्बर सन् १६४७ म औद्योगिक सम्मेलन (Industrial Conference) ने उत्पादन म वृद्धि करन के लिए अनक सिफारिशें की और साथ ही एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद्, थोडी अवधि के लिए प्राथमिकता बोर्डों तथा एक राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना का सुझाव दिया। उसी वर्ष मेरठ म हुए कांग्रेस अधिवशन न राष्ट्रीय सरकार की भावी औद्योगिक नीति का निर्धारण किया। इस पृष्ठभूमि म स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, तत्कालीन उद्योग मन्त्री न ६ अप्रल सन् १६४८ का ससद म भारत सरकार का औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसके अन्तर्गत श्रम, पूंजी तथा साधारण जनता द्वारा देश के शीघ्र औद्योगीकरण की आशा प्रकट की गयी।

सरकार द्वारा औद्योगिक नीति की घोषणा करना भारत के औद्योगिक नियोजन के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण चरण था। १५ अगस्त सन् १६४७ को स्वतन्त्रता प्राप्त होन के पश्चात् देश भर मे एक नूतन जागृति का प्रादुर्भाव हुआ और जनता को सरकार से बडी बडी आशाएँ होन लगीं। जन-समुदाय मे नवीन भारत के निर्माण म सहयोग प्रदान करन की भावना उत्पन्न हो गयी थी। उद्यागपति भी यह जानन के लिए उत्सुक थे कि देश के औद्योगिक विकास मे उनको क्या स्थान दिया जायगा।

यह औद्योगिक नीति प्रस्ताव प्रतिक्रियावादी, क्रान्तिकारी, समाजवाद तथा पूंजीवाद के पारस्परिक विरोधो का परिहार करते हुए एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था का प्रतिपादन करता था। इसके द्वारा लोक तथा अलोक साहस की सीमाओं को निर्धारित किया गया था। इसमे पूंजी तथा श्रम दोनो के पारस्परिक सम्बन्धो की व्यवस्था थी। विदेशी पूंजी के विषय म राजकीय नीति का स्पष्टीकरण किया गया था। इसम औद्योगिक क्षत्र म सरकार की नीतियो का उल्लेख किया गया तथा उन उपायो की ओर सकेत किया गया जिन्हे इन नीतियो की पूर्ति के लिए सरकार काम म ला सकती थी।

सन् १६४८ की औद्योगिक नीति का मुख्य उद्देश्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना था जिससे न्याय और अवसर की समानता का आयोजन किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा की सुविधाओं, स्वास्थ्य

सेवाओ, जीवन-स्तर मे वृद्धि, राष्ट्र के सम्भावी साधनो का अधिकतम उपयोग करके उत्पादन मे वृद्धि करना तथा समस्त समुदाय को जनहित की योजनाओं मे रोजगार दिलाना आदि का आयोजन करना आवश्यक समझा गया। प्रस्ताव मे कहा गया कि तत्कालीन परिस्थितियो मे उत्पादन की वृद्धि को महत्व दिया जाना उचित होगा, क्योकि विद्यमान सम्पत्ति का पुर्नवितरण करने से केवल न्यूनता का ही वितरण (Distribution of Scarcity) होगा। प्रस्ताव मे पूंजीगत वस्तुओ तथा आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओ एवं ऐसी वस्तुओ के उत्पादन मे सत्वर वृद्धि करने के प्रयत्न किये गये, जिनके निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।

उद्योगो का राष्ट्रीयकरण—औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे बताया गया कि तत्कालीन परिस्थिनियो मे जबकि अधिकतर जनता का जीवन-स्तर न्यूनतम से भी कम है, यह आवश्यक है कि कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि को विशेष महत्त्व दिया जाय। उत्पादन मे वृद्धि के प्रश्न को हल करने से पूर्व यह भी आवश्यक था कि यह भी निश्चित कर दिया जाय कि राज्य किस सीमा तक औद्योगिक क्षेत्र मे भाग लेगा तथा निजी क्षेत्र को किन-किन नियन्त्रणो को दशा मे कार्य करना होगा। तत्कालीन परिस्थितियो मे राज्य के पास इतने साधन नहीं थे कि वह औद्योगिक क्षेत्र मे यथोचित तथा वाछनीय सीमा तक भाग ले सके। इसलिए यह निश्चय किया गया कि राज्य राष्ट्रीय आय मे पर्याप्त वृद्धि करने के लिए कुछ समय तक अपनी कार्यवाहियो को उस क्षेत्र मे ही बढाये जिनमे कि वह अभी तक कार्य करता आ रहा है। इसके साथ ही नये उद्योगो की स्थापना को भी अपने कार्य-क्षेत्र मे ले ले। इस प्रकार वर्त्तमान अलोक साहस के उद्योगो के राष्ट्रीयकरण को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया। परन्तु इस अवधि मे राज्य को निजी क्षेत्र पर समुचित नियन्त्रण द्वारा उसका नियमित सचालन करना था।

इन निश्चयो के आधार पर लोक तथा अलोक क्षेत्रो को सीमाबद्ध करने के लिए उद्योगो को पाँच श्रेणियो मे विभक्त किया गया—

(१) केन्द्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार क्षेत्र—युद्ध-सामग्री का निर्माण, अणु-शक्ति का उत्पादन तथा नियन्त्रण, रेल यातायात का स्वामित्व एवं प्रबन्ध—ये उद्योग केवल सरकार द्वारा ही स्थापित तथा सचालित किये जाते थे।

(२) राज्य जिसमे केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा रियासती सरकारो तथा अन्य स्थानीय सस्थाओ जैसे नगरपालिका निगम आदि का क्षेत्र शामिल है—कोयला, लोहा तथा इस्पात, वायुयान निर्माण, जलयान निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राम तथा बेतार के तार के यत्रो या उपकरणो का निर्माण (रेडियो तथा टेलीविजन सैट

को छोड कर) तथा खनिज तेल के उद्योग केवल राज्य द्वारा ही खोले जाने थे। परन्तु इन उद्योगो की जो इकाइयाँ पहले से ही काय कर रही हैं उनको दस साल तक काय करने की अनुमति प्रदान की जानी थी। दस वष पश्चात् सरकार इस बात का निश्चय करेगी कि उनका राष्ट्रीयकरण किया जाय अथवा नही।

(३) निजी साहस या स्वामित्व परन्तु सरकार का नियमन तथा नियन्त्रण का क्षत्र—नमक मोटर ट्रक्टर प्राइममूवस विद्युत इजीनियरिंग यत्र उपकरण भारी रसायन खाद फामसी की औषधियाँ विद्युत रसायन उद्योग अलौह धातु रबर निर्माण शक्ति तथा औद्योगिक अल्कोहल सूनी तथा ऊनी वस्त्र सीमट चीनी कागज समाचार पत्र का कागज वायु तथा जल याता यात तथा वे खनज और उद्योग जो सुरक्षा से सम्बन्धित हो इस वग के उद्योगो का राष्ट्रीयकरण तो नही किया जायगा परन्तु उन पर पर्याप्त सरकारी नियन्त्रण रहेगा।

(४) निजी साहस के आधीन परन्तु जिसमे औद्योगिक सहकारी समितियो के सचालन को प्राथमिकता दी जानी थी—गृह तथा लघु उद्योगो और कृषि के सहायक ग्रामीण उद्योग—इन पर निजी साहस का स्वामित्व रहना था परन्तु इनको सहकारी सस्थाओ द्वारा सचालित करने को अधिक महत्त्व दिया जाना था

(५) स्वतन्त्र निजी साहस का क्षत्र—अन्य सभी उद्योग निजी साहस द्वारा चलाए जा सकते थे।

पूजी तथा श्रम के सम्बन्ध—सरकार ने पूजी तथा श्रम म सहयोगी सम्बन्धो को स्थापित करने के लिए १९४७ के औद्योगिक सम्मेलन द्वारा पारित किए गए प्रस्तावो को स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव मे कहा गया था कि पूजी और श्रम के पारिश्रमिक का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाना चाहिये कि अधिक लाभ पर कर तथा अन्य विधिया द्वारा रोक लगायी जा सके। पूजी और श्रम के सामूहिक परिश्रम से उत्पादित आय म से श्रम को उचित पारिश्रमिक उद्योग मे लगायी गयी पूजी को उचित प्रतिफल तथा उद्योगो के विकास के लिए यथोचित सचय (Reserve) का प्रबन्ध करने के पश्चात् शष भाग को पूजी तथा श्रम मे बाँटा जाय। श्रम को लाभ म से मिलने वाला भाग श्रम की उत्पादन शक्ति के आधार पर होना चाहिए। इसके साथ सरकार केन्द्र तथा प्रान्तो मे अधिकारी नियुक्त करेगी जो श्रम तथा पूजी के पारिश्रमिक तथा श्रम के काय करने की दशाओ के विषय मे सलाह देगे।

गृह उद्योग—भारत के इतिहास म प्रथम बार गृह उद्योगो को औद्योगिक नीति म सम्मिलित किया गया यह मान लिया गया कि देश की अर्थ

व्यवस्था मे गृह-उद्योगो का महत्वपूर्ण स्थान है। ये उद्योग व्यक्तिगत, ग्रामीण तथा सहकारी साहस को प्रोत्साहित करते हैं तथा स्थानीय साधनो—मानवीय एव भौतिक का उपयोग करने मे सहायक होते हैं। इनके द्वारा स्थानीय आत्म-निर्भरता प्राप्त की जा सकती है। इनसे उपभोक्ता को आवश्यक वस्तुओ, जैसे खाद्यान, वस्त्र, कृषि औजार आदि के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। इन उद्योगो के विकास के लिए कच्चा माल, सस्ती शक्ति, तात्रिक सलाह, विपणि सगठन तथा बडे उद्योगो से प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा का आयोजन किया जाय। ये सभी कार्य प्रान्तीय सरकार द्वारा किए जाने थे। केन्द्रीय सरकार केवल यह जानकारी प्राप्त करे कि इन उद्योगो का बडे उद्योगो के साथ किस प्रकार सामजस्य स्थापित किया जा सकता था। प्रस्ताव मे यह भी कहा गया कि *वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति म विदेशो से बडे उद्योगो के लिए पूंजीगत* सामान प्राप्त करना कठिन है, इसलिए लघु औद्योगिक सहकारी समितियो को बढावा दिया जाय।

विदेशी पूंजी—विदेशी पूंजी क प्रति सरकार की नीति यह होनी थी कि उन उद्योगो का, जिनमे विदशी पूंजी विनियोजित हुई हो, अधिकाश स्वामित्व तथा प्रबन्ध भारतीय उद्योगपतियो के हाथ म होना चाहिए। उनम भारतीयो को उत्तरदायित्वपूर्ण पद दन चाहिए। जिन कामो के लिये योग्य व्यक्ति न प्राप्त हो सकें, उनके लिए विदशी विशेषज्ञ रख जा सकत हैं, परन्तु भारतीयो को उचित शिक्षा दने का प्रबन्ध होना चाहिए जिससे वे उनके स्थान का ग्रहण कर सकें।

तटकर नीति (Tariff Policy)—सरकार की तटकर नीति इस आधार पर निश्चित की जानी थी कि जिसस अनुचित विदेशी स्पर्धा पर रोक लगायी जा सके, तथा भारत के साधनो का उपयोग उपभोक्ता पर किसी प्रकार अनुचित भार न डालत हुए हो सक।

कर व्यवस्था—सरकार की कर व्यवस्था म आवश्यक समायोजन किये जाने थे ताकि बचत तथा उत्पादक विनियोजन को प्रोत्साहन मिले और किसी छोटे से वर्ग के हाथो म धन सग्रह न हो सके।

श्रमिको के लिए गृह व्यवस्था—श्रमिको के लिए गृह-व्यवस्था की जानी थी। दस वर्ष म १० लाख भवन निर्मित करन की योजना विचाराधीन थी। एक गृह निर्माण मण्डल (Housing Board) की स्थापना की जानी थी। गृह निर्माण की लागत उचित अनुपात मे सरकार, मालिक तथा श्रम को वहन करनी थी तथा श्रमिक का भाग उससे यथोचित किराय के रूप म लिया जाता था।

उपर्युक्त आयोजन स यह स्पष्ट है कि सरकार के सम्मुख उत्पादन मे वृद्धि

करना सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न था और इसीलिए सरकार तत्कालीन औद्योगिक व्यवस्था मे अधिक परिवर्तन नहीं करना चाहती थी। इस सम्बन्ध मे प्रधान मन्त्री, पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा म बोलते हुए कहा, "इस सम्बन्ध मे कोई भी कायवाही करन के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को सचेत होकर यह सोचना आवश्यक होगा कि वर्त्तमान ढाचे को कोई अधिक धक्का न पहुँचे। भारत तथा ससार की वर्त्तमान स्थिति म शुद्ध लेख पट (Clean Slate) को प्राप्त करने अर्थात् जो कुछ उपस्थित है उसे नष्ट कर देन से विकास की प्राप्ति के शीघ्रता होने के स्थान पर उसम अत्यन्त देरी हो जायगी। इस शुद्ध लख पट के स्थान पर वर्त्तमान लेख पट पर यहाँ वहाँ मिटा कर धीरे धीरे लिखा जाय जिससे सम्पूर्ण लेख पट के लेख का प्रतिस्थापन हो सके। यह काय बहुत धीरे धीरे नही होना चाहिए परन्तु इसके लिए कोई ऐसी कायवाही भी नही होनी चाहिए जिससे कोई बर्बादी हो।[1]

इन विचारो से पूर्णत सहमत न होते हुए प्रोफसर क० टा० शाह ने प्रस्ताव पर अपन विचार इस प्रकार व्यक्त किये "यह कोई ऐसी नीति नही थी जो कि एक ऐसे राज्य को अपनानी चाहिए जो विकासशील हो तथा जो दश के हित के लिए अधिकतम मात्रा मे कायवाही करन के लिए इच्छुक हो। मैं इस प्रस्ताव से केवल इसलिए ही असन्तुष्ट नही कि इसमे कुछ कार्यवाहियो को कम रखा गया है प्रत्युत् इसलिए भी कि इसमे अनक कार्यवाहियो पर प्रकाश न डालन का दोष भी है। अधिकतम दूषित उदाहरणो को राज्य के लिए छोडा गया तथा सर्वोत्तम उदाहरण पूँजीवादियो के लिए छोड गये है जो कि केवल लाभ के लिए ही काय करते है। इस कथन से क्या लाभ ह कि दस वष तक पूँजीपति को शोषण करन का अधिकार दिया जायगा जिससे कि वह समस्त धन का सग्रह करले और भविष्य की पीढियो के लिए केवल निधनता ही छोड दे।[2]

---

1 'One had to be careful that in taking any step the existing structure was not injured much In the state of affair in the world and India today, any attempt to have a clean slate i e a sweeping away of all that they had got would certainly not bring progress nearer but rather delay it tremendously The alternative to that 'clean slate' was to try to rub out here and there, to write on if gradually to replace the writing on the whole slate, not too slowly but nevertheless without a great measure of destruction in its trail" *Pt Jawahar Lal Nehru*

2. 'This was not a policy that a state desiring to be progre-

(contd next page)

औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम, १९५१
[Industries (Development & Regulation) Act, 1951]

सन् १९५१ म औद्योगिक नीति को घोषित किये तीन वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस अवधि म देश की अर्थ व्यवस्था म अनेक परिवर्तन हुए। प्रथम पचवर्षीय योजना सन् १९५१ म प्रारम्भ हुई तथा समाजवादी अर्थ व्यवस्था की स्थापना का ध्येय अन्तिम रूप स स्वीकार कर लिया गया। पुरानी औद्योगिक नीति मे इन परिवर्तनो के अनुरूप परिवर्तन करना आवश्यक था। सन् १९५१ मे सरकार न औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम कार्यान्वित किया। इस अधिनियम म सन् १९५३ म सशोधन किया गया। इस अधिनियम द्वारा निजी क्षेत्र के उद्योगो पर राष्ट्रीय हित के लिए नियन्त्रण रखा जायगा। यह अधिनियम निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत १९२ उद्योगो पर लागू है—

(१) उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योग, जैसे वस्त्र, वनस्पति खनिज तैल, साबुन, चीनी, नमक, फार्मेसी वाले द्रव्य औषधिया सिलाई यन्त्र कढाई के यन्त्र आदि।

(२) यन्त्रोत्पादन म काम आने वाली वस्तुओ के उद्योग, जैसे लोहा एव इस्पात, रेल एंजिन और रौलिंग स्टाक, मैगनीज, अलौह धातु समूह, मिश्रित धातु, उद्योग धन्धो के भारी यन्त्र जैसे बौल और रौलर बेयरिंग, गीयर, पहिए और यान्त्रिक उपकरण आदि।

(३) ईधन के उत्पादन से सम्बन्धित उद्योग जैसे कोयला, विद्युत-शक्ति, मोटर तथा वायुयान का ईधन तथा अन्य तल।

(४) विद्युत शक्ति के उत्पादन एव वितरण हेतु यन्त्र निर्माण के उद्योग।

(५) भारी रासायनिक द्रव्य तथा रासायनिक खाद।

(६) मोटर गाडिया, टैक्टर वायुयान जलयान, टलीफोन, तार, बेतार-सचार के यन्त्र आदि क निमाण उद्योग।

(७) अस्त्र शस्त्र, कृषि उपकरण गणित सम्बन्धी वज्ञानिक यन्त्र, लघु

---

ssive, desiring to advance the well being of the country to the utmost possible degree, should adopt I am disappointed with the resolution not only because of its sins of commission but also because of its sins of omission The worst possible examples were left to the state and the best possible examples were left to the capitalists seeking profits and profits only What was the use of saying that for ten years the capitalists would be given a chapter of exploitation' under which he could take out all the kernel and leave the husk to posterity" —*Prof K. T. Shah.*

उपकरण सीन और काटने की मशीनें, साइकिलें, हरीकेन लालटेन, शीशा और मिट्टी के बतनो के उद्योग।

इस अधिनियम की मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार है—

(१) सरकारी नियन्त्रण को विस्तृत कर दिया गया तथा सरकार का नियन्त्रण लगभग समस्त बडे बड उद्योगो पर लागू कर दिया गया। उपर्युक्त उद्योगो म सरकार उत्पादन बढान माल की किस्म सुधारन, किसी विशेष कच्चे माल का उपयोग करन अथवा स्वेच्छा से उत्पादन घटान की क्रियाओ को बन्द करन का कार्य कर सकती है। सरकार का अधिकार होगा कि किसी निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाई के उत्पादन मे कमी आन अथवा माल की किस्म खराब होन पर परीक्षण करवा सकती है तथा आवश्यकतानुसार उसके निवारणाथ उचित कदम भी उठा सकती है।

(२) अधिनियम के अनुसार सरकार एक ३० सदस्यीय केन्द्रीय सलाहकार परिषद (Central Advisory Council) की स्थापना करेगी जो सरकार को उद्योगो के नियमन तथा नियन्त्रण पर सलाह देगी। इस परिषद् मे विभिन्न हितो के प्रतिनिधि होगे।

(३) प्रत्येक उद्योग के लिए पृथक पृथक विकास परिषद् की स्थापना की गयी। इन परिषदो मे सहकारी प्रतिनिधियो के अतिरिक्त श्रमिको, उत्पादको तथा उपभोक्ताओ के प्रतिनिधि सम्मिलित किए गये।

(४) अधिनियम द्वारा सरकार को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि उद्योगो पर कर लगा कर एक निधि (Fund) का निर्माण करे। इस निधि का उपयोग तान्त्रिक प्रशिक्षण तथा अनुसधान के लिए किया जाना था। इसके अतिरिक्त सरकार किसी विशष उद्योग को तान्त्रिक प्रशिक्षण के प्रबन्ध करन का आदेश दे सकती है।

(५) सरकार नियन्त्रित उद्योगो स आवश्यक सारय माग सकती है।

केन्द्रीय सरकार को यदि परीक्षण के उपरान्त यह ज्ञात हो कि कोई औद्योगिक इकाई राजकीय आदेशो की अवहेलना कर रही है अथवा उस इकाई का प्रबन्ध जनहित के लिए हानिकारक है तो सरकार उस इकाई अथवा इकाइयो का प्रबन्ध अपन अधिकार म ले सकती है अथवा किसी व्यक्ति या व्यक्तियो के हाथ मे सौप सकती है। मई १९५३ के सशोधनानुसार राज्य को बिना परीक्षण के हा प्रबन्ध अपने हाथ म लेन का अधिकार प्राप्त हो गया है।

केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के आधीन वस्तुओ का मूल्य नियन्त्रित कर सकती है। यातायात, उपभोग तथा अनुज्ञा पत्र आदि पर नियन्त्रण कर सकती है,

वस्तु विशेष के क्रय पर रोक लगा सकती है और उस वस्तु के क्रेता तथा विक्रेताओं पर नियन्त्रण कर सकती है।

केन्द्रीय विकास परिषद् सरकार को नियम बनाने, औद्योगिक इकाईयों को आज्ञा एवं निर्देश देने तथा आवश्यकता पड़ने पर किसी उद्योग के राष्ट्रीयकरण एव नियन्त्रण के सम्बन्ध मे सलाह देने का कार्य करती है। औद्योगिक विकास समितियाँ जिनमे मालिक, कर्मचारी, उपभोक्ता तथा अन्य पक्षो के प्रतिनिधि होते हैं, सम्बन्धित उद्योगो को केन्द्रीय सरकार को सलाह एव सूचना देंगी, उत्पादन की सीमाएं निर्धारित करेंगी उत्पादन की योजनाओं मे समन्वय स्थापित करेंगी, उद्योग के विषय मे समय-समय पर विचार करेंगी, वस्तुओं के प्रमापीकरण मे सहायता देंगी, कम कार्यकुशल इकाइयो को सुधारने का प्रयत्न करेंगी, नियन्त्रित कच्चे माल के वितरण मे सहायता देंगी, उद्योगो में कर्मचारियो के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करेंगी, कार्य-मुक्त किये गए कर्मचारियो को अन्य उद्योग सम्बन्धी प्रशिक्षण देंगी तथा कार्य दिलायेंगी, औद्योगिक मनोविज्ञान सम्बन्धी विषयो का अनुसधान करेंगी, लागत लेखा को प्रोत्साहन देंगी, साख्य एकत्रीकरण की प्रणाली मे सुधार करेंगी, श्रमिको की कार्यक्षमता को वैज्ञानिक ढग से बढायेंगी आदि। इस प्रकार विकास परिषदे सम्बद्ध उद्योगो के विकास, सुधार, सगठन, कच्चे माल की पूर्ति, उत्पादित माल का वितरण, औद्योगिक अन्वेषण आदि म सहायता प्रदान करेंगी।

१९५३ के सशोधनानुसार ६ अन्य उद्योगो को इसके आधीनस्थ कर दिया गया और सरकार को उद्योगो के नियन्त्रण सम्बन्धी अत्यन्त विस्तृत अधिकार दिये गए। इस अधिनियम का क्षेत्र और विस्तृत करने के लिए १९५७ मे इसमे और सशोधन किये गये और इसके अन्तर्गत ३४ नवीन उद्योगो को सूचीबद्ध किया गया। इन उद्योगो की वे समस्त इकाइयाँ, जिनमे शक्ति-उपयोग की दशा म ५० तथा शक्ति-उपयोग के अभाव म १०० व्यक्ति कार्य करते हो, अधिनियम के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत होंगी। अधिनियम के अन्तर्गत सूचीबद्ध समस्त उद्योगो को पजीयन (Registration) हेतु आवेदनपत्र प्रस्तुत करने होंगे।

कोलम्बो योजना और भारत (Colombo Plan and India)

महायुद्धोपरान्त अनेक राष्ट्रो को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और इन राष्ट्रो की आर्थिक समस्याओ की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। दक्षिणी तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के जन-समुदाय का जीवन-स्तर अत्यन्त शोचनीय था और यह अनुभव किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक सहायता से नियोजित आर्थिक विकास सम्भव है। इसी पृष्ठभूमि मे जनवरी

(अ) कृषि उत्पादन मे वृद्धि हेतु कतिपय आधारभूत विकास कार्यक्रमो का आयोजन, जैसे सिचाइ की सुविधाओ मे वृद्धि, ग्रामीण क्षेत्रो मे विद्युत-उपलब्धि आदि ।

(ब) खाद, कृषि औजार तथा इमारती सामान की पूर्ति मे यथोचित मूल्य पर वृद्धि ताकि भूमि के उत्पादन मे वृद्धि की जा सके ।

(स) यातायात-सुविधाओ का सुधार तथा विकास ।

(द) तत्कालीन औद्योगिक साधनो तथा शक्ति का पूर्णतम उपयोग तथा लोहा और इस्पात के उत्पादन मे वृद्धि ।

(य) ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगार तथा अर्ध-रोजगार जनता को रोजगार देने के लिए ग्रामीण उद्योगो का विकास ।

कोलम्बो योजना के अन्तर्गत भारत के विकास कार्यक्रम मे ऐसी योजनाओ को सम्मिलित किया गया जो पूर्व ही कार्यान्वित की जा चुकी थी किन्तु जिनका कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ था । इस प्रकार चालू तथा नवीन योजनाओ की कुल लागत ३,२१६ करोड रुपया थी और इन योजनाओ मे से अत्यावश्यक कार्यक्रमो को पृथक् कर उनकी लागत का अनुमान १,८४० करोड रु० लगाया गया था । इस योजना की निर्माण-अवधि मे औद्योगिक कच्चे माल तथा अर्ध-निर्मित वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि हो गयी, जिसका मुख्य कारण कोरिया मे युद्ध का छिड जाना था । इसके साथ ही १६५१-५२ मे भारत के कुछ क्षेत्रो मे अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई । परिणामस्वरूप विदेशो से खाद्यान्नो का आयात अधिक मात्रा मे करना पडा । इसके अतिरिक्त कुछ नवीन योजनाओ को भी कायक्रम मे सम्मिलित कर दिया गया और इस प्रकार छै वर्षीय कार्यक्रमो की अनुमानित लागत का पुनरावलोकन कर २,३४० करोड रु० अनुमानित किया गया । इस कार्यक्रम की कुल लागत का विभाजन इस प्रकार किया गया था—

तालिका सं० २८—कोलम्बो योजना के अन्तर्गत भारत की योजना का व्यय

कार्यक्रम	व्यय लाख रुपयों मे			
	१९५० की रिपोर्ट के अनुसार		दोहराए गए अनुमान	
	लागत	योग से प्रतिशत	लागत	योग से प्रतिशत
कृषि तथा सिंचाई	३५,७४१	१९ ४	३९,८११	१७.१
बहुमुखी योजनाएं (सिंचाई तथा शक्ति)	२५,०५७	१३ ६	२२,८४१	९.८
यातायात तथा संचार	७०,२७४	३८.२	६५,१५४	२७.९
ईधन तथा शक्ति	५,७५६	३ २	१४,४३४	६.२
उद्योग तथा खनिज (कोयले को छोड कर)	१७,९९८	९.७	१२ ३९९	५.३
सामाजिक सेवाएं आदि	२९,१२७	१५ ६	४२,६९८	१८ ३
अविभाजित (जो कि विदेशी सहायता की उपलब्धि के आधार पर व्यय की जानी थी।)	—	—	३६,०००	१५.४
योग	१,८३,९५४	१०० ०	२,३३,३३७	१००.०

इस योजना के अन्तर्गत भारत नेपाल को तात्रिक तथा आर्थिक सहायता देता रहा है तथा ९२.९० लाख रु० नेपाल की विकास योजनाओ पर व्यय कर चुका है। भारत ने लगभग २० लाख रुपया नेपाल के त्रिभुवन राजपथ के निर्माण पर व्यय किया। काठमाण्डू-त्रिशूल बाजार मार्ग का निर्माण-कार्य भी समाप्त हो गया है।

१९५९-६० मे नेपाल की सहायता पर १ ८० करोड रु० व्यय किया गया है। भारत ने नेपाल सरकार को प्रसूति गृहो एव शिशु हितकारी केन्द्रों की स्थापना एवं सचालन मे, ग्रामीण विकास-कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने मे, घाटी विकास एवं स्थानीय विकास-कार्यक्रमो मे सहायता देने का आश्वासन दिया है। नेपाल के चार वायुमार्गो मे सुधार कार्य भी भारत सरकार की सहायता से चल रहा है। भारत ने नेपाल की द्वितीय पचवर्षीय योजना के लिए १८ करोड रुपये का अनुदान दिया है।

कोलम्बो योजना के प्रारम्भ से अब तक भारत ने १६९८ विदेशियो को तात्रिक सहयोग योजना (Technical Co operation Scheme) के

अन्तर्गत प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान की हैं जिनमे १९५९-६० वर्ष मे २६७ विदेशियो को प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान की गयीं। आलू उगाने, ट्रैक्टर, इंजीनियरिंग, टिम्बर रिसर्च, अल्प बचत, शक्कर तान्त्रिकता (Sugar Technology), कर-व्यवस्था मे सुधार आदि के विशेषज्ञो की सुविधाएँ भी भारत द्वारा प्रदान की गयीं।

दूसरी ओर भारत म २१० विदेशी विशेषज्ञो की सेवाएं लीं तथा २००९ भारतीयो को कोलम्बो योजना के सदस्य देशो म स्वास्थ्य एव चिकित्सा (Medical) सम्बन्धी शिक्षा, खाद्यान्न एव कृषि, उद्योग एव व्यापार, शक्ति एव ईधन, इंजीनियरिंग, यातायात एव सचार, सांख्य, अधिकोषण तथा मुद्रण के क्षेत्र मे प्रशिक्षण की सुविधाएं प्राप्त हुईं।

आर्थिक विकास के कार्यक्रमो के अन्तर्गत भारत को १२.१ करोड रुपया आस्ट्रेलिया से, १६६.२८ करोड रुपया कनाडा से, ३.२३ करोड रुपया न्यूजीलैंड से अनुदान के रूप मे प्राप्त हुआ।

अध्याय १०

प्रथम पचवर्षीय योजना

[प्रथम योजना के प्रारम्भ मे अर्थ व्यवस्था का स्वरूप भारत मे नियोजन का प्रकार, प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, योजना की प्राथमिकताएँ योजना का व्यय, अर्थ प्रबन्धन, हीनार्थ प्रबन्धन योजना के लक्ष्य एव प्रगति—कृषि, सामुदायिक विकास योजनाएँ, औद्योगिक प्रगति यातायात एव सचार समाज सेवाएँ, उपभोग एव विनियोजन, मूल्यो की प्रवृत्ति योजना की असफलताएँ]

प्रथम योजना के प्रारम्भ म अर्थ व्यवस्था का स्वरूप

यह स्पष्ट है कि अर्थ विकसित राष्ट्रो म नियोजन की आवश्यकता अत्यधिक होती है। उत्पादन के साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग करने तथा उनमे वृद्धि करने के लिए योजनाबद्ध एव समन्वित प्रयासो की आवश्यकता होती है। विभिन्न कार्यवाहियो म पारस्परिक सामजस्य क अभाव म राष्ट्र का चतुर्मुखी आर्थिक विकास सम्भव नहीं होता। केवल नियोजित अर्थ व्यवस्था द्वारा ही राष्ट्र के समस्त साधन तथा आवश्यकताओ को दृष्टिगत करके विकास की ओर अग्रसर होना सम्भव है। राष्ट्र की दीर्घ तथा अल्पकालीन समस्याओ के आधार पर प्रयासो को निश्चित करके पूर्व निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति हो सकती है। १९४७ म भारत म राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के उपरान्त देश की आर्थिक समस्याओ का निवारण करने की दिशा म विचार किया गया। राष्ट्रीय सरकार को अपनी आर्थिक नीतियो का निश्चित करने के पूर्व निम्नलिखित अर्थ व्यवस्था के तत्कालीन स्वरूप के तत्वो पर ध्यान विशेषरूपेण केन्द्रित करना आवश्यक था—

(१) ब्रिटिश राज्य में देश की अर्थ व्यवस्था—अंग्रेजी सरकार द्वारा भारत की अर्थ व्यवस्था को इस प्रकार सगठित किया गया था कि इससे ब्रिटेन

के व्यापार को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। भारत को एक कृषि-प्रधान, विशेषकर कच्चा माल-उत्पादक देश बना दिया गया था तथा कृषि को भी एक अविकसित व्यवसाय की स्थिति हो गयी थी। जर्जर एवं छिन्न-भिन्न राष्ट्र मे खाद्यान्नो की न्यूनता की पूर्ति हेतु भी कोई ठोस प्रयत्न नहीं किये गये थे। ब्रिटिश शासन-काल मे भारतीय अर्थ-व्यवस्था के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार थे—

(अ) आय का अत्यधिक असमान वितरण।

(ब) आय का अधिकाश विलास की वस्तुओ तथा बहुमूल्य धातुओ, जैसे सोना व चाँदी एकत्रित करने के लिए उपयोग किया जाता था। धनी वर्ग, जिसकी आय अत्यधिक थी, अपनी बचत उत्पादन क्रियाओ मे विनियोजित करने के स्थान पर विलासिता की विदेशी सामग्री तथा अन्य सम्पत्तियो आदि पर व्यय करता था। इस प्रकार राष्ट्रीय बचत राष्ट्रीय आर्थिक विकास हेतु उपयोग मे नहीं लायी जाती थी।

(स) इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् भारत को ब्रिटेन द्वारा निर्मित वस्तुओ का विक्रय-स्थल मात्र बना दिया गया और भारत से कच्चे माल तथा खाद्यान्नो का निर्यात किया जाने लगा। इस प्रकार भारत को ब्रिटेन की कृषि-प्रधान पृष्ठभूमि मे परिवर्तित कर दिया गया था। भारत के उद्योग इस प्रकार सर्वथा नष्ट हो गये।

(द) भारतीय कृषि का भी विकास की ओर अग्रसर नहीं किया गया। भारतीय कृषक को पूंजी की न्यूनता, अच्छे उपकरणो का अभाव, भूमि सम्बन्धी कठोर विधान, अधिक लगान, भूमि पर जनसंख्या का निरन्तर बढता हुआ भार, कृषि की मानसून पर निर्भरता और सिंचाई के साधनो की अत्यन्त कमी, भूमि का छोटे छोटे अलाभकारी टुकडो मे विभाजन आदि कठिनाइयो का सामना करना पडता था। कृषक की आय तथा उत्पादन दोनो इतने कम हो गये थे कि उसके द्वारा कृषि पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या का भरण-पोषण भी कठिन था। गहरी खेती के लिए कोई सुविधाएँ प्राप्त न होने के कारण उत्पादन मे निरन्तर कमी होती जा रही थी।

(य) ब्रिटिश शासन ने भारतीय सभ्यता को क्षति पहुँचाने मे कोई कमी नहीं रखी। जन-समुदाय के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के लिए उचित शिक्षा, गृह निर्माण, दलित तथा पिछड़ी जातियों का विकास, श्रम हितकारी योजनाओ आदि की ओर कोई कार्यवाही नहीं की गयी। जन-समुदाय मे परिश्रम और विशेषकर शारीरिक परिश्रम के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी गयी। शिक्षा द्वारा

कार्यालयों के लिए बाबू' उत्पन्न किए गए तथा वैज्ञानिक एवं तान्त्रिक प्रशिक्षण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

इस प्रकार भारतीय आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन कर दिए गए कि ब्रिटेन के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को उच्चतम सीमा तक पहुँचाने में पूरक का कार्य करें। इस समस्त व्यवस्था में परिवर्तन तथा सुधार करने के लिए सम्पूर्ण भारत को एक इकाई मान कर योजनाबद्ध कार्यक्रम का संचालन करना आवश्यक था।

(२) विभाजन का प्रभाव—स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देश का विभाजन भी हो गया जिससे भारत की आर्थिक समस्याएँ और भी गम्भीर हो गयीं। भारत को १ २२०,००० वर्गमील क्षेत्र तथा ३३ ७ करोड़ जनसंख्या और पाकिस्तान को ३ ६१ ००० वर्गमील क्षेत्र तथा ८ करोड़ जनसंख्या प्राप्त हुई। इस प्रकार भारत को २७६ व्यक्ति प्रति वर्गमील तथा पाकिस्तान को २२२ व्यक्ति प्रति वर्गमील के हिसाब से प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान को कृषि योग्य भूमि अधिक उपजाऊ थी जिसके ४५% भाग में सिंचाई के साधन उपलब्ध थे। इसके विपरीत भारत में कृषि योग्य भूमि को केवल २४ ५ भाग में ही सिंचाई के साधन उपलब्ध थे। इसके फलस्वरूप भारत को खाद्यान्नों तथा कच्चे माल की न्यूनता की कठिनाई का सामना करना पड़ा।

विभाजन के पश्चात् औद्योगिक क्षेत्र में भारत के सम्मुख और भी अधिक कठिनाइयाँ आयीं। अधिकतर बृहद उद्योग भारत को मिले। परन्तु कच्चे माल के उत्पादन के क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये। १९४५ की सूचनाओं के आधार पर अविभाजित भारत की ६० ४% औद्योगिक इकाइयाँ जिनमें समस्त कर्मचारियों का ६३ ५% भाग काम करता था भारत को मिल। जूट ऊन कागज आदि कच्चे माल की प्राप्ति में बड़ी कठिनाइयाँ हुईं जबकि खान का सामान, चीनी का सामान, रोजिन आदि उद्योगों का कच्चा माल भारत में उत्पादित होता था। इनके उद्योग पाकिस्तान को मिले। सूती वस्त्र उद्योग की ३९४ मिलों में से ३८० भारत में आयीं परन्तु ४०% कपास उत्पादन करने वाला क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया।

विदेशी व्यापार के क्षेत्र में विभाजन के फलस्वरूप भारत के निर्यात में कमी और आयात में वृद्धि हो गयी क्योंकि खाद्यान्नों तथा मशीनों आदि का अधिक आयात किया जाने लगा जबकि निर्यात-योग्य वस्तुएँ जैसे जूट-निर्मित वस्तुएँ कपड़ा कच्चा माल आदि का उत्पादन कम हो जाने के कारण इनका निर्यात कम हो गया।

विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान से बड़ी मात्रा में विस्थापित भारत

आये। इन विस्थापितों को आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने तथा उनके पुनर्वास का आयोजन करना भारत सरकार को अत्यावश्यक हो गया था। इस प्रकार विभाजन द्वारा भारत की अर्थ-व्यवस्था को बडी क्षति पहुँची, और इस क्षति की पूर्ति करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास की आवश्यकता स्वाभाविक थी।

(३) स्वतन्त्रता के पश्चात् जनता की भावनाएँ—सन् १९४७ तक भारत की समस्त मानवीय शक्तियाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति मे लगी हुई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जन-समुदाय मे नवीन सुखमय जीवन की आशा ने तीव्रता ग्रहण कर ली। इस समय नवीन राष्ट्रीय भावना उत्पन्न हुई जिसने प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र के पुर्ननिर्माण तथा सुखमय जीवन बनाने के कार्यक्रमो मे सहयोग देने के लिए प्रेरित किया। जन-साधारण को राष्ट्रीय सरकार से आशा थी कि वह देश का पुनर्संगठन इस प्रकार करेगी कि उनकी आर्थिक तथा सामाजिक सम्पन्नता का स्वप्न पूर्ण हो जायगा। इन विचारधाराओ की पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान मे नीति निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy) द्वारा देश की भावी आर्थिक तथा सामाजिक जीवन की व्यवस्था निश्चित की गयी। इन आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा निम्न सुविधाओ का आयोजन किया गया—

(अ) जीवन-स्तर तथा भोजन मे वृद्धि।

(ब) जन-साधारण के कार्य करने, शिक्षा प्राप्त करने तथा सामाजिक बीमा (Social Insurance) के अधिकार को मान्यता।

(स) महत्वपूर्ण भौतिक साधनो के अधिकार तथा नियन्त्रण में परिवर्तन जिससे सामान्य हित हो।

(द) समस्त श्रमिको को परिपूर्ण जीवन (Fuller Life) का सम्पूर्ण अधिकार (Universal Right)।

(य) कृषि तथा पशु अर्थ-व्यवस्था का नवीनीकरण तथा गृह उद्योगो की उन्नति।

राष्ट्रीय सरकार को इन आयोजनो की पूर्ति हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रम की व्यवस्था करना आवश्यक था। इसीलिए मार्च १९५० मे योजना आयोग की स्थापना की गयी जिसने अपने कार्यक्रमो को तीन मुख्य भागो मे विभाजित किया—

(अ) द्वितीय महायुद्ध तथा विभाजनोपरान्त की समस्याओ का निवारण तथा अनियमित व्यवस्था का निरस्तीकरण।

(ब) दीर्घकालीन आर्थिक असन्तुलन का निवारण।

(स) राजकीय नीतियों के आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा निश्चित आयोजनों की पूर्ति हेतु आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण।

(४) द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् मूल्यों में वृद्धि—द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् देश में मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो गयी थी। थोक मूल्यों में ४½ गुनी वृद्धि हो गयी थी। इस प्रकार श्रमिकों के रहन-सहन के लागत सूचक अंक (Cost of Living Index) में देश के विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में ३ से ४ गुनी वृद्धि हुई। मुद्रा स्फीति के दबाव को कम करने के लिए योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक थी।

इस प्रकार बढ़ते हुए मूल्यों, कच्चे माल की कमी, उपभोक्ता वस्तुओं, विशेषत खाद्यान्नों की कमी, विस्थापितों के पुनर्वास की समस्याओं का निवारण करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम निश्चित किये गये। उपर्युक्त अल्पकालीन समस्याओं के अतिरिक्त कुछ दीर्घकालीन समस्याओं के हल को भी दृष्टिगत करना आवश्यक था। इन समस्याओं का योजना आयोग ने इस प्रकार विश्लेषण किया—

(१) बढ़ती हुई जनसंख्या जिसकी वृद्धि की गति १९२१ ३१ तक ११% थी और १९४१ ५१ के मध्य १४ ३% हो गयी थी।

(२) इसी काल में व्यावसायिक ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। १९११ में लगभग ७१% जनसंख्या और १९४८ में (राष्ट्रीय आय समिति के अनुमानानुसार) ६८ २% जनसंख्या कृषि में लगी हुई थी। इसमें से भी व्यक्तियों की बड़ी मात्रा को वर्ष के अल्प समय में कार्य मिलता था। कृषि पर से जनसंख्या के भार को कम करने तथा अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की आवश्यकता थी।

(३) १९११ में ब्रिटिश भारत में प्रति व्यक्ति बोया जाने वाला क्षेत्र ०.८८ एकड़ था, जो १९४१-४२ में ० ७२ एकड़ रह गया। विभाजन के पश्चात् १९४८ में प्रति व्यक्ति बोया जाने वाला क्षेत्र केवल ० ७१ एकड़ ही था। कृषि उत्पत्ति की न्यूनता का निवारण करने के लिए कृषि के क्षेत्र को बढ़ाने की अत्यधिक आवश्यकता थी।

(४) औद्योगिक क्षेत्र में १९२२ में संरक्षण की नीति का अनुसरण करने के फलस्वरूप कुछ उद्योगों का शीघ्र विकास हुआ। उदाहरणार्थ लोहा और इस्पात, सीमेंट तथा शक्कर। द्वितीय महायुद्ध में औद्योगिक क्षेत्र का और भी विकास हुआ। इतना होते हुए भी संगठित औद्योगिक क्षेत्र में केवल २४ लाख श्रमिक ही कार्य करते थे। औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करके ही

कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रम को लाभप्रद रोजगार दिया जा सकता था तथा जन-साधारण के जीवन-स्तर मे वृद्धि सम्भव थी।

(५) राष्ट्रीय आय के तुलनात्मक साक्ष्य उपलब्ध नहीं थे। १६४८-४९ के अनुमानानुसार प्रति व्यक्ति आय २५५ रु० थी। मूल्यो की वृद्धि को दृष्टिगत करते हुए इस आय का वास्तविक मूल्य गत वर्षों के अनुमानो से किसी प्रकार अधिक नहीं कहा जा सकता था। उत्पादन तथा उपभोग का न्यून स्तर दीर्घ-कालीन रहने के कारण बचत की मात्रा अत्यन्त न्यून थी।[1]

उपर्युक्त दीर्घकालीन प्रवृत्तियो से स्पष्ट है कि देश मे निर्धनता तथा बेरोजगारी, भूख और बीमारी का साम्राज्य था और इसका निवारण नियोजित व्यवस्था द्वारा ही सम्भव था। विकास की गति प्रदान हेतु देश के साधनो का पूर्णतम तथा कार्यशील उपयोग किया जाना आवश्यक था।

भारत मे नियोजन का प्रकार

भारत मे नियोजन को एक नवीन रूप प्रदान किया गया है। नियोजन का कार्यक्रम तथा उसको क्रियान्वित करने की विधि प्रत्येक राष्ट्र की मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साम्कृतिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी परिस्थितियो के आधार पर ही निश्चित किया जाना है। जिस प्रकार भयानक परिस्थितियो जैसे युद्धादि मे राष्ट्र के समस्त साधनो, मानवीय तथा भौतिक को एकमात्र उद्देश्य की प्राप्ति मे ही लगा दिया जाता है तथा राष्ट्रीय नीति के प्रति समस्त राष्ट्र मे एकता का भाव उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार शान्ति के वातावरण मे एकता की भावना द्वारा नियोजन को सफल बनाने म सहायता मिलती है। साधारण जनता म नियोजन के रचनात्मक उद्देश्यो के प्रति तत्परता उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक होना है क्योकि इसके द्वारा ही साधनो का उपयोग अधिकतम हित के लिए किया जा सकता है।

प्रथम पचवर्षीय योजना समस्त भारत को एक इकाई मान कर भारतीय अर्थ-व्यवस्था का योजनाबद्ध विकास करने का प्रथम प्रयास था। योजना आयोग को सरकारी नीतियो के आधारभूत सिद्धान्तो तथा तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के आधार पर योजना का प्रकार निश्चित करना था। भारतीय नियोजन द्वारा राष्ट्र के भौतिक साधनो का विकास करने का ही प्रयास नहीं किया गया है प्रत्युत् मानवीय जीवन का बहुमुखी विकास करना इसका मुख्य उद्देश्य है। नियोजन द्वारा ऐसे समाज की स्थापना करने का प्रयास किया गया कि जिसम योजना से आधारभूत उद्देश्यो की पूर्ति

1. *The First Five Year Plan—Draft Outline, p. 14.*

सफलतापूर्वक हो सके। नियोजन की सफलतार्थ समन्वित तथा प्रभावशील प्रयासों की आवश्यकता होती है। भारतीय संविधान द्वारा राज्य का उत्तरदायित्व है कि विकास सम्बन्धी क्रियाओ का संचालन करे और इसलिए इन प्रयासो मे राज्य को महत्वपूर्ण भाग लेना आवश्यक था। राज्य को इस प्रकार राष्ट्र के समस्त साधनो को सविधान द्वारा निर्धारित प्रजातान्त्रिक विधियो से योजना को क्रियान्वित करने हेतु उपयोग मे लाना था।

प्रजातान्त्रिक राष्ट्र मे सरकार की योजना-निर्माण, योजनानुकूल नीतियाँ निर्धारित करने तथा उनके प्रभावशील संचालन तथा त्रियान्वित करने की योग्यता जनता की सहायता तथा सहयोग पर निर्भर रहती है। साम्यवादी राष्ट्रो मे नियोजन एक अनन्य अधिकार प्राप्त केन्द्रीय अधिकारी के हाथ मे होता है। ऐसी परिस्थिति मे नियोजन के कार्यक्रम का सचालन तथा लक्ष्यो की प्रगति शीघ्रता एवं सुगमता से हो जाती है। परन्तु इस प्रकार की अनन्य अधिकारपूर्ण व्यवस्था मे कतिपय आधारभूत तत्त्वो को जो मानव जीवन के महत्वपूर्ण अग होते हैं, क्षति पहुँचती है तथा जन-साधारण को कठिनाइयो तथा आपत्तियो का सामना करना पडता है। यद्यपि अनन्य अधिकारपूर्ण (Totalitarian) व्यवस्था तथा प्रजातान्त्रिक नियोजन दोनो मे जन समुदाय को समानरूपेण त्याग करना पड़ता है परन्तु प्रजातान्त्रिक विधि मे यह त्याग नियोजन के उद्देश्यो को विवेक-पूर्ण रीति से स्वीकृत करके अथवा ऐच्छिक होता है। इस प्रकार प्रजातान्त्रिक विधियाँ अधिक जटिल है तथा इनमे राज्य और जनता का उत्तरदायित्व अत्यधिक होता है परन्तु प्रजातान्त्रिक विधियो द्वारा विकास-पथ पर अग्रसर होने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है तथा इस हेतु किसी प्रकार के दबाव का उपयोग नहीं किया जाता।

भारतीय सविधान मे व्यक्तिगत आधारभूत स्वतन्त्रता तथा उत्पादन के साधनो को अधिकार मे रखने तथा उन्हे-बेचने आदि की स्वतन्त्रता, सामाजिक सुरक्षा तथा जन-साधारण के शोषण को रोकने आदि के आयोजन है। इन मूलभूत तत्त्वो के आधार पर भारत मे प्रजातात्रिक नियोजन को ही स्थान दिया गया है। मानवीय इतिहास मे प्रजातान्त्रिक नियोजन इतने बृहद् आकार मे किसी देश मे कार्यान्वित नहीं किया गया है। यह एक नवीन प्रयोग है जिसकी सफलता अथवा असफलता विश्व के अनेक राष्ट्रो का मार्गदर्शन करेगी। भारत मे नियोजन की सफलता इस पुराने विचार कि नियोजन तथा प्रजातन्त्र का सामजस्य असम्भव है, को निरस्त कर देगी तथा समस्त विश्व को यह मान लेना पड़ेगा कि नियोजन को बिना किसी हिंसक क्रान्ति

तथा दबाव के एव जन-साधारण को आधारभूत स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित किए बिना ही सफल बनाया जा सकता है।

प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता

"प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलतार्थ उच्चाधिकारियो का योग्य होना ही पर्याप्त नहीं अपितु उचित व्यवस्था की भी आवश्यकता होती है, एक केन्द्रीय नियोजन सस्था असफल रहगी, सफलता हेतु प्रत्येक स्तर पर तथा अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के प्रत्येक स्तर पर नियोजन अधिकारियो की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थानीय, क्षत्रीय एव राष्ट्रीय सगठन होने चाहिए तथा प्रत्येक उद्योग म पृथक नियोजन अधिकारी होना चाहिए।

"इस प्रजातात्रिक नियोजन के पूर्णरूपेण क्रियान्वित करन म समय लगना अनिवार्य है, इसका कठिन होना अनिवार्य है, इसम अनक त्रुटियाँ होना तथा सहयोग की असफलताओ का समन्वय भी होना है।

"प्रजातात्रिक प्रकार के नियोजन का सचालन तब तक सम्भव नहीं होना जब तक कि बुद्धिमानो की सख्या अधिक तथा पारस्परिक सहयोग की शक्ति अत्यधिक विकसित न हो। रूसियो को अपनी प्रारम्भिक योजनाओ म तात्रिक तथा शासन दोनो ही क्षत्रो म योग्य तथा प्रशिक्षित कमचारियो की वास्तविक न्यूनता की कठिनाई का सामना करना पडा।"[1]

प्रो० टी० एन० रामास्वामी न प्रथम पचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट पर

---

1 "The achievement of this kind of Planning requires not only the right set of men at the top but also the right machinery. It cannot be achieved merely be establishing a Central Planning Organisation It necessarily involves the existence *of machinery for Planning at every level and in every com*partment of the economy at each level It means that these must be regional and local as well as national organisations for Planning that each industry must have its own Planning Machinery

"Inevitably this Democratic Planning will take time to bring into full operation and is bound to be difficult and to involve many mistakes and failures in co operation

"Planning of the democratic type is not possible except where the supply of intelligence is large and capacity for association highly developed The Russians' greatest difficulty in their earliest plans was the shortage of trained and competent people on both the technical and administrative side"

(Prof. Cole, *Economics Odhams*, pp 284, 286, 287)

आलोचना करते हुए लिखा है, 'प्रजातान्त्रिक नियोजन मे यह मान लिया जाता है कि बुद्धिमत्तापूर्ण (Enlightened) लोकतन्त्र विद्यमान है जिसमे जन साधारण को केवल इतना ही ज्ञान नहीं कि प्रतिदिन के जीवन म नियोजन का क्या महत्व है प्रत्युत यह भी ज्ञान होता है कि समस्त जन समुदाय के जीवन स्तर मे उन्नति करने के लिए ऐसी नियोजित व्यवस्था की आवश्यकता होती है जो अत्यन्त जटिल तथा सतुलित हो तथा जो प्रत्येक खेत तथा कारखान पर छायी हुई हो और जिसके द्वारा प्रत्येक नागरिक मे सहयोग भावना जाग्रत की जाती हो। जन-साधारण म नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रति जागरूकता होने पर ही प्रजातान्त्रिक नियोजन सफल हो सकता है। [1]

इस प्रकार प्रजातान्त्रिक नियोजन के सफलतार्थ जन साधारण मे योजना के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक होता है। योजना आयोग ने उपयुक्त समस्त कठिनाइयो को दृष्टिगत करते हुए भी प्रजातान्त्रिक नियोजन को ही महत्त्व दिया क्याकि भारत के परम्परागत जीवन म यही एकमात्र सफल विधि थी जिसके द्वारा आर्थिक विकास सम्भव था।

उपयुक्त विचारा के आधार पर प्रजातान्त्रिक नियोजन के सफलतार्थ आवश्यक तत्वो का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) कुशल केन्द्रीय नियोजन सगठन की स्थापना करना प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता के लिये आवश्यक है। इस नियोजन सगठन को एक ओर राज्य से सत्ता प्राप्त हो और दूसरी ओर जन सहयोग प्राप्त होना चाहिए। राष्ट्रीय राजनीतिक ढाँचा इस प्रकार का हो कि सत्तारूढ दल राष्ट्रीय नियोजन सगठन को आवश्यकतानुसार अधिकार दे सके और विरोधी दल इतने शक्तिशाली न हो कि नियोजन के कार्यक्रमो मे बाधाय खडी कर सके।

(२) कुशल केन्द्रीय नियोजन सगठन के साथ साथ प्रजातान्त्रिक नियोजन

1. "Democratic Planning assumes the existence of an enlightened democracy where people are not only alive to the importance of Planning for their everyday life, but also the erection of a highly complicated and delicately balanced planning machinery which will pervade every farm and factory infusing the spirit of co operation on the part of each citizen in the difficult and strenuous crusade for higher standards of life for the entire community It is only the existence of spirit of Planning among the bulk of pepole that can render a Democratic Planning successful"

(T N Ramaswamy *Economic Analysis of the Draft Plan*, p 10)

मे कुशल क्षेत्रीय एव स्थानीय अधिकरियो की भी आवश्यकता होती है जिनमे प्रारम्भिकता (Initiative) का भाव हो और जो जन-सहयोग प्राप्त कर सकें।

(३) प्रजातत्र मे जन साधारण को राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक एवं न्याय सम्बन्धी स्वतन्त्रतायें दी जाती है। जन-समुदाय मे बुद्धिमान लोगो का अभाव नहीं होना चाहिये। वह योजना सम्बन्धी नीतियो को समझ सकें, योजना के कार्यक्रमो के प्रति अपने कर्तव्यो को निभा सकें, योजना की विनाशकारी आलोचना न करें तथा अपनी स्वतन्त्रताओ का दुरुपयोग न करें। इसके अतिरिक्त प्रजातान्त्रिक नियोजन मे सत्ताओ के विकेन्द्रीयकरण का आयोजन किया जाता है। जन-साधारण मे इतनी योग्यता होना आवश्यक है कि वे इन सत्ताओ का सदुपयोग कर सकें।

(४) राष्ट्रीय चरित्र के स्तर के ऊँचा होने की आवश्यकता प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता के लिये होती है। सरकारी कर्मचारियो एव क्षेत्रीय तथा स्थानीय नेताओ के हाथ मे नियोजन का सचालन करना होता है। इन लोगो की ईमानदारी, कार्यदक्षता, सेवा भावना, कर्तव्यपरायणता आदि पर ही योजना के विभिन्न कार्यक्रमो की सफलता निर्भर होती है।

भारत मे बहुत से अर्थशास्त्रियो का यह विचार था कि भारत का शीघ्र विकास केवल साम्यवादी नियोजन द्वारा सम्भव हो सकता था परन्तु भारत की आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था म कुछ ऐसे मौलिक तत्व निहित है कि साम्यवादी नियोजन भारत के लिये उपयुक्त नही हो सकता था। निम्नलिखित तत्वो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साम्यवादी नियोजन भारत के लिये उपयुक्त नही हो सकता है।

(१) साम्यवादी नियोजन का संचालन साम्यवादी सरकार द्वारा ही किया जा सकता है। भारत म सत्तारूढ दल अर्थात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस साम्यवादी सिद्धान्तो से पूर्णत सहमत नही है। इस दल का विचार है कि आर्थिक विकास हेतु कठोर साम्यवादी विधियो का उपयोग करना आवश्यक नहीं है। इस दल का विश्वास है कि प्रजातान्त्रिक विधियो द्वारा भी विकास की गति को तीव्र रखा जा सकता है।

(२) भारतीय समाज के ऐतिहासिक अवलोकन से प्रतीत होता है कि भारत मे सदैव व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओ को विशेष महत्व दिया गया है। जन-साधारण स्वभावत आर्थिक सम्पन्नता की तुलना मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अधिक महत्व देता है। ऐसी परिस्थिति मे साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था के कठोर केन्द्रीयकरण को अपनाना भारत मे सम्भव नहीं होगा।

(३) भारत के सामाजिक एव राजनीतिक जीवन पर ब्रिटेन का प्रभुत्व

१०० वर्षों से भी अधिक समय तक रहा है। अंग्रेज स्वभावतः प्रजातान्त्रिक विधियो मे विश्वास रखते हैं और ब्रिटेन में जन साधारण को प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत इतनी अधिक सुविधायें प्राप्त हुई हैं कि कठोर साम्यवादी नियमन की व्यवस्था की ओर भारतीय जन-समुदाय कम आकर्षित हुआ। भारतीय नेताओ पर अंग्रेजी सभ्यता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है और ब्रिटेन की विकास विधियो का बहुत अधिक अनुसरण हमारे देश म किया गया है।

(४) भारतवासिया के जीवन म धर्म को विशेष स्थान प्राप्त है। प्रत्येक क्षेत्र पर धार्मिक विचारधाराओ की छाप लगी रहती है। साम्यवाद के अन्तगत धम को जीवन का एक अत्यन्त कम महत्व रखन वाला तत्व समझा जाता है। भारतवासी इसी कारण से साम्यवाद की ओर कम आकर्षित होता है। साम्यवाद म भौतिकवाद का बोलबाला होता है और जिस देश म जन साधारण के मस्तिष्क को भौतिकवाद आच्छादित कर लेता है उन्हीं राष्ट्रो म साम्यवाद पनपता रहता है। भारत मे आध्यात्मवाद को भौतिकवाद के ऊपर प्राथमिकता प्राप्त होन के कारण साम्यवादी नियोजन को स्थान नही दिया जा सकता था।

(५) भारत को आर्थिक विकास के हेतु विदेशी सहायता की बहुत अधिक आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति का एक देश नहीं कर सकता था। भारत म साम्यवादी अर्थ व्यवस्था के सचालन का अर्थ होता है कि विदेशी सहायता केवल साम्यवादी राष्ट्रो से ही मिल सकती थी। अमरीका तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रो से सहायता प्राप्त करन के हेतु राष्ट्र म प्रजातन्त्र की स्थापना करना आवश्यक था। प्रजातान्त्रिक नियोजन के लिये भारत को साम्यवादी एव प्रजातान्त्रिक दोनो ही दलो स सहायता प्राप्त हो रही है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था

ऐतिहासिक अवलोकन—प्राचीन काल म सामान्यत इस विचार को मान्यता प्राप्त थी कि राज्य को देश की आर्थिक क्रियाओ मे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और व्यक्तियो एव आर्थिक संस्थाओ को पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इस काल म लगभग सभी राष्ट्रो मे व्यक्तिगत [illegible] को समाज का एक मुख्य अंग माना जाता था। इसके साथ इस विचार को भी विशेष मान्यता थी कि राज्य आर्थिक क्रियाओ का सचालन सुचारू रूप से तथा मितव्ययता के साथ नहीं कर सकता है। राज्य एव व्यापारी दोनो के स्वभाव मे अत्यधिक असमानता होती है। निजी साहसी कुशलता एव मित व्ययता से अपने व्यवसायो को चलाता है। उसमे उद्योगो की उन्नति के लिये प्रारम्भिकता तथा उत्साह होता है। वह अपनी पूजी लगाकर व्यवसाय चलाता है और व्यवसाय के लाभ अथवा हानि के लिये स्वय जिम्मेदार होता है जिस

कारण से वह अपव्यय कदापि नही करता है। इसके विपरीत राज्य जटिल नियमो मे बँधा होता है। उसमे व्यक्तिगत उत्साह एव रुचि का अभाव होता है। वह जनता का धन लगा कर व्यवसाय चलाता है। राज्य द्वारा चलाये व्यवसायो मे जिम्मेदारी का विकेन्द्रीयकरण हो जाता है। इन कारणो से राज्य द्वारा संचालित व्यवसायो मे अपव्यय होना है। प्राचीन अर्थशास्त्रियो के यह विचार इतनी दृढतापूर्वक प्रारम्भ मे स्वीकार किये गये कि उत्पादक एव उपभोक्ता की स्वतन्त्रता आर्थिक क्रियाओ के प्रत्येक क्षेत्र पर आच्छादित हो गयी और स्वतन्त्र व्यापार (Laissez Faire) को आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य अग माना जाने लगा। स्वतत्र साहस एव स्वतत्र व्यापार की व्यवस्था ने कट्टर पक्षपातियो मे एडम स्मिथ, ज० बी० से, डेविड रिकार्डो, मिल आदि अर्थशास्त्री थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से स्वतत्र व्यापार एव अर्थ-व्यवस्था के दोष अर्थशास्त्रियो को ज्ञात होने लगे। स्वतत्र व्यापार के फलस्वरूप गलाकाट प्रतिस्पर्धा, पारस्परिक शोषण, व्यापार चक्र, आर्थिक उतार चढाव और आर्थिक सकट आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोषो ने लोगो का स्वतत्र व्यापार की उपयुक्तता पर से विश्वास उठा दिया। प्रथम महायुद्ध के समय स्वतत्र व्यापार का काफी पतन हो गया था। इसी समय कीन्स (Keynes) की पुस्तक, End of Laissez Faire, 1926) प्रकाशित हुई जिसम स्वतत्र व्यापार के दोषो का उल्लेख किया गया। उसी समय मन्दी एव आर्थिक सकट उत्पन्न हुए जिनसे कीन्स के विचारो को और पुष्टि प्राप्त हुई। इस प्रकार स्वतत्र व्यापार की नीति का पतन होता चला गया और यह विश्वास किया जाने लगा कि राज्य आर्थिक क्रियाओ मे हस्तक्षेप करके स्वतन्त्र व्यापार एव साहस से उत्पन्न हुई कठिनाइयो को रोक सकता है। इस विचारधारा को पुष्टि मिलने लगी कि स्वतत्र व्यापार के दोषो का निवारण समाजवाद द्वारा किया जा सकता है। इसी समय पीगू (Pigou) ने अपनी पुस्तक समाजवाद बनाम पूंजीवाद (Socialism Versus Capitalism) मे बताया कि उत्पादन को समाजीकृत करके आर्थिक शान्ति स्थापित की जा सकती है। उन्होने विचार प्रकट किया कि केन्द्रीय नियोजन प्रणाली पूंजीवादी व्यवस्था की तुलना मे कही अच्छी है। प्रो० कीन्स ने पूर्ण समाजीकरण का विरोध किया। उनका विचार था कि राज्य स्वय साहसी के रूप मे कुशलता से कार्य नहीं कर सकता है। उनके विचार मे देश की सर्वोत्तम अर्थ-व्यवस्था वह होगी जिसमे स्वतत्र साहस राज्य के नियमन मे सचालित किया जाता हो।

सन् १९२८ के पश्चात् रूस मे केन्द्रीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप आश्चर्यजनक विकास हुआ जिसने पूंजीवाद की नीवो को हिला दिया और पूंजीवाद पर से लोगो का विश्वास हटने लगा। बहुत से राष्ट्रो ने पूंजीवादी

व्यवस्था को त्याग दिया और समाजवाद का अनुसरण करने लगे। कुछ अन्य राष्ट्रों ने पूंजी के स्वरूप मे परिवर्तन कर दिये और पूंजीवाद में भी राजकीय नियन्त्रण को स्थान दिया जाने लगा। चीन की समाजवादी व्यवस्था ने पूंजीवाद के प्राचीन स्वरूप को और भी ठेस पहुँचायी। चीन की योजनाओ की सफलता से अब यह विश्वास दृढ होता जा रहा है कि शीघ्र आर्थिक विकास के लिये नियोजित अर्थ-व्यवस्था अनिवार्य है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था का महत्व—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन का सचालन किया जाना सम्भव न होने के कारण, पिछले १० से २० वर्षो मे बहुत से राष्ट्रो ने मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपना लिया है। वास्तव मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था भारत के लिये कोई नवीन व्यवस्था नहीं है। स्वतन्त्र व्यापार एव स्वतन्त्र साहस के पतन के पश्चात् लगभग समस्त पूंजीवादी राष्ट्रों में राज्य आर्थिक क्रियाओ मे हस्तक्षेप करने लगा है जिसके कारण मिश्रित अर्थ व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। लगभग सभी राष्ट्रो मे रेलें, डाक व तार तथा सचार आदि व्यवसायो तथा जनोपयोगी सेवाओ को राजकीय क्षेत्र द्वारा सचालित किया जाता है। जब किसी राष्ट्र मे राजकीय क्षेत्र का अधिक विस्तार हो जाता है, तो अर्थ-व्यवस्था की प्रवृत्ति को समाजवादी कहा जाता है। दूसरी ओर जब किसी राष्ट्र मे राजकीय क्षेत्र की तुलना मे निजी क्षेत्र का महत्व अर्थ-व्यवस्था मे अधिक होता है तो ऐसी अर्थ-व्यवस्था की प्रवृत्तियो को पूंजीवादी कहा जाता है। वास्तव मे प्रत्येक राष्ट्र मे जब पूंजीवाद से समाजवाद की ओर कदम बढाये जाते है तो समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना के पूर्व मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक होता है क्योकि समाजवाद की स्थापना करने के लिये कुछ समय की आवश्यकता होती है।

ग्रेट ब्रिटेन मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत नियोजन का सचालन सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन मे किया गया था। ब्रिटेन की लेबर सरकार ने कुछ उद्योगो एव जनोपयोगी सेवाओ का राष्ट्रीयकरण करके सामूहिक नियत्रण एव नियोजित अर्थ व्यवस्था की स्थापना की। बैंक आफ इगलैंण्ड, केबिल एव वायरलैस, हवाई यातायात कोयले की खाने, अन्तर्देशीय यातायात, बिजली तथा गैस आदि का राष्ट्रीयकरण किया गया। इन सब व्यवसायो को सरकारी क्षेत्र मे ले लिया गया और शेष उद्योगो एव व्यवसायो को निजी क्षेत्र के लिये छोड दिया गया परन्तु इन पर राज्य ने कुछ नियन्त्रण एव प्रतिबध रखे। कच्चे माल को विभिन्न उद्योगो के लिये आवटित करने पर सरकार को नियन्त्रण था। औद्योगिक वस्तुओ जैसे मशीनें एव मशीनो के औजारो का वितरण लाइसेंस द्वारा किया जाता था। आवश्यक उद्योगों के लिये जन-शक्ति

के वितरण पर भी राज्य का नियत्रण था। कुछ वस्तुओं के उत्पादन पर रोक लगायी गयी तथा कुछ वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा निर्धारित कर दी गयी। इसके अतिरिक्त बजट, ट्रजरी तथा राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक द्वारा बहुत से वित्तीय नियन्त्रण भी लगाये गये। सन् १६४५ म उद्योगो के वितरण का विधान (The Distribtuion of Industries Act, 1945) पास किया गया जिसके द्वारा राज्य को नवीन उद्योगो क स्थानीयकरण पर नियन्त्रण प्राप्त हो गया था।

भारत मे मिश्रित अर्थ व्यवस्था—भारत म सार्वजनिक एव निजी दोनो ही क्षेत्रो का अर्थ-व्यवस्था मे स्थान देन की आवश्यकता समझी गयी। राज्य ने अपनी नीतियो का लक्ष्य समाजवादी प्रकार का समाज तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना स्वीकार कर लिया। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपनाना उपयुक्त समझा गया।

राज्य का भारतीय सविधान द्वारा जन-समुदाय के हिताय सामाजिक व्यवस्था का पुनर्सगठन करने का उत्तरदायित्व प्रदान किया गया। राज्य का कार्य अब शासन मात्र नही रहा अपितु उसका देश के सर्वागीण विकास का उत्तरदायित्व भी आ गया। राज्य को समस्त नागरिको को सामाजिक अन्याय तथा समस्त प्रकार के शोषण से सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु देश के समस्त उत्पादन के साधनो तथा सभी प्रकार की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करन की आवश्यकता नहीं समझी गयी। *एक ऐसी गतिशील व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव का गयी जिसम राज्य को* राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था के महत्वपूर्ण एव आधारभूत क्षेत्रो पर अधिकार एव पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त हो। इन आधारभूत क्षेत्रो की सीमाओ के परे अलोक साहस (Private Enterprize) *को कार्य करन* का अवसर प्रदान करना था। परन्तु अलोक क्षेत्र (Private Sector) को भी राष्ट्रीय नीति के अनुकूल तथा राज्य के नियमन तथा नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करना वाछनीय था। इस प्रकार एक *मिश्रित अर्थ-व्यवस्था द्वारा नियोजन के मूल उद्देश्यो—उत्पादन वृद्धि तथा असमानता को कम करने की पूर्ति के लिये जाने का कार्यक्रम* बनाया गया। भारत म वर्तमान सविधान के आयोजनो के अन्तर्गत नियोजन के कार्यक्रमो को सफल बनान का यत्न किया गया।

१६४८ की औद्योगिक नीति को आधार मान कर लोक (Public) तथा अलोक साहस के क्षेत्रो को निश्चित किया गया। इसके अन्तर्गत राज्य का कर्त्तव्य था कि वह राजकीय क्षेत्र को जन्म दे तथा वृद्धि करे तथा उसके सफल सचालनार्थ

प्रयास करे। इसके साथ ही निजी क्षेत्र को भी राज्य द्वारा सरक्षण प्रदान किया जाना आवश्यक था क्योंकि सविधान मे व्यक्ति के मूल अधिकारो मे उसे उत्पादन के साधनो पर अधिकार रखने तथा उनका क्रय विक्रय करने का अधिकार दिया गया था। राज्य को किसी भी निजी सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्ति हेतु क्षति-पूर्ति करना आवश्यक है। इस प्रकार अलोक क्षेत्र का पूर्ण-रूपेण राष्ट्रीयकरण करना असम्भव था क्योंकि राज्य के पास पर्याप्त अर्थ-साधन नही थे तथा निजी क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण द्वारा अलोक क्षेत्र ने अधिकार मे क्षति-पूर्ति के रूप मे प्राप्त धन फिर भी रह जाता और वह उत्पादन के साधनो पर किसी अन्य रूप म अधिकार प्राप्त कर सकता था। इसके अतिरिक्त योजना मे उत्पादन-वृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी थी तथा इस वृद्धि की शीघ्रातिशीघ्र प्राप्ति हेतु वर्तमान उत्पादन-व्यवस्था को सर्वथा छिन्न-भिन्न करना अनुचित था। इन्ही कारणो से सामान्य राष्ट्रीयकरण की नीति को योजना मे नही अपनाया गया। परन्तु राज्य को आधारभूत क्षेत्रो पर पूर्ण नियन्त्रण उपलब्ध कराने के लिए उनका राष्ट्रीयकरण किया जा सकता था।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे लोक क्षेत्र के बढाने को प्राथमिकता दी गयी थी। भारत मे राजकीय क्षेत्र राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था के अत्यन्त अल्प भाग पर नियन्त्रण रखता था। सन् १९४८-४९ म राजकीय व्यवसायो का उत्पादन ७६० करोड रु० था जब कि इसी वर्ष मे निजी क्षेत्र के व्यवसायो का उत्पादन ७९७० करोड रु० था। प्रथम पचवर्षीय योजना मे राजकीय क्षेत्र पर २०६९ करोड रु० व्यय किये जाने का निश्चय किया गया।

एशिया तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के राष्ट्रो मे प्रजातान्त्रिक नियोजन को विशेष मान्यता प्राप्त हुई। पूर्णत नियोजित व्यवस्था अथवा कठोर समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रजातान्त्रिक विधियो का सचालन सुलभ नही होता है। प्रजातन्त्र मे सरकार की स्थापना जन-साधारण के चुनाव के आधार पर की जाती है और जन साधारण को पूर्ण स्वतंत्रता होती है कि वह किसी भी दल को सत्तारूढ करे। यदि जन-साधारण को इस स्वतत्रता को आर्थिक क्षेत्र मे जारी रहने दिया जाय तो पूँजीवाद का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक होगा। प्रजातान्त्रिक राज्य मे नियोजित अर्थ-व्यवस्था का सचालन करने हेतु इसीलिये मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता होती है क्योंकि इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रजातान्त्रिक विधियो का कुछ सीमा तक उपयोग करना सुलभ होता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे पूँजीवाद एव समाजवाद दोनो के ही गुणो का समन्वय होता है। इसमे पूँजीवाद के गुणों मे से उपभोक्ता तथा साहसी की स्वतत्रता को कुछ सीमा तक अपनाया जाता है

तथा अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रो मे निजी क्षेत्र को कार्य करने का अवसर दिया जाता है। दूसरी ओर मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे समाजवाद के राजकीय नियन्त्रण का उपयोग कुछ सीमा तक किया जाता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे पूंजीवाद के आधार लाभ हेतु (Profit Motive) तथा समाजवाद के आधार 'सेवा हेतु' (Service Motive) मे सामंजस्य सम्भव होता है।

प्रथम योजना के उद्देश्य

"भारत म नियोजन का मुख्य उद्देश्य जन-समुदाय के जीवन-स्तर मे वृद्धि करना तथा अधिक परिवर्तनीय एव सम्पन्न जीवन के अवसर प्रदान करना है। इसलिए नियोजन का ध्येय **राष्ट्र के भौतिक एव मानवीय साधनों का प्रभावशाली उपयोग करना, वस्तुओ तथा सेवाओ के उत्पादन में वृद्धि करना** तथा आय, धन एव अवसर की असमानता को कम करना है। अतः हमारा कार्यक्रम द्विमुखी होना चाहिए जिससे उत्पादन मे तुरन्त वृद्धि हो तथा असमानता मे कमी हो ·······यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था मे हमारे प्रयासो का सुझाव अधिक उत्पादन की ओर होना चाहिए क्योकि इसकी अनुपस्थिति मे कोई उन्नति सम्भव नही होती है। फिर भी हमारे नियोजन द्वारा प्रारम्भिक अवस्था मे वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक ढांचे के अन्तर्गत ही आर्थिक क्रियाओ को प्रोत्साहित नही किया जाना चाहिए। इसलिए समाज के समस्त सदस्यो को पूर्ण रोजगार, शिक्षा, रोग तथा अन्य अयोग्यताओ से सुरक्षा तथा पर्याप्त आय का आयोजन करने के लिए इस प्रारूप को पुनर्गठित करना होगा।"[1]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर योजना के उद्देश्यो को दो समूहों मे वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) मानवीय तथा भौतिक साधनों का अधिकतम कार्यशील उपयोग जिससे वस्तुओ तथा सेवाओ के उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि सम्भव हो सके, तथा

(२) आय, धन तथा अवसर की असमानता को कम करना।

भारत मे प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम होने के कारण जन-साधारण के जीवन-स्तर मे सन्तोषजनक सुधार करना सम्भव नही था। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय के दुगुना होने पर ही जीवन-स्तर मे अपेक्षित उन्नति की जा सकती थी। न्यून बचत, न्यून उपभोग, अविकसित साधन तथा वृद्धयोन्मुख जनसंख्या की उपस्थिति मे ५ वर्ष मे प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना असम्भव था। इसलिए प्रथम पंचवर्षीय योजना को विकास का प्रारम्भ ही समझना चाहिए।

1. *First Five Year Plan*, p. 1.

वस्त्र, शक्कर, साबुन एवं वनस्पति उद्योगों की वर्त्तमान उत्पादन शक्ति का पूर्णतम उपयोग।

(ब) पूँजीगत एवं उत्पादक वस्तुग्रो के उद्योगों की उत्पादन शक्ति मे वृद्धि, जैसे लोहा एवं इस्पात, अल्यूमीनियम, सीमेंट, खाद, भारी रसायन, मशीनों के पुर्जे आदि।

(स) जिन औद्योगिक इकाइयो पर बडी मात्रा मे पूँजी विनियोजित हो चुकी है, उनकी पूर्ति।

(द) औद्योगिक विकास हेतु मूलभूत वस्तुग्रो के उत्पादन से सम्बन्धित उद्योगा की स्थापना, जैसे जिप्सम से गंधक का निर्माण, रेयन की लुग्दी आदि।

योजना का व्यय

योजना की प्रजातात्रिक प्रकृति के अनुसार तथा सरकार के बाहर के अर्थशास्त्रियो, व्यापारियो तथा जन-साधारण के विचार एव आलोचना प्राप्त करने हेतु प्रथम पचवर्षीय योजना सर्वप्रथम जुलाई सन् १९५१ मे ड्राफ्ट के रूप मे प्रकाशित की गयी। यह ड्राफ्ट योजना दो भागो मे विभक्त थी। प्रथम भाग मे अनिवार्य कार्यक्रमो को सम्मिलित किया गया था और इस भाग पर १, ४९३ करोड रु० व्यय होने का अनुमान था। द्वितीय भाग म वे कार्यक्रम सम्मिलित किये गये थे जिनका क्रियान्वीकरण विदेशी सहायता के मिलने पर किया जाना था। इस भाग पर ३०० करोड रु० व्यय होना था। परन्तु योजना को अन्तिम रूप देते समय दोनो भागो को निरस्त करके एकत्रित रूप मे समस्त कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। इस प्रकार योजना का समस्त व्यय २,०६९ करोड रु० निर्धारित किया गया। कालान्तर मे योजना के कुछ कार्यक्रमो मे वृद्धि की गयी तथा कुछ मे समायोजन किये गये। इसके साथ रोजगार के अवसरो मे वृद्धि हेतु भी आयोजन किये गये। इन समायोजनो के कारण योजना के व्यय की राशि २,३५६ करोड रु० कर दी गयी।[1] विभिन्न मदो पर इस राशि का वितरण निम्न प्रकार किया गया था—

---

1. *India* 1959, p. 203.

तालिका स २९—प्रथम पचवर्षीय योजना का अनुमानित व्यय

मद	अनुमानित व्यय करोड रु० म	योग से प्रतिशत
कृषि एव सामदायिक विकास	३६१	१७ ५
सिंचाई एव शक्ति	५६१	२७ १
यातायात एव सचार	४९७	२४ ०
उद्योग एव खनिज	१७३	८ ४
समाज सेवाएं	३४०	१६ ४
पुनर्वास	८५	४·१
अन्य	५२	२ ५
	योग २०६९	१०० ०

आवश्यक समायोजन के पश्चात् २३५६ करोड रु० के व्यय का वितरण निम्न प्रकार किया गया था—

तालिका स ३०—प्रथम पचवर्षीय योजना का सशोधित व्यय

मद	अनुमानित व्यय करोड रु० मे	योग से प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	३५७	१५ १
सिंचाई एव शक्ति	६६१	२८ १
उद्योग एव खनिज	१७९	७ ६
यातायात एव सचार	५५७	२३ ६
समाज सेवाएं	३९७	१६ ८
पुनर्वास	१३६	३ ८
अन्य	६९	५ ०
	योग २३५६	१०० ०

वास्तविक योजना के २०६९ करोड रु० के व्यय को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो मे निम्न प्रकार विभाजित किया गया था—

तालिका स ३१—प्रथम योजना व्यय का केन्द्र तथा राज्यो मे विभाजन

मद	कुल व्यय	केन्द्र	राज्य (अ ब, स तथा जम्मू कश्मीर)
	करोड रु० मे	करोड रु० मे	करोड रु० म
कृषि एव सामुदायिक विकास	३६१	१८६	१७५
सिंचाई एव शक्ति	५६१	२६६	२९५
यातायात एव सचार	४९७	४०९	८८
उद्योग एवं खनिज	१७३	१४७	२६
समाज सेवाएं	३४०	१०६	२३४
पुनर्वास	८५	८५	—
अन्य	५२	४२	१०
योग	२०६९	१२४१	८२८

योजना का व्यय सन् १६५०-५१ मे अत्यन्त कम रहा परन्तु योजना के तृतीय वर्ष से व्यय मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई और योजना के अन्तिम दो वर्षों मे योजना के समस्त वास्तविक व्यय का दो-तिहाई भाग व्यय किया गया। योजना के वार्षिक व्यय की प्रगति निम्न प्रकार थी—

तालिका स. ३२—प्रथम पंचवर्षीय योजना के व्यय की प्रगति

वर्ष	योजना का व्यय करोड रु० मे
१६५१-५२	२५६
१६५२-५३	२६८
१६५३-५४	३४३
१६५४-५५	४७७
१६५५-५६	६६६
	२०१३

योजना का वास्तवित व्यय विभिन्न शीर्षको मे निम्न प्रकार था—

तालिका स ३३—योजना का वास्तविक व्यय

मद	अनुमानित व्यय करोड रु० मे	योग से प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	२६६	१४ ८
सिचाई एव शक्ति	५८५	२६·१
उद्योग एवं खनिज	१००	५·०
यातायात एव सचार	५३२	२६·४
समाज सेवाएँ	४२३	२१·०
अन्य	७४	३·७
	योग २०१३	१००·०

उपर्युक्त वास्तविक व्यय से सम्बन्धित साख्य मे सन् १६५५-५६ वर्ष के दोहराये गये अनुमान सम्मिलित हैं। सन् १६५५-५६ के वास्तविक अनुमानों के अनुसार योजना का व्यय १६६० करोड रु० हुआ।

अर्थ-प्रबन्ध

अर्थ साधना की समस्या के निवारण पर ही योजना का सचालन तथा उसकी सफलता निर्भर रहती है। योजना मे राजकीय क्षेत्र के कार्यक्रमो मे केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो तथा उनके अधिकार की औद्योगिक इकाइयों के विकास कार्यक्रम सम्मिलित किये गये थे। अलोक क्षेत्र के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था का शेष समस्त क्षेत्र रखा गया था। नगरपालिका निगम, स्थानीय संस्थाओ,

सहकारी सस्थाओं तथा लघु व्यवसायो को निजी क्षेत्र मे सम्मिलित किया गया था। यद्यपि समस्त अर्थ व्यवस्था को विकास की ओर अग्रसर करने तथा विकास कायक्रयो म समन्वय स्थापित करने का उत्तरदायित्व राज्य का ही था, परन्तु निजी प्रयासो एव साहस को भी विकास कार्यक्रमो म महत्वपूर्ण योगदान देना था। राज्य को सरकारी क्षेत्र के लिए आवश्यक अर्थ प्रबन्ध करना तथा उसे सरकारी क्षेत्र मे विनियोजन करना दोनों ही कार्य करने थे। अर्थ साधनो को तीन मुख्य समूहो म निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

अर्थ-साधन

- बजट के साधन (Budgetory Resources)
  - चालू आय से बचत (Savings from Current Revenue)
  - पूंजीगत प्राप्तियाँ (Capital Receipts)
  - योजना सम्बन्धी केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को प्रदत्त सहायता
- विदेशी साधन (External Resources)
- घाटे की अर्थ-व्यवस्था (Deficit Financing)
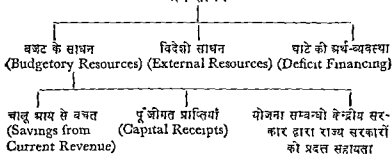
उपर्युक्त विभिन्न साधनो स निम्न प्रकार अर्थ प्राप्त होन का अनुमान था—

तालिका स ३४—प्रथम योजना के अर्थ साधन

	करोड रु० म		
	केन्द्र	राज्य	योग
विकास-कार्यक्रमों पर योजना का व्यय	१२४१	८२८	२०६९
१. बजट के साधन			
(अ) चालू आय से बचत	३३०	४०८	७३८
(ब) पूंजीगत प्राप्तियाँ (सचय से निकाली गयी राशि के अतिरिक्त)	३९६	१२४	५२०
(स) योजना सम्बन्धी केन्द्रीय सहायता	—२२९	—२२९	—
योग बजट-साधनो से प्राप्ति	४९७	७६१	१२५८
२. विदेशी साधन जो प्राप्त हो चुके थे	१५६	—	१५६
कुल योग	६५३	७६१	१४१४
न्यूनता (Gap)	५८८	६७	६५५
महायोग	१२४१	८२८	२०६९

बजट के साधनो मे प्राप्त होने वाली राशियो का अनुमान १९५०-५१ की वास्तविक प्राप्तियो के आधार पर लगाये गये थे। १९५०-५१ मे विभिन्न प्राप्तियो की राशि निम्न प्रकार थी—

तालिका स ३५—बजट के साधनो से अनुमानित राशि का आधार

साधन	१९५०-५१ (वास्तविक) केन्द्र ('स' श्रेणी, राज्य सम्मिलित)	राज्य ('अ' 'ब' श्रेणी, जम्मू तथा कश्मीर)	योग	योजना काल १९५१-५६ (अनुमानित) केन्द्र ('स' श्रेणी राज्य सम्मिलित)	राज्य ('अ' 'ब' श्रेणी, जम्मू तथा कश्मीर	योग
शासकीय बचत						
(क) चालू आय से	७१	५१	१२२	१६०	४०८	५६८
(ख) रेलो से	२३	—	२३	१७०	—	१७०
निजी बचत जो निम्न विधियो द्वारा राज्य को प्राप्त होनी थी						
(क) जनता से ऋण	−११	८	—३	३६	७९	११५
(ख) लघु बचत आदि	४२	—	४२	२७०	—	२७०
(ग) जमा, सचय तथा अन्य प्राप्तियाँ	—	३८	३८	९०	४५	१३५
योग	१२५	९७	२२२	७२६	५३२	१२५८

उपर्युक्त सूचना से यह ज्ञात होता है कि १९५०-५१ मे राजकीय बचत की राशि १४५ करोड रु० थी और इसी को आधार मान कर योजना काल मे इस साधन से प्राप्त राशि का अनुमान ७२५ करोड रु० लगाया जा सकता था, परन्तु १९५० ५१ को पूर्णत: आधार नही माना जा सकता था, क्योकि इस वर्ष कुछ असाधारण प्राप्तियाँ हुई थी। इस वर्ष निर्यातकर तथा आयकर के अवशिष्ट से प्राप्तियाँ असाधारण थी। इसके अतिरिक्त सुरक्षा सम्बन्धी व्यय मे भी वृद्धि करना आवश्यक था, क्योकि सुरक्षा सेवाओ मे बडे पैमाने पर प्रतिस्थापन करना आवश्यक था। इन्ही कारणो से योजना-काल मे शासकीय बचत से प्राप्य साधनो का अनुमान ७३८ करोड रुपया ही लगाया गया। दूसरी ओर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो की पूँजीगत प्राप्तियो मे महत्त्वपूर्ण सुधार होने का अनुमान

ऐसा विश्वास था कि उपर्युक्त कार्यवाहियो द्वारा अर्थ-साधनो मे वृद्धि के साथ-साथ भविष्य के विकास के लिए अतिरिक्त अर्थ-संचय की विधि का प्रारम्भ हो सकेगा और भविष्य की योजनाओ मे अधिकतम आन्तरिक आत्म-निर्भरता प्राप्त हो सकेगी।

पांच वर्ष के वास्तविक अनुमानानुसार योजना के विकास कार्यक्रमो पर १९६० करोड रु० व्यय हुआ। यह राशि विभिन्न साधनो से निम्न प्रकार प्राप्त हुई—

तालिका स ३६—प्रथम योजना मे अर्थ-साधनो से प्राप्ति

आय का साधन	करोड रुपयो मे
(अ) बजट के साधन	
(१) सरकारी चालू आय से बचत रेलो के अनुदान सहित	७५२
(२) जनता से ऋण	२०५
(३) लघु बचत तथा अन्य ऋण	३०४
(४) अन्य पूंजीगत प्राप्तियाँ	९१
	१३५२
(ब) विदेशी सहायता	१८८
(स) हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा प्राप्त साधन	४२०
योग	१९६०

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि योजना की समस्त अनुमानित निर्धारित राशि २३५६ करोड रुपये का ८३ २% भाग ही व्यय हुआ। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि सरकारी चालू आय से बचत तथा रेलो से अनुदान से प्राप्त राशि मे अनुमान से अधिक अर्थ प्राप्त हुआ। इन दोनो साधनो से ७३८ करोड रु० प्राप्त होने का अनुमान था, जबकि वास्तविक प्राप्ति ७५२ करोड रुपये थी। इसी प्रकार जनता से ऋण तथा अल्प बचत से भी अनुमान से अधिक अर्थ प्राप्त हुआ। अन्य पूंजीगत प्राप्तियो, जैसे निधि, जमा आदि के अन्तर्गत १३५ करोड रु० प्राप्त होने का अनुमान था, जबकि केवल ९१ करोड रु० ही प्राप्त हो सका। हीनार्थ प्रबन्धन की राशि २९० करोड रु० निश्चित की गयी थी परन्तु अन्य साधना की प्राप्ति अधिक नही बढायी जा सकी, परिणामस्वरूप न्यूनता की पूर्ति के लिए हीनार्थ प्रबन्धन की राशि ४२० करोड रु० हुई। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि अर्थ-साधन सम्बन्धी योजना आयोग के अनुमान बडी मात्रा मे ठीक ही थे। परन्तु योजना को क्रियान्वित

करते समय योजना के समस्त व्यय की राशि मे कमी रही। कृषि एव सामुदायिक विकास योजनाओं तथा उद्योग और खनिज क अन्तर्गत कुछ कार्यक्रमो को पूर्ण नहीं किया जा सका तथा इनम निर्धारित राशि से कम व्यय हुआ।

हीनार्थ-प्रबन्धन (Deficit Financing)

हीनार्थ प्रबन्धन का तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमे राष्ट्रीय बजट मे, आगम एव पूँजी खातो म, आय कम और व्यय अधिक बताया जाता है, अर्थात् जब राज्य बजट क साधनों से प्राप्त पूँजी एव आगम आय से अधिक व्यय करने के लिए बजट बनाया जाता है, उस व्यवस्था को हीनार्थ प्रबन्धन कहते हैं। सरकार को करो, राजकीय व्यवसायो, जनता से ऋण, जमा तथा निधि एव अन्य प्राप्तियो से होने वाली आय से जब सरकार अधिक व्यय करने का बजट बनाती है तो इस कमी को सरकार अपने सचित शेषों (Accumulated Balances) म स अर्थ निकाल कर अथवा देश क केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर पूरा करती है। वैधानिक सचित कोषो से रुपया निकालन पर अथवा केन्द्रीय बैंक से रुपया उधार लेन क लिए सरकार अपनी प्रतिभूतियाँ (Securities) बैंक को दे देती है और इन प्रतिभूतियो के बदले बैंक ने मुद्रा प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार सरकार की प्रतिभूतिया के विरुद्ध जो मुद्रा वृद्धि की जाती है, उसे मुद्रा-प्रसार कहत हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजना म हीनार्थ प्रबन्धन एव मुद्रा प्रसार द्वारा अर्थ-साधन प्राप्त करने का आयोजन किया गया था, क्योकि राष्ट्र के बजट के साधन एव विदेशी साधन योजना के लिए आवश्यक अर्थ-साधन प्रदान नही कर सकते थे। योजना म हीनार्थ-प्रबन्धन की अधिकतम सीमा २९० करोड रु० रखी गयी थी, क्योकि योजना काल म इतनी राशि से पौण्ड पावना प्राप्त (Release) होने की सम्भावना थी। २९० करोड रु० का पौण्ड पावना प्राप्त होने से इतनी राशि का आयात करके राष्ट्रीय बाजारों म वस्तुओ की अपूर्णता को रोका जा सकता था। साथ ही बढी हुई मुद्रा के विरुद्ध ये वस्तुएँ प्रस्तुत हो सकती थी और इस प्रकार मुद्रा-प्रसार जनित वस्तुओ की मूल्य वृद्धि का कोई विशेष भय नही रहता। इसी आधार पर योजना काल मे हीनार्थ प्रबन्धन को अधिकतम सीमा २९० करोड रुपया रखी गयी थी।

घाटे के बजट द्वारा घाटे की राशि क बराबर जन-समुदाय की क्रय-शक्ति मे वृद्धि हो जाती है परन्तु भारत मे क्रय-शक्ति की वृद्धि का अधिकाश भाग ग्रामीण क्षेत्रो को चला जाता है क्योकि यहाँ जन साधारण अपनी आय का अधिकांश खाद्यान्न-क्रय पर व्यय करता है। जन समुदाय की क्रय शक्ति मे वृद्धि होने

पर, कृषि उत्पत्ति की माँग एव तदनुसार मूल्या न वृद्धि हो जाती है, और इस प्रकार इस अतिरिक्त क्रय-शक्ति का बडा भाग ग्रामीण क्षेत्र अर्थात् कृषि को चला जाना है। पौण्ड पावना की प्राप्ति का उपयोग अधिकतर पूँजीगत वस्तुओ के आयात क लिए किया जाना था जबकि उपभोक्ता वस्तुओ की माँग बढने की सम्भावना थी। इस प्रकार २६० कराड रु० की सीमा होने हुए भी मूल्यो मे वृद्धि होने की अधिक सम्भावना थी। इसीलिए सरकार द्वारा मुद्रा-स्फीति के भार को कम करने क लिए मौद्रिक, तटकर, आवश्यक उपभोग की वस्तुओ के मूल्य एव वितरण आदि नियन्त्रण आदि कायवाहियो का उपयोग किया जाना भी आवश्यक था। परन्तु इस प्रकार के प्रतिबन्ध जन-साधारण को कभी रुचिकर नहीं होने हैं तथा नियोजन के प्रति दुर्भावना उत्पन्न होने की आशका की जा सकती है।

मूल्यो मे वृद्धि होने पर जन-समुदाय को उपभाग को सीमित करना पडता है। उपभोक्ता-वस्तुओ की पूर्ति मे वृद्धि नहीं होनी तथा जन समुदाय की क्रय-शक्ति म वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार जन-साधारण को अपने उपभोग को सीमित करना पडता है। इस प्रकार मुद्रा-प्रसार द्वारा विवशतापूर्ण बचत होती है। यद्यपि जन समुदाय अपने उपभोग को कम नहीं करना चाहता, परन्तु बढते हुए मूल्य उन्हे उपभाग कम करने के लिए विवश कर देने हैं। इस प्रकार उपभोग मे कमी होने से राज्य साधनो का उपयोग विनियोजन मे कर सकना है। परन्तु आवश्यक वस्तुओ के उपयोग म कमी होने से जन साधारण के जीवन-स्तर मे और भी कमी हो सकती है, इसलिए इन आवश्यक वस्तुओ, जैसे खाद्यान्न, वस्त्र, शक्कर, गुड आदि के मूल्यो एव वितरण पर आवश्यक नियन्त्रण रख कर ही हीनार्थ-प्रबन्धन का उपयोग किया जा सकता है।

मुद्रा-स्फीति के भय से हीनार्थ प्रबन्धन की सीमा को कम रखना विकास के क्षेत्र म एक गम्भीर बाधा बन सकती है। परन्तु फिर भी घाटे की अर्थ-व्यवस्था (हीनार्थ-प्रबन्धन) का तभी उपयाग हाना चाहिए जबकि अर्थ प्राप्ति के अन्य साधनो से पर्याप्त अर्थ न प्राप्त हो सकता हो। भारत मे अनिवार्य बचत एवं एकत्रित किये हुए अर्थ एव बहुमूल्य धातु को गतिशील बना कर देश के आर्थिक साधनो मे वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इन दोनों के लिए कठोर कार्यवाहियो की आवश्यकता होती है जो कि सरकार तथा नियोजन के प्रति दुर्भावनाओ का कारण बन जाती हैं।

योजना काल मे मूल्यो मे कमी रही और योजना के अन्त मे प्रारम्भ की

तुलना मे मूल्यों मे १३% की कमी का अनुमान था। केवल योजना के अन्तिम वर्ष के नौ महीनो मे मूल्यो म वृद्धि हुई। यद्यपि योजना काल मे ४२० करोड़ रु० का *हीनार्थ प्रबन्धन हुआ, तथापि मूल्यो मे कमी का होना कुछ आश्चर्यजनक* प्रतीत हो सकता है। हीनार्थ प्रबन्धन का मूल्यो पर इसलिए प्रभाव नही पड़ा कि आकस्मिक अनुकूल परिस्थितियो एव जलवायु (Monsoon) के कारण कृषि उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन मे भी योजना काल मे स तोषजनक वृद्धि हुई। उत्पादन-वृद्धि द्वारा मुद्रा-प्रसार का भार निरस्त कर दिया गया तथा उपभोक्ता-वस्तुओ के मूल्यो में वृद्धि नही हुई। इस *प्रकार योजना के प्रारम्भ म हीनार्थ-प्रबन्धन जनित मुद्रा स्फीति का जो भय था,* वह सर्वथा निर्मूल ही रहा। यद्यपि योजना काल में घाटे की अर्थ-व्यवस्था निश्चित अधिकतम सीमा २९० करोड से भी अधिक हुई, तथापि मूल्यों मे इसके कारण वृद्धि नही हुई।

योजना के लक्ष्य एव प्रगति

कृषि—प्रथम पचवर्षीय योजना म सवप्रथम स्थान कृषि को प्रदान किया गया था। इसी कारण याजना को मुख्यरूपेण एक ग्रामीण विकास का कार्यक्रम कहा जा सकता है। राजकीय क्षेत्र म व्यय होने वाली राशि का अधिकतम भाग कृषि एव कृषक की उन्नति हेतु विशेष *महत्व रखता है। समाज सेवाओं के अन्तर्गत निर्धारित राशि भी ग्रामीण समाज क हित को विशेष स्थान देती* थी और इस व्यय का उद्देश्य भी कृषको की कार्यक्षमता म वृद्धि करना तथा उनका उत्थान करना था। राजकीय क्षेत्र क समस्त व्यय का लगभग एक तिहाई भाग (३२ २%) अर्थात् ७५८ करोड रु० कृषि, सामुदायिक विकास, सिचाई एव बाढ नियन्त्रण पर व्यय होना था। सिचाई की बहुमुखी योजनाओ के कार्यक्रम दीघकालीन थे और इन पर योजना काल मे २६६ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान था।

प्रथम पचवर्षीय योजना म कृषि को प्राथमिकता देने का मुख्य उद्देश्य कृषि-उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करना था। १९५५-५६ तक खाद्यान्नो म १५%, *कपास म ४२%, पटसन म ६३%, गन्ना म १२%, तिलहन मे ८०% वृद्धि* करने का लक्ष्य था। इस प्रकार उत्पादन म निरन्तर तथा स्थायीरूपेण वृद्धि द्वारा ही *कृषि-विकास सम्भव था और कृषि विकास द्वारा २४६ करोड कृषको* के गतिहीन आर्थिक एव सामाजिक जीवन को गतिमान कर *विकासोन्मुख किया* जाना सम्भव था।

योजना के विनियोजन-कार्यक्रम का अधिकतर भाग सिंचाई एव बहुमुखी योजनाओ पर व्यय होना था। ५१८ करोड रुपया उन विशाल सिंचाई एव शक्ति की योजनाओ पर, जिनका निर्माण चल रहा था, और ४० करोड रुपया नवीन योजनाओ पर, व्यय किया जाना था। 'कृषि एव सामुदायिक विकास' शीर्षक के अन्तर्गत ७७ करोड रु० छोटी-छोटी सिंचाई योजनाओ, जिनका निर्माण निजी क्षेत्र द्वारा किया जाना था, को आर्थिक सहायता के रूप मे देने के लिए निर्धारित किया गया था। उपर्युक्त समस्त योजनाओ के फलस्वरूप २ करोड एकड सिंचित भूमि मे वृद्धि अर्थात् १६५०-५१ की सिंचित भूमि मे ४०% वृद्धि होने की सम्भावना थी। इसी प्रकार शक्ति क साधनो मे ६०% अर्थात् १३ लाख किलोवाट वृद्धि करने का लक्ष्य था।

भूमि-सुधार तथा भूमि को कृषि योग्य बनाने क लिए ३५ करोड रुपये का आयोजन था। इस व्यय द्वारा ७४ लाख एकड फसल बोये जाने वाले क्षेत्र मे वृद्धि करना था। इसक लिए पडती भूमि का उपयोग करना, ३४ लाख एकड भूमि पर तान्त्रिक कृषि करना, ३० लाख एकड भूमि को वन आदि द्वारा सुधारने का आयोजन था।

इसक अतिरिक्त कृषि एव ग्रामीण हित के कायकम के अन्तर्गत ६० करोड रुपया सामुदायिक विकास योजनाओ क हेतु तथा अन्य लघु राशियाँ कृषि के अन्य क्षेत्रो, जैसे खाद और बीज वितरण एव भूमि सुरक्षा सम्बन्धी योजनाओ आदि के लिए निर्धारित की गयी थी।

सामुदायिक विकास योजनाएँ—प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व ग्रामीण विकास क हेतु जो भी प्रयास किये गये थे उनम पारस्परिक सामजस्य का अभाव था। ग्रामीण जीवन को एक इकाई मानकर उसके विभिन्न क्षेत्रों का समन्वित विकास करने के लिए 'अधिक अन्न उपजाऊ जाँच समिति, सन् १६५२' ने भारत सरकार से अमेरिका, ब्रिटेन आदि के समान एक विस्तार अथवा सलाहकार सेवा की स्थापना की सिफारिश की, जो ग्रामीण जीवन के समन्वित विकासार्थ सहायता प्रदान करे। समिति के विचार म ग्रामीण जीवन क विभिन्न पहलू परस्पर इतने सम्बन्धित हैं कि किसी भी एक क्षेत्र का पृथक् रूपेण स्थायी विकास सम्भव नही होगा। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्र के अधिवासियो मे स्वय के जीवन का विकास करने क प्रति जागृति, रुचि एव प्रोत्साहन उत्पन्न करना भी आवश्यक बताया गया।

इस समिति की सिफारिशो के अनुसार २ अक्टूबर सन् १६५२ को सामुदायिक

आवश्यक होता है। इस उद्देश्य स राष्ट्राय विस्तार सवा की स्थापना की गयी जिसके अन्तर्गत मण्डलो को न्यूनतम श्रय द्वारा विकास करने का प्रयास किया जाता है। जिन विस्तार सेवा मण्डला म जनता क अधिकतम सहयोग द्वारा विकास कायक्रमा को सफलता मिलती है उन्हे तीव्र कायक्रमा के लिए चुन लिया जाता है तथा इनको सामुदायिक विकास मण्डल म परिवर्तित करके ३ वर्ष तक तीव्र गति स विकास करने का प्रयन्न किया जाता है। तान वप बाद यह सामुदायिक विकास मण्डल पुन राष्ट्राय विस्तार सेवा मण्डल म परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार श्रय का उपलब्ध क अनुसार प्रत्येक वप सामुदायिक विकास मण्डला का चुनाव किया जाता है। राष्ट्रीय विस्तार सेवा द्वारा तीन क्षेत्रा म विकास करने क प्रयास किय जाते हैं। प्रथम उत्पादन तथा रोजगार म वृद्धि का आयोजन किया जाता है। इसके अन्तगत कृषि म वैज्ञानिक विधिया का उपयोग साख की सुविधा सिंचाइ की सुविधाम्रा तथा अन्य काय वाहिया द्वारा उत्पादन म वृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है। इसी वर्ग म यातायात एव सचार तथा प्रशिक्षण की सुविधाओं म वृद्धि का जाती है। दूसरे वग म सहकारिता को अधिकतम क्षेत्रा म लागू करन क प्रयन्न सम्मिलित है। तृताय वग म समान हित क कायक्रमा पर समाज-सेवा को प्रोत्साहित किया जाता है। अनेक ग्रामीण सवाम्रा म वृद्धि तथा कठिनाइया का निवारण सामूहिक यत्ना से हो सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीय विस्तार सवा द्वारा एक ऐसे वातावरण का निर्माण करन का उद्देश्य होता है जिसम ग्रामीण क्षेत्र की उपयोग म न आन वाली शक्तिया एव समय का जन-समुदाय क कल्याण के लिए उपयोग हो सके।

अप्रेल १९५८ क पश्चात् सामुदायिक विकास की व्यवस्था म परिवर्तन कर दिया गया है। परिवर्तित व्यवस्था क अन्तगत विकास की दो अवस्थायें रखी गयीं हैं। प्रथम अवस्था क पूव एक वप तक प्रत्यक खण्ड म विस्तार के पूव क कायक्रम (Pre Extension Phase) का सचालन किया जाता है। इसक पश्चात् प्रथम अवस्था प्रारम्भ होती है जिसक अन्तगत ५ वर्षो तक गहरा विकास (Extensive Development) किया जाता है। प्रथम अवस्था क पश्चात् द्वितीय अवस्था प्रारम्भ होता है। इस अवस्था म विकास कायक्रम सामुदायिक विकास के अन्तर्गत कम बजट क साथ किया जाता है और प्रथक प्रथक सम्बन्धित विभाग अपन क्षेत्रा क विकास हेतु अधिक धन का आयोजन करत है। १९५९ म सरकार ने यह निश्चय किया कि नियोजन क साधना को जुटाना तथा विकास कायक्रमों को सचालित करने के लिय जन सस्थाम्रा को दायित्व एव अधिकार दिय जाँय। इसी उद्देश्य स विभिन्न राज्या म पचायत राज्य का स्थापना की जा रही है।

सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवाओ के कार्यक्रमो पर सर्वोच्च नियन्त्रण सामुदायिक विकास एवं सहकारिता के मत्रालय का होता है। इन कार्यक्रमो का सचालन राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक राज्य मे विकास समिति की स्थापना की जाती है जिसमे मुख्यमंत्री अध्यक्ष, विकास विभागो के मंत्री सदस्य तथा विकास कमिश्नर मत्री होता है। जिलाधीश जिला नियोजन एव विकास समिति के अध्यक्ष के रूप मे जिले की योजनाओ का संचालन करता है। प्रत्येक मण्डल मे विकास मण्डल अधिकारी (Block Develoment Office) आठ विस्तार अधिकारियो, जो कृषि, सहकारिता, पशुपालन (Animal Husbandary), गृह उद्योग आदि के विशेषज्ञ होते हैं, के साथ मण्डल का प्रबन्ध एव सचालन करता है। ग्राम सेवक कुछ ग्राम समूहो के कार्यक्रमो के निरीक्षण द्वारा संचालन म सहायता प्रदान करता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवाओ के लिए ९० करोड रुपया निर्धारित किया गया था, किन्तु वास्तविक व्यय केवल ५७ करोड रुपया हुआ। योजना मे १२०० राष्ट्रीय विस्तार सेवा मण्डलो की स्थापना करने का लक्ष्य था, जिसमे से ७०० मण्डलो, जिनमे ७०,००० ग्राम तथा ४ करोड जनसख्या होगी, पर सामुदायिक विकास मण्डलो की स्थापना के विकास का लक्ष्य रखा गया था। वास्तव मे केवल ४०० सामुदायिक विकास मण्डलो की स्थापना हुई तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा मण्डलो की सख्या ८०० थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे कृषि-उत्पादन के लक्ष्य एव उनकी प्राप्ति निम्न तालिका से दर्शित है—

तालिका सं० ३७—प्रथम योजना मे कृषि के लक्ष्य एवं उनकी प्राप्ति

मद	उत्पादन १९५०-५१	लक्ष्य १९५५-५६	वास्तविक उत्पादन १९५५-५६	उत्पादन की वृद्धि का प्रतिशत	१९५५-५६ की वास्तविक वृद्धि और योजना के लक्ष्य का प्रतिशत
खाद्यान्न (लाख टन)	५४०	६१६	६४९	२९·६	१४३
कपास (लाख गांठ)	२९·७	४२·३	४०·०	३७·५	८२
जूट (लाख गांठ)	३३·०	५३·९	४२·०	२७ ३	४३
गन्ना (गुड लाख टन)	५६ २	६३·२	५८·६	४·३	३५
तिलहन (लाख टन)	५० ८	५४·८	५६ ६	११·४	१५६
तम्बाकू (लाख पौंड)	२५ ७	—	२५·९	०·८	—
चाय (लाख पौंड)	६०७०	—	६६८०	१०·५	—
आलू (हजार टन)	१६३४	—	१८३९	१२·५	—
सिंचित भूमि (लाख एकड)	५१०	७०७	६५०	२७·६	७१
विद्युत शक्ति उत्पादन (लाख कि० वा०)	२३	३६	३४	४८·०	८४

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई और जूट और गन्ना के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओ का उत्पादन निश्चित लक्ष्य सीमा से कुछ ही कम रहा। तिलहन का उत्पादन योजना के लक्ष्यो से भी अधिक रहा। योजना काल के पांच वर्षों की विशेषता यह थी कि इन वर्षों मे अनुकूल मानसून रहने के कारण योजना के कार्यक्रमो को सफल बनाने मे प्राकृतिक दृष्टि से कम बाधा उपस्थित हुई।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सभी प्रकार की सहकारी समितियो—कृषि, बहुद्देशीय, साख, क्रय-विक्रय, उद्योग आदि के संगठन को स्थान दिया गया जिसके फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा सम्बन्धी आर्थिक एवं अन्य कठिनाइयो को दूर किया जा सके। पंचायतो के सगठन द्वारा ग्रामीण-निवासियों को ग्राम-समुदाय के सामूहिक हित का उत्तरदायित्व सौंपा गया। योजना मे कृषि की अन्य समस्याओ अर्थात् मूल्य स्थिरता, खाद्यान्न-वितरण पर नियन्त्रण, खान-पान के स्वभाव मे परिवर्तन तथा भूमि-प्रबन्ध मे सुधार आदि को भी स्थान दिया गया। जमीदारी पद्धति को समाप्त करने का निश्चय किया गया

जिससे कृषक को भूमि से प्राप्त फल का पूर्णतम उपयोग करन का अवसर प्राप्त हो सके।

इसो प्रकार कृषि में बीजो एवं अन्य पशुओ की आवश्यकता की मान्यता दी गयी तथा पशुओ के विकास हेतु योजना म २२ करोड रु० का आयोजन किया गया था। इस व्यय द्वारा पशुओ की नस्ल मे सुधार करने, चारे मे वृद्धि करने आदि के आयोजन किये गये।

योजना काल मे कृषि-उत्पादन निर्देशाक मे निम्न प्रकार प्रगति हुई—

कृषि उत्पादन-निर्देशाक (आधार वर्ष १९४९—५०=१००)[1]

वर्ष	निर्देशाक
१९५०-५१	९५.६
१९५१-५२	९८.०
१९५२-५३	१०२.०
१९५३-५४	११४.३
१९५४-५५	११७.०
१९५५-५६	११६.९

इस प्रकार कृषि-उत्पादन मे १९५०-५१ के स्तर से लगभग १९% वृद्धि हुई।

औद्योगिक प्रगति—प्रथम पंचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास के कार्यक्रम मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पर आधारित थे। सम्पूर्ण औद्योगिक विकास के कार्यक्रमो को लोक एव अलोक क्षेत्र मे विभाजित किया गया। लोक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रमो मे राज्य तथा केन्द्रीय सरकार की विकास योजनाएँ सम्मिलित की गयी तथा अलोक क्षेत्र मे व्यक्तिगत औद्योगिक क्रियाएँ सम्मिलित की गयीं। योजना मे ७९२ करोड रुपया औद्योगिक विकास हेतु निर्धारित किया गया। इसमे से १७९ करोड रुपया शासकीय औद्योगिक योजनाओ तथा शेष ६१३ करोड व्यक्तिगत, सगठित एव शासन द्वारा स्वीकृत उद्योगो पर व्यय करने का लक्ष्य था। अनियमित छोटे-छोटे कारखानो तथा गृह-उद्योगो के आँकड़े उपलब्ध न होने के कारण उनमे विनियोजित होने वाली राशि का ठीक-ठीक अनुमान सम्भव नही था। इसीलिए लघु तथा गृह-उद्योगो मे निजी रूप से विनियोजित होने वाली राशि को निजी क्षेत्र की विनियोजन-राशि मे सम्मिलित नहीं किया गया था। योजना मे केवल उन्हीं संगठित उद्योगों को सम्मिलित

1. *India* 1959, p. 255.

किया गया था, जिनका *विकास करना तथा शासकीय* प्रोत्साहन प्रदान करना वाछनीय था।

लोक क्षेत्र मे औद्योगिक विकास पर व्यय होने वाली राशि १७९ करोड रुपये मे से लगभग ८४ करोड रुपया ऐसे शासकीय औद्योगिक कार्यक्रमो पर व्यय होना था, जिनका कार्य प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था अथवा जो निकट भविष्य मे पूर्ण होने वाले थे। उदाहरणार्थ, सिन्दरी का रासायनिक खाद का कारखाना, चितरजन का रेलवे-एंजिन बनाने का कारखाना, बगलौर का यत्र-उपकरण बनाने का कारखाना आदि। लगभग १० करोड रुपया राज्य-सरकारो के आधीन उपक्रमो पर व्यय किया जाना था। इस क्षेत्र के अन्तर्गत ऐसे उद्योगो को ही सम्मिलित किया गया जो कि पूंजीगत एव आधारभूत वस्तुओ का उत्पादन करते हैं। शासकीय क्षेत्र म औद्योगिक विकास के नवीन *कार्यक्रमो की सर्वप्रमुख योजना लोहा तथा इस्पात* का कारखाना स्थापित करना था, जिसकी उत्पादन शक्ति ८ लाख टन लाहा तथा ३½ लाख टन इस्पात होनी थी। यह अनुमान लगाया गया कि इस कारखाने पर ८० करोड रु० विनियोजित किया जायगा जिसम से केवल ३० करोड रु० प्रथम योजना काल म व्यय करने का अनुमान था। १ करोड रु० खनिज विकास तथा ६० करोड रु० ग्रामीण एव लघु उद्योगो पर विनियाजित करने का लक्ष्य था।

योजना आयोग ने ४२ उद्योगो का विस्तार करने का विस्तृत कार्यक्रम बनाया तथा इन उद्योगो का विकास अलोक क्षेत्रो को सौंपा गया। इन उद्योगो मे यान्त्रिक इजीनियरिंग, वैद्युतिक इजीनियरिंग, धातु उद्योग, रासायनिक पदार्थ उद्योग, तरल ईधन, खाद्य उद्योग आदि सम्मिलित थे। अलोक क्षेत्र म विनियोजित होने वाली ६१३ करोड रु० की राशि म से २३२ करोड रु० अर्थात् ३८% औद्योगिक इकाइयो के विस्तार म, १५० करोड रु० प्रतिस्थापन तथा आधुनिकीकरण पर, २८ करोड रु० स्थायी सम्पत्तियो के ह्रास के लिए, जो आयकर की साधारण छूट म सम्मिलित नहीं होते हैं, तथा १५० करोड रु० चालू पूंजी के लिए *उपयोग होना* था।

अलोक क्षेत्र के नये विनियोजन-कार्यक्रमो का लगभग ८०% भाग पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगो में विनियोजित होना था। इनम महत्त्वपूर्ण विस्तार की योजनाएं निम्नलिखित उद्योगो के लिए थी—

उद्योग	राशि करोड रु० मे
लोहा एव इस्पात	४३
धातु तेल शोधन	६४
सीमेंट	१५ ४
अल्यूमीनियम	९ ०
खाद भारी रसायन तथा शक्ति अल्कोहल	१२
अतिरिक्त विद्यु त शक्ति के साधन	१६

उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो म उत्पादन बढान क लिए उनकी वर्त्तमान उत्पादन क्षमता का प्रतिस्थापन तथा नवीनीकरण द्वारा पूर्णतम उपयोग करने का आयोजन था। रेयन (Rayon), औषधियाँ आदि उद्योगा म नवीन विनियोजन का भी आयोजन किया गया।

लोक-क्षेत्र के अतगत औद्योगिक क्षेत्र म ६० करोड रु० का विनियोजन हुआ जबकि वास्तविक लक्ष्य ६४ करोड रु० था। सिन्दरी का रासायनिक खाद का कारखाना पूरा हो गया जिसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ६,५० ००० टन अमोनियम सल्फट है। चितरजन के रेलव एंजिन निर्माण, बगलौर का भारतीय टेलीफोन निर्माण, पैरम्बूर का यात्री गाडी के डिब्बे निर्माण, पैनिसिलिन तथा डी० डी० टी०, जलयान तथा वायुयान निर्माण आदि के कारखानो का पर्याप्त विकास हुआ। राज्य सरकार की योजनाओ मे सबसे महत्वपूर्ण मैसूर के लोहा एव इस्पात के कारखान के विस्तार का कायक्रम था। मध्यप्रदेश म अखबारी कागज तथा उत्तर प्रदेश का प्रिसिजन इ स्ट्रूमेंटस कारखाना भी उल्लेखनीय है। सावजनिक उद्योगो की प्रगति निम्न प्रकारेण हुई—

तालिका स० ३८—प्रथम योजना मे सार्वजनिक उद्योगो की प्रगति

उद्योग	उत्पादन प्रारम्भ होन की तिथि	लक्ष्यो की प्रतिशत प्राप्ति
केन्द्रीय सरकार के अधीन		
१ तीन बड इस्पात कारखान	निर्माणाधीन	
२. हिन्दुस्तान शिपयार्ड	माच १९५२	६५
३ सिन्दरी फर्टिलाइजस फैक्टी	अक्टू० १९५१	१०३
४ हिन्दुस्तान मशीन टूल्स	अक्टू० १९५४	९
५ हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स	अग० १९५५	१३८
६ चितरजन लोकोमोटिव्ज	नव० १९५०	१३६
७ इन्टीग्रल कोच फैक्टरी	अक्टू० १९५५	४०
८ इडियन टलीफोन इडस्टीज	१९४९	१००
९ हिंदुस्तान केबिल्स	सित० १९५४	११२
राज्य-सरकारो के अधीन		
१० मसूर आयरन एण्ड स्टील वक्स		
(अ) इस्पात		३५
(ब) पिंड लोहा (Pig Iron)		५२
११ नशा मिल्स न्यूजप्रिन्ट मध्यप्रदेश	जन० १९५४	१४

अलोक क्षेत्र के उद्योगो पर योजना-काल मे विकास एव विस्तार कार्यक्रमों पर २३३ करोड रु० के व्यय का लक्ष्य था। वास्तविक विनियोजन भी इतना ही हुआ। विभिन्न उद्योगो के प्लान्ट एव मशीनरी के प्रतिस्थापन एव आधुनिकीकरण पर २३० करोड रु० व्यय का लक्ष्य था, जबकि वास्तविक व्यय केवल १०५ करोड रु० हुआ। इस प्रकार निजी क्षेत्र के उद्योगो मे नवीन विनियोजन की समस्त राशि २९३ करोड थी, जबकि लक्ष्य ३२७ करोड रुपये का था। २९३ करोड रुपये का विनियोजन विभिन्न उद्योगो मे निम्न प्रकार हुआ—

तालिका सं० ३९—प्रथम योजना मे निजी क्षेत्र मे नवीन विनियोजन

उद्योग	योजना के अन्तर्गत विनियोजन का अनुमान करोड रु० मे	वास्तविक विनियोजन करोड रु० मे
धातु कर्म उद्योग (लोहा तथा इस्पात, अल्यूमीनियम, शीशा आदि)	८५·०	६१ ०
पैट्रोलियम का शोधन	६४ ०	४५ ०
रसायन (भारी रसायन, खाद, औषधि आदि)	२६·०	२७ ०
इञ्जीनियरिंग उद्योग (बड एव लघु)	५३ ०	४६·०
सूती वस्त्र उद्योग	९ ०	२० ०
शक्कर उद्योग	०·१	५·०
रेयन वस्त्र उद्योग	१६·५	८ ०
सीमेंट	१७·५	१७ ५
कागज तथा गत्ता उद्योग (समाचार पत्र के कागज सहित)	७ ४	१२ ०
विद्युत उत्पादन तथा वितरण (अलोक क्षेत्र मे)	१६ ०	३२ ६
अन्य	३२·३	१८ ९
योग	२२६·८	२९३ ०

प्रथम पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्यो की पूर्ति निम्न प्रकार हुई—

तालिका सं० ४०—प्रथम योजना मे औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य एवं पूर्ति

वस्तु	१९५०-५१ म उत्पादन	१९५५ ५६ हेतु योजना लक्ष्य	१९५५-५६ वास्तविक उत्पादन	वृद्धि का प्रतिशत	लक्ष्य एव वास्तविक वृद्धि का प्रतिशत
इस्पात (लाख टन)	९ ८	१६ ५	१२ ८	३० ५	४५
पिंड लोहा (Pig Iron) (लाख टन)	१५ ७	२८ ३	१७'९	१३ ७	१७
सीमेंट (लाख टन)	२६ ९	४८ ०	४५'९	७०'८	९०
अमोनियम सल्फेट (हजार टन)	४६ ३	४५०'३	३९४'०	७५६ ५	८६
रेलवे ए जिन (इकाई)	३'०	१७३'०	१७९ ०	५८६७ ०	१०४
जूट-निर्मित वस्तुएं (हजार टन)	८२४ ०	१२००'०	१०५४ ०	२८'०	६१
मिल-निर्मित वस्त्र (दस लाख गज)	३७१८'०	४७०० ०	५१०२'०	३७'२	१४१
साइकिल (हजार)	९७ ०	५३०'०	५१३ ०	४३० ०	९६

औद्योगिक उत्पादन मे औसत वृद्धि ४८% हुई जो निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है—

	प्रतिशत वृद्धि १९५०-५१ से १९५५-५६
(१) पूंजीगत वस्तुएं	७०
(२) मध्यवर्ग की वस्तुएं (Intermediate Goods)	३४
(३) उपभोक्ता-वस्तुएं	३४
औसत वृद्धि का प्रतिशत	३८

यातायात एव सचार—योजना के इस शीर्षक के अन्तर्गत ४९७ करोड रु० की राशि व्यय हेतु निर्धारित की गयी थी जो बाद मे बढा कर ५५७ करोड रु० कर दी गयी। इस राशि का यातायात एव सचार की विभिन्न मदो मे निम्न प्रकार विभाजन किया गया था—

तालिका सं० ४१—प्रथम योजना मे यातायात पर व्यय होने वाली राशि

मद	व्यय करोड रुपयो मे
रेलवे	२६८
सड़कें	१३०
सड़क यातायात	१२
बन्दरगाह तथा आश्रय स्थान	३४
जल यातायात	२६
वायु यातायात	२४
अन्य यातायात	३
डाक व तार	५०
अन्य सचार	५
आकाशवाणी (Broadcasting)	५
योग	५५७

उपर्युक्त निर्धारित राशि मे से केवल ५३२ करोड रुपया ही वास्तव मे व्यय हुआ, जिसम से २६७ करोड रु० रेलो पर, १४७ करोड रु० सडको पर, ७१ करोड रु० बन्दरगाहो, जल तथा अन्य यातायात पर और ४७ करोड डाक, तार व सचार पर व्यय हुआ। लगभग ३४० मील लम्बी टूटी-फूटी रेलवे लाइनो (जो युद्ध-काल म बन्द कर दी गयी थीं) को सुधारा गया, ३८० मील लम्बी नवीन लाइनों का निर्माण हुआ तथा ४६ मील की लघु-पथ (Narrow Gauge) की लाइनो को मध्यम पथ (Meter Gauge) म परिवर्तित किया गया। *राष्ट्रीय मार्ग (National Highways) १२.३ हजार मील (१९५०-५१)* से बढकर १२ ६ हजार मील हो गये। इसी प्रकार प्रान्तीय मार्ग (कच्चे तथा पक्के) २४८.५ हजार मील से बढ कर ३१६.७ हजार मील हो गये। योजना मे जलयान-उद्योग के लिए १५ करोड रु० तक की आर्थिक सहायता का आयोजन था। तटीय एव विदेशी समुद्री यातायात की सुविधाओ को योजना काल में ६ लाख ग्रौस रजिस्टर्ड टनेज (Gross Registered Tonnage) तक वृद्धि करने का लक्ष्य था। १९५५-५६ मे वास्तविक सुविधाएं ४ ८ लाख ग्रौस रजिस्टर्ड टनेज थीं। योजना म आकाशवाणी के क्षेत्र को तीन गुना करने का लक्ष्य था। तार एव टेलीफोन सुविधाओ को बडे बडे नगरो मे बढाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्र मे नये डाकघर खोलने का आयोजन किया गया।

समाज सेवाएं—३४० करोड रुपये की निर्धारित राशि को इस मद में

बढा कर ३६७ करोड रुपया कर दिया गया। इस राशि का विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार विभाजन किया गया था—

तालिका स० ४२—प्रथम योजना में समाज-सेवाओ पर व्यय होने वाली राशि

मद	व्यय करोड रुपयो मे
शिक्षा	१७४
स्वास्थ्य	१४०
गृह	४६
दलित-वर्ग-कल्याण	३२
समाज-कल्याण	५
श्रम तथा श्रम कल्याण	७
	३६७

इस शीर्षक के अन्तर्गत वास्तविक व्यय ३२६ करोड रुपया हुआ जिसमे से १५३ करोड रु० शिक्षा पर, १०१ करोड रु० स्वास्थ्य पर, ३५ करोड रु० गृह-निर्माण पर तथा ३७ करोड रु० दलित वर्ग तथा श्रम के कल्याण-कार्यों पर व्यय किया गया। १९५०-५१ मे प्राथमिक पाठशालाओ की सख्या २०६.७ हजार थी जो १९५५-५६ म २८०० हजार हो गयी। इसी प्रकार प्राथमिक शालाओ म छात्रो की सख्या १८६ ४ लाख से बढ कर २४८.२ लाख हो गयी, जबकि योजना का लक्ष्य २८८ ० लाख था। ६ वर्ष से ११ वर्ष के बच्चो मे शालाओ मे जाने वाले १९५०-५१ म ४१.२% थे जो १९५५-५६ मे ५१.१% हो गये जबकि योजना का लक्ष्य ६०% था। योजनावधि म तात्रिक प्रशिक्षण की सुविधाओ मे पर्याप्त वृद्धि हुई और इजीनियरिंग तथा तान्त्रिक प्रशिक्षण की सस्थाओ के स्नातको की सख्या २,२०० से बढ कर ३,७०० हो गयी।

स्वास्थ्य के क्षेत्र मे ११३ हजार चिकित्सालय-शैयायें (Hospital Beds) १९५५-५६ मे बढ कर १२६ हजार हो गयीं तथा चिकित्सालयो की सख्या ८,६०० से बढ कर ६,८०६ हो गये।

राष्ट्रीय आय—प्रथम योजना का लक्ष्य योजना-काल के अन्त तक राष्ट्रीय आय में १२% वृद्धि करना था अर्थात् १९५०-५१ की राष्ट्रीय आय ८,८५० करोड रुपये (१९४८-४९ के मूल्यो के आधार पर) को बढा कर १०,००० करोड रु० करने का लक्ष्य था। योजना काल मे राष्ट्रीय आय मे १८.४% की वृद्धि हुई। दूसरे शब्दो मे अर्थ-व्यवस्था का विकास नियोजित अनुमानो की

तुलना मे १½ गुना अधिक हुआ। यद्यपि योजना काल मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि सन्तोषजनक थी, परन्तु वृद्धि की दर स्थिर नहीं थी। १९५२-५३ तथा १९५३-५४ मे राष्ट्रीय आय मे अधिक वृद्धि हुई जिसका मुख्य कारण अनुकूल जलवायु (Monsoon) कहा जा सकता है। अन्त के दो वर्षो अर्थात् १९५४-५५ तथा १९५५-५६ मे राष्ट्रीय आय को वृद्धि अत्यल्प थी। योजना काल मे प्रति-व्यक्ति आय मे १०.५% की वृद्धि हुई। योजना काल मे राष्ट्रीय तथा प्रति-व्यक्ति आय की प्रगति निम्न प्रकार हुई—

तालिका स० ४३—प्रथम योजना काल में राष्ट्रीय एवं व्यक्ति आय

वर्ष	राष्ट्रीय आय		प्रति व्यक्ति आय	
	प्रचलित मूल्यो पर	१९४८-४९ के मूल्यो पर	प्रचलित मूल्यो पर	१९४८-४९ के मूल्यो पर
१९५०-५१ (आधार वर्ष)	९,५३०	८,८५०	२६५.२	२४६.३
१९५१-५२	९,९७०	९,१००	२८४.०	२५० १
१९५२-५३	९,८२०	९,४६०	२६६ ४	२५६.६
१९५३-५४	१०,४८०	१०,०३०	२८० ७	२६८.७
१९५४-५५	९,६१०	१०,२८०	२५४ २	२७१.९
१९५५-५६	९,९९०	१०,४८०	२६०.८	२७३.६

योजना काल मे व्यावसायिक ढाँचे मे भी परिवर्तन हुआ। कृषि से १९५०-५१ मे राष्ट्रीय आय का ५१ ३% भाग प्राप्त हुआ था, जबकि १९५५-५६ मे यह प्रतिशत ४५.४ रह गया। दूसरी ओर उद्योग, वाणिज्य तथा अन्य सेवाओ से प्राप्त होने वाली आय मे वृद्धि हुई। इस तत्व के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अर्थ व्यवस्था का झुकाव कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो की ओर प्रारम्भ हो गया था। निम्न तालिका से यह स्पष्ट होगा कि विभिन्न व्यवसायो से राष्ट्रीय आय का कितना भाग प्राप्त हुआ—

तालिका सं० ४४—प्रथम योजना काल मे राष्ट्रीय आय की विभिन्न व्यवसायों से प्राप्ति[1]

मद	१९५०-५१ आय करोड रु० मे	१९५०-५१ मे राष्ट्रीय आय से प्रतिशत	१९५५-५६ आय करोड रु० मे	१९५५-५६ मे राष्ट्रीय आय से प्रतिशत
कृषि	४,८९०	५१.३	४५३०	४५.४
खनिज, निर्माण एव लघु औद्योगिक इकाइयाँ	१,५३०	१६ १	१८५०	१८.५
वाणिज्य, यातायात एव सचार	१,६९०	१७.७	१८८०	१८.८
अन्य	१,४४०	१५.१	१७३०	१७.३
योग	९,५५०		९,९९०	
शुद्ध उपार्जित वैदेशिक आय	—२०		—	
शुद्ध आय	९,५३०		९,९९०	

उपभोग एव विनियोजन—योजना काल मे राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि की गति तीव्र नही कही जा सकती है क्योकि राष्ट्र के साधन सीमित थे तथा राष्ट्रीय आय का एक बडा भाग अर्थात् ८०% उपभोग की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए जोड दिया गया था जिससे जनता के जीवन-स्तर में पर्याप्त वृद्धि हो सके। १९५०-५१ मे ८,८५० करोड रु० की राष्ट्रीय आय मे से लगभग ५२३ करोड रुपया पूँजी के निर्माण मे तथा शेष ८,३२७ करोड रु० निजी तथा सरकारी उपभोग पर व्यय किया गया, १९५५-५६ मे ९,११० करोड रुपये उपभोग के लिए तथा ८८० करोड रुपये पूँजी के सचय के लिए उपलब्ध होने का अनुमान था। दूसरे शब्दो मे, योजना काल मे समस्त उपभोग मे ८% की वृद्धि हुई परन्तु निजी उपभोग की वृद्धि की दर इससे कम ही होगी, क्योकि योजनावधि मे सरकारी विकास व्यय दुगुना हो गया था।

अतिरिक्त राष्ट्रीय आय का लगभग २०% भाग पूँजी सचय के लिए उपयोग होने की सम्भावना थी तथा लगभग २०% ही निजी उपभोग हेतु प्राप्त न

1. *India* 1959, p. 188.

होने का अनुमान था। इस प्रकार निजी उपभोग मे वृद्धि की दर ६% से अधिक नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त यदि योजना काल मे जनसख्या मे भी वृद्धि का प्रतिशत भी यही मान लिया जाय तो उपभोग तथा सामान्य जीवन-स्तर मे कोई विशेप प्रगति नहीं हुई। फिर भी खाद्यान्नो का उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति-दिन १९५०-५१ म १२ ६ औंस था जो १९५५-५६ मे बढ कर १४ ४ औंस हो गया। इसी प्रकार कपडे का उपभोग भी ९७ गज प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से बढ कर १६ ४ गज १९५५-५६ मे हो गया। औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन के उपभोग मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

योजना म राष्ट्रीय आय के ५% विनियोजन को बढा कर ७% का लक्ष्य था। पाँच वर्षो मे ३५०० से ३६०० करोड रुपये तक विनियोजन करने का लक्ष्य निश्चित किया गया था। सरकारी क्षेत्र मे योजना काल मे लगभग १५०० करोड रु० का तथा निजी क्षेत्र मे १६०० करोड रु० का विनियोजन हुआ। इस प्रकार योजना के समस्त विनियोजन की राशि ३१०० करोड रु० थी। समस्त विनियोजन मे शासकीय एव निजी क्षेत्र का अनुपात ५० ५० था।

योजना के प्रथम दो वर्षो मे विकास-व्यय कम रहा और तीसरे वर्ष से बढना प्रारम्भ हुआ और अन्तिम दो वर्षो म यह व्यय सर्वाधिक था। यह समस्त योजना व्यय का ⅔ भाग था। इसी प्रकार शासकीय क्षेत्र के विनियोजन का ५०% से भी अधिक भाग योजना के दो अन्तिम वर्षो म हुआ।

रोजगार—योजना क कार्यक्रमो के फलस्वरूप जनसख्या के व्यावसायिक ढाँचे मे कोई विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना नही थी। योजना आयोग ने बेरोजगारी की बढती हुई समस्या को सीमित करन के लिए योजना म व्यय की राशि को लगभग ५०० करोड रुपये से बढाया था। योजना आयोग के अनुमाना-नुसार रोजगार के अवसरो म निम्न प्रकार वृद्धि होन की सम्भावना थी—

	रोजगार अवसर (लाख)
१. उद्योग (लघु उद्योग सहित)	४ ०
२. सिंचाई तथा शक्ति की वृहद् योजनाएं	७·५
३ कृषि, अतिरिक्त सिंचाई के साधनो तथा भूमि-सुधार के कारण	२३.०
४. भवन तथा अन्य निर्माण कार्य	१ ०
५ सडकें आदि	२.०
६. गृह-उद्योग	२० ०
७ अन्य तीसरे (Tertiary) क्षेत्र तथा स्थानीय कार्य	कोई अनुमान नहीं
	५७ ५

इस प्रकार योजना काल के अ त म ७५ लाख रोजगार के अवसरो मे वृद्धि होन का अनुमान था। शिक्षित बेरोजगारा की समस्या के बारे म योजना मे बताया गया कि इनके लिए पर्याप्त मात्रा म रोजगार के अवसरो मे वृद्धि तब ही हो सकती है जबकि औद्योगिक विकास की गति भविष्यत् योजनाओ म तीव्र कर दी जाय। परन्तु प्रथम पचवर्षीय योजना म शिक्षित बेरोजगारो का अपन स्वतन्त्र व्यवसाय स्थापित करन के हेतु आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करन का आयोजन किया गया था। इसक साथ स बात पर भी जोर दिया गया कि शिक्षित समुदाय को शारीरिक श्रम वाल रोजगारो को अनादर की दृष्टि से नही दखना चाहिए। योजना काल म रोजगार दफ्तरो क साथ रजिस्टर हुए बेरोजगारो की सख्या म निर तर वृद्धि होती रही। माच १९५१ म रजिस्टड बेरोजगारो की सख्या ३ ३७ ००० स बढकर माच १९५६ म ७ ०५ ००० हो गयी। रोजगार के दफ्तरो म बेरोजगारो की पजीयत सख्या केवल नगरो क बेरोजगार के एक भाग का ही प्रतिनिधित्व करता है। योजना आयोग के अनुमानानुसार १९५६ के प्रारम्भ म लगभग ५३ लाख बरोजगार थे जिनमे से २५ लाख नगरो म तथा २८ लाख ग्रामो मे बेरोजगार होन का अनुमान था।

मूल्यो की प्रवृत्ति—*योजना के कायक्रमो की सफलताथ मूल्यो की स्थिरता* अत्य त आवश्यक होती है मूल्यो म वृद्धि होन से विकास व्यय के समस्त अनु मान गलत हो जाने है तथा योजना के लक्ष्यो की पूर्ति कठिन हो जाती है। साथ ही मूल्यो म अत्याधिक वृद्धि होन स जन साधारण के जीवन स्तर म वृद्धि होन के स्थान पर अवनति होती है। मूल्यो की गतिशीलता के अध्ययन हेतु हम मुद्रा की पूर्ति का भी अध्ययन करना आवश्यक होता है। योजना के प्रथम दो वर्षों म मुद्रा की पूर्ति म वास्तव म कमी हुई पर तु योजना का व्यय बढने के साथ साथ मुद्रा की पूर्ति म योजना के अ तिम तीन वर्षों म वृद्धि हुई। योजना काल म जनता के पास मुद्रा की पूर्ति म २०८ करोड रुपये की वृद्धि हुई। इस *वृद्धि का मुख्य कारण हीनाथ प्रबन्धन था। योजना काल म मुद्रा की मात्रा मे* निम्न प्रकार वृद्धि हुई।[1]

---

1 *India* 1959, p 240

तालिका स० ४५—प्रथम योजना काल मे मुद्रा की पूर्ति

वर्ष	वित्तीय वष के अन्तिम शुक्रवार को	जनता के पास मुद्रा का पूर्ति करोड रु० मे
१९५० ५१		१ ९७२
१९५१ ५२		१ ८०४
१९५२ ५३		१ ७६५
१९५३ ५४		१ ७९४
१९५४ ५५		१ ९२१
१९५५ ५६		२ १८०

मूल्यो म लगभग उसी प्रकार परिवत्त न हुए जिस प्रकार कि मुद्रा की पूर्ति में *अर्थात् योजना के प्रथम दो वर्षों म मूल्य म कमी हु तथा माच* १९५१ तथा माच १९५३ क मध्य म थोक मूल्यो का सूचक ४५० स कम हाकर २७८ रह गया। मूल्यो म कमी का मुख्य कारण अधिक आयात मुद्रा-स्फीति का कम करन की कायवाहिया तथा अन्य मौद्रिक प्रतिबन्ध थ। इसी समय कोरिया क युद्ध के बन्द होने की सम्भावनाओ के कारण ससार म जमा किय गये सग्रह को विक्रय करन का प्रवृत्ति जाग्रन हुई फरवरी माच १९५२ तक भारत के बाजारो म वस्तुओ का आधिक्य हो गया। सरकार का इस समय मूल्यो मे कमी को रोकन क लिए व्यवस्था करनी प । कच्ची ऊन तथा तिलहन पर स नियात कर हटा दिया गया तथा जूट की वस्तुओ एव कच्ची कपास पर निर्यात कर कम कर *दिया गया। इसके साथ म भी विभिन्न वस्तुओ के वितरण पर* नियन्त्रण को ढीला कर दिया गया। इन सब कायवाहियो से सितम्बर १९५२ म मूल्यो का सूचक ३८९ हो गया। इसक पश्चात् माच १९५२ स मूल्यो म वृद्धि होना प्रारम्भ हुआ और अगस्त १९५३ तक मूल्यो क स्तर म १२ ८% की वृद्धि हो गयी योजना काल म अनकूल मानसून के कारण कृषि उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन म भी उत्पादन सतोषजनक रहा। इसी कारण स सितम्बर १९५३ से जून १९५५ तक कृषि उत्पत्ति मूल्यो म बडी कमी हुई। माच १९५५ म थोक मूल्यो का सामान्य निदेशाक (१९३९=१००) ३४२ था। जून १९५५ क तीसरे सप्ताह से मूल्यो म निरन्तर वृद्धि प्रारम्भ हो गया। इसी कारण योजना का व्यय अन्तिम ६ मास म अत्यधिक रहा। योजना क अंतिम वष म इसी कारणवश हीनार्थ प्रबन्धन १७० करोड रु० का करना पडा। योजना काल के अन्त म प्रारम्भ की तुलना म मूल्यो म लगभग १३% की कमी हुई। थोक मूल्यो के सूचक की गति योजना काल म निम्न प्रकार रही—

(आधार अगस्त १९३९ = १००) वित्तीय वर्ष के अन्तिम सप्ताह मे

१९५०-५१	१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६
४५०	३७८	३८५	३९७	३४७	३९०

योजना की असफलताएं

प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा कृषि एव औद्योगिक उत्पादन के स्तर में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। इसके साथ ही राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था मे भी परिवर्तन हुए। जन-साधारण मे भी राष्ट्र के विकास के प्रति रुचि उत्पन्न हो गयी तथा योजना के प्रति जागरूकता मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। योजना द्वारा विभिन्न क्षेत्रो की न्यूनता म भी पर्याप्त सुधार हो गया और अर्थ साधनो मे गतिशीलता भी उत्पन्न हो गयी। सामान्यत योजना को एक सफल कार्यक्रम कहने मे कोई त्रुटि नहीं होगी। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियो के विचार मे योजना को निम्नलिखित दृष्टि बिन्दुओ से असफल कहा जा सकता है—

(१) प्रथम पचवर्षीय योजना ऐसे वातावरण म बनायी गयी थी जिसमे *उपभोक्ता वस्तुओ और विशेषकर खाद्यान्नो की अत्यन्त कमी थी तथा अर्थ-*व्यवस्था पर युद्ध एव विभाजन के पश्चात् की कठिनाइयो का दबाव अत्यधिक था। इन कठिनाइयो का समापन करना राष्ट्र के विकास के लिए अनिवार्य था। इन्हीं कारणो से प्रथम पचवर्षीय योजना मुख्यत पुनर्निर्माण एव पुनर्वास (Rehabilitation) का कार्यक्रम था, जिसम तत्कालीन न्यूनता की पूर्ति का पर्याप्त विनियोजन एव सगठन सम्बन्धी प्रयासो द्वारा आयोजन किया गया था। योजना के लक्ष्य इसी कारण से कम रख गये थे। राष्ट्रीय आय मे योजना काल म १२% वृद्धि होन का अनुमान था, जबकि वास्तविक वृद्धि लगभग १८% हुइ। खाद्यान्न, तिलहन, रेलवे एजिन, मिल का बना कपडा *आदि म उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ। अन्य क्षेत्रो म भी उत्पादन में पर्याप्त* वृद्धि हुई जो लक्ष्य के लगभग बराबर ही थी। उत्पादन तथा आय मे सम्भावना से अधिक वृद्धि का एकमात्र कारण योजना का विनियोजन कायक्रम एव सगठन सम्बन्धी परिवर्तन ही नही थे, इस वृद्धि का कुछ भाग खाद्य के क्षेत्र के बढ जाने तथा योजना काल मे अनुकूल मानसून की उपस्थिति के कारण हुआ था। इन दोनो तत्वो को दृष्टिगत करते हुए राष्ट्रीय आय की वृद्धि (योजना के कार्यक्रमो के परिणामस्वरूप) १० या १२% ही समझनी चाहिए। दूसरी ओर अर्थ व्यवस्था मे जो विकास योजना काल मे हुआ, वह दीर्घकालीन नहीं कहा जा सकता है क्योकि इस उन्नति का काफी भाग आकस्मिक घटनाओ के घटित होने अथवा घटित न होने पर निर्भर है।

(२) योजना बनाते समय प्रत्येक क्षेत्र मे अपूर्णता का वातावरण था और इसी वातावरण को प्रधान लक्षण मानकर योजना का कार्यक्रम एव लक्ष्य निर्धारित किये गये। योजना मे ऐसे आयोजन नहीं किये गये जिनके द्वारा आकस्मिक अनुकूल आर्थिक परिस्थितियो का पूर्णतम उपयोग किया जा सके। उत्पादन की अतिरिक्त वृद्धि को आर्थिक विकास के कार्यक्रमो के लिए उपयोग मे लाना आवश्यक होता है, अन्यथा उत्पादन की वृद्धि का उपयोग उपभोग मे अथवा अपव्यय मे हो जाता है। इस प्रकार अनुमान स अधिक उत्पादन-वृद्धि का उपयोग नियोजित विनियोजन (Planned Investment) तथा व्यवस्था द्वारा आर्थिक विकास के कार्यक्रमो मे पूर्णतम नही हुआ। आकस्मिक उद्भूत घटको ने जो विकास के अवसर प्रदान किये उनका पूर्णतम उपयोग नहीं किया गया। अर्थव्यवस्था का ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए था कि जिसमे अनुकूल परिस्थितियो का स्वत विकास मे उपयोग हो जाता अर्थात् अतिरिक्त उत्पादन का अधिकतर भाग पूँजी-निर्माण की ओर आकर्षित हो जाता।

(३) योजना बनाते समय योजना आयोग ने प्रत्यक्ष बेरोजगारी की समस्या पर कोई विशेष ध्यान नही दिया, यद्यपि अदृश्य बेरोजगारी एव अर्ध-बेरोजगारी के दबाव को कम करन के लिए आयोजन किया गया था। परन्तु बाद मे बेरोजगारी का निवारण करन लिए लगभग ३०० करोड रु० का आयोजन किया गया। योजना काल की सबसे बडी विशेषता यह थी कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ साथ बेरोजगारी मे भी वृद्धि हुई। विनियोजन की वृद्धि के साथ-साथ रोजगार के अवसरो म पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई। योजना आयोग के अनुमान के अनुसार द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे ५६ लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। यह अनुमान है कि योजना काल मे जनसख्या मे १ १% प्रति-वर्ष वृद्धि हुई और लगभग इतनी ही वृद्धि श्रम-शक्ति मे भी होने का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार योजना काल मे लगभग ९० लाख श्रमिको की वृद्धि हुई होगी जबकि योजना के अन्त मे ५६ लाख व्यक्ति बेरोजगार होने का अनुमान है। यदि यह मान लिया जाय कि प्रथम योजना के प्रारम्भ मे प्रत्यक्ष बेरोजगारी की समस्या नहीं के समतुल्य थी तो योजना काल मे रोजगार के अवसरो मे ३४ लाख की वृद्धि हुई होगी। इन अनुमानो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रम मे वृद्धि की मात्रा के लगभग आधे के समतुल्य ही प्रथम पचवर्षीय योजना मे रोजगार के अवसरो मे वृद्धि हुई। इस प्रकार बेरो-जगारी की समस्या का निवारण प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा न हो सका।

(४) उद्योगो के विकास हेतु योजनाओ मे अत्यन्त अल्प राशि निर्धारित की गयी थी। उद्योगो की अर्थ सम्बन्धी आवश्यकता को ही अधिक महत्त्व दिया

गया था। औद्योगिक क्षेत्र की अन्य समस्याओं, जैसे सन्तुलित औद्योगिक विकास, उत्पादन क्षमता का पूर्णतम उपयोग, उत्पत्ति के विपणि की सुविधाओं आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। योजना काल मे भी बहुत से उद्योग अपनी उत्पादन क्षमता के केवल ६०% भाग का ही उपयोग करते रहे।

(५) शासकीय क्षेत्र का अन्य साधन सचय करने के साथ साथ प्राप्त साधनो का व्यय करने म भी कठिनाई हुई। इसलिए हम देखते हैं कि लोक क्षेत्र की समस्त निर्धारित राशि २,३५६ करोड रु० म से केवल १,८६० करोड रु० ही वास्तविक व्यय हुआ। योजना के सचालन का भार ऐसे शासकीय संगठन को सौंपा गया जो ब्रिटिश काल म शासन हेतु उपयुक्त था। विकास के कार्यक्रमों का सचालन ऐसे ढाँचे द्वारा किये जाने म पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी। व्यवस्था म आवश्यक परिवर्तन नहीं हो सके जिससे इस व्यवस्था द्वारा प्रबन्धन एव साहस सम्बन्धी कार्यों को भी सफलतापूर्वक सचालित किया जा सके।

उपर्युक्त असफलताओं को कोई गम्भीर महत्त्व नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इन असफलताओं की तुलना म योजना की सफलता अत्यधिक सराहनीय है। योजना की सर्वप्रमुख सफलता यह है कि योजना द्वारा विकास का प्रारम्भ हो गया था तथा भविष्य म आने वाली योजनाओं के लिए एक मार्ग निर्मित हो गया था।

अध्याय ११

द्वितीय पंचवर्षीय योजना [१]

[प्रारम्भिक, समाजवादी प्रकार का समाज, उद्देश्य, योजना का व्यय एव प्राथमिकताएँ, अर्थ प्रबन्ध, योजना के लक्ष्य एव कार्यक्रम, कृषि एव सामुदायिक विकास, सिंचाई एव शक्ति, औद्योगिक एव खनिज विकास, यातायात एव सचार, समाज सेवाएँ]

प्रारम्भिक

प्रथम पचवर्षीय योजना काल की समाप्ति के पूर्व ही द्वितीय योजना की नीतियो एव कार्यक्रमो पर विचार किया जाने लगा था। प्रथम योजना द्वारा देश की अर्थ व्यवस्था मे यत्र-तत्र समायोजन करके उत्पादन मे वृद्धि एव विषमताओ को कम करने के लक्ष्यो की पूर्ति करने का उद्देश्य निर्धारित किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य की योजनाओ को दृढ पृष्ठभूमि प्राप्त हो सके तथा इनकी व्यवस्था निर्धारित सिद्धान्तो के आधार पर की जा सके। *द्वितीय योजना के कार्यक्रम निर्धारित करने के पूर्व यह निश्चय करना* अत्यन्त आवश्यक था कि देश मे किस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था का निर्माण किया जाय। इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और राष्ट्र की सास्कृतिक एव परम्परागत प्रवृत्तियो को दृष्टिगत करते हुए यह निश्चय किया गया कि समाजवाद का कठोर स्वरूप भारत के लिए उपयुक्त नहीं होगा। इसी पृष्ठभूमि मे 'समाजवादी प्रकार के समाज' (Socialistic Pattern of Society) की विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ।

समाजवादी प्रकार का समाज

'समाजवादी प्रकार के समाज' का विचार सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् मे भाषण देते हुए नवम्बर १९५४ मे प्रकट किया गया। लोकसभा ने १९५४ के शीतकालीन अधिवेशन मे एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चित किया कि देश की आर्थिक एव सामाजिक नीतियो का उद्देश्य राष्ट्र मे समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण करना

होगा। जन-समुदाय के भौतिक कल्याण द्वारा ही देश को उन्नतिशील नहीं बनाया जा सकता है। भौतिक सम्पन्नता तो केवल साधन मात्र है जो प्रगतिशील, विद्वत्तापूर्ण एव सास्कृतिक जीवन के निर्माण मे सहायक होती है। *आर्थिक विकास द्वारा राष्ट्र को उत्पादन क्षमता मे विस्तार* के साथ-साथ देश मे ऐसे वातावरण का भी निर्माण होना चाहिए, जिसमे मानवीय शक्तियो एवं इच्छाओ का अनावरण करने तथा प्रयोग करने के अवसर उपलब्ध हो। इस *प्रकार समाज के विकास कार्यक्रमो एव आर्थिक क्रियाओ* को प्रारम्भ से ही समाज के अन्तिम उद्देश्यो पर आधारित होना चाहिए। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे वर्तमान आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था मे भौतिक सम्पन्नता प्राप्त करना *ही मुख्य उद्देश्य नही होता है अपितु समाज की व्यवस्था मे संस्थनीय* (Institutional) परिवर्तन करना भी वाछनीय होता है। ये सस्थनीय परिवर्तन एक नवीन सामाजिक व्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

भारत मे उपर्युक्त उद्देश्यो को दृष्टिगत करते हुए राज्य के उत्तरदायित्वो को निर्धारित किया गया है। राजकीय नीति निर्धारक तत्वा (Directive Principles of State Policy) द्वारा राज्य के कर्तव्यो का विश्लेषण *भी किया गया है। इन तत्वो के अनुसार राज्य को ऐसे समाज का निर्माण करना* चाहिए कि सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय राष्ट्र के समस्त नागरिको को उपलब्ध हो। इन्हीं आधारभूत नीति निर्धारक तत्वो को अधिक सूक्ष्म करके लोकसभा मे दिसम्बर १६५४ मे समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना राजकीय नीतियो के अन्तिम उद्देश्य के रूप म स्वीकार की गयी।

अखिल भारतीय कॉंग्रेस के आवडी अधिवेशन मे २२ जनवरी १६५५ को स्वर्गीय पडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव द्वारा निम्नांकित सिफारिशे की गयी—

(१) भारत का आर्थिक एव सामाजिक लक्ष्य एक समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण होना चाहिए।

(२) *जन साधारण के जीवन-स्तर एव उत्पादन के स्तर मे वृद्धि होनी* चाहिए।

(३) दस वर्षों में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए।

(४) राष्ट्रीय धन का समान वितरण होना चाहिए।

(५) आर्थिक नियोजन द्वारा जन-साधारण की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति होनी चाहिए।

समाजवादी प्रकार के समाज का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया गया कि यह

एक ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था होगी जिसमे व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर सामाजिक लाभ को अधिक महत्व दिया जायगा। इस व्यवस्था मे विकास का प्रकार एवं आर्थिक तथा सामाजिक क्रियाओं को इस प्रकार योजनाबद्ध किया जायगा कि राष्ट्रीय आय एव रोजगार की वृद्धि के साथ-साथ धन एव आय की विषमताओं को भी कम करने का आयोजन हो सकेगा। उत्पादन, वितरण, उपभोग, विनियोजन तथा अन्य समस्त आर्थिक एव सामाजिक विषयो के हेतु नीति-निर्धारण सामाजिक हित से सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा ही किया जाना चाहिए। आर्थिक विकास का लाभ अधिक से अधिक समाज के पिछड़े हुए वर्गों को प्राप्त होना चाहिए तथा धन, आय एव आर्थिक शक्तियो के केन्द्रीयकरण मे निरन्तर कमी होनी चाहिए। सामाजिक एव आर्थिक प्रारूप में इस प्रकार परिवर्तन किये जाने चाहिए कि जिसमे निम्न वर्ग के व्यक्तियो को, जो अभी तक अवसरहीन हैं तथा जिन्हे संगठित प्रयासो द्वारा आर्थिक सम्पन्नता मे सहयोग देने के अवसर प्रदान नहीं किये गये है, अपना जीवन स्तर सुधारने एव राष्ट्र को सम्पन्न बनाने के लिए अधिक कार्य करने के अवसर प्राप्त हो सकें। इस विधि द्वारा निम्न वर्ग के जन-समुदाय की आर्थिक एव सामाजिक स्थिति मे उन्नति हो सकती है। वे परिस्थितियाँ जिनम कोई व्यक्ति जन्म लेता है अथवा अपना जीवन न्यून व्यवसाय से प्रारम्भ करता है, उसकी उन्नति एव सम्पन्नता मे बाधक नही होनी चाहिए। इसके लिए राज्य द्वारा उपयुक्त वातावरण एव परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए। इन परिस्थितियो के निर्माणार्थ शासकीय क्षेत्र का विस्तार एवं विकास अत्यावश्यक होगा। शासकीय क्षेत्र को केवल उन्ही अवस्थाओं का विकास नहीं करना चाहिए, जिनके विकास के लिए व्यक्तिगत क्षेत्र तत्पर न हो प्रत्युत् उसे समस्त शासकीय एवं व्यक्तिगत विनियोजन का प्रकार निर्धारित करना चाहिए। दूसरी ओर, व्यक्तिगत क्षेत्र को समाज द्वारा स्वीकृत नीतियो एवं योजनाओं के प्रारूप की सीमाओं मे कार्य करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

समाजवादी प्रकार के समाज को एक स्थिर एव कठोर व्यवस्था नहीं समझना चाहिए। इस व्यवस्था मे राष्ट्र की आर्थिक एव सामाजिक नीतियो को समय-समय पर ऐतिहासिक परिस्थितियो के अनुसार निश्चित किया जायगा। इसमे प्रयोगात्मक कार्यवाहियो को भी उचित स्थान प्राप्त होगा। शासकीय क्षेत्र के विस्तार द्वारा नीति निर्धारण करने की शक्तियो के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन नहीं दिया जायगा। वास्तव मे शासकीय व्यवसायो

को स्वतन्त्रता के साथ विस्तृत नियमो के अन्तगत काय करने के अवसर प्रदान किये जायेंगे। इनका सगठन एव प्रबन्धन इस प्रकार का होगा कि जिसमे प्रयोगात्मक कार्यवाहियो की आवश्यकता होगी। ये ही नियम समाज के समस्त क्षेत्रो पर लागू होगे।

समाजवादी प्रकार की व्यवस्था द्वारा निम्नलिखित प्रत्यक्ष उद्देश्यो की पूर्ति की जायगी—

(१) समाजवादी प्रकार के समाज का आधारभूत उद्देश्य देश म अवसर की समानता तथा सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय के आधार पर एक आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है।

(२) इस समाज जाति, समुदाय, लिंग अथवा सामाजिक एव आर्थिक स्थिति पर आधारित भेद-भाव दूर कर दिया जायगा और प्रत्येक कार्य करन याग्य व्यक्ति का जोविकापाजन करन क अवसर प्रदान किये जायेंगे। दूसरे शब्दो मे समाजवादी प्रकार के समाज का उद्देश्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना है।

(३) राज्य समाज के मुख्य उत्पादन के साधनो एव कच्च माल के साधनो को अपने अधिकार अथवा प्रभावशाली नियन्त्रण म इसलिए रखेगा कि इनका उपयोग अधिकतम राष्ट्रीय हित के लिये किया जा सके।

(४) समाज अर्थ-व्यवस्था का सगठन इस प्रकार करेगा कि इसके द्वारा धन एव उत्पादन के साधनो का केन्द्रीयकरण सामान्य अहित के लिये न हो सके।

(५) देश के समस्त राष्ट्रीय धन के उत्पादन म वृद्धि एव द्रुत गति के लिये विधिवत् प्रयत्न किये जायेंगे।

(६) राष्ट्रीय धन का समान वितरण करना आवश्यक होगा जिससे वर्तमान आर्थिक विषमताओ म अधिकतम कमी की जा सके।

(७) वर्तमान सामाजिक एव सामाजिक ढाँचे म आवश्यक परिवर्तन शातिपूर्ण एव प्रजातान्त्रिक विधियो द्वारा किय जायेंगे।

(८) समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना के लिये आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता विकेन्द्रीयकरण करना आवश्यक होगा जिसके लिये ग्रामीण पचायतो एव लघु एव गृह उद्योगों का बडे पैमाने पर विस्तार किया जायगा।

अखिल भारतीय कांग्रेस ने समाजवाद एव समाजवादी प्रकार के समाज मे कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर बताये हैं। समाजवादी प्रकार का समाज उस व्यवस्था को कहते हैं जिसम उत्पादन के मुख्य साधन समाज के अधिकार एव नियन्त्रण मे हो, जहाँ उत्पादन म निरन्तर वृद्धि की जाय तथा जहाँ राष्ट्रीय धन का समान वितरण हो। दूसरी ओर समाजवाद मे अवसर की समानता, उत्पादन लगभग समस्त साधनो पर सामाजिक अधिकार एव नियन्त्रण, व्यक्तिगत

साहस की समाप्ति, व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति, आय का समान वितरण आदि निहित हैं। समाजवादी प्रकार के समाज की व्यवस्था यद्यपि पूँजीवाद एव समाजवाद का सम्मिश्रण होती है, परन्तु इसके उद्देश्य समाजवाद क समान ही होने हैं। समाजवादा प्रकार के समाज का मुख्य उद्देश्य अवसर, धन एव आय का समान वितरण होता है, परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जो विधियाँ अपनाया जायगा, व समाजवाद का विधिया से कुछ भिन्न हागी। समाजवाद म व्यक्तिगत साहस, व्यक्तिगत सम्पत्ति एव व्यक्तिगत लाभ को सवथा समाप्त कर दिया जाता है और अर्थ-व्यवस्था पर राज्य का सम्पूर्ण अधिकार एव नियन्त्रण हाता है। इस प्रकार समाजवाद द्वारा आर्थिक एव राजनीतिक सत्ता का केन्द्रीयकरण राज्य के हाथा म हा जाता है। समाजवादी प्रकार क समाज म व्यक्तिगत एव शासकाय दाना साहस अर्थ-व्यवस्था म स्थान प्राप्त करत है तथा इस प्रकार एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था का निर्माण करन का उद्देश्य हाता है जिसमे आधारभूत उत्पादन के साधनो एव क्षत्रो पर अधिकार एव नियन्त्रण शासकाय क्षत्र का होगा तथा अन्य क्षत्रा मे व्यक्तिगत साहसिया को शासकीय नियमन एव राष्ट्रीय नीतिया के अनुसार काय करन का अवसर दिया जायगा।

श्री श्रीमन्नारायण न ११ जून १९५५ को समाजवादा प्रकार के समाज पर आकाशवाणी स भाषण करत हुए कथित समाज-व्यवस्था के निम्नांकित सात सिद्धान्त स्पष्ट किये—

(१) पूर्ण रोजगार—समाजवादी प्रकार क समाज का स्थापना करन क लिए पूर्ण रोजगार का प्रबन्ध किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। दश के प्रत्येक काय करन योग्य व्यक्ति को अपनी जीविकोपार्जन हेतु लाभप्रद रोजगार मिलना चाहिए। एस समाजवादा प्रकार क समाज को स्थापना को जानी चाहिय कि प्रत्यक स्त्री एव पुरुष परिश्रम द्वारा अपनी जीविका उपार्जित करे।

(२) राष्ट्रीय धन का अधिकतम उत्पादन—दश क आर्थिक जीवन का सगठन इस प्रकार किया जाय कि उपभोक्ता-वस्तुओ के समस्त उत्पादन मे वृद्धि हो, परिणामस्वरूप जीवन-स्तर म वृद्धि हो सक। यह विचार करना उचित नहीं है कि लघु एव ग्रामीण उद्योगो के विकास, जो कि पूर्ण रोजगार के हेतु आवश्यक हैं, क फलस्वरूप दश के जीवन-स्तर म कमी रहगा। विकेन्द्रित उत्पादन की जो औद्योगिक सहकारी समितिया द्वारा किया जायगा, उत्पादन लागत बड कारखाना का उत्पादन लागत स अधिक हाना आवश्यक नहीं है। समाजवादी प्रकार क समाज म पूर्ण उत्पादन पूर्ण रोजगार द्वारा ही हो सकता है।

(३) अधिकतम राष्ट्रीय आत्म निर्भरता—एक राष्ट्र पूर्ण रोजगार

एवं उत्पादन में वृद्धि निर्यात अर्थ-व्यवस्था द्वारा पड़ौसी अर्ध-विकसित राष्ट्रों का शोषण करके प्राप्त कर सकता है। परन्तु ऐसे समाज को, जो आन्तरिक समाजवाद की स्थापना विदेशों का आर्थिक शोषण करके करता हो, वास्तविक रूप में समाजवादी समाज नहीं कहा जा सकता है।

(४) आर्थिक एवं सामाजिक न्याय—भारतीय समाज में सामाजिक विषमताओं एवं अन्य प्रकार के अन्यायों के निवारण के साथ-साथ अधिक आर्थिक समानता की भी आवश्यकता है। समाजवादी प्रकार के समाज की सुदृढ़ आधारशिला के लिए धनी एवं निर्धन के अन्तर को दूर करना आवश्यक है।

(५) समाजवादी प्रकार के समाज में शान्तिपूर्ण, अहिंसक तथा लोकतन्त्रीय विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। समाजवादी एवं साम्यवादी राष्ट्रों में समाजवाद की स्थापना में वर्ग-युद्ध (Class Conflict), हिंसा एवं संयीकरण करने का प्रयत्न किया जाता है। भारत में इस प्रकार की किसी विधि के उपयोग का विचार नहीं है।

(६) ग्रामीण पंचायतों एवं औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना द्वारा आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण समाजवादी समाज का एक मूल सिद्धान्त है। अहिंसक एवं प्रजातान्त्रिक समाज में नियोजित व्यवस्था की स्थापना केन्द्रित एवं यन्त्रीकृत उत्पादन द्वारा सम्भव नहीं हो सकती। अधिक केन्द्रीयकरण द्वारा आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों का कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित होना अनिवार्य हो जाता है।

(७) जनसंख्या के अत्यन्त निर्धन एवं न्यूनतम वर्गों की तीव्रतम आवश्यकताओं को अधिकतम प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। जो सर्वाधिक दलित व्यक्ति हैं, उन्हें सर्वाधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए और जो समाज में उच्च स्थान रखते हैं, उन्हें हमारी समाजवादी प्रकार के समाज की योजनाओं में अन्तिम स्थान मिलना चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रमों का उद्देश्य देश में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना की ओर प्रयास करना निश्चित किया गया। समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना द्वारा जीवन-स्तर में वृद्धि करना, समस्त जन-समुदाय को अवसरों की समान उपलब्धि में वृद्धि करना, पिछड़े वर्गों में उत्साह एवं साहस उत्पन्न करना तथा समाज के समस्त वर्गों में सहकार भावना जाग्रत करना आदि उद्देश्यों की पूर्ति की जानी थी।

उद्देश्य

प्रथम पचवर्षीय योजना की सफलताओ की पृष्ठभूमि पर द्वितीय पचवर्षीय योजना बनायी गयी। इस योजना का कार्यक्रम १ अप्रैल सन् १९५६ को प्रारम्भ हुआ। प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा जो विकास हुआ, उसे दृढ बनाने एव उसकी गति मे तीव्रता लाने के लिए द्वितीय योजना के कार्यक्रम निश्चित किये गये। द्वितीय योजना के प्रारम्भ होने पर योजना कमीशन ने बताया कि प्रथम योजना द्वारा जो प्रगति की नींव सफलतापूर्वक डाली गयी है, उसी शिला पर अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो का विकास तीव्रता के साथ द्वितीय योजना द्वारा किया जायगा। प्रथम योजना ने जिस विश्वास की विधि का प्रारम्भ किया है, उस विधि की अगली अवस्थाओ की प्राप्ति द्वितीय योजना द्वारा हो सकेगी। द्वितीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न थे—

(१) देश म जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए राष्ट्रीय आय मे पर्याप्त वृद्धि।

(२) द्रुतगति स औद्योगीकरण करना, जिसमे आधारभूत एव मूल उद्योगो पर विशेष जोर दिया गया।

(३) रोजगार के अवसरो म वृद्धि करना, तथा

(४) आय एव सम्पत्ति की असमानता को कम करना तथा आर्थिक क्षमता का अधिक समान वितरण करना।

उपर्युक्त समस्त उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, क्योंकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि एव जीवन स्तर का उत्थान तब तक नहीं हो सकता जब तक उत्पादन एव विनियोजन म पर्याप्त वृद्धि न हो। इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु सामाजिक एव आर्थिक आधार का निर्माण, खानो का विदोहन एव विकास, इस्पात, कोयला, यन्त्र निर्माण, भारी रसायन आदि आधारभूत उद्योगा का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इन सभी क्षेत्रा में एक साथ विकास करने के लिए उपलब्ध जन-शक्ति एव प्राकृतिक साधनो का अधिकतम एव लाभप्रद उपयोग होना चाहिए। भारत जैसे राष्ट्र म जहाँ जन शक्ति का आधिक्य है, रोजगार के अवसरो म वृद्धि करना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर आर्थिक विकास के साथ कुछ आधारभूत सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति भी होनी चाहिए। इस प्रकार आर्थिक विकास के साथ सामाजिक एव आर्थिक विषमताओ को लोकतन्त्रीय विधियो द्वारा कम करना आवश्यक है। आर्थिक उद्देश्यो को सामाजिक उद्देश्यो से पृथक् नहीं किया जा सकता है क्योंकि आर्थिक क्रियाएँ सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति का साधन होती हैं।

राष्ट्रीय ग्राय—द्वितीय पचवर्षीय योजना मे राष्ट्रीय ग्राय मे २५% वृद्धि करने का ग्रायोजन किया गया ग्रर्थात् ग्राय मे प्रति वर्ष ५% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया था। यह वृद्धि की दर प्रथम पचवर्षीय योजना से लगभग दुगुनी है। प्रति व्यक्ति ग्राय भी २७३'६ रु० (१९५५-५६) से बढ कर ३३० रु० (१९६०-६१) होने का ग्रनुमान है। इस प्रकार द्वितीय योजना काल मे प्रति व्यक्ति ग्राय मे १८% वृद्धि होने की सम्भावना थी जबकि प्रथम योजना मे यह वृद्धि १० % थी। समस्त राष्ट्रीय उत्पादन १०, ८०० करोड रु० (प्रचलित मूल्यो पर) से बढ कर १३,४८० करोड रु० योजना के ग्रन्त तक होने का ग्रनुमान था। इस राष्ट्रीय उत्पादन मे लक्ष्य मे ६,१७० करोड रु० कृषि से, २,६१० करोड रु० ग्रौद्योगिक क्षेत्र से तथा ४,४०० करोड रु० व्यापार तथा ग्रन्य तृतीय प्रकार (Tertiary) के व्यवसायो मे उत्पादित होने की सम्भावना थी।

ग्रौद्योगीकरण—शीघ्र ग्रौद्योगीकरण के लिए द्वितीय योजना मे विनियोजन के प्रकार मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने का लक्ष्य था। उद्योगो पर व्यय होने वाली राशि ८९१ करोड रु० निर्धारित की गयी है जो प्रथम योजना की राशि १७९ करोड रु० से लगभग पाँच गुनी है। प्रथम योजना के समस्त व्यय का ७% भाग उद्योगो पर व्यय होना था जबकि द्वितीय योजना मे यह १९% रखा गया। दूसरी ग्रोर प्रथम योजना की ३३% राशि कृषि एव सिंचाई के लिए निर्धारित की गयी थी, जबकि द्वितीय योजना मे इस मद पर योजना के समस्त व्यय की २१% (१,०२३ करोड रु०) राशि व्यय की जानी थी। इस प्रकार द्वितीय योयना मे उद्योगो के विकास को ग्रत्यधिक महत्त्व दिया गया था। रहन-सहन का निम्न-स्तर, बेरोजगारी एव ग्रर्ध-बेरोजगारी तथा ग्रधिकतम एवं ग्रौसत व्यक्तिगत ग्राय मे ग्रधिक ग्रन्तर ग्रर्ध विकसित ग्रर्थ-व्यवस्था का परिचय देते हैं ग्रौर ग्रर्थ-व्यवस्था की कृषि पर निर्भरता की ग्रोर सकेत करते है। ऐसी ग्रर्थ-व्यवस्था का विकास करने के लिए शीघ्र ग्रौद्योगीकरण की ग्रावश्यकता होती है। शीघ्र ग्रौद्योगीकरण के लिए देश म ग्राधारभूत एव यत्र-निर्माण उद्योगो के विस्तार एवं विकास की ग्रावश्यकता होती है। ग्रत पूँजीगत-वस्तुग्रो एव मशीन-निर्माण उद्योगो के विकास को योजना का मुख्य उद्देश्य रखा गया।

रोजगार—योजना मे ८० लाख व्यक्तियो को कृषि के ग्रतिरिक्त ग्रन्य व्यवसायो तथा २० लाख को कृषि मे रोजगार प्राप्त कराने का ग्रायोजन किया गया। योजना के कार्यक्रमो एव विनियोजन के फलस्वरूप खनिज, कारखानो, निर्माण, व्यापार, यातायात एव सेवाग्रो मे श्रमिको की ग्रधिक ग्रावश्य-

कता होगी तथा नवीन श्रमिको को कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो मे रोजगार के अवसर प्रदान किये जा सकते थे। इसके साथ ही कृषि तथा ग्रामीण एवं लघु उद्योगो मे अर्ध-रोजगार का निवारण किया जा सकेगा। इस प्रकार देश के व्यावसायिक ढाँचे मे कुछ सुधार होने की सम्भावना थी। योजना काल मे प्राथमिक व्यावसायिक क्षेत्र से माध्यमिक तथा तृतीय व्यावसायिक क्षेत्रो मे श्रम को ले जाना आवश्यक होगा। योजना मे सिंचाई, भूमि-सुरक्षा, पशुओ मे सुधार तथा कृषि-सुधार के हेतु पर्याप्त कार्यक्रम थे। इसके साथ ग्रामीण तथा लघु उद्योगो के विकास का आयोजन भी किया गया था। इन सब आयोजनो से ग्रामीण क्षेत्र के अर्ध रोजगार का बहुत बडी सीमा तक निवारण सम्भव होगा। योजना म लगभग उतने ही रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने का आयोजन किया गया था जितना कि योजना काल मे नवीन श्रमिक-शक्ति मे वृद्धि का अनुमान था। इस प्रकार प्रथम योजना के अवशिष्ट बेरोजगारो, जिनकी सख्या ५६ लाख अनुमानित थी, को रोजगार के अवसर प्रदान नहीं किये जा सकेंगे। योजना मे निर्माण कार्यक्रम को विस्तृत करने का आयोजन था और निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रमो मे रोजगार के अवसरो की आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते थे। निर्माण कार्यक्रमो के रोजगार के अवसर अस्थायी होते हैं, इसलिए इस बात का प्रबन्ध करने का प्रयत्न किया जाना था कि एक निर्माण कार्य स पृथक् हुए श्रमिको को अन्य निर्माण-कार्य म रोजगार प्रदान किया जा सके।

रोजगार के अवसरो म पर्याप्त वृद्धि करने को अधिक प्राथमिकता दी गयी थी किन्तु रोजगार मे वृद्धि करने के लिए एक ओर औजार एव उत्पादक सामग्री म और दूसरी ओर उपभोक्ता-वस्तुओ म पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए। यदि आर्थिक विकास हेतु उत्पादक एव पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन को आवश्यक समझा जाय तो देश की जन शक्ति का लाभप्रद उपयोग करने के लिए उपभोक्ता-वस्तुओ, जैसे खाद्यान्न, वस्त्र, शक्कर, निवास-गृह आदि के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होना आवश्यक होता है। जब बेरोजगारो को लाभप्रद रोजगार दिया जाता है तो एक ओर उन्हे यत्र, मशीनें एव अन्य उत्पादक वस्तुएं चाहिए, जिन पर वह कार्य करे तथा दूसरी ओर उनको जो आय हो, उससे वह जो उपभोक्ता-वस्तुओ का क्रय करना चाहे, उसकी पूर्ति होनी चाहिए। इस प्रकार उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करना रोजगार का मुख्य अग हो जाता है। इसी कारण से बेरोजगारी को समस्या उन्हीं राष्ट्रो मे निश्चितरूप धारण कर लेती है जिनम कि उत्पादन-क्षमता कम होती है। यद्यपि भारत जैसे देश मे जहाँ

जन-शक्ति का बाहुल्य है, अधिक श्रम का उपयोग करने वाली उत्पादन की विधियों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, फिर भी कुछ क्षेत्रों में श्रम की बचत करने वाले उत्पादन के तरीकों का उपयोग करने से ही रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं।

विषमताओं में कमी—योजना में आय तथा धन के असमान वितरण को कम करने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम निश्चित किये गये। योजना आयोग द्वारा कर देने के पश्चात् व्यक्तिगत शुद्ध आय की अधिकतम सीमा को निश्चित करना आवश्यक बताया गया। आयकर में अधिक आय के स्तरों पर वृद्धि, जायदाद कर मे वृद्धि, धन पर वार्षिक कर, अधिक आय पर व्यय के आधार पर करारोपण आदि द्वारा आर्थिक असमानता कम करने की सिफारिश की गयी। भूमि सुधार मे अधिकतम भूमि की सीमा, जो कि एक व्यक्ति एवं परिवार रख सकता है, निश्चित करने पर जोर दिया गया तथा लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास द्वारा कम अर्थोपार्जन करने वाले कृषकों की आय में वृद्धि करने का आयोजन किया गया।

सम्पत्ति के वितरण में असमानता कम करने के लिए एक विकेन्द्रित समाज (Decentralized Society) की स्थापना का आयोजन किया गया। कार्य के प्रतिफल रूप प्राप्त पारिश्रमिक की असमानता लोगों की योग्यता, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा कार्यक्षमता के कारण उद्भूत होती है। शिक्षा, प्रशिक्षण आदि समस्त धनोपार्जक शक्तियाँ धन द्वारा प्राप्त की जाती हैं। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र मे शिक्षा को योग्यता, क्षमता एवं रुचि के अनुसार देने का सुझाव दिया गया। शिक्षा के क्षेत्र मे व्यय करने की क्षमता को विशेष महत्व नहीं मिलना चाहिए। इस प्रकार समस्त जन-समुदाय को समान अवसर प्रदान करने का आयोजन करने के प्रयास किये गए।

आर्थिक विषमता को कम करने के लिए सहकारी उत्पादन का विकास, महाजनों का विस्थापन, निष्क्रिय लगान प्राप्त करने वालों का उन्मूलन, व्यक्तिगत एकाधिकार पर नियन्त्रण एवं राजकीय क्षेत्र का विस्तार आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन थे। इन सभी बातों के लिए द्वितीय योजना में विशेष प्रबन्ध किया गया। साथ ही प्रादेशिक विषमता का अन्त करने के लिए सन्तुलित विकास की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर ही योजना काल की आर्थिक नीतियाँ निर्धारित की जाती थीं। आर्थिक नीति द्वारा केवल अर्थ-साधनों की प्राप्ति ही नहीं की जाती अपितु उपभोग एवं विनियोजन को इस प्रकार भी निश्चित किया

जाता है ताकि योजना की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। योजना मे केवल विकास कार्यक्रमों की सूची ही नहीं होती है बल्कि यह भी निर्धारित किया जाता है कि इन कार्यक्रमों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जायगा। योजना के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दो उपायों का उपयोग किया जा सकता है। प्रथम, देश की आर्थिक क्रियाओं को तटकर (Fiscal) एव मौद्रिक (Monetary) नीतियों द्वारा पूर्णत नियन्त्रित कर दिया जाता है। द्वितीय विधि मे आयात निर्यात नियन्त्रण, उद्योग एव व्यवसायों को अनुज्ञापत्र निर्गमन, मूल्य-नियन्त्रण तथा उत्पादन की मात्रा निर्धारित करना आदि द्वारा अर्थ-व्यवस्था के वाछनीय क्षेत्रों को नियन्त्रित कर दिया जाता है। तटकर एव मौद्रिक नियन्त्रणों द्वारा एक ऐसी विस्तृत योजना को जिसम विनियोजन मे अधिकतम वृद्धि करने तथा प्राथमिकताओं के अनुसार विकास करने का आयोजन हो, क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है। इसलिए दूसरी विधि को ही योजना आयोग ने अधिक महत्व दिया है। यद्यपि योजना आयोग ने आवश्यक वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रण एव राशनिंग का यथासम्भव उपयोग न करने के सम्बन्ध मे प्रयास करने का आश्वासन दिया है परन्तु पूर्ति मे पर्याप्त वृद्धि न होने एव विनियोजन के साधनों को उपभोग के लिए उपयोग होने से रोकने के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों एव वितरण पर नियन्त्रण लगाये जा सकते थे। सरकार को मूल्यों के उच्चा-वचन को रोकने के लिए बफर स्टॉक का आयोजन करना था। इसके साथ ही व्यापारिक फसलों के मूल्यों मे समायोजन का प्रयास भी करना था जिससे खाद्यान्नों के उत्पादन पर गम्भीर प्रभाव न पड़े। औद्योगिक क्षेत्र मे औद्योगिक वित्त निगम तथा औद्योगिक साख एव विनियोजन निगम (Industrial Finance Corporation and Industrial Credit and Investment Corporation) व्यक्तिगत क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे तथा राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) शासकीय उद्योगों का प्रवर्तन एव विकास करेगा। राजकीय वित्त निगम (State Finance Corporation) एव केन्द्रीय लघु उद्योग निगम छोटे छोटे व्यवसायों को सहायता प्रदान करेंगे।

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर यह कहा सकता है कि द्वितीय योजना मे प्रथम योजना के उद्देश्यों की तुलना मे कुछ आधारभूत अन्तर है। प्रथम योजना बनाते समय अर्थ व्यवस्था मे विभिन्न क्षेत्रों मे न्यूनता थी अतएव उत्पादन मे वृद्धि को विशेष महत्व दिया गया था। यद्यपि विषमताओं को कम करने के लिए भी कुछ ठोस कदम उठाये गये किन्तु वे अपर्याप्त थे, द्वितीय

योजना मे उत्पादन मे सर्वांगीण वृद्धि के साथ शीघ्र औद्योगीकरण और विशेषत आधारभूत उद्योगो के विकास को भी आवश्यक समझा गया। प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा कृषि उत्पादन मे काफी वृद्धि हो गयी थी और अब औद्योगीकरण की ओर कदम उठाये जा सकते थे। औद्योगीकरण साधन एव लक्ष्य दोनो ही था। औद्योगीकरण द्वारा ही बेरोजगारी की समस्या का निवारण किया जा सकता है। इस प्रकार रोजगार के अवसरो म वृद्धि करन के लिए औद्योगीकरण एक साधन था। दूसरी ओर देश की अर्थ व्यवस्था को दृढ बनाने के लिए आधारभूत उद्योगो का विकास एव विस्तार अति आवश्यक था। द्वितीय पचवर्षीय योजना रोजगार की समस्या के निवारण को प्राथमिकता देती है जबकि प्रथम योजना म इस ओर ठोस कदम नही उठाये गए थे। प्रथम योजना म व्यावसायिक ढाँचे म कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास द्वारा व्यावसायिक ढाचे म परिवर्तन होने की अत्यधिक सम्भावना थी। द्वितीय योजना द्वारा एक नए समाज—समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण करना था।

योजना का व्यय एव प्राथमिकताएँ

योजना के लक्ष्य निश्चित करने के लिए सामान्य वित्तीय विचारधाराओ को आधार नहीं माना गया प्रत्युत् प्रथम भौतिक लक्ष्यो को निश्चित कर लिया गया, तत्पश्चात इन लक्ष्यो के लिये साधन एकत्रित करने की विधियो पर विचार किया गया। प्राय योजना म उपलब्ध अर्थ तथा योजना द्वारा वाछनीय वित्तीय फलो के आँकडे तयार करके ही योजना के भौतिक कार्यक्रम निश्चित किये जाते हैं, दूसरे शब्दो म हम इस वित्तीय नियोजन (Financial Planning) भी कह सकते है। जब योजना के कार्यक्रम वित्त की उपलब्धि पर निर्भर हों तो उसे वित्तीय नियोजन कहा जा सकता है। द्वितीय योजना मे इसकी विपरीत रीति को अपनाया गया अर्थात योजना के भौतिक लक्ष्य निश्चित करने के पश्चात् उनकी पूर्ति के लिए अर्थ साधन प्राप्ति के माध्यमो पर विचार किया गया। इस प्रकार योजना बनाने मे देश की आवश्यकताओ तथा जन साधारण की इच्छाओ के अनुसार भौतिक लक्ष्य निश्चित कर लिये जाते है। परन्तु कभी कभी ऐसे कार्यक्रमो की पूर्ति के लिए योजना काल के मध्य मे आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है, और इस मध्यकाल म योजना के कार्यक्रमो मे कोई परिवर्तन करने से समस्त योजना के छिन्न-भिन्न होने का भय रहता है। द्वितीय योजना के तृतीय एव चतुर्थ वर्ष म आर्थिक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। हमारे विदेशी मुद्रा के साधन अत्यन्त कम हो गये तथा हीनार्थ प्रबन्धन अनुमान से अधिक करना पडा, जिससे मूल्यो म अत्यधिक वृद्धि हुई। परन्तु

नियोजक सम्भवत इन कठिनाइयो का योजना के पूर्व ही अनुमान कर चुके थे, इसलिए योजना के कार्यक्रमो को लचीला रखा गया था। योजना के तृतीय वर्ष मे इसीलिए योजना के वित्तीय लक्ष्या को ४,८०० करोड रु० से घटा कर ४,५०० करोड रु० कर दिया गया।

द्वितीय पचवर्षीय योजना की कुल लागत ७,२०० करोड रु० थी जिसमे से ४,८०० करोड रु० शासकीय क्षेत्र म तथा २,४०० करोड रु० व्यक्तिगत क्षेत्र मे व्यय होना था। ४,८०० करोड रु० की राशि म से २,५५६ करोड रु० केन्द्रीय सरकार द्वारा तथा १,५८० करोड रु० राज्य सरकारो द्वारा व्यय किया जाना था। विभिन्न मदो पर व्यय का वितरण इस प्रकार है—

तालिका स० ४६—प्रथम एव द्वितीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न मदो पर निर्धारित व्यय[1]

मद	प्रथम पच० आयोजन (करोड रुपया म)	योजना प्रतिशत समस्त व्यय स	द्वितीय पच० आयोजन (करोड रुपयो में	योजना प्रतिशत समस्त व्यय से
(१) कृषि एव सामुदायिक विकास	३५७	१५.१	५६८	११ ८
(अ) कृषि कार्यक्रम	२४१	१० ४	३४१	७ १
(ब) राष्ट्रीय विस्तार एव सामुदायिक विकास	९०	३ ८	२००	४ १
(स) अन्य कायक्रम (ग्राम पचायत एव स्थानीय विकास)	२६	१ १	२७	० ६
(२) सिचाई एव शक्ति	६६१	२८ १	९१३	१९ ०
(अ) सिचाइ	३८४	१६ ३	३८१	७ ९
(ब) शक्ति	२६०	११ १	४२७	८ ९
(स) बाढ नियन्त्रण आदि	१७	० ७	१०५	२ २
(३) उद्योग एव खनिज	१७९	७ ६	८९०	१८ ५
(अ) बड एव माध्यमिक उद्योग	१४८	६ ३	६१७	१२.९
(ब) खनिज विकास	१	—	७३	१ ५
(स) ग्रामीण एव लघु उद्योग	३०	१ ३	२००	४.१
(४) यातायात एव सवादवाहन	५५७	२३ ६	१३८५	२८ ९

1. *Second Fize Year Plan Report*, pp 51-52.

मद	प्रथम पच० योजना आयोजन (करोड रुपयो में)	प्रथम पच० योजना प्रतिशत समस्त व्यय से	द्वितीय पच० योजना आयोजन (करोड रु० में)	द्वितीय पच० योजना प्रतिशत समस्त व्यय से
(अ) रेलें	२६८	११४	६००	१८.८
(आ) सडकें	१३०	५५	२४६	५१
(इ) सडक यातायात	१२	०५	१७	०४
(ई) बन्दरगाह आदि	३४	१४	४५	०.६
(उ) जल-यातायात	२६	११	४८	१०
(ऊ) आन्तरिक जल यातायात	—	—	३	०१
(ए) हवाई यातायात	२४	१०	४३	०६
(ऐ) अन्य यातायात	३	०१	७	०.१
(ओ) डाक एव तार	५०	२२	६३	१३
(औ) अन्य सवादवाहन	५	०२	४	०१
(अ) आकाशवाणी	५	०२	६	०२
(५) समाज सेवाएं	५३३	२२६	९४५	१९७
(अ) शिक्षा	१६४	७०	३०७	६४
(आ) स्वास्थ्य	१४०	५६	२७४	५.७
(इ) गृह	४९	२१	१२०	२.५
(ई) पिछडी जातियो का कल्याण	३२	१३	९१	१९
(उ) समाज कल्याण	५	०२	२९	०६
(ऊ) श्रम एव श्रम कल्याण	७	०३	२९	०६
(ए) पुनर्वास	१३६	५८	९०	१९
(ऐ) शिक्षित बेरोजगारी के लिए विशेष योजनाएं	—	—	५	०१
(६) विविध	६९	३०	९९	२१
योग	२३५६	१०००	४८००	१०००

द्वितीय योजना के शासकीय क्षेत्र के समस्त व्यय मे स्थानीय सस्थाओ के विकास के कार्यक्रमो के समस्त व्यय को सम्मिलित नही किया गया है। केवल व्यय का वह भाग, जो राज्य सरकारो द्वारा सहायतार्थ दिया जायगा, शासकीय क्षेत्र की राशि मे सम्मिलित किया गया है। समस्त व्यय मे विकास योजनाओ में जनता से प्राप्त अनुदानो को भी सम्मिलित नहीं किया गया है।

उपर्युक्त व्यय के विवरण से यह स्पष्ट है कि प्रथम पचवर्षीय योजना की तुलना में द्वितीय योजना की प्राथमिकताएँ कुछ भिन्न हैं। प्रथम योजना के समस्त व्यय का १५.१% भाग कृषि-विकास पर व्यय किया जाना था। द्वितीय योजना मे यह प्रतिशत घटा कर ११ ८% कर दिया गया है परन्तु कृषि विकास पर व्यय होने वाली राशि प्रथम योजना की राशि की अपेक्षा १½ गुना से भी अधिक थी। इसके अतिरिक्त द्वितीय योजना के व्यय का ७ ६% सिंचाई एव २ २% बाढ-नियन्त्रण पर व्यय होना था जिसके फलस्वरूप ग्रामीण एव कृषि विकास मे सहायता मिलनी थी। इस प्रकार कृषि विकास पर योजना के समस्त व्यय का २२ प्रतिशत अथवा ⅕ भाग से कुछ कम व्यय होना था। प्रथम योजना में इन मदो पर व्यय होने वाली राशि ७५८ करोड रुपया और द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास के महत्त्व को बढा दिया गया। जहाँ प्रथम योजना के शासकीय क्षेत्र के व्यय का केवल ७ ६% भाग औद्योगिक एव खनिज विकास पर व्यय होना था, द्वितीय योजना म यह प्रतिशत बढा कर दुगुने से भी अधिक अर्थात् १८.५% कर दिया। प्रथम योजना मे उद्योगो एव खनिज पर १७९ करोड रुपया व्यय होने का अनुमान था जबकि द्वितीय योजना मे इस मद की राशि ८९० करोड रुपया निर्धारित की गयी जो प्रथम योजना मे उद्योग एव खनिज पर वास्तविक व्यय निर्धारित राशि का केवल ५४% था। इस प्रकार द्वितीय योजना मे लगभग ९ या १० गुनी राशि औद्योगिक विकास पर व्यय की जायगी। द्वितीय योजना के औद्योगिक विकास की एक विशेषता यह है कि २०० करोड रुपया ग्रामीण एवं लघु उद्योगो के विकास पर व्यय किया जायगा जबकि प्रथम योजना मे इस मद पर केवल ३० करोड रु० व्यय करने का अनुमान था। इस प्रकार द्वितीय योजना में औद्योगीकरण के महत्त्व को बढा दिया गया है। परन्तु कृषि विकास की तुलना मे द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास पर कम राशि ही व्यय करने का अनुमान है। इसलिए यह कहना उचित न होगा कि द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी है, परन्तु यह अवश्य ही स्पष्ट है कि द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास को प्रथम योजना की तुलना मे अधिक महत्त्व दिया गया था।

योजना के व्यय का विवरण सदैव योजना के उद्देश्यो के आधार पर किया जाता है, इसीलिए द्वितीय योजना के शीघ्र औद्योगीकरण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उद्योगो पर व्यय होने वाली राशि इतनी अधिक निर्धारित की गयी थी। शीघ्र औद्योगीकरण द्वारा ही रोजगार के अवसरो मे वृद्धि की जा सकती थी। योजना के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उद्योगो पर अधिक व्यय

करना उचित ही था। प्रथम योजना मे केवल १ करोड रुपया ही खनिज विकास के लिए निर्धारित किया गया, द्वितीय योजना मे खनिज विकास पर ७३ करोड रुपया व्यय होना था। इस राशि मे कोयला धोने के कारखाने (Coal Washeries) तथा खनिज तेल खोजने का व्यय भी सम्मिलित था।

यातायात एव सवादवाहन पर द्वितीय योजना के समस्त व्यय का २९% भाग व्यय होना था। रेलो पर समस्त व्यय का १९% व्यय होना था। प्रथम योजना मे यातायात एव संचार पर २३·६% तथा रेलो पर ११·४% राशि निर्धारित की गयी थी। राशियो की तुलना करने से ज्ञात होता है कि यातायात एव सचार पर प्रथम योजना की राशि की तुलना मे १½ गुना और रेलो पर लगभग ४½ गुना व्यय द्वितीय योजना काल मे किया जाना था। शक्ति पर व्यय होने वाली राशि मे १६० करोड रुपये प्रथम योजना मे प्रारम्भ हुए कार्यक्रमो पर तथा २६७ करोड रुपये नवीन योजनाओ पर व्यय होना था।

समाज सेवाओ की राशि कुल व्यय की २०% थी जबकि यह राशि प्रथम योजना मे २३% थी। शिक्षा पर ३०७ करोड रुपये का आयोजन था जो प्रथम योजना की राशि का लगभग दुगुना था। इसी प्रकार स्वास्थ्य पर व्यय की ..ने वाली राशि भी दुगुनी हो गयी थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे शासकीय क्षेत्र में ३८०० करोड रुपया विनि-.जन पर तथा १००० करोड रुपया विकास की चालू मदो पर व्यय होना था। . राशि का विभिन्न मदो मे विभाजन निम्न तालिका से स्पष्ट है*—

1 *Second Five Year Plan Report*, p. 56

तालिका स० ४७—द्वितीय योजना मे विभिन्न मदो पर विनियोजन एव चालू व्यय

(करोड रुपयो म)

मद	विनियोजन की राशि	चालू व्यय की राशि	योग
(१) कृषि एव सामुदायिक विकास	३३८	२३०	५२८
(अ) कृषि	१८१	१६०	३४१
(ब) राष्टीय विस्तार एव सामुदायिक विकास	१५७	७०	२२७
(२) सिचाई एव शक्ति	८६३	५०	९१३
(अ) सिचाई एव बाढ नियन्त्रण	४५६	३०	४८६
(ब) शक्ति	४०७	२०	४२७
(३) वृहद् उद्योग एव खनिज	७९०	१००	८९०
(अ) वृहद् एव मध्य वर्ग के उद्योग	६७०	२०	६९०
(ब) ग्रामीण एव लघु उद्योग	१२०	८०	२००
(४) यातायात एव सवादवाहन	१३३५	५०	१३८५
(५) समाज सेवाएँ	४५५	४९०	९४५
(६) अन्य	१९	८०	९९
योग	३८००	१०००	४८००

शासकीय क्षेत्र म व्यय होने वाली राशि का केन्द्रीय एव राज्य सरकारो द्वारा निम्न प्रकार व्यय किया जाना था—

तालिका स० ४८—शासकीय क्षेत्र मे निर्धारित व्यय का केन्द्र एव राज्यो मे विभाजन

(करोड रु० मे)

मद	केन्द्र	राज्य	योग
(१) कृषि एव सामुदायिक विकास	९५	५०३	५९८
(२) सिचाई एव शक्ति	१०५	८०८	९१३
(३) उद्योग एव खनिज	७४७	१४३	८९०
(४) यातायात एव सवादवाहन	१२०३	१८२	१३८५
(५) समाज सेवाएँ	३९६	५४९	९४५
(६) अन्य	४३	५६	९९
योग	२५५९	२२४१	४८००

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सरकारी क्षेत्र के विनियोजन की राशि मे वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तिगत क्षेत्र के विनियोजन की राशि मे भी वृद्धि कर दी गयी। योजना के उत्पादन एव विकास के लक्ष्य निश्चित करते समय निजी क्षेत्र के विनियोजन के प्रभावो को भी दृष्टिगत किया गया। गत पाँच वर्षों की विनियोजन प्रवृत्तियो एव द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे होने वाले ज्ञात विनियोजन के आधार पर निजी क्षेत्र मे विनियोग होने वाली राशि का अनुमान २४०० करोड रु० था। यह विनियोजन विभिन्न मदो पर इस प्रकार विभक्त होने का अनुमान था—

तालिका सं० ४६—द्वितीय योजना मे निजी क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न मदो पर विनियोजन

मद	विनियोजन (करोड रु०)
(१) सगठित उद्योग एव खनिज	५७५
(२) पौध वाले व्यवसाय, विद्युत शक्ति एव रेल के अतिरिक्त अन्य यातायात	१२५
(३) निर्माण	१०००
(४) कृषि तथा ग्रामीण एवं लघु उद्योग	३००
(५) सग्रह (Stocks)	४००
योग	२४००

प्रथम पचवर्षीय योजना मे व्यक्तिगत एव शासकीय क्षेत्र के विनियोजन का अनुमान ३१०० करोड रुपया था जिसमे व्यक्तिगत एव शासकीय क्षेत्र का अनुपात ५०.५० था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में समस्त विनियोजन की राशि ६२०० करोड रु० अनुमानित थी जिसमे शासकीय एव व्यक्तिगत क्षेत्र का अनुपात ६१ ३६ होने का अनुमान था। इससे स्पष्ट है कि शासकीय क्षेत्र निरन्तर विस्तार की ओर अग्रसर था। द्वितीय योजना मे प्रथम योजना की तुलना मे विनियोजन की राशि शासकीय क्षेत्र मे २½ गुनी तथा निजी क्षेत्र मे ५०% अधिक थी।

अर्थ प्रबन्ध

द्वितीय योजना के अर्थ-साधनो के अध्ययन से स्पष्ट है कि योजना आयोग ने भौतिक लक्ष्यों को अधिक महत्व दिया था और वित्तीय साधनो का विस्तार करने के प्रयास पर जोर दिया गया था। द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष मे राष्ट्रीय आय का ७ ३% भाग आन्तरिक बचत था जिसे द्वितीय पचवर्षीय

योजना काल मे बढा कर १०७% करने का लक्ष्य था। इस हेतु दो बातो पर विचार किया गया था—प्रथम बचत को बढाने के लिए उपभोग को किस सीमा तक कम करना उचित होगा तथा दूसरे वर्तमान आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था मे कौन-कौन सी बचत-वृद्धि की विधियाँ अपनायी जायेंगी अर्थात् प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे कर एव अन्य आर्थिक नीतियो को उपर्युक्त दोनो बातो को आधार मान कर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। आन्तरिक साधनो के अतिरिक्त *औद्योगीकरण के कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए विदेशी मुद्रा की भी* अधिक आवश्यकता थी। विदेशी साधनो की उपलब्धि के लिए एक ओर आयात मे मितव्ययता और दूसरी ओर निर्यात मे वृद्धि करने की आवश्यकता थी। शासकीय क्षेत्र मे अर्थ प्रबन्ध की व्यवस्था निम्न प्रकार करने का लक्ष्य था—

तालिका सं० ५०—द्वितीय योजना का अर्थ-प्रबन्धन

आय का माध्यम	आय (करोड रु० में)	
(१) चालू आय का आधिक्य		
(अ) वर्त्तमान कर की दरो स	३५०	
(ब) अतिरिक्त करो से	४५०	८००
(२) जनता स ऋण		
(अ) बाजार से ऋण	७००	
(ब) लघु बचत	५००	१२००
(३) बजट के अन्य साधन		
(अ) विकास-कार्यक्रमो मे रेलो का अनुदान	१५०	
(ब) प्राविधिक निधि (Provident Fund) एव अन्य जमा	२५०	४००
(४) विदेशी सहायता		८००
(५) घाटे की अर्थ-व्यवस्था (Deficit Financing)		१२००
(६) अपूर्णता—जो आन्तरिक साधनो की वृद्धि द्वारा पूर्ण की जायगी		४००
	योग	४८००

योग हेतु इतनी अधिक राशि ऋण के रूप मे प्राप्त करना सुलभ न था। योजना मे सामाजिक सुरक्षा के विस्तार का आयोजन किया गया क्योंकि इसके माध्यम से एक ओर कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान की जा सकती थी तथा दूसरी ओर यह बचत का महत्वपूर्ण साधन थी। द्वितीय योजना के विकास-व्यय के कारण जन-समुदाय की मौद्रिक एवं वास्तविक आय में वृद्धि होने की सम्भावना थी। व्यक्तिगत उपभोग पर नियत्रण लगा कर ऋण की राशि को पूरा किया जा सकता था।

प्रथम पचवर्षीय योजना म लगभग ४७ करोड रुपया प्रति वर्ष लघु बचत से प्राप्त हुआ। द्वितीय योजना म इस राशि को दुगुना करने का लक्ष्य था। साधारण आय की वृद्धि का अधिकतर भाग उपभोग पर ही व्यय हो जाता क्योंकि हीनार्थ-प्रबन्धन के परिणामस्वरूप मूल्य-वृद्धि अवश्यम्भावी थी। मुद्रा की क्रय-शक्ति कम होने पर ब्याज के रूप म निश्चित दर से प्राप्त होने वाली राशि का भी वास्तविक मूल्य कम हो जाता है तथा इस प्रकार जब बचत करने वालो को अपनी बचत पर वास्तविक आय कम होती है तो वह अधिक बचत की ओर आकर्षित नही होते।

बजट के अन्य साधन—*योजना आयोग के अनुमानानुसार* रेलो से १५० करोड रु० विकास के कार्यक्रमो के लिए प्राप्त हो सकता था। यह राशि प्रथम योजना मे ११५ करोड रु० थी। रेलो को अपना अनुदान बढाने के लिए अपनी वार्षिक आय म ७ करोड रु० की वृद्धि करनी थी। अन्य बजट के साधनो से २५० करोड रु० प्राप्त करने का लक्ष्य था जिसमें से लगभग १५० करोड़ रु० प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारो की प्राविधिक निधि (Provident Fund) की राशि से तथा १०० करोड रुपया केन्द्रीय एव प्रान्तीय सरकारो द्वारा दिये गये ऋणो के भुगतान मे तथा अन्य पूँजीगत प्राप्तियो के रूप मे प्राप्त होने का अनुमान था।

विदेशी सहायता—*योजना मे* ८०० करोड रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान था। प्रथम योजना मे २९६ करोड रुपये की विदेशी सहायता प्राप्त करना था जिसमे से केवल १८८ करोड रुपया ही उपभोग किया गया। इस प्रकार १०८ करोड रुपये की राशि प्रथम योजना में विदेशी सहायता के रूप में प्राप्त हुई। द्वितीय योजना मे शेष ६२२ करोड रु० की विदेशी सहायता का आयोजन करना था। प्रथम योजना की तुलना मे यह अनुमान अभिलाषी प्रतीत होते थे।

हीनार्थ-प्रबन्धन—*प्रथम पचवर्षीय योजना मे हीनार्थ-प्रबन्धन द्वारा*

है, तब तक जन-साधारण के रहन सहन की लागत मे अधिक वृद्धि नही होती है।

विदेशी मुद्रा के साधन—द्वितीय योजना के शीघ्र औद्योगीकरण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु विदेशी पूंजीगत वस्तुओ के आयात की अत्यधिक आवश्यकता थी। परन्तु पाँच वर्षों की विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओ तथा उपार्जन (earnings) का उचित अनुमान लगाना सम्भव नही था क्योकि बहुत से घटक विदेशी व्यापार पर प्रभाव डालते रहते है। निम्नलिखित तालिका[1] द्वितीय पचवर्षीय योजना की विदेशी साधनो की अनुमानित न्यूनता को दर्शाती है—

तालिका स० ५१— द्वितीय योजना मे विदेशी साधनो की न्यूनता

(करोड रुपयो मे)

	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५९-६०	१९६०-६१	योग
(१) निर्यात (F O B)	५७३	५८३	५९२	६०२	६१५	२९६५
(२) आयात (C.I F)	७८३	८८६	९९०	८९५	७८६	४३४०
(३) व्यापारिक शेष	—२१०	—३०३	—३९८	—२९३	—१७१	—१३७५
(४) अदृश्य	+ ६२	+ ५५	+ ५१	+ ४६	+ ४१	+ २५५
(५) चालू खाते का शेष	—१४८	—२४८	—३४७	—२४७	—१३०	—११२०

इस प्रकार योजना-काल के पाँच वर्षों मे ११०० रुपये की विदेशी मुद्रा की चालू खाते मे कमी रहने का अनुमान था। उपर्युक्त आँकडो से स्पष्ट है कि निर्यात ५७३ करोड रु० (१९५६-५७) से बढ कर १९६०-६१ मे ६१५ करोड रुपये होने की सम्भावना थी, जबकि आयात मे योजना के प्रथम चार वर्षों मे

1. *Second Five Year Plan Report*, p. 95.

अधिक वृद्धि होने का अनुमान था तथा इस प्रकार १३७५ करोड़ की अपूर्णता रहने की सम्भावना थी। अदृश्य साधनों से औसत २२४ करोड रुपया प्राप्त होने की सम्भावना थी। इस प्रकार योजना काल मे २२४ करोड रुपया प्रति वर्ष विदेशी मुद्रा की कमी का अनुमान था।

योजना के लक्ष्य एवं कार्यक्रम

कृषि एवं सामुदायिक विकास—प्रथम पंचवर्षीय योजना मे अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए कृषि विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी। प्रथम योजना के प्रारम्भ मे कृषि-क्षेत्र मे अपूर्णता का वातावरण था तथा खाद्यान्नो की न्यूनता की समस्या अत्यन्त गम्भीर थी। इसीलिए प्रथम योजना के कृषि-कार्यक्रमो का लक्ष्य बढती हुई जनसख्या को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराना था। द्वितीय योजना मे कृषि कार्यक्रमो का लक्ष्य बहुमुखी थे। प्रथम, बढती हुई जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध करना, द्वितीय विकास की ओर अग्रसर औद्योगिक व्यवस्था की कच्चे माल की आवश्यकताओ की पूर्ति करना तथा तृतीय कृषि-उत्पत्ति के निर्यात मे वृद्धि करना। इस प्रकार द्वितीय योजना मे औद्योगिक एवं कृषि-विकास मे घनिष्ट पारस्परिक निर्भरता होना स्वाभाविक था। ग्राम निवासियो के सम्मुख द्वितीय योजना द्वारा कृषि उत्पादन को १० वर्ष मे दुगुना करने का उद्देश्य रखा गया था।

योजना आयोग के विचार मे खाद्य समस्या के सम्बन्ध मे निम्नलिखित घटको पर विचार करना आवश्यक था—

(१) योजना काल मे जनसंख्या मे वृद्धि।
(२) नगरों की जनसंख्या मे वृद्धि।
(३) प्रति-व्यक्ति उपभोग मे वृद्धि करने की आवश्यकता।
(४) द्वितीय पचवर्षीय योजना के कार्यान्वित करने से जो मुद्रा स्फीति का दबाव उपस्थित हो, उसे नियंत्रित करने की आवश्यकता।
(५) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि तथा उसके वितरण मे परिवर्तन होने से उपभोग पर पड़ने वाला प्रभाव।

तत्कालीन उपभोग के स्तर के आधार पर १९६०-६१ मे ७०५ लाख टन खाद्यान्नो की आवश्यकता का अनुमान था। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक प्रति दिन प्रति वयस्क उपभोग बढ कर १८.३ औंस होने की सम्भावना थी और इस प्रकार योजना के अन्त तक खाद्यान्नो की आवश्यकता बढ कर ७५० लाख टन होने का अनुमान था।

द्वितीय योजनावधि मे खाद्यान्नो के उत्पादन म १०० लाख टन की वृद्धि का लक्ष्य था। प्रति दिन प्रति वयस्क २२०० कैलोरीज का उपभोग १९६०-६१ तक बढ कर २४५० कैलोरीज होने का अनुमान था जब कि योजना के विशेषज्ञो ने न्यूनतम सीमा ३००० कैलोरीज रखी है।

योजना-आयोग ने कृषि नियोजन के ४ आवश्यक तत्व निर्धारित किये हैं जिनके आधार पर कृषि कार्यक्रमो को निश्चित किया था। यह निम्न प्रकार हैं—

(१) भूमि के उपयोग *की योजना।*

(२) दीर्घकालीन एव अल्पकालीन लक्ष्यो को निधारित करना।

(३) विकास कार्यक्रमो एव सरकारी सहायता का उत्पादन के लक्ष्यो से तथा भूमि के उपयोग से सम्बन्ध स्थापित करना, तथा

(४) उचित मूल्य-नीति।

प्रत्येक जिले और विशेपकर प्रत्येक राष्ट्रीय विस्तार एव सामुदायिक विकास खण्ड के क्षेत्र के लिए कृषि-विकास की योजना होनी चाहिए थी। इसके द्वारा ग्रामो के उत्पादन का लक्ष्य तथा भूमि का विभिन्न उपयोगो मे वितरण निर्धारित किया जाना था। इस प्रकार की स्थानीय योजनाओ से राज्य, *क्षेत्र एव सम्पूर्ण देश के लिए उचित योजना निर्माण करने म सहायता मिलती है।*

तालिका स० ५२—द्वितीय योजना मे कृषि उत्पादन के लक्ष्य

वस्तु	इकाई	१९५५ ५६ अनुमानित उत्पादन	१९६० ६१ लक्ष्य	वृद्धि का प्रतिशत
खाद्यान्न	लाख टन	६५०	७५०	१५
तिलहन	,,	५५	७०	२७
शक्कर गुड	लाख टन	५८	७१	२२
कपास	लाख गाँठ	४२	५५	३१
जूट	,,	४०	५०	२५
तम्बाकू	लाख टन	२५	२५	—
चाय	लाख पौंड	६४४०	७०००	९

यद्यपि यह ज्ञात करना सम्भव नही है कि किस विकास कायक्रम का उत्पा-
दन की वृद्धि पर क्या प्रभाव पडता है, फिर भी खाद्यान्नो के उत्पादन को वृद्धि को निम्न कार्यक्रमो द्वारा प्रभावित बताया गया—

७२० करोड रु० अनुमानित थी जिसमे से ८० करोड रु० प्रथम योजना के प्रारम्भ के पूर्व व्यय हो चुका था और ३४० करोड रु० प्रथम योजना काल में व्यय हुआ। शेष राशि द्वितीय एवं तृतीय योजनाओं में व्यय होनी थी। द्वितीय योजना में इन योजनाओं पर २०६ करोड रु० व्यय किया जाना था। द्वितीय योजना में सम्मिलित नवीन सिचाई योजनाओं की कुल लागत ३८० करोड रु० अनुमानित थी जिसमे से १७२ करोड रु० द्वितीय योजना मे व्यय किये जाने का लक्ष्य था। योजना में सिंचाई पर व्यय होने वाली राशि ३८१ करोड रु० निर्धारित की गयी थी। इसके अतिरिक्त ३५ करोड रु० का प्रायोजन सिंधु नदी के पानी का उपयोग करने की योजनाओं पर व्यय करने के लिये रखा गया था। योजना मे १९५ नवीन योजनाओं को सम्मिलित किया गया था। द्वितीय योजनावधि में ३५८१ नलकूप (Tube Wells) बनाने का लक्ष्य था।

द्वितीय योजना व शक्ति के विकास-कार्यक्रमों द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होनी थी—

(अ) वर्तमान शक्ति की इकाइयों की सामान्य माँग की पूर्ति,

(ब) शक्ति की उपलब्धि के क्षेत्र में यथोचित विस्तार, तथा

(स) द्वितीय योजना मे स्थापित औद्योगिक इकाइयों की शक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति।

यह अनुमान लगाया गया था कि अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता मध्यम तथा लघु उद्योगों के विकास एवं व्यापारिक तथा घरेलू उपभोग मे वृद्धि के कारण १४ लाख किलोवाट का अनुमान था। द्वितीय योजना में औद्योगिक विकास के कारण १३ लाख किलोवाट अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होने का अनुमान था। जल विद्युत शक्ति की पूर्ति में परिवर्तन होने के कारण तथा अन्य विचार-धाराओं के आधार पर ३५ लाख किलोवाट उत्पादन-क्षमता के अतिरिक्त शक्ति के साधनों का निर्माण करना आवश्यक था। इस प्रकार शक्ति की उत्पादन-क्षमता को ३४ लाख किलोवाट से बढ़ा कर ६९ लाख किलोवाट १९६०-६१ तक करने का [illegible] था। ३५ लाख किलोवाट अतिरिक्त शक्ति के साधन २९ लाख किलोवाट [illegible] नीय क्षेत्र मे, ३ लाख किलोवाट प्रमण्डलों द्वारा तथा ३ लाख किलोवाट स्वत शक्ति उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाइयों द्वारा निर्माण किये जाने थे। द्वितीय योजना मे १६० करोड रु० उन योजनाओं पर जिनका प्रारम्भ प्रथम [illegible] मे हुआ था, २४५ करोड ऐसी नवीन योजनाओं पर जो द्वितीय योजना में [illegible] हो जानी थी तथा २२ करोड रु० उन योजनाओं पर जिनका लाभ तृतीय योजना मे प्राप्त होगा, व्यय किया जाना था। द्वितीय योजनावधि में १०,०००

तथा उससे अधिक जनसंख्या वाले सभी नगरो में विद्युत उपलब्ध करने का लक्ष्य था।

औद्योगिक एवं खनिज विकास—प्रथम पचवर्षीय योजना को वास्तव में प्रारम्भिक तैयारी का कार्यक्रम कहना चाहिए जो कि औद्योगीकरण के लिए आवश्यक होता है। वृहद् उद्योगो की स्थापना के पूर्व की विपणि, कच्चे माल व ईधन, विधियो का चयन, उत्पादन-लागत, तान्त्रिक एवं प्रबन्ध की व्यवस्था सम्बन्धी अनेक समस्याओ का अध्ययन करना आवश्यक होता है। बहुत सी औद्योगिक योजनाओ के लिए विदेशी तात्रिक सहायता प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। इसके साथ ही औद्योगिक विकास को जो अर्थ चाहिए, उसका किस प्रकार प्रबन्ध किया जाय, इस पर भी विचार करना आवश्यक होता है। द्वितीय योजना के औद्योगिक कार्यक्रम निश्चित करने के पूर्व उपर्युक्त समस्त समस्याओं का पूर्णरूपेण अध्ययन कर लिया गया था। योजना के कार्यक्रम औद्योगिक नीति प्रस्ताव द्वारा निर्धारित रीतियो के आधार पर ही बनाये गये तथा उन नीतियो की सीमाओ मे ही औद्योगिक प्राथमिकताएँ निम्न प्रकार निश्चित की गयी—

(१) लोहा तथा इस्पात, भारी रसायन एवं नाइट्रोजन खाद के उत्पादन मे वृद्धि तथा भारी इंजीनियरिंग एव मशीन-निर्माण उद्योगो का विकास।

(२) अन्य विकास सम्बन्धी एवं उत्पादक वस्तुओ जैसे अल्यूमिनियम, सीमेंट, रासायनिक लुग्दी, रग, फास्फेट का खाद, आवश्यक औषधियो की उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि।

(३) वर्तमान राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगो का नवीनीकरण तथा पुन मशीनें आदि लगाना, जैसे जूट, सूती वस्त्र एव शक्कर उद्योग।

(४) जिन उद्योगो की उत्पादन क्षमता एव वास्तविक उत्पादन मे बहुत अन्तर है, उनकी उत्पादन-क्षमता का पूर्णतम उपयोग।

(५) उद्योगो के विकेन्द्रित क्षेत्र के उत्पादन लक्ष्यो एव सामूहिक उत्पादन कार्यक्रमो को आवश्यकतानुसार उपभोक्ता-वस्तुओं की उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि।

लोहा एव इस्पात—द्वितीय योजना मे तीन इस्पात के कारखानो के, जिनमे प्रत्येक की उत्पादन-क्षमता १० लाख टन इस्पात डले (Ingots) थी, निर्माण का आयोजन किया गया। रूरकेला मे स्थापित होने वाले कारखाने पर द्वितीय योजना काल मे १२८ करोड रु०, भिलाई (मध्य प्रदेश) के कारखाने पर ११५ करोड रु० तथा दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) के कारखाने पर ११५ करोड रु० विनियोजन का लक्ष्य था। विभिन्न इस्पात-कारखानो की अनुमानित उत्पादन-क्षमता अधोलिखित तालिका से स्पष्ट है—

तालिका स० ५३—विभिन्न इस्पात-कारखानो की उत्पादन-क्षमता

(लाख टन मे)

इस्पात-कारखाना का स्थान	कोयल से कारबन बनाना	कोक का उत्पादन	लोहपिंड	इस्पात के डले	निर्मित इस्पात	बिक्री हेतु लोहपिंड
रूरकेला	१६ ००	१० ४५	९ ४८	१०	७ २०	६०
भिलाई	१६ ५०	११ ४५	११ १०	१०	७ ७०	३ ००
दुर्गापुर	१८ २५	१३ १४	१२ ७८	१०	७ ६०	३ ५०

रूरकेला तथा भिलाई के कारखानो के लिए कच्चा लोहा प्राप्त करने के लिए घल्ली (Dhalli) तथा राजहाटा (Rajhata) को खानो का विकास करना आवश्यक था। दुर्गापुर के कारखाने के लिए गुआ (Gua) की खानो का निजी साहस के साथ शोषण किया जाना था। दुर्गापुर कारखाने के लिए एक कोयला धोने की फैक्टरी (Coal Washery) के निर्माण करने का आयोजन था तथा भिलाई एवं रूरकेला के बुकारो (Bukaro) म एक कोयला धोने की फैक्टरी स्थापित की जानी थी। प्रत्येक कारखाने की धमन भट्टी की प्रतिदिन की उत्पादन क्षमता १००० टन लोह पिंड (Pig Iron) होगी। मैसूर के लोहे इस्पात क कारखाने के उत्पादन को बढा कर १९६० ६१ तक १ लाख करन का लक्ष्य था। द्वितीय पचवर्षीय योजना म ३५० करोड रुपया उपर्युक्त न कारखानो एव ६ करोड रुपया मैसूर के लोहा तथा इस्पात के कारखाने लिए निर्धारित किया गया था। चितरजन लोकोमोटिव कारखाने का उत्पादन । १२० से बढा कर ३०० इजन करन का लक्ष्य था। इस कारखाने म भारी इस्पात की फाउण्ड्री बनान का लक्ष्य था जिससे रेलो क बडे बडे ओजारो को यहीं ढाला जा सके। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम ने भी १५ करोड रुपये का आवटन भारी फाउण्ड्री के निर्माणार्थ किया था, जिसमे आवश्यक भारी मशीनें तथा विद्युत का सामान आदि बनाने की सुविधा प्राप्त हो सके। बिजली की भारी मशीने एव सामग्री बनाने के लिए भोपाल म एक कारखाना एसोसियेटेड [illegible] ल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, युनाइटड किंगडम की सलाह से, २५ करोड रु० की लागत पर निर्मित किया जाना था। द्वितीय योजना म इस पर २० करोड रुपया विनियोजित होना था। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का विस्तार करने के लिये २ करोड रुपये का आयोजन था तथा राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम को औद्योगिक मशीनो क उत्पादन पर १० करोड रुपया विनियोजित करना था।

दक्षिण म कोयले की कमी को दूर करने के लिए नैवेली (Neiveli) मे बहुमुखी दक्षिणी अर्काट को लिगनाइट (Lignite) की योजना का विकास

करने के लिए ५२ करोड का आयोजन किया गया था। इस योजना की कुल लागत ६८५ करोड रु० होगी और ३५ लाख टन प्रति वर्ष लिगनाइट खनिज निकाला जायगा।

द्वितीय योजना मे सिन्द्री के खाद कारखाने के अतिरिक्त दो नवीन कारखाने एक नगल (पजाब) तथा दूसरा रूरकेला म खोलने का आयोजन था जो क्रमश ७०,००० एव ८०,००० स्थायी नाइट्रोजन के बराबर खाद उत्पन्न करेंगे। योजना काल म हिदुस्तान शिपयार्ड तथा डी० डी० टी० के वर्तमान कारखाने का विस्तार किया जाना था तथा ट्रावनकोर कोचीन मे एक नया डी० डी० टी० का कारखाना खोला जाना था। इ टीग्रल कोच फैक्ट्री, पैराम्बूर का कारखाना द्वितीय योजना काल मे पूर्ण हो जाना था।

व्यक्तिगत क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रम म लोहा तथा इस्पात उद्योग पर ११५ करोड रुपया विनियोजित करने का लक्ष्य था। सीमट तथा वृहद् एव मध्यम इ जीनियरिंग उद्योगो क विकास के कायक्रम भी निजी क्षेत्र मे सम्मिलित किये गये थे। औद्योगिक मशीने जैसे सूती वस्त्र उद्योग शक्कर, कागज एवं सीमेंट उद्योग की मशीनो क निर्माण हेतु १० करोड रु० के विनियोजन का अनुमान था। उपभोक्ता वस्तुओ क उत्पादन मे भी पर्याप्त वृद्धि करने के लिए निजी क्षेत्र मे कार्यक्रम निश्चित किये गये थे।

तालिका स० ५४—द्वितीय योजना मे औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य

उद्योग	इकाई	१९५५ ५६ का उत्पादन	१९६०-६१ का लक्ष्य	वृद्धि का प्रतिशत
(१) निर्मित इस्पात	लाख टन	१३	४३	२३१
(२) अल्यूमिनियम	हजार टन	७·५	२५·०	२३३
(३) मोटरगाडियाँ	सख्या	२५०००	५७०००	१२८
(४) रेल के इ जिन	"	१७५	४००	१२९
(५) नाइट्रोजन खाद	अमो० सल्फेट के हजार टन	३८०	१४५०	२८२
(६) फास्फेट खाद	सुपर फास्फट क हजार टन	१२०	७२०	५००
(७) सीमट	लाख टन	४३	१३०	२०५
(८) कागज आदि	हजार टन	२००	३५०	७५
(९) अखबार का कागज	टन	४२००	६००००	१२८६
(१०) बाइसिकल	हजार	५५०	१०००	१००
(११) सूती वस्त्र	लाख गज	६८५००	८५०००	२४
(१२) शक्कर गुड	लाख टन	१७	२३	३५

आधारभूत उद्योगो की प्रगति औद्योगिक विकास का मुख्य सूचक होती है। द्वितीय योजना मे इस ओर ठोस कदम उठाये गये तथा लोहा एवं इस्पात, मशीन-निर्माण तथा अन्य आधारभूत उद्योगों के विकास से देश की अर्थ-व्यवस्था मे सुदृढता शीघ्र प्राप्त हो सकती थी। वास्तव मे योजना काल मे पूंजीगत एव उत्पादक वस्तुओं के उद्योग मे विनियोजित होने वाली राशि अभी तक के इस क्षेत्र के विनियोजन से कही अधिक थी। १९५६ से १९६१ तक बडे उद्योगों के क्षेत्र म निम्न प्रकार विनियोजन होने का अनुमान था।[1]

तालिका स० ५५–द्वितीय योजना मे बडे उद्योगो मे अनुमानित विनियोजन

उद्योग	विनियोजन (करोड रुपये)		
	शासकीय क्षेत्र जिसमे राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम के नवीन विनियोजन सम्मिलित हैं—	व्यक्तिगत क्षेत्र का विनियोजन	योग
उत्पादक वस्तुओ के उद्योग	४६३	२९६	७५९
औद्योगिक मशीन एवं पूंजीगत वस्तुएं	८४	७२	१५६
...ण वस्तुओ क उद्योग	१२	१६७	१७९
	योग ५५९	५३५	१०९४

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक औद्योगिक उत्पादन का निर्देशाक (१९५१=१००) १९५५ ५६ क १३० से बढ कर १९४ होने का अनुमान था। द्वितीय योजना काल मे उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन निर्देशाक म ७३% और कारखानो मे उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन निर्देशाक में १८% वृद्धि होने का अनुमान था।

ग्रामीण एवं लघु उद्योग—द्वितीय पचवर्षीय योजना के लिए जो ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास से सम्बद्ध राज्य सरकारो एव विभिन्न परिषदो द्वारा योजनाएं निर्मित की गयी थी, उन पर ग्रामीण लघु उद्योग समिति (Village Small Scale Industries Committee) ने विचार किया तथा अनुमोदन किया कि २६० करोड रु० का आयोजन इन उद्योगो के विकास हेतु किया जाय। इस राशि म ६५ करोड रु० की कार्यशील पूंजी की

1. *Second Five Year Plan Report*, p. 416.

३% की वृद्धि होने का अनुमान था। रेलो को ६०० करोड रु० की राशि में से १५० करोड रु० स्वय की आय से तथा ७५० करोड रु० सामान्य आय से प्रदान किया जाना था। रेलो के विकास कार्यक्रमो द्वारा १६०७ मील में दोहरी लाइन डालने, २६५ मील लम्बी मध्यम मार्गीय लाइन को वृहद् मार्गीय लाइन में परिवर्तित करने, ८२६ मील लम्बी लाइनो को बिजली से चलाने, १२६३ मील को डीजल द्वारा चलाने, ८४२ मील लम्बी नवीन लाइनो का निर्माण करने, ८००० मील लम्बी लाइनो का नवीनीकरण करने, २२५८ इजिन तथा १०७२४७ माल के डिब्बे एव ११३६४ यात्री डिब्बे एकत्रित करने का आयोजन था। रेलो के विकास कार्य-क्रमो के लिए ४२५ करोड रु० की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होने का अनुमान था। योजना में ६ नवीन वर्कशॉप (Workshop) तथा एक नवीन मध्यम मार्गीय डिब्बे बनाने के कारखाने की स्थापना का भी आयोजन था।

द्वितीय योजना में २४६ करोड रु० का आयोजन सडको के विकासार्थ किया गया था। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सडक निधि (Central Road Fund) से २५ करोड रुपये का आयोजन किया गया था। द्वितीय योजना में ६०० मील टूटी-फूटी सडको को जोडने, ६० बडे पुल बनाने, १७०० मील लम्बी विद्यमान सडको के सुधार करने का आयोजन था। इसके अतिरिक्त बनिहाल सुरग (Bannihal Tunnel) तथा अन्य कार्यक्रमा पर जो कि प्रथम योजना काल में काश्मीर मे प्रारम्भ हुए थे, ३० करोड रु० व्यय करने का अनुमान था। राष्ट्रीय मार्गों के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार कुछ महत्वपूर्ण सडको का निर्माण भी कर रही थी और इन पर द्वितीय योजना काल में ९ करोड रु० व्यय करने का अनुमान था। १९५४ में आर्थिक महत्व के अन्तर्राज्योय मार्गों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया था। यह कार्य इस योजना मे चालू रहना था तथा इस पर १८ करोड रु० व्यय किया जाना था। इस कायक्रम के अन्तर्गत १००० मील लम्बी सडकें बनायी जानी थी। राज्यो की सडक-विकास की योजनाओं का निर्धारित व्यय १६४ करोड रु० था जिसके द्वारा लगभग १८००० मील लम्बी चौरस सडको (Surfaced Roads) का निर्माण किया जाना था।

समुद्री यातायात के क्षेत्र में ३,००,००० ग्रॉस रजिस्टर्ड टनेज (G. R. T.) की वृद्धि करने का लक्ष्य था तथा इस प्रकार योजना के अन्त तक ९ लाख G. R. T उपलब्ध होने का अनुमान था। द्वितीय योजना में ४५ करोड रु० का आयोजन जलयान यातायात में विकास करने के लिए किया गया था। योजना में १६ ६ करोड रु० कलकत्ता, २६.२ करोड रु० बम्बई, ६ ७

क्रमशः १९.२ से बढ़ा कर २२.५% तथा ९.४ से बढ़ा कर ११.७% करने का लक्ष्य था। विश्वविद्यालयों की संख्या को ३१ से बढ़ा कर ३८, इंजीनियरिंग संस्थाओं की संख्या को १२८ से बढ़ा कर १५८, तान्त्रिक प्रशिक्षण की संस्थाओं की संख्या को ६१ से बढ़ा कर ६५ करने का लक्ष्य रखा गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के स्वास्थ्य के कार्यक्रमों का उद्देश्य स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि, इन सेवाओं को समस्त जन समुदाय तक पहुँचाना तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य के स्तर में उन्नति करना था। योजना में ३००० प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के स्थापित करने का आयोजन किया गया था। विद्यमान मेडिकल महाविद्यालयों का विस्तार करके अधिक संख्या में डाक्टर प्रशिक्षित करने का प्रबन्ध किया गया था। द्वितीय योजना काल में लगभग १२,५०० नये डॉक्टर प्रशिक्षित किए जाने का अनुमान था। इसके साथ ही मेडिकल महाविद्यालय के प्रत्येक विभाग में निजी चिकित्सा (Private Practice) न करने वाले प्रोफेसर तथा शिक्षकों के समूह स्थापित करने का आयोजन भी किया गया था। इसके अतिरिक्त योजना में ९.५ करोड़ रु० देशी चिकित्सा विधियों (Indigeneous System of Medicine) के सुधार के लिए भी निर्धारित किया गया था। इस राशि में १३ विद्यमान आयुर्वेदिक महाविद्यालयों का विस्तार, ५ नये आयुर्वेदिक महाविद्यालयों का स्थापन, ११०० आयुर्वेदिक औषधालय प्रारम्भ तथा २२५ विद्यमान चिकित्सालयों में सुधार किया जाना था। मलेरिया निरोधक कार्यक्रमों को योजना में विशेष स्थान दिया गया था। योजना में मलेरिया निरोधक केन्द्रों की संख्या को बढ़ा कर २०० करने का लक्ष्य था, जिससे इस रोग से प्रभावित होने वाली समस्त जनसंख्या को सुविधाएँ प्राप्त हो सकें। मलेरिया-निरोधक कार्यक्रमों के लिए योजना में २८ करोड़ रु० का आयोजन किया गया था।

योजना में परिवार-नियोजन-कार्यक्रमों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इन कार्यक्रमों के क्रमबद्ध विकास हेतु एक केन्द्रीय बोर्ड की स्थापना का सुझाव दिया गया था। सरकार को नगरों के क्षेत्र में प्रत्येक ५०,००० की जनसंख्या पर एक परिवार नियोजन केन्द्र (Clinic) खोलने की व्यवस्था करनी थी। छोटे नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में ये केन्द्र धीरे धीरे स्वास्थ्य केन्द्रों के साथ ही खोले जाने थे। योजना काल में लगभग ३०० केन्द्र नगरों में तथा २००० केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किये जाने का लक्ष्य था।

गृह-व्यवस्था—द्वितीय योजना में १२० करोड़ रु० निवास-गृहों के निर्माण हेतु निर्धारित किये गये थे। इस राशि में ४५ करोड़ रु० औद्योगिक गृह-

निर्माण में अनुदान देने के लिए, ४० करोड़ रु० कम आय वाले समुदाय को गृह-सुविधा देने के लिए, १० करोड़ रु० ग्रामीण क्षेत्रों में गृह-निर्माण करने, २० करोड अस्वास्थ्यकर अहातो के हटाने तथा महतरो के लिए गृह-निर्माण करने के लिए, ३ करोड रु० मध्यम आय वाले व्यक्तियो के लिए गृह-निर्माण मे सहायता प्रदान करने के लिए तथा २ करोड़ रु० पौध वाले उद्योगों मे कार्य करने वाले श्रमिको के लिए आवास-व्यवस्था हेतु निर्धारित किया गया था। द्वितीय योजना मे विभिन्न वर्गों के लिए ३,२२,००० गृहो की व्यवस्था का आयोजन किया गया था।

———

अध्याय १२

द्वितीय पंचवर्षीय योजना [२]

[योजना की आधारभूत नीतियाँ, औद्योगिक नीति-१९५६, केन्द्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार क्षेत्र, राज्य तथा व्यक्तिगत क्षेत्र, व्यक्तिगत उद्योग के क्षेत्र, १९४८ एव १९५६ की औद्योगिक नीतियो का तुलनात्मक अध्ययन, लघु एव गृह उद्योग नीति, रोजगार की नीति, श्रम-नीति एव कार्यक्रम, द्वितीय पचवर्षीय योजना की प्रगति। प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजना का तुलनात्मक अध्ययन ।]

योजना की आधारभूत नीतियाँ

द्वितीय पचवर्षीय योजना का निर्माण कतिपय नीतियो की आधारशिला पर आधारित हुआ है। उन नीतियो का पृथक् पृथक् विश्लेषणात्मक अध्ययन भी आवश्यक है।

औद्योगिक नीति—१९५६

१९५६ मे १९४८ की औद्योगिक नीति को आठ वर्ष व्यतीत हो गए थे। इस नीति के ८ वर्षों के अनुभवो तथा मध्य अवधि के परिवर्तनो के आधार पर नवीन नीति की घोषणा करना आवश्यक समझा गया। इन ८ वर्षों मे भारतीय सविधान का जन्म हुआ जिसके द्वारा राजकीय नीति निर्देशक तत्व निश्चित किए गए हैं। लोकसभा द्वारा १९५४ मे समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना करना राज्य की आर्थिक एव सामाजिक नीतियो का उद्देश्य मान लिया गया। इसके साथ प्रथम पचवर्षीय योजना भी पूर्ण हो चुकी थी तथा इसके अनुभवो के आधार पर भविष्यत नियोजन हेतु नवीन औद्योगिक नीति की आवश्यकता थी। समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना के लिए लोक साहस की स्थापना एव असमानताओ मे कमी करने का सुझाव दिया गया। जन-समुदाय के कल्याण के लिए शीघ्र औद्योगीकरण की आवश्यकता समझी गयी

और इन्ही समस्त कारणो से औद्योगिक नीति में आवश्यक परिवर्तन किए गये।

३० अप्रैल १९५६ को औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव स्वयं प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने ससद के सम्मुख प्रस्तुत किया। प्रस्ताव मे उत्पादन में निरन्तर वृद्धि एव समान विनरण को अधिक महत्व दिया गया था तथा राज्य को औद्योगिक विकास म क्रियाशील भाग लेने की सिफारिश की गयी थी। प्रस्ताव के अनुसार राज्य को शस्त्र, परमाणु-शक्ति तथा रेल यातायात पर एकाधिकार प्राप्त करने के साथ-साथ ६ आधारभूत उद्योगो की नवीन इकाइयो की स्थापना का एकमात्र अधिकार भी होना चाहिए था। शेष सभी उद्योगो मे व्यक्तिगत साहस को कार्य करने का अवसर दिया जाय, परन्तु राज्य को इस क्षेत्र मे भी भाग लेने की सिफारिश की गयी।

नवीन औद्योगिक नीति द्वारा समस्त उद्योगो को तीन वर्गों मे विभाजित किया गया जो निम्न प्रकार हैं—

(अ) केन्द्रीय सरकार का अनन्य एकाधिकार क्षेत्र—इस वर्ग मे १७ उद्योग सम्मिलित किए गये जिन्हे प्रथम अनुसूची (Schedule 'A') म रखा गया। इन उद्योगो की नवीन इकाइयो की स्थापना करने का उत्तरदायित्व राज्य का ही होगा। परन्तु निजी उद्योगपतियो के स्वामित्व मे इन उद्योगो की जो वर्तमान इकाइया हैं, उनके विस्तार एव उन्नति के लिए राज्य द्वारा समस्त सुविधाएँ प्रदान का जायेंगी और आवश्यकता पडने पर राज्य भी राष्ट्र के हितार्थ निजो क्षेत्र से सहयोग की याचना कर सकता है। रेलवे तथा वायु यातायात, शस्त्र एव परमाणु शक्ति का विकास केन्द्रीय सरकार द्वारा ही किया जायगा। निजी क्षेत्र का जब सहयोग प्राप्त किया जायगा तो राज्य पूँजी का अधिक भाग देकर अथवा अन्य विधियो द्वारा ऐसी इकाइयो की नीतियो के निर्धारण एव नियन्त्रण की शक्ति अपने अधिकार मे रखेगा। इस वर्ग मे निम्नांकित उद्योग सम्मिलित किये गए—

(१) सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग—अस्त्र, शस्त्र तथा अन्य युद्ध-सामग्री के निर्माण के उद्योग तथा अणुशक्ति उत्पादन।

(२) वृहद् उद्योग—लोहा एव इस्पात, लोहा एव इस्पात की भारी ढली हुई वस्तुएँ, लोहा एव इस्पात के उत्पादन, खनिज तथा मशीनो के भारी औजार निर्माण करने के लिए भारी मशीनों के उद्योग, भारी बिजली का सामान बनाने वाले उद्योग आदि।

(३) खनिज सम्बन्धी उद्योग—कोयला, लिगनाइट, खनिज तेल, लोहा-खनिज, जिप्सम, मैंगनीज, सल्फर, सोना, चाँदी, ताँबा, हीरा इत्यादि।

(४) यातायात एव संवादवाहन सम्बन्धी उद्योग—वायुयानो का निर्माण, वायु यातायात, जलयानो का निर्माण, टेलीफोन टेलीग्राफ, वायरलैस, रेल यातायात इत्यादि।

(५) विद्युत-उत्पादन एव वितरण।

(ब) राज्य तथा व्यक्तिगत—मिश्रित क्षेत्र—इस वर्ग मे व्यक्तिगत पूँजीपतियो एव सरकार दोनों को नवीन औद्योगिक इकाईयां स्थापित करने का अवसर प्राप्त होगा। अर्थात् इस वर्ग के उद्योगो की नवीन इकाइयो की स्थापना का उत्तरदायित्व सामूहिक होगा। परन्तु इस वर्ग के उद्योगों को क्रमशः शासकीय क्षेत्र म ले लिया जायगा। इस वर्ग मे कुल १२ उद्योग हैं जिन्हें अनुसूची 'ब' (Schedule 'B') मे रखा गया है। ये उद्योग इस प्रकार है—

(१) मिनरल्स कन्सेशन रूल्स, १९४० की धारा ३ म परिभाषित लघु खनिजो के अतिरिक्त अन्य सभी खनिज।

(२) अल्यूम्यूनियम तथा अलोह धातुएँ जो अनुसूची 'अ' म सम्मिलित न हो।

(३) मशीन औजार।

(४) लोह मिश्रण तथा औजार इस्पात।

(५) रासायनिक उद्योगो मे उपयोग आने वाली आधारभूत तथा मध्यम वर्ग की वस्तुएँ।

(६) एन्टीबायोटिक्स एव अन्य आवश्यक दवाइयां।

(७) खाद।

(८) कृत्रिम रबर।

(९) कोयले का कार्बन में परिवर्तन।

(१०) रासायनिक लुग्दी।

(११) सडक यातायात।

(१२) समुद्र यातायात।

(स) व्यक्तिगत उद्योग के क्षेत्र—शेष समस्त उद्योग इस तीसरे वर्ग में सम्मिलित किये गये। इसमें लघु उद्योगा के साथ साथ बुनाई उद्योग, कागज, सीमेंट, वस्त्र, शक्कर आदि सभी उद्योग सम्मिलित है। इन उद्योगो का भावी विकास साधारणत निजी क्षेत्र द्वारा ही किया जायगा परन्तु सरकार को इस क्षेत्र में भी अपनी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने का अधिकार होगा। सरकार इन उद्योगो के विकास एव विस्तार के लिए यातायात, पूँजी, शक्ति तथा अन्य आवश्यक साधनो का आयोजन करने का प्रयास करेगी तथा संरक्षण एव उचित कर-नीति द्वारा इनके विकास को प्रोत्साहित किया जायगा।

(६) देश का सन्तुलित औद्योगिक विकास करने के लिए तात्रिको एव प्रबन्धको को आवश्यकता होगी, इसलिए सरकार आवश्यक शिक्षा एवं प्रशिक्षण-सुविधाओं का प्रबन्ध करेगी।

(७) देश के औद्योगिक विकास मे निजी क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। निजी क्षेत्र को निश्चित सीमाओ म तथा निश्चित योजनाओ के अनुसार विकास करने का अवसर प्रदान किया जायगा।

(८) सरकार इस बात का प्रयत्न करेगी कि उद्योगो का सचालन निर्धारित औद्योगिक नीति के अनुसार हो, परन्तु एक ही उद्योग मे शासकीय तथा व्यक्तिगत औद्योगिक इकाइयो के साथ किसी प्रकार का पक्षपात नही किया जायगा।

सन् १९४८ एव सन् १९५६ की औद्योगिक नीतियो का तुलनात्मक अध्ययन—दोनो ही नीतियो के आधारभूत सिद्धान्त समान हैं तथा दोनो ही नीतियो द्वारा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। दोनो मे ही व्यक्तिगत एव सरकारी क्षेत्र के सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। दोनो मे ही शासकीय क्षेत्र के विस्तार को आवश्यक बताया गया है। औद्योगिक प्रबन्ध के समाजीकरण, योजनात्मक अर्थ-प्रबन्ध, सरक्षण तथा देश के आर्थिक साधनो के विकास को दोनो मे ही महत्त्व दिया गया है। परन्तु यह समझना उचित न होगा कि नवीन औद्योगिक नीति पुरानी औद्योगिक नीति की सशब्द पुनरावृत्ति है। कतिपय लक्षण दोनो नीतियो के पृथक्कीकरण तथा भिन्न अस्तित्व को अन्तर के रूप मे प्रस्तुत करते है। वे निम्नप्रकारेण है—

(१) **शासकीय क्षेत्र का विस्तार**—नवीन औद्योगिक नीति मे शासकीय क्षेत्र के निरन्तर विस्तार का आयोजन किया गया है जबकि सन् १९४८ मे गिने-चुने उद्योगो को ही शासकीय एकाधिकार मे रखा गया था। इससे यह स्पष्ट है कि शासन शनैः शनैः उद्योगो का विकास अपने हाथ मे ले सकता है।

(२) **समाजवादी व्यवस्था की स्थापना**—नवीन औद्योगिक नीति मे समाजवादी प्रकार के समाज के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। धन, आय एवं शक्ति के विकेन्द्रीयकरण को विशेष महत्त्व दिया गया है। असमानताओ को कम करने के लिए शासकीय क्षेत्र व्यापारिक क्षेत्र मे भी अधिकाधिक भाग लेगा। सन् १९४८ की नीति मे अधिक उत्पादन को विशेष महत्त्व दिया गया क्योकि तत्कालीन न्यूनताओ का निवारण करना अत्यन्त आवश्यक था।

(३) **उद्योगो का क्षेत्रीय विकास**—नवीन औद्योगिक नीति मे देश के सन्तुलित विकास को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसी उद्देश्य से औद्योगिक

दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रो के विकास के लिए ठोस कदम उठाने का आयोजन किया गया है। सन् १६४८ की औद्योगिक नीति मे इस ओर विशेष ध्यानाकर्षित नही किया गया था।

(४) उद्योगो के वर्गीकरण मे शिथिलता—नवीन नीति मे उद्योगो के वर्गीकरण मे शिथिलता रखी गयी है। परिणामस्वरूप योजना की आवश्यकतानुसार कोई भी उद्योग किसी भी क्षेत्र म स्थापित किया जा सकता है, चाहे वह किसी भी वर्ग का हो।

(५) औद्योगिक श्रमिको की कार्य करने की दशाओ मे आवश्यक सुधार करने तथा उनकी कायशीलता मे वृद्धि करने, औद्योगिक शान्ति स्थापित करने, सामूहिक विचार-विमर्श करने, श्रमिको एव तान्त्रिकों को जहाँ भी सम्भव हो, प्रबन्ध मे भाग लेने के अवसर प्रदान करने आदि का उत्तरदायित्व सरकारी क्षेत्र की नवीन नीति म निश्चित किया गया।

नवीन औद्योगिक नीति की आलोचना विभिन्न पक्षो ने की है। प्रतिक्रियावादी तथा दक्षिण-पक्षीय नेताओ ने इसे अदूरदर्शितापूर्ण तथा अतिशय क्रान्तिकारी बताया है। दूसरी ओर समाजवादी एव वाम-पक्षीय नेताओ ने इसे समाजवादी व्यवस्था हेतु पूर्णरूपेण अनुपयुक्त बताया है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से औद्योगिक नीति की आलाचना करते हुए लोगो ने बताया है कि इसमे शासकीय क्षेत्र को अत्यधिक महत्त्व एवं अधिकार दिया गया है। फलस्वरूप व्यक्तिगत क्षेत्र म अनिश्चितता की भावना जाग्रत हो सकती है। साथ ही शासन क कन्धों पर अधिक भार पड सकता है। दूसरी ओर औद्योगिक नीति मे राष्ट्रीयकरण जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर स्पष्टरूपेण कुछ नही कहा गया है। फलत व्यक्तिगत उद्योगपति नये उद्योगो मे पूंजी विनियोजित करने के लिए प्रोत्साहित न होगे। आवश्यकतानुसार सरकार नीति के निर्धारित सिद्धान्तो म परिवर्तन कर सकती है। यह सम्भावना भी व्यक्तिगत साहसियो मे अनिश्चितता की भावना जाग्रत कर सकती है।

उपरोक्त अस्पष्टताओ के हाते हुए भी नवीन औद्योगिक नीति द्वारा कई भ्रमपूर्ण बातो का निवारण हो गया है। समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना हेतु सरकार को विस्तृत साधन एवं अधिकार प्राप्त हो गये हैं। इस नीति द्वारा देश के शीघ्र औद्योगीकरण मे सहायता मिलेगी तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना म कार्यक्रम निश्चित करते समय नीति मे प्रतिपादित सिद्धान्तो को आधार मान लिया गया है।

लघु एवं गृह उद्योग सम्बन्धी नीति

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे लघु एवं गृह उद्योग सम्बन्धी कार्यक्रम प्रथम

योजना की तुलना मे अत्यधिक विस्तृत है। योजना आयोग ने जून १९५५ मे इन उद्योगो के कार्यक्रमो तथा समस्याओ का अध्ययन करने के लिए ग्रामीण एव लघु उद्योग (द्वितीय पचवर्षीय योजना) समिति की जो कि कर्वे समिति के नाम से प्रसिद्ध है, नियुक्ति की। इस समिति ने अपनी सिफारिशे करते समय निम्न उद्देश्यो को आधार माना —

(१) जहाँ तक सम्भव हो द्वितीय योजना काल म परम्परागत ग्रामीण उद्योगा म तात्रिक बेरोजगारी का और अधिक विस्तार न हो।

(२) विभिन्न ग्रामीण एव लघु उद्योगो द्वारा द्वितीय योजना काल मे अधिकतम रोजगार अवसर प्रदान किये जाये।

(३) विकेन्द्रित समाज की स्थापना तथा आर्थिक विकास की तीव्र गति के लिए आधारभूत प्रकार क आयोजन किये जाये।

वास्तव म तात्रिक बेरोजगारी की समस्या, जो कि आधुनिक उत्पादन की विधियो के उपयोग क कारण उत्पन्न होती है, के विस्तार को रोकने क लिए लघु एव ग्रामीण उद्योगो म रोजगार क अवसरों को बढाना, विकेन्द्रित समाज की स्थापना करना तथा उत्पादन की गति मे वृद्धि अत्यन्त आवश्यक होगी। समिति ने रोजगार की समस्या का सर्वाधिक महत्त्व दिया है और इसीलिए उत्पादन की वृद्धि क उद्देश्य की पूर्ति हेतु कोई ऐसी कार्यवाही करने का सुझाव नही है जिससे रोजगार की स्थिति पर बुरा प्रभाव पडे। यद्यपि उत्पादन की गति म वृद्धि के लिए उत्पादन की तान्त्रिक विधियो म सुधार करना आवश्यक होगा, परन्तु समिति ने इन सुधारो की सीमा उस अवस्था पर निश्चित की है, जहाँ कि रोजगार क अवसरो मे कमी न होती हो। समिति की इस सिफारिश का यह अर्थ कदापि नही है कि आर्थिक दृष्टि स अनुपयुक्त तान्त्रिक विधियों द्वारा रोजगार क अवसर बढान का आयोजन किया जाय। समिति की सिफारिशों म यह स्पष्टरूपेण कथित है कि नयी पूँजी का विनियोजन यथासम्भव आधुनिक उत्पादक सामिग्री मे किया जाय अथवा ऐसी सामिग्री म किया जाय जिसमे सुधार किये जा सकते हो। समिति के विचार म ऐसे बेरोजगारो एवं अर्ध-रोजगार प्राप्त व्यक्तियो को, जो ग्रामीण एव लघु उद्योग क्षेत्र से सम्बद्ध हैं, उन्ही व्यवसायो म लाभप्रद रोजगार दिये जाने का प्रबन्ध करना चाहिए जिनमें उन्हे परम्परागत प्रशिक्षण, अनुभव एव सामिग्री प्राप्त है। इस प्रकार की व्यवस्था स उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि करने लिए नयी पूँजी एवं प्रशिक्षित श्रम की समस्या का निवारण हो सकता है। इस प्रकार भारी एव आधारभूत उद्योगो के विकास के लिए उपभोक्ता-वस्तुओ की पूर्ति परम्प-

रागत उद्योगो की विद्यमान पूंजी एवं श्रम के साधनों से की जा सकती है। इन्ही उद्देश्यो की पूर्ति हेतु द्वितीय योजना म ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास को विशेष स्थान दिया गया था।

समिति की अन्य सिफारिशा का समावेश इस प्रकार है—

(१) आर्थिक जोवन का सामूहिक सगठन जो कि विकेन्द्रीयकरण अथवा सहकारिता पर आधारित हो।

(२) उत्पादको द्वारा कच्चे माल, औजार तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ की योजनाबद्ध पूर्ति के लिए क्रय तथा विक्रय सहकारी समितियो की स्थापना करना। सहकारी समितियो द्वारा वस्तुओ का सगठित विपणि की सुविधा का भी आयाजन किया जाय। प्रारम्भिक अवस्था में सहकारिता को शासकीय प्रतिभूति (Guarantee) प्राप्त होनी चाहिए।

(३) सहकारी विकास एव गोदाम-व्यवस्था निगम (Co-operative Development and Warehousing Corporation) की स्थापना के पश्चात् इस सस्था क कार्यक्षेत्र म ग्रामीण एव लघु उद्योगो द्वारा उत्पादित वस्तुओ क विपणि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(४) दीर्घकालीन साख की सुविधा प्रदान करने के लिए राज्य के वित्तीय निगमा मे एक लघु उद्योग विभाग की स्थापना की जानी चाहिए।

(५) रिजर्व बैंक को, ग्रामीण एव सहकारी उद्योगो को वित्त प्रदान करने के कार्यक्रमो क लिए, पूर्णरूपेण उत्तरदायी कर दिया जाय, जिस प्रकार कि कृषि साख हेतु रिजर्व बैंक उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया को लघु एव ग्रामीण उद्योगा को वित्तीय सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए।

(६) केन्द्र मे एक पृथक् विभाग, जो कि केबिनेट श्रेणी के मत्री के आधीन हो, की स्थापना ग्रामीण एव लघु उद्योगो के लिए की जानी चाहिए। इसके साथ केबिनेट की एक समिति की स्थापना ग्रामीण एवं लघु उद्योगो के लिए की जानी चाहिए।

(७) उपर्युक्त सिफारिशो के अतिरिक्त समिति ने कुछ प्रतिबन्ध सम्बन्धी सिफारिशें की। लघु एव ग्रामीण उद्योगो क प्रारम्भिक विकास काल मे उपभोक्ता वृहद् उद्योगो के उत्पादन की अधिकतम सीमा निश्चित की जानी चाहिए। इस कार्यवाही से लघु एव ग्रामीण उद्योगो मे उत्पादित उपभोक्ता-वस्तुओ की माँग में वृद्धि हो सकेगी। समिति ने कपड़ा बुनने तथा हाथ से चावल कूटने के उद्योगो को सरक्षण देने के लिए चावल के कारखानो के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाने की सिफारिश की जिससे ग्रामीण क्षेत्रो मे ये

उद्योग उन्नत हो सकें। इस प्रकार समिति के विचार मे मिलो द्वारा कपडा बुनने की सीमा ५०,००० लाख गज तथा शक्ति से चलने वाले करघो का उत्पादन २,०००•० लाख गज सीमित किया जाना चाहिये। शेष कपडे की समस्त माँग की पूर्ति हाथकरघा उद्योग द्वारा की जानी चाहिए। वनस्पति तेल एव चमडा उद्योगो की उत्पादन-क्षमता के विस्तार पर भी प्रतिबन्ध लगाने की सिफारिश की गयी है। नये तेल-मिलो की स्थापना पर रोक लगाना आवश्यक बताया गया है। केवल उन क्षेत्रो मे तेल की मिलें स्थापित की जायें, जहाँ तेल पेरने के अन्य साधन उपलब्ध न हो। उपर्युक्त चारो वृहद् उद्योगो पर भेदपूर्ण (Differential) उत्पादन कर (Excise Duty) लगाने का भी सुझाव दिया गया है। इन करो मे एक ओर उपभोक्ता से अतिरिक्त अर्थ प्राप्त करके लघु उत्पादको का पुनर्वास (Rehabilitation) किया जा सकेगा तथा दूसरी ओर ग्रामीण उद्योगो से उत्पादित वस्तुओं के मूल्य वृहद् उद्योगो द्वारा उत्पादित वस्तुओ की तुलना में प्रतिस्पर्धीय हो सकेंगे।

द्वितीय योजना मे उपर्युक्त समस्त सिफारिशो को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाना था। योजना मे ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास को अधिक महत्व दिये जाने के निम्नलिखित मुख्य कारण थे—

(१) अर्थ-व्यवस्था मे तान्त्रिक परिवर्तन (Technological Changes) होन के कारण बेरोजगारी बडी मात्रा मे विद्यमान थी और इसके और अधिक विस्तार को रोकना अत्यन्त आवश्यक था।

(२) बेरोजगारी, जो कि विभिन्न कारणो से वृद्धि की ओर अग्रसर थी, को दूर करन के लिए रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने की आवश्यकता थी।

(३) ग्रामीण एव लघु उद्योगो मे पूँजीगत उत्पादन सामिग्री (Capital Equipment) का आधिक्य था। इन उद्योगो की अवनति थोडे समय पूर्व ही मशीनोत्पादन से प्रतिस्पर्धा होने के कारण हुई। इन उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि करने तथा रोजगार के अवसर बढाने के लिए पूँजीगत सामिग्री पर अधिक विनियोजन की आवश्यक्ता नही होनी थी। इस प्रकार राष्ट्र के अधिकतम अर्थ-साधनो का विनियोजन पूँजीगत, भारी एव आधारभूत उद्योगो मे किया जा सकता था।

(४) ग्रामीण एव लघु उद्योगो के क्षेत्र मे रोजगार के अवसर बढाने के लिये राज्य पर वित्तीय भार कम पडता।

(५) आर्थिक उत्पादन मे विकेन्द्रीयकरण की स्थापना करना सामाजिक एव आर्थिक दोनो ही दृष्टिकोण से आवश्यक था और इसके लिए ग्रामीण एवं लघु उद्योगो का विकास होना आवश्यक था।

(६) वृहद् उद्योगो की स्थापना से ग्रामीण एवं नगरों के जीवन स्तर का अन्तर और भी गम्भीर होने की सम्भावना रहती है। इस अन्तर को रोकने के लिए ग्रामीण उद्योगो का विकास होना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय योजना मे ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास द्वारा रोजगार के अवसरो की वृद्धि, बेरोजगारी के विस्तार को रोकना, उपभोक्ता-वस्तुओ की पूर्ति को बढाना, पूंजीगत एव आधारभूत उद्योगो के लिए अधिक अर्थ-साधन उपलब्ध कराना, विकेन्द्रित समाज की स्थापना करना आदि उद्देश्यो की पूर्ति का लक्ष्य रखा गया था। १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे भी ग्रामीण एव लघु उद्योगो का सुदृढ बनाने की आवश्यकता बतायी गयी थी। इसके साथ इन उद्योगो एव वृहद् उद्योगो के क्षेत्र म सामजस्य स्थापित करने को भी महत्त्व दिया गया था। ग्रामीण क्षेत्र मे बिजली के विस्तार तथा शक्ति के सस्ते मूल्य पर प्राप्त होन से ग्रामीण उद्योगो को सुदृढ बनाने मे सहायता प्राप्त हो सकती थी और जब तक ये उद्योग पर्याप्त सुदृढता प्राप्त नही कर लेते, इन्हे सरक्षण दने के लिए वृहद् उद्योगो के क्षेत्र के उत्पादन को सीमित करना, भदपूर्ण कर व्यवस्था तथा लघु उद्योगो को प्रत्यक्षरूपेण सहायता देना आवश्यक था।

उपयुक्त विवरण के अध्ययन से बहुत से परस्पर विरोधी प्रश्न सम्मुख आते हैं, उनका विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(१) तान्त्रिक परिवर्तनो के कारण होने वाली बेरोजगारी को रोकने के लिए क्या लघु एव ग्रामीण उद्योगो मे परम्परागत एव अकुशल उत्पादन विधियो का ही उपयोग किया जाता रहेगा ? एक ओर ग्रामीण एव लघु उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि करने की आवश्यकता है और दूसरी ओर बेरोजगारी के भय से तान्त्रिक सुधार भी नही किये जा सकते है। तान्त्रिक सुधारो की अनुपस्थिति मे उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन की लागत भी अधिक रहती तथा पर्याप्त मात्रा एव गुण (Quality) का उत्पादन भी न हो सकता था। जब राष्ट्र मे पूंजीगत एव आधारभूत उद्योगो का विकास आधुनिक तान्त्रिक विधियो द्वारा किया जाना था तो देश के लघु एव ग्रामीण क्षेत्र मे परम्परागत उत्पादन विधियां किस प्रकार उपयुक्त हो सकती थी और यदि प्रारम्भिक काल मे इस व्यवस्था को शासकीय सहयोग द्वारा चलाया भी जाता तो दीर्घकाल तक ग्रामीण एव लघु उद्योगो को इस अवस्था मे लाने के लिए कि वे वृहद् उद्योगो से स्वत ही सामजस्य स्थापित कर सकें, उनम तान्त्रिक परिवर्तन करना अनिवार्य था।

(२) द्वितीय महत्त्वपूर्ण प्रश्न जो हमारे सम्मुख आता है, वह यह है कि क्या तान्त्रिक परिवर्तनो द्वारा ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है अथवा तान्त्रिक

परिवर्तन बेरोजगारी पर किस सीमा तक प्रभाव डालते हैं ? तान्त्रिक परिवर्तनों द्वारा एक ओर श्रम को हटा कर मशीन का उपयोग किया जाता है तथा दूसरी ओर उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि भी होती है। उत्पादन मे वृद्धि होने से लघु साहसियो की आय में वृद्धि होना भी स्वाभाविक है। आय की वृद्धि के साथ बचत तथा विनियोजन मे भी वृद्धि हो सकती है तथा पूंजी-निर्माण मे वृद्धि के साथ-साथ रोजगार के अवसरों मे वृद्धि सम्भव होती है। परन्तु प्रारम्भिक काल में तान्त्रिक सुधार करने के लिए पूंजी की उपलब्धि का प्रबन्ध करना आवश्यक होता है तथा जब यह विधि प्रारम्भ हो जाय तो गृह एव लघु उद्योगों के क्षेत्र का स्थायीरूपेण विकास सम्भव हो सकता है। दूसरी ओर तान्त्रिक परिवर्तनो को प्रोत्साहन न मिलने पर बेरोजगारी के विस्तार की गम्भीरता को केवल अल्प समय के लिए ही रोका जा सकता है। भारत जैसे राष्ट्र म जहाँ जनसख्या में निरन्तर वृद्धि होती है, केवल विद्यमान श्रम को ही रोजगार देने की समस्या नहीं है, प्रत्युत् श्रम मे जो वृद्धि होती है, उसके लिए भी रोजगार के अवसर प्रदान करना आवश्यक होता है। नवीन रोजगार के अवसर अधिक विनियोजन द्वारा ही सम्भव हो सकते हैं। इस प्रकार तान्त्रिक सुधार बेरोजगारी की समस्या के निवारण मे बाधक के स्थान पर सहायक हो सकते हैं।

(३) द्वितीय योजना मे लघु एव ग्रामीण उद्योगो के विकास का मुख्य उद्देश्य योजना के विकास-कार्यक्रमो एव पूंजीगत तथा आधारभूत उद्योगों मे विनियोजन एवं सामाजिक कार्यक्रमो पर अधिक व्यय के कारण जन-समुदाय को जो अधिक क्रय-शक्ति प्राप्त होनी थी, उसके लिए उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति करना आवश्यक था। इससे स्पष्ट नहीं होता है कि इन उद्योगो को व्यवस्था मे उपभोक्ता-वस्तुओं की पूर्ति हेतु स्थायी स्थान दिया जायगा, अथवा भविष्य मे उपभोक्ता-वस्तुओं का उत्पादन भी वृहद् उद्योगो द्वारा किया जायगा। यद्यपि विकेन्द्रित समाज की स्थापना हेतु इन उद्योगो को स्थायी स्थान प्राप्त हो सकता था परन्तु विकेन्द्रित समाज का स्थापन शासकीय क्षेत्र के विस्तार द्वारा भी किया जा सकता था। पूंजीगत उद्योगो के विकास से उपभोक्ता-उद्योगो का विकास होना स्वाभाविक ही होता है तथा इस प्रकार निकट भविष्य ही मे ग्रामीण एवं ल उद्योगो को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा क्योंकि शासकीय संरक्षण द्वारा कोई भी क्षेत्र दीर्घकाल तक उन्नति नहीं कर सकता है।

रोजगार नीति (Employment Policy)

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे बेरोजगारी की समस्या की गम्भीरता एव विस्तार को रोकने के लिए कार्यक्रम निश्चित किये गये थे। योजना-निर्माण के

साथ यह अनुमान लगाया गया कि योजना के प्रारम्भ म २५ लाख नागरिक तथा २८ लाख व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रो में बेरोजगार थे। इसके साथ यह भी अनुमान था कि योजना काल म २० लाख व्यक्तियो से प्रति वर्ष श्रम की पूर्ति मे वृद्धि होगी। योजना काल मे नागरिक एव ग्रामीण क्षेत्र म क्रमश ३८ लाख एव ६२ लाख व्यक्तियों से श्रम पूर्ति की वृद्धि का अनुमान था। इस प्रकार पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिए १५३ लाख रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने की आवश्यकता था। इसके अतिरिक्त अध-रोजगार एव अदृश्य-बेरोजगारी जा कि कृषि म बडी मात्रा म थी, को कम करना भी आवश्यक समझा गया था। शिक्षा प्रसार भूमि-सुधार तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्र जीविकोपार्जन की स्वाभाविक इच्छा के कारण जन समुदाय मे मजदूरी पर काम करने की प्रवृत्ति म वृद्ध हान जा रही थी जिसस बेरोजगारी की समस्या ने एक स्पष्ट रूप ग्रहण कर लिया था।

अर्ध-विकसित राष्ट्रो म बेरोजगारी की समस्या का निवारण दीर्घकालीन विकास-कार्यक्रमो द्वारा ही हो सकता है। पाँच वर्षों क अल्प काल मे इस समस्या के विस्तार एव मात्रा को कम किया जा सकता है, परन्तु पूर्ण रोजगार-व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है। इसी कारण से द्वितीय योजना म इस समस्या क निवारणार्थ जो आयोजन किय गये थे, उनके द्वारा समस्या की तीव्रता (Intensity) म अवश्यमेव कमी हो जानी थी, परन्तु समस्या का समूल उन्मूलन असम्भव था।

भारत जैसे राष्ट्र म जहाँ श्रम की पूर्ति अत्यधिक है, और जिसमे प्रति वर्ष २० लाख व्यक्तियो की वृद्धि होती है, पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिए श्रम का अधिक उपयोग करने वाली तात्रिकताओ का उपयोग करना स्वाभाविक एव वाछनीय है। परन्तु अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रा म पूँजी प्रधान एव श्रम-प्रधान तात्रिकताओ के निश्चयार्थ केवल रोजगार क अवसरो की आवश्यकता को ही आधार नहीं माना जा सकता है, क्योकि अन्य घटक भी तात्रिकताओ के चयन पर प्रभाव डालते हैं। कुछ क्षेत्रो म तो उपयोग होने वाली तात्रिकताओ मे कोई चुनाव का स्थान ही नहीं होता क्योंकि उनके उत्पादन का प्रकार ऐसा होता है कि उनमे पूँजी प्रधान तात्रिकताओ का ही उपयोग किया जा सकता है। एक ओर भारी उद्योगो, रेल उद्योग, यातायात एव सचार आदि का विकास आवश्यक है तथा दूसरी ओर इनमे सर्वमान्य तथा दीर्घकाल से उपयोग म आने वाली मशीनो आदि सामिग्री का उपयोग होना स्वाभाविक है। रोजगार के अवसरो मे वृद्धि हेतु उनको श्रम-प्रधान करना किसी प्रकार उचित नहीं कहा

जा सकता। कृषि के क्षेत्र में भी उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक विधियो का, जो पूँजी-प्रधान हैं, उपयोग वांछनीय है। कृषि के यन्त्रीकरण (Mechanisation) द्वारा सम्भवत इसके द्वारा उत्पादित बेरोजगारी की हानियो की तुलना मे अधिक आर्थिक हित हो सकता है। सिचाई एव शक्ति की योजनाओ की तान्त्रिकताओ का चुनाव विदेशी मुद्रा के साधनो की बचत करने की आवश्यकता तथा श्रम की पूर्ति पर आधारित होता है। यदि विदेशी मुद्रा पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो सके तो सिचाई एव शक्ति के कार्यक्रमो को शीघ्र सेवायोग्य (Serviceable) बनाने के लिये पूँजी प्रधान तान्त्रिकताओ का उपयोग वाछनीय है क्योकि इनके द्वारा कृषि एव औद्योगिक विकास निर्धारित होता है।

विकसित राष्ट्रों मे बेरोजगारी की समस्या का निवारण विस्तृत निर्माण (Construction) कार्यक्रमो को क्रियान्वित करके किया जाता है। परन्तु निर्माण कार्यक्रमो मे अधिक विनियोजन की आवश्यकता होती है तथा निर्माण-कार्य पूर्ण होने के पश्चात् बडी मात्रा में श्रम बेरोजगार हो जाता है। निर्माण-कार्यक्रमो द्वारा केवल अल्प काल के लिए बेरोजगारी के दबाव को कम किया जा सकता है। निर्माण कार्य के पूर्ण होने पर इनसे पृथक् हुए श्रम को अन्य व्यवसायो मे रोजगार प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण आदि की समस्याएँ भी प्रस्तुत होती हैं।

इस प्रकार केवल उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो का क्षेत्र ही ऐसा है जिसमे तान्त्रिकताओ के चुनाव म थोडी कठिनाई होती है। देश की आर्थिक स्थिति एव भविष्य के कार्यक्रमानुसार इन उद्योगो का विकास पूँजी-प्रधान एव श्रम-प्रधान — दोनो ही तान्त्रिकताओ के उपयोग द्वारा किया जा सकता है। आधारभूत एव भारी उद्योग के विकास को प्राथमिकता देने के कारण अर्थ-साधनो के अधिकतम भाग को इन उद्योगो के विकास मे विनियोजित किया जाता है। उपभोक्ता-वस्तुओ के विकास के लिए इस प्रकार अर्थ-साधन और विदेशी अर्थ-साधन उपलब्ध न होने के कारण इन उद्योगों का उत्पादन श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओ द्वारा बढाना स्वाभाविक ही है। दूसरी ओर बेरोजगारी की समस्या के विस्तार को रोकने के लिए उपभोक्ता-वस्तुओ के उद्योग मे पूँजी-प्रधान तान्त्रिकताओ के उपयोग को प्राथमिकता न देकर श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओ को ही प्राथमिकता प्रदान की जाती है। योजना आयोग के अनुसार श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओ के उपयोग मे प्रति व्यक्ति बचत अधिक नही होती है, परन्तु समस्त क्षेत्र की बचत पूँजी-प्रधान तान्त्रिकताओ के उपयोग द्वारा उत्पादित बचत से कही अधिक होती है। इस प्रकार पूँजी निर्माण के लिए पर्याप्त बचत प्राप्त हो सकती है। दूसरी

और यदि पूंजी-प्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाय तो प्रति उत्पादक आय अवश्य ही अधिक होगी परन्तु जनसख्या का बडा भाग बेरोजगार रहेगा जिसके जीवन-निर्वाह का भार भी उत्पादक नागरिको पर ही रहेगा। इस प्रकार उत्पादक नागरिको की आय का कुछ भाग बेरोजगार नागरिको के जीवन-निर्वाह पर व्यय हो जायगा और पूंजी-निर्माण हेतु बचत की मात्रा पर्याप्त होना अत्यन्त कठिन होगी। इस प्रकार श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओं का उपयोग किया जाना वाछनीय है परन्तु छोटे-छोटे उत्पादको की बचत को एकत्रित करने के लिए सगठन-सम्बन्धी सुधार आवश्यक होते हैं। द्वितीय योजना मे इसी कारण से उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन हेतु ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास को विशेष महत्व दिया गया। साथ ही परम्परागत उत्पादन-विधियो को कार्यशील बनाने के प्रयास किये गये जिससे एक ओर तान्त्रिक परिवर्तनो से उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी का भय न रहे तथा दूसरी ओर इन उद्योगो की उपयोग मे न आने वाली उत्पादन-क्षमता का अधिक पूंजी-विनियोजन किए बिना ही उपयोग किया जा सके। इस प्रकार द्वितीय योजना मे बेरोजगारी की समस्या के विस्तार को रोकने एव उसकी गम्भीरता को कम करने के लिए उपभोक्ता-वस्तुओ के उद्योगो म श्रम-प्रधान तान्त्रिकताओ के उपयोग को प्रधानता दी गयी थी। बेरोजगारी की समस्या के निवारणार्थ ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास को द्वितीय योजना मे विशेष स्थान दिया गया था। इस सम्बन्ध के सभी कार्यक्रम इसी आधारभूत नीति पर आधारित थे।

योजना आयोग के अनुमानानुसार योजना काल मे कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे ८० लाख रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न किये जाने का अनुमान था। ये अवसर विभिन्न क्षेत्रो मे निम्न प्रकार उत्पन्न होने का अनुमान था—

तालिका सं० ५७—द्वितीय योजना में अतिरिक्त रोजगार अवसर

क्षेत्र	रोजगार अवसर (लाख)
(१) निर्माण	२१·००
(२) सिंचाई एव शक्ति	·५१
(३) रेलें	२·५३
(४) अन्य यातायात एव सचार	१·८०
(५) उद्योग एवं खनिज	७·५०
(६) लघु एवं गृह उद्योग	४·५०

के कारण कृषि मे खप जाती थी तथा अर्ध-रोजगार की समस्या का भी कुछ सीमा तक निवारण हो जाता था।

८० लाख रोजगार के अवसर उत्पन्न होने पर इसके अनुसार उपभोग की वस्तुओ की पूर्ति मे विस्तार करना आवश्यक था। यदि प्रति व्यक्ति आय का औसत प्रति मास १०० रु० अनुमानित किया जाय तो श्रमिको के हाथ में प्रति वर्ष ९६० करोड रु० की आय होती थी जिसको वे उपभोक्ता-वस्तुओ के क्रय तथा बचत पर व्यय कर सकते थे। यदि यह मान लिया जाय कि इस आय का १०% भाग बचत व कर (जो अनुमान भी अत्यन्त अभिलाषी था) तो शेष ८६४ करोड रु० उपभोग पर व्यय किये जाने का अनुमान लगाया जा सकता था। अर्थ-व्यवस्था मे श्रम की पूर्ति एव रोजगार के अवसर धीरे धीरे बढने थे, लगभग ५०० करोड रु० की अतिरिक्त उपभोक्ता-वस्तुओ की पूर्ति मे वृद्धि होने पर रोजगार के कार्यक्रम सफल हो सकते थे। उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन का लगभग ५०% भाग बाजार मे विक्रय हेतु प्रस्तुत होता है तथा इस प्रकार यदि उपभोक्ता-वस्तुओ की आवश्यकता से दुगुना उत्पादन होता, तभी रोजगार प्राप्त अतिरिक्त व्यक्तियो को उपभोक्ता-वस्तुएं उपलब्ध हो सकती थीं। द्वितीय योजना मे जो पहले से ही रोजगार-प्राप्त वर्ग है, उसकी आय म वृद्धि होनी थी तथा उसकी उपभोक्ता-वस्तुओ की माँग मे भी वृद्धि होनी थी। दूसरी ओर कृषि-उत्पादन की वृद्धि का बडा भाग अदृश्य बेरोजगार एव अर्ध-बेरोजगार, जिनके लिए योजना मे कोई विशेष आयोजन नहीं किया गया था, के जीवन-यापन हेतु उपयोग हो जाना था। औद्योगिक-क्षेत्र के विनियोजन-कार्यक्रम का अधिकाश पूंजीगत एव आधारभूत उद्योगो के लिए निर्धारित किया गया तथा उपभोक्ता-वस्तुओ की अतिरिक्त पूर्ति का उत्तरदायित्व ग्रामीण एव लघु उद्योगो पर रखा गया था। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित उपभोक्ता-वस्तुओ के उत्पादन मे बडी मात्रा मे वृद्धि होना कठिन थी। उपर्युक्त परिस्थितियो मे उपभोक्ता-वस्तुओं की कमी एव इनके अत्यधिक मूल्यो का भय उपस्थित हो सकता था। सरकार को उपभोग पर नियन्त्रण रखना आवश्यक था तथा रोजगार प्राप्त व्यक्तियो की आय के अधिकाधिक भाग को विनियोजन की ओर आकर्षित करना उचित था।

श्रम-नीति एवं कार्यक्रम

जब किसी राष्ट्र मे आधुनिक प्रकार के उद्योगो की स्थापना की जाती है, श्रम को पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करने की समस्या प्रस्तुत होती है। व्यक्तिगत क्षेत्र के अन्तर्गत औद्योगिक विकास मे श्रम सम्बन्धी समस्याएं अधिक गम्भीर होती हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना की श्रम-नीति में नवीन सन्नियम बनाने की

(२) झगड़े की उपस्थिति मे पारस्परिक वार्तालाप तथा स्वेच्छा से पंचों की नियुक्ति की जानी। शासन को उन व्यक्तियो की एक सूची तैयार रखनी जिनमे कर्मचारियो एव मालिको को विश्वास हो। यदि पंचों द्वारा निपटारा न हो सके तो सरकार को हस्तक्षेप करना।

(३) जानबूझ-कर निर्णयो पर पालन न करने वालो को कठोर दण्ड दिया जाना। निर्णयो का पालन कराने के लिए एक औद्योगिक ट्रिब्यूनल की स्थापना की जानी जिसे निर्णयो के अर्थ एवं क्षेत्र की व्यवस्था (Interpretation) करने का अधिकार होना।

(४) सयुक्त सलाहकार बोर्ड की सेवाओ का अधिक उपयोग किया जाना। बोर्ड द्वारा मुख्य समस्याओ का अध्ययन करना तथा सभी स्तरो पर सहयोग की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करना।

(५) सभी स्तरो पर—केन्द्र, राज्य एव पृथक्-पृथक् कारखानो मे—सयुक्त सलाहकार पद्धति की स्थापना किया जाना। पृथक् पृथक् इकाइयो मे कार्य-समितियो द्वारा सयुक्त सलाहकार पद्धति का कार्य करना। इन समितियो द्वारा उच्च स्तर पर किये गये समझौतो को कार्यान्वित कराने के अतिरिक्त उनके क्रियान्वित करने मे जो समस्याएं उपस्थित हो, उनका निपटारा सयुक्त सलाहकार पद्धति द्वारा करना।

(६) योजना की सफलतार्थ कारखानो मे श्रमिको का अधिकाधिक सम्पर्क आवश्यक था। इससे उत्पादन म वृद्धि द्वारा कर्मचारी, कारखाने एव समाज सभी का हित होना था। कर्मचारियो को उद्योगो के सचालन से अपने महत्व का ठीक-ठीक पता लग सकता था तथा श्रमिको को अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त होना था जिससे कर्मचारियो एव उद्योगपतियो मे सुसम्बन्ध स्थापित हो सकें। इसके लिए प्रत्येक कारखाने म एक प्रबन्ध परिषद् (Council of Management) स्थापित करने की सिफारिश की गयी जिसमे प्रबन्धको, तान्त्रिको (Technicians) तथा श्रमिको के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये। प्रबन्धको की यह जिम्मेदारी होनी थी कि वे इन परिषदो को आर्थिक विषयो के अतिरिक्त अन्य सभी विषयो की जानकारी दें जिससे वे परिषदें उन विषयो पर विचार कर सकें। सामूहिक सौदे से सम्बन्धित विषयो पर विचार करने का अधिकार इन परिषदो को न दिया जाना था। इस व्यवस्था का प्रारम्भ वृहद् सगठित उद्योगो से किया जाना था। श्रम-कल्याण समस्याओ पर पहले कार्य-समितियो मे विचार किया जाना तथा आवश्यकता पड़ने पर तत्पश्चात् प्रबन्ध परिषदो मे विचार किया जाना।

(७) शासकीय क्षेत्र में स्थापित उद्योगों मे सरकार, नियोक्ता का स्थान ग्रहण करती है परन्तु सरकारी कारखानों के प्रबन्ध को ऐसी कोई सुविधाएँ अथवा किसी विधान से मुक्ति प्राप्त नहीं होनी चाहिये थी जो व्यक्तिगत क्षेत्र को प्राप्त न हो।

भृत्ति सम्बन्धी नीति (Wage-Policy)—इस सम्बन्ध मे जो नीति निर्धारित की गयी, उसकी मुख्य-मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं—

(१) औद्योगिक दृष्टिकोण से विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था मे श्रमिकों को उचित वास्तविक भृत्ति का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक था। द्वितीय योजना मे उचित भृत्ति औसत कारखाने के आधार पर निश्चित की जाने को तथा सीमान्त इकाइयो को बन्द होने से रोकने के लिए ऐच्छिक एव अनिवार्य एकीकरण की सिफारिश की गयी थी।

(२) यत्र की अच्छी गढाई, कार्य करने की दशाओं तथा श्रमिको के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाना था जिससे तत्कालीन यंत्रो से अधिक उत्पादन हो सके तथा भृत्ति मे वृद्धि की जा सके। न्यूनतम मजदूरी से अधिक पारिश्रमिक कार्यानुसार ही दिया जाता।

(३) वेतन गणना (Wage Census) करने का अनुमोदन किया गया था तथा वेतन आयोग (Wage Commission) की नियुक्ति का भी प्रबन्ध किया गया था जिससे प्रस्तावित समाज के निर्माण के अनुरूप श्रमिको की मजदूरी निश्चत की जा सके।

(४) महँगाई भत्ता जीवन-निर्वाह-लागत-निर्देशाक (Cost of Living Index) पर आधारित होता है। इसलिये विभिन्न केन्द्रो की लागत निर्देशाको मे आवश्यक परिवर्तन किये जाने थे जिनसे सभी केन्द्रो मे समानता आ जाय।

(५) भृति-सम्बन्धी झगडो का निपटारा करने के लिये सभी उद्योगो मे त्रिपक्षीय सभाओ (Tripartite Wage Board) की स्थापना की जानी थी जिनमे कर्मचारियो एव नियोक्ताओ के समान प्रतिनिधि होने थे तथा जिनमें सभापति एक स्वतन्त्र व्यक्ति होना था।

सामाजिक सुरक्षा (Social Security)—द्वितीय योजना मे श्रमिक प्राविधिक निधि (Labour Provident Fund) योजना को उन सभी उद्योगो एव व्यापारिक सस्थाओ पर लागू करने का प्रस्ताव था जहाँ १०,००० या इससे अधिक मजदूर कार्य करते थे। इसी प्रकार मजदूरो के चन्दे की दर भी ६¼% से ८⅓% करने का सुझाव था। कर्मचारी राज्य बीमा योजना के क्षेत्र को बढाने पर भी विचार किया गया तथा एकीकृत सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं का भी अध्ययन करने की सिफारिश की गयी थी।

कार्य करने की दिशाएं (Working Conditions)—कारखानो, वर्कशाप, संस्थाओ (Establishment) आदि मे कार्य करने की दशाओ का नियमन १६४८ के कारखाना अधिनियम (Factories Act, 1948) द्वारा किया जाता था। द्वितीय योजना मे निर्माण उद्योग (Construction Industry), यातायात सेवाओ, दुकानो एव व्यापारिक सस्थाओ की कार्य करने की दशाओं का नियमन करने के लिये सन्नियम पास किया जाना था। ठेके पर कार्य करने वाले श्रमिको, कृषि श्रमिकों एव श्रमिको को यथासम्भव सुरक्षा देने हेतु उनकी समस्याओ का परीक्षण किया जाना था। ठेके के श्रम को समाप्त करने के लिये लिये कार्यवाही की जानी थी तथा इन्हें उन समस्त सुविधाओ का, जो कि अन्य प्रकार के श्रमिको को उपलब्ध हो, प्रबन्ध किया जाना था।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि-मजदूरो की समस्याओ पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। केवल न्यूनतम भृत्ति विधान को कृषि मजदूरो पर भी लागू कर दिया गया था। द्वितीय योजना मे कृषि श्रमिको को न्यूनतम भृत्ति सन्नियम के अनुसार निश्चित कराने के लिये राज्य सरकारो से कहा गया कि वे इस ओर ठोस कदम उठायें। वास्तव मे कृषि मजदूरो की समस्याओ का निवारण भूमि-सम्बन्धी प्रस्तावित सुधार होने पर ही हो सकता था।

स्त्री-श्रमिकों की रक्षा के लिए योजना मे प्रबन्ध किया गया था। खतरनाक कार्यों से सुरक्षा, प्रसूति सुविधाएँ (Maternity Benefits), बच्चों के खेलन आदि के लिये कारखानो मे स्थान, दूध पिलाने वाली स्त्रियो को बच्चो को दूध पिलाने के लिये भृत्तियुक्त अवकाश, प्रशिक्षण सुविधाएँ आदि का भी आयोजन किया गया था।

रोजगार—उद्योगो मे विवेकीकरण (Rationalization) किये जाने की व्यवस्था तब ही थी जबकि इसके द्वारा बेरोजगारी न होती हो। विवेकीकरण श्रमिको से सलाह करके, कार्य करने की दशाओ मे सुधार करके तथा विवेकीकरण द्वारा प्राप्त लाभ मे से श्रमिकों को भाग देने की गारण्टी के पश्चात् ही किया जाना था। केन्द्रीय सरकार को एक उच्च अधिकारी की नियुक्ति विवेकीकरण की योजनाओ को कार्यान्वित करने से उत्पन्न होने वाली समस्याओ के अध्ययन एव निवारणार्थ करनी थी।

औद्योगिक गृह निर्माण—द्वितीय योजना मे ४५ करोड रुपये का आयोजन १,२८,००० औद्योगिक श्रमिको के लिये औद्योगिक गृह निर्माण योजना के अन्तर्गत गृह-निर्माण हेतु किया गया था।

श्रम सम्बन्धी कार्यक्रम—द्वितीय योजना में श्रम एव श्रम-कल्याण के कार्यक्रमो के लिये २६ करोड रु० का (१८ करोड रु० केन्द्रीय सरकार तथा

११ करोड रु० राज्य सरकार द्वारा) आयोजन किया गया था। मुख्य-मुख्य कार्यक्रम इस प्रकार थे—

(१) प्रशिक्षण के १०,३०० स्थानो मे १६,७०० से वृद्धि करने का आयोजन किया गया था। प्रशिक्षण के काल एवं गुण (Quality) मे भी सुधार किया जाना था।

(२) निपुण (Skilled) श्रमिको के प्रशिक्षण के लिये भी कारखानो में प्रबन्ध किया जाना था। योजना के प्रथम वर्ष मे ४५० श्रमिक उम्मीदवारो को प्रशिक्षण की सुविधा का प्रबन्ध किया जाना था, जो योजना के अन्तिम वर्ष मे ५००० उम्मीदवार तक बढा दिये जाने थे।

(३) शिक्षको के प्रशिक्षणार्थ कोनी (मध्य प्रदेश) प्रशिक्षण केन्द्र के समान ही एक और केन्द्र स्थापित किया जाना था। कोनी के केन्द्र को भी किसी औद्योगिक क्षेत्र मे लाने का विचार था।

(४) रोजगार की सस्थाओ को १३० से बढा कर २५६ करने का आयोजन था। ये सस्थाएँ रोजगार सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्रित करेंगी, युवको को रोजगार एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी सलाह देंगी तथा रोजगार की तलाश करने वालो को व्यवसाय सम्बन्धी जानकारी प्रदान करेंगी।

(५) केन्द्रीय श्रम इन्स्टीट्यूट का विस्तार किया जाना था। इसमे औद्योगिक मनोविज्ञान तथा व्यवसायिक मनोविज्ञान के दो विभाग और स्थापित किये जाने थे।

(६) श्रमिको के शिक्षणार्थ एक चलचित्र-इकाई (Film Unit) की स्थापना की जानी थी।

(७) कर्मचारी राज्य बीमा योजना तथा प्राविधिक निधि योजना को समन्वित किया जाना था तथा इन योजनाओ के कार्य-क्षेत्र मे भी विस्तार किया जाना था।

(८) औद्योगिक-गृह निर्माण की व्यवस्था की गयी थी तथा इस हेतु ५० करोड रुपये का आयोजन किया गया था।

(९) निम्नलिखित पर्यवेक्षण द्वितीय योजनावधि मे किया जाना था—

(अ) अखिल भारतीय कृषि-श्रमिक पर्यवेक्षण।

(ब) विस्तृत वेतन गणना (Wage Census), तथा

(स) प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो पर श्रमिको के पारिवारिक बजट का पर्यवेक्षण।

कोय एवं व्यक्तिगत क्षेत्र की केन्द्रित योजनाओं की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं का अनुमान ६६२ करोड रु० लगाया गया।

द्वितीय योजना के प्रारम्भ से ही वस्तुओं के मूल्यों मे वृद्धि होना प्रारम्भ हो गया था तथा इन मूल्यों के आधार पर योजना के व्यय मे वृद्धि करने की आवश्यकता थी, परन्तु देश के आन्तरिक एवं विदेशी अर्थ-साधनो की कठिनाई के कारण राष्ट्रीय विकास परिषद् ने अपनी मई १९५८ मे हुई सभा मे निश्चित किया कि योजना का समस्त व्यय ४८०० करोड रु० ही रहना चाहिए। परन्तु साधनो का पुनः निर्धारण करने पर योजना के व्यय को दो भागो, भाग 'अ' तथा भाग 'ब' मे विभाजित कर दिया गया। भाग 'अ' पर ४५०० करोड रु० की राशि निर्धारित की गयी तथा इसमे कृषि-उत्पादन से प्रत्यक्ष रूपेण सम्बद्ध कार्यक्रम, केन्द्रित कार्यक्रम (Core Projects) तथा ऐसे कार्यक्रम, जो कि पूर्ण होने के समीप हो, को सम्मिलित किया गया। शेष सभी कार्यक्रम भाग 'ब' मे सम्मिलित किये गये जिनका कार्यान्वित करना साधनो की उपलब्धि पर निर्भर रहेगा। भाग 'अ' के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए भी कर एवं ऋण द्वारा अतिरिक्त अर्थ-साधनो का उपलब्ध होना आवश्यक था। विभिन्न मदो पर दोहराई गयी व्यय-राशियाँ निम्न प्रकार हैं—

तालिका स० ५६—द्वितीय योजना का दोहराया गया व्यय-अनुमान[1]

मद	दोहराया गया वित्तरण (करोड रु०) (योजना के समस्त व्यय ४८०० करोड रु० में कुछ योजनाओ की लागत की वृद्धि के अनुसार समायोजन करने के लिए)	समस्त व्यय से प्रतिशत — मौलिक	समस्त व्यय से प्रतिशत — दोहराया गया	योजना का भाग 'अ' (करोड रु०)	भाग 'अ' के समस्त व्यय से प्रतिशत
कृषि एवं सामुदायिक विकास	५६८	११·८	११ ८	५१०	११·३
सिचाई एवं शक्ति	८६०	१९·०	१७·९	८२०	१८·२

1. *India* 1960, p. 205.

द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षों में ३६१४ करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान है। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत यह व्यय इस प्रकार हुआ—

तालिका सं० ६०—द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षों का व्यय[1]

विकास मद	मूल्यांकन तथा सम्भावनाओं सम्बन्धी विवरण में की गयी व्यवस्था के अनुसार (करोड़ रु०)	१९५६-५७ वास्तविक (करोड़ रु०)	१९५७-५८ वास्तविक (करोड़ रु०)	१९५८-५९ वास्तविक (करोड़ रु०)	१९५९-६० संशोधित अनुमान (करोड़ रु०)	योग १९५६-६० तक (करोड़ रु०)	निर्धारित राशि से योग का प्रतिशत
कृषि तथा सामुदायिक विकास	५१०	९९	८६	१०९	१४७	४११	८०.६
सिंचाई एवं शक्ति	८२०	१६३	२६१	१६५	२०७	६९६	८४.९
ग्रामीण तथा लघु उद्योग	१६०	२९	३३	३८	४२	१४२	८८.८
उद्योग एवं खनिज	७९०	५३	१९४	२४१	२१२	७००	८८.६
यातायात एवं संचार	१३४०	२१७	२८७	२८४	२५२	१०४०	७७.६
सामाजिक सेवाएं	८१०	८८	१०७	१४४	२१०	५४८	६७.७
विविध	७०	१५	१७	२१	२५	७८	१११.४
योग	४५००	६३३	८८४	१,००१	१,०९५	३,६१४	८०.३

1. India 1961, p. 195

यद्यपि योजना के 'अ' भाग का परिव्यय ४,५०० करोड रु० था परन्तु सशोधित अनुमानो के अनुसार योजना का समस्त वास्तविक व्यय लगभग ४,६०० करोड रु० होने की सम्भावना थी। प्रस्तावित तृतीय पंचवर्षीय योजना के अनुमानानुसार द्वितीय योजना काल मे विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार व्यय होगा—

तालिका स० ६१—द्वितीय योजना का अनुमानित व्यय (१९५६-६१)

विकास मद	व्यय (करोड रु०)	योग से प्रतिशत
(१) कृषि एव लघु सिचाई योजनाएँ	३२०	६.९
(२) सामुदायिक विकास एव सहकारिता	२१०	४.६
(३) वृहद् एव मध्यम श्रेणी की सिचाई योजनाएँ	४५०	६ ८
(४) शक्ति	४१०	८.९
(५) ग्रामीण एव लघु उद्योग	१८०	३.९
(६) उद्योग एव खनिज	८८०	१९.१
(७) यातायात एव सचार	१,२९०	२८.१
(८) समाज सेवाएँ	८६०	१८.७
योग	४,६००	१००·०

योजना के प्रथम चार वर्षों मे अर्थ-साधनो की उपलब्धि निम्न प्रकार हुई—

तालिका स० ६२—द्वितीय योजना का अर्थ प्रबन्धन (१९५६-६०)[1]

	१९५६-५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	१९५९-६० सम्भावित	योग (सम्भावित)
योजना का परिव्यय	६३४	८८२	९९८	१००६	३२५०
आन्तरिक साधन	३३९	२९१	६४५	६०९	१८८४
विदेशी सहायता	४२	९५	२१७	२७०	६२४
विदेशी सहायता सहित समस्त साधन	३८१	३८६	८६२	८७९	२५०८
हीनार्थ प्रबन्धन	२५३	४९६	१३६	१२७	१०१२

योजना आयोग द्वारा प्रकाशित प्रस्तावित तृतीय योजना के अनुसार अर्थ-साधनो की उपलब्धि निम्न प्रकारेण होने की सम्भावना है—

1. *India* 1961, p. 195.

तालिका स० ६३—द्वितीय-योजना के अर्थ-साधनों की उपलब्धि का अनुमान (१९५६-६१)

(करोड रुपयो में)

माध्यम	प्राप्ति
१ वर्तमान कर के आधार पर प्राप्त आय	(—) १००
२. वर्त्तमान आधारो पर रेलो का अनुदान	१५०
३. अन्य शासकीय व्यवसायो से वर्तमान आधारो पर आधिक्य	.
४. जनता से ऋण	८००
५. लघु बचत	३८०
६. प्राविधिक निधि, सम्पन्नता कर,-इस्पात समानीकरण (Equalisation) निधि एव अन्य पूंजीगत प्राप्तियाँ	२१३
७. अतिरिक्त कर तथा शासकीय व्यवसायो से अतिरिक्त आय प्राप्त करने की कार्यवाहियाँ	१०००
८ विदेशी सहायता	९८२
९. हीनार्थ-प्रबन्धन	१,१७५
योग	४,६००

उपर्युक्त आंकडो से यह स्पष्ट है कि योजना काल म हीनार्थ-प्रबन्धन की राशि ११७५ करोड रु० निर्धारित की गयी है जबकि चार वर्षों के आंकडो से यह स्पष्ट है कि योजना के प्रथम चार वर्षों मे हीनार्थ-प्रबन्धन १०१२ करोड रु० के लगभग किया गया है। इस प्रकार योजना के अन्तिम वर्ष के लिये केवल ६३ करोड रु० हीनार्थ-प्रबन्धन का आयोजन किया जा सकता है। द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षों में से किसी वर्ष की हीनार्थ प्रबन्धन की राशि १७२ करोड रु० से कम नही है। १९६०-६१ मे योजना का समस्त सम्भावित व्यय ४६०० करोड रुपये की पूर्ति करन के लिये इस वर्ष योजना का व्यय लगभग ११०० करोड रुपया होगा। इतनी बडी राशि का प्रबन्ध करने के लिये अधिक हीनार्थ-प्रबन्धन की आवश्यकता पड सकती है। यद्यपि मूल्यो मे अधिक वृद्धि एवं रहन-सहन की लागत मे वृद्धि के अनुसार मजदूरी एवं वेतन म वृद्धि की मांग के आधार पर हीनार्थ-प्रबन्धन की राशि म वृद्धि करना उचित नहीं है। अभी तक हीनार्थ-प्रबन्धन द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभावो एव मुद्रा-स्फीति के दबाव को संचित पौण्ड पावने का उपयोग करके सीमित रखा जाता था। परन्तु अब भविष्य के हीनार्थ-प्रबन्धन की प्रत्येक इकाई का मूल्यो पर प्रभाव

पड सकता है। यदि खाद्यान्नो के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो जाय तथा इनके मूल्यों म कुछ कमी हो जाय तो हीनार्थ-प्रबन्धन की राशि मे वृद्धि की जा सकती है।

किसी भी योजना मे आयात की व्यवस्था के लिये निर्यात द्वारा अर्जित विदेशी विनिमय को उपयोग किया जा सकता है। निर्यात से होने वाली आय निर्यात की दृश्य वस्तुओ के अतिरिक्त अदृश्य मदो जैसे पर्यटन करने वाले यात्रियो (Tourist Traffic), अधिकोषण से आय, बीमा एव किराये की आय आदि से प्राप्त होती है। भारत म इसके अतिरिक्त पौण्ड पावने की राशि का उपयोग भी आयात के शोधनार्थ उपलब्ध था। योजना के प्रथम चार वर्षों मे विदेशी वित्तीय व्यवस्था निम्न प्रकारेण रही—

तालिका स० ६४—चालू शाधन-शेष (Current Balance of Payment)[1]

(करोड रु० मे)

	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५९ ६०	१९६०-६१ (अप्रेल से सितम्बर तक)
आयात (CIF)	१०९९ ५	१२३३ ६	१०२९ ६	९२३.७	५३८.७
शासकीय एव व्यक्तिगत निर्यात (FOB.)	६३५ २	५९४ ७	५७५.९	६२३.३	२९९.३
व्यापारिक शेष	—४६४.३	—६३९ ५	—४५३ ७	—३००.४	—२३९.४
शासकीय अशदान	३९ ५	३४ १	३४ ४	३५.६	२६.८
अन्य अदृश्य मद (शुद्ध)	११२ ५	१०४ ४	९१ ७	७८.१	३४ ८
चालू शेष (शुद्ध)	—३१२ ३	—५०१ ४	—६२७ ६	—१८० ८	—१७७.८

प्रतिकूल शोधन-शेष मे १९५८-५९ तथा १९५९-६० मे कमी हो गयी क्योकि आयात को कम करने के लिए प्रयास किये गये तथा विदेशी सहायता भी अधिक मात्रा मे उपलब्ध हुई। १९६०-६१ की प्रथम अर्द्ध वार्षिकी मे शोधन-

शेष की हीनता हुई है। निम्नलिखित तालिका से यह ज्ञात होता है कि चालू शोधन-शेष की कमी को किन-किन साधनो द्वारा पूरा किया गया।

तालिका स० ६५—शोधन-शेष की कमी की वित्तीय-व्यवस्था

(करोड रु० मे)

	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५९-६०	१९६०-६१ (अप्रैल से सितम्बरतक)
शासकीय ऋण (शुद्ध)	३० ७	११५ १	२१८ ६	१८५ ५	१८८ ३
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I.M.F) से निकाली गयी राशि	५४.७	३४ ५	—	२४ ०	—१० ५
अन्य पूंजीगत व्यवहार	४ ०	१०१ ७	८८.४	२४ ४	२६.४
संचित विदेशी विनिमय का उपयोग	२२१ ३	२५९ ९	४२.३	१६ १	५५ ०
अन्य भूल-चूक	१ ६	—९ ८	—२१.७	२१ २	—१४ ४
चालू शोधन-शेष की कमी	३१२ ३	५०१ ४	३२७ ६	१८० ८	१७७ ८

१९५८ ५९ वर्ष मे १९५७-५८ वर्ष की तुलना मे आयात मे १५७ करोड रु० की कमी हुई जबकि १९५७ ५८ में उससे पहले वर्ष की तुलना मे १०५ करोड रु० का अधिक आयात हुआ था। इस प्रकार १९५७-५८ मे आयात की राशि सर्वाधिक थी। १९५८-५९ मे आयात मे कमी होने का कारण आयात पर आरोपित प्रतिबन्ध थे। इन प्रतिबन्धो के कारण इस वर्ष मे व्यक्तिगत आयात मे कमी हुई। १९५९-६० का आयात ९२४ करोड रुपया, १९५८-५९ की तुलना मे १०६ करोड रुपया कम था और १९५७-५८ की तुलना मे ३१० करोड रुपया कम था। इस भारी कमी का मुख्य कारण शासकीय आयात की कमी था।

1. *India* 1961, p. 334.

दूसरी ओर निर्यात मे योजना काल मे निरन्तर कमी होती रही है। योजना के प्रथम तीन वर्षों के निर्यात मे कमी मुख्य रूपेण कच्चा मेंगनीज, जूट एव कपास की निर्मित वस्तुओ के निर्यात की कमी के कारण हुई। परन्तु १९५९-६० म इस स्थिति मे सुधार हुआ जिसके मुख्य कारण विदेशो की मदी की प्रवृत्ति को समाप्ति तथा निर्यात-प्रोत्साहन कार्यवाहियो का फल थे। इस वर्ष मे वनस्पति तेल तिलहन तथा सूती कपडे के निर्यात मे वृद्धि हुई।

कृषि

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे खाद्य समस्या के निवारणार्थ ठोस कार्यवाहियाँ की गयी थीं। द्वितीय योजना म भूमि-सुधार के कार्यक्रमो का अन्तिम उद्देश्य सहकारी ग्रामीण-व्यवस्था (Co-operative Village Management) की स्थापना करना था। सहकारी ग्रामीण व्यवस्था के तीन मुख्य लक्षण हैं।

(१) कृषक का भूमि पर अधिकार होना।

(२) कृषि कार्यों की इकाई एव प्रबन्ध की इकाई मे भेद रखना। इन दो लक्षणो के अनुसार यह सम्भव हो सकेगा कि सम्पूर्ण ग्राम को प्रबन्ध की दृष्टि से एक इकाई मान लिया जाय तथा कृषक के अधिकार मे रहने वाली भूमि को कृषि-कार्यों की इकाई माना जायगा। इस प्रकार कृषि के विभिन्न कार्यों म, जैसे अच्छे बीज का उपयोग, सामान्य क्रय विक्रय, जल का उपयोग, स्थानीय निर्माण-कार्य आदि म सहकारिता का उपयोग हो सकेगा।

(३) सहकारी-ग्रामीण-व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् भूमि को अधिकार मे रखन वाले एव भूमिहीन कृषको का अन्तर कम हो जायगा तथा ग्रामीण समुदाय के समस्त साधनो का, जो कि कृषि, व्यापार एव ग्रामीण उद्योगो से उपलब्ध होगे उपयोग, अधिकतम उत्पादन एव रोजगार के अवसर सहकारी क्रियायो द्वारा बढान के लिए किया जा सकेगा। इस प्रकार एक समन्वित आर्थिक एव सामाजिक ग्रामीण व्यवस्था का निर्माण हो सकेगा। इसम कृषि-उत्पादन, ग्रामीण उद्योग, विपणि व्यवस्था, ग्रामीण व्यापार आदि का सगठन सहकारिता के आधार पर हो सकता है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी ग्रामीण व्यवस्था की स्थापना तक के मध्य काल म भूमि का तीन प्रकार से प्रबन्ध करने की व्यवस्था की गयी थी। प्रथम व्यक्तिगत कृषक जो अपनी भूमि पर खती करेंगे। द्वितीय, कृषको के समूह अपनी भूमि को एकत्रित करके अपन हित एव इच्छा से सहकारिता के आधार पर कृषि कार्य करेंगे। तृतीय, कुछ भूमि सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय के सामान्य

अधिकार म होगी। इस प्रकार ग्रामो की भूमि व्यवस्था के तीन क्षेत्र व्यक्तिगत, सहकारी एव सामुदायिक हो जायेंगे। परन्तु इस समस्त व्यवस्था का अन्तिम उद्देश्य सहकारी क्षेत्र को विस्तृत करके ग्राम की समस्त भूमि का प्रबन्ध ग्रामीण समुदाय के सहकारी उत्तरदायित्व म करना होगा।

नागपुर प्रस्ताव एव नवीन भूमि-सम्बन्धी नीति

योजना के प्रारम्भ के अल्प समयोपरान्त ही यह मान लिया गया कि भारत जैसे अर्ध विकसित राष्ट्र का शीघ्र औद्योगीकरण करने के लिए एक समन्वित भूमि-नीति की आवश्यकता है जिससे कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो सके। इसी उद्देश्य को ध्यानस्थ कर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (A I C C) न अपने वार्षिक अधिवेशन, १९५९ म नवीन भूमि-सम्बन्धी नीति का प्रस्ताव पारित किया जिसम सहकारिता को ग्रामीण-व्यवस्था का आधार मान लिया गया। भूमि-सम्बन्धी इस नवीन नीति म पचायतो पर आधारित सामूहिक सहकारी कृषि का उद्देश्य रखा गया। सामूहिक सहकारी कृषि के पूर्व सेवा सहकारी (Service Cooperative) समितियो की स्थापना का आयोजन किया गया जिनके द्वारा अच्छा बीज, खाद, खेती के उपकरण, वैज्ञानिक परामर्श आदि का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रस्ताव के अनुसार राज्य सरकारो को भूमि की अधिकतम सीमा (Ceilings of Land) निश्चित करने के लिए विधान १९५९ के अन्त तक निर्मित करने थे। अधिकतम भूमि की सीमा निश्चित करने से जो भूमि का आधिक्य हो, वह ऐसी सहकारी समितियो को दिया जाना था जिनके भूमिहीन एव अधिकतम सीमा से कम भूमि वाले कृषक ही सदस्य हो। इस सम्पूर्ण व्यवस्था द्वारा सम्पूर्ण देश म एक ग्राम म एक सामूहिक सहकारी फार्म (Joint Cooperative Farm) की स्थापना का उद्देश्य था।

नागपुर प्रस्ताव द्वारा ग्रामीण-व्यवस्था का जो आयोजन किया गया है, उसके मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) ग्रामो की व्यवस्था पचायतो एव सहकारी समितियो के आधार पर होनी चाहिए। ग्रामो के समस्त स्थायी निवासियो को (उनके पास भूमि हो अथवा नहीं) ग्रामीण सहकारी समितियों का सदस्य बनाया जा सकता था। ये सहकारी समितियाँ अपने सदस्यो के हितार्थ कृषि की वैज्ञानिक विधियो का प्रचलन करेंगी, साख की सुविधाओ का प्रबन्ध करेंगी, कृषको व कृषि उत्पादन को एकत्र करके उसके विक्रय का प्रबन्ध करेंगी तथा गोदाम की सुविधाएँ प्रदान करेंगी।

(२) भविष्य म सामूहिक सहकारी खेती की व्यवस्था की जायगी जिसम

भूमि को कृषि के लिए एकत्रित कर लिया जायगा परन्तु कृषको का भूमि पर अधिकार अक्षुण्ण (जैसे का तैसा) रहेगा तथा उन्हे भूमि के शुद्ध उत्पादन मे से भूमि के अधिकार के आधार पर भाग दिया जायगा। जो भूमि पर कार्य करेंगे, उन्हे कार्यानुसार पारिश्रमिक दिया जायगा।

(३) सामूहिक सहकारी फार्मो की स्थापना के पूर्व देश भर मे तीन वर्षो मे सेवा-सहकारो (Service Cooperatives) की स्थापना की जायगी।

(४) अधिकतम अधिकार मे रहने वाली भूमि की सीमा निश्चित करने के लिए राज्यो म विधान पास किये जायेंगे। समस्त भूमि का आधिक्य (Surplus) पचायतो के अधिकार मे होगा जिसका प्रबन्ध सहकारी समितियो द्वारा किया जायगा।

(५) फसल के बोने से पूर्व ही फसल से उत्पादित वस्तुओ का न्यूनतम मूल्य निश्चित कर दिया जायगा तथा आवश्यकता पडने पर निर्धारित मूल्य पर फसल को क्रय करने का प्रबन्ध किया जायगा।

(६) राज्य खाद्यान्नो का व्यापार अपने हाथ म ले लेगा।

(७) बेकार पडी एव कृषि उपयोग म न आने वाली भूमि का कृषि हेतु उपयोग करन के लिए प्रयत्न किये जायेंगे।

इस प्रकार कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करन के लिए भूमि-सुधार सम्बन्धी कार्यवाहियो को द्वितीय योजना मे कार्यान्वित किया जाना था। द्वितीय योजना काल मे लगभग समस्त राज्यो मे वर्तमान एव भविष्य मे अधिकतम अधिकार मे रहने वाली भूमि की सीमा निश्चित करने हेतु विधान बना दिये गये हैं। यह अधिकतम भूमि की सीमा विभिन्न क्षेत्रो की भूमि के प्रकार के अनुसार निर्धारित की गयी है। इसके अतिरिक्त भूमि के एकीकरण (Consolidation of Holdings) का कार्य २३० लाख एकड भूमि पर ३१ मार्च १९६० तक पूर्ण हो चुका था तथा १३२ लाख एकड कार्य अभी जारी था। द्वितीय पचवर्षीय योजना म सहकारी कृषि को ठोस एव दृढ आधार प्रदान करन क लिये कार्यवाहियाँ की गयीं। ११ जून १९५९ को एक Working Group की स्थापना की गयी। इसे ऐसे कार्यक्रम निर्धारित करने थे जिसस एच्छिक रूप से सहकारी कृषि समितियो की स्थापना होने पर उन्हे वित्तीय, तात्रिक एव अन्य सहायता प्रदान की जा सके। इस ग्रुप की रिपोर्ट १५ फरवरी १९६० को प्रकाशित की गयी जिसम सहकारी कृषि समितियो की स्थापना के लिये आवश्यक कार्यवाहियाँ अंकित की गयीं। इस ग्रुप की अधिकतर सिफारिशो को राष्ट्रीय विकास परिषद् ने सितम्बर १९६० मे स्वीकार कर लिया और इन्हें समस्त राज्यो के पास मार्ग-दर्शन के लिये भेज

दिया। इन्हीं के आधार पर सहकारी कृषि सम्बन्धी नीतियाँ, इनका संगठन, प्रबन्ध एवं वित्तीय सहायता आदि निर्धारित की जानी थी। जून १९६० मे देश मे ५४०६ सहकारी कृषि समितियाँ थी जिनम से २९३४ अच्छी कृषि एव रैयत कृषि (Better Farming & Tenant Farming) समितियाँ थीं। अच्छी एव रैयत कृषि समितिया म भूमि के एकत्रीकरण (Pooling) तथा सयुक्त प्रबन्ध का आयोजन नहीं होता है और इसलिए इन्हे वास्तविक रूप से कृषि सहकारी समितियाँ नही कहा जाता है। शेष समितियो म से १५९७ सयुक्त कृषि सहकारी (Joint Farming) एव ८७८ सामूहिक कृषि सहकारी (Collecting Farming) समितियाँ थी।

द्वितीय योजना का प्रथम चार वर्षों मे कृषि उत्पादन म निम्न प्रकार प्रगति हुई—

तालिका स० ६६—द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षों मे कृषि प्रगति

कृषि-उत्पादन	इकाई	१९५६ ५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	१९५९ ६०
खाद्यान्न	लाख टन	६८७	६२५	७५५	७१७ ५
कपास	लाख गाँठ	४७ ०७	४७ ३९	४६ ८६	३८ ४
जूट	,	४२ ८९	४० ५२	५१ ५८	४५ ५
गन्ना	गुड लाख टन	६८	६९	७२	७६ ७
तिलहन	लाख टन	६१ ७६	६० ५१	६९ २१	६३ ५

तालिका स० ६७—कृषि उत्पादन के निर्देशाक (Index No) की प्रगति

(१९४९ ५० = १००)

कृषि उत्पादन	१९५६ ५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	१९५९ ६०
खाद्यान्न	१२० ८	१०७·९	१३० १	१२४ ३
तिलहन	१२० ३	११५ ६	१३३ ४	१२२ ५
रेशदार फसलें	१७० ७	१६५ ५	१७५·०	१४५ २
पोधवाली फसलें	११५ ०	१२१ ८	१३० ०	१३१ १
अन्य (गन्ना, तम्बाकू आदि)	१२६ २	१२६ १	१२९ ०	१३६ ९
सामान्य कृषि निर्देशाक	१२४ ०	११४ ६	१३२ ३	१२७ २

उपर्युक्त आँकडो से यह स्पष्ट है कि द्वितीय योजना की कृषि-उत्पत्ति के सशोधित लक्ष्यो की पूर्ति होने की सम्भावना नहीं है। जूट और गन्ना को छोडकर अन्य समस्त वस्तुओ के उत्पादन लक्ष्यो के अनुसार उत्पादन मे वृद्धि नहीं हो रही है। इसका मुख्य कारण योजना काल में जलवायु की प्रतिकूलता है।

द्वितीय योजना के अन्त तक सामुदायिक विकास के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति होने का अनुमान है। यह सम्भावना की जाती है कि इस योजना के अन्त तक सामुदायिक विकास कार्यक्रम ३१०० खण्डो जिनमे चार लाख ग्राम हैं, मे लागू हो गया है। इनमे से १००० खण्डो मे पचवर्षीय कार्यक्रम पूर्ण हो गये हैं और यह द्वितीय अवस्था में प्रवेश कर गये हैं जबकि शेष खण्ड अभी प्रथम अवस्था मे हैं। इसके अतिरिक्त ५०० विकास खण्डो मे विकास के पूर्व की कार्यवाहियाँ जारी है।

औद्योगिक उत्पादन

द्वितीय योजना के प्रथम तीन वर्षो मे औद्योगिक उत्पादन मे निम्न प्रकार प्रगति हुई—

तालिका स० ६८-द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षो मे औद्योगिक प्रगति

औद्योगिक उत्पादन	इकाई	१९५७	१९५८	१९५९	१९६०
तैयार इस्पात	लाख टन	१३ ४६	१३ ००	१७ ११	२२ १५
पिण्ड लौह	,, ,	१७ ८९	२० ०३	३१·३०	४१ ६२
मोटर गाडियाँ	सख्या	३१,९३२	२६,७९६	३६,४६८	५०,१२४
सीमेंट	लाख टन	५६ ०२	६० ६८	६८ १४	७७·०
सूती वस्त्र	लाख गज	५३ १७४	४९,२७०	४९,२५४	५०,४४०
शक्कर	लाख टन	२० ०८	२० ०६	२०·८४	२४ २९
जूट निर्मित वस्तुएं	,, ,,	१०·३०	१०·६२	१० ५२	१०·६७
कागज एव कागज का पट्ठा	हजार टन	२१०	२५३	२९४	३४०
कोयला	लाख टन	४३५	४५३	४७०	५१३
चाय	हजार पौंड	६८५,१३७	७,११,३००	६,९५,७००	६९६०००

तालिका स० ६९—द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षों मे औद्योगिक निर्देशाको की प्रगति

(१९५१ = १००)

औद्योगिक वस्तु	१९५६	१९५७	१९५८	१९५९
सूती वस्त्र	११७ ५	११५·६	१०८ ९	१०३·१
जूट निर्मित वस्तुएं	१२७·३	१२० ५	१२३ ९	१४२ २
लोहा एव इस्पात	११९ ४	११९·३	११९ १	१६१·३
अलोह धातु	१२४·७	१५१ ७	१६६·५	२१२·२
सामान्य निर्देशाक	१३२ ६	१३७ ३	१३९७	१५१·९

सन् १६५८ वर्ष मे औद्योगिक-उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि नही हुई जिसके तीन मुख्य कारण हैं। प्रथम, विदेशी विनिमय की कठिनाई के कारण आयात पर अधिकतम प्रतिबन्ध लगाये गये तथा आवश्यक कच्चे माल एव औजार आदि का भी आयात आवश्यकतानुसार नहीं किया जा सका जिससे औद्योगिक उत्पादन को क्षति पहुँची। औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि न होने का द्वितीय कारण कृषि-उत्पादन की कमी भी थी। सन् १६५८ वर्ष म मानसून की प्रतिकूलता के कारण कृषि-उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई और इस प्रकार जन-समुदाय के कृषि पर निर्भर रहने वाले अधिकतर भाग की आय मे कमी रहने के कारण कतिपय वस्तुओ, विशेषत सूती वस्त्रो की माँग मे कमी रही। औद्योगिक उत्पादन की कमी का तृतीय कारण शासन की तटकर नीति तथा जीवन-बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण भी समझा जाता है। सन् १६५६ वर्ष मे विदेशी सहायता प्राप्त होने के कारण आयात के प्रतिबन्धो को कम कर दिया गया तथा इस वर्ष कृषि उत्पादन मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। सन् १६५६ वर्ष मे औद्योगिक उत्पादन-निर्देशाक मे लगभग १२ बिन्दुओ (Points) की वृद्धि हुई, जबकि इससे गत तीन वर्षो मे यह वृद्धि क्रमश २ ४, ४·७ तथा १०४ बिन्दु हुई। सन् १६६० मे भी औद्योगिक उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। सन् १६६० का औद्योगिक उत्पादन का सामान्य निर्देशाक (जनवरी से अक्टूबर तक) १६७·५ होने का अनुमान है जबकि इसी काल का सन् १६५६ का यह निर्देशाक १४६·६ था। इससे ज्ञात होता है कि सन् १६६० वर्ष मे औद्योगिक उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

योजना आयोग द्वारा योजना की प्रगति पर जो आलोचना प्रकाशित की गयी है, उससे ज्ञात होता है कि योजना के अन्त तक तैयार इस्पात उत्पादन २६ लाख टन, कोयले का उत्पादन ५३० लाख टन होगा, जबकि इनके लक्ष्य क्रमश ४५ लाख टन व ६०० लाख टन थे।

द्वितीय योजना काल मे १०६४ करोड रु० सगठित उद्योगो मे नवीन विनियोजन का आयोजन किया गया था जिसमे से ५२४ करोड शासकीय क्षेत्र मे (राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा विनियोजित की जाने वाली ३५ करोड रु० की राशि के अतिरिक्त) तथा ५३५ करोड व्यक्तिगत क्षेत्र मे नवीन विनियोजन का लक्ष्य था। १०६४ करोड रु० की नवीन विनियोजन की राशि का विभिन्न उद्योगो पर विनियोजन निम्न प्रकार किया जायगा—

तालिका सं० ७०—द्वितीय योजना काल में औद्योगिक क्षेत्र के नवीन विनियोजन

उद्योग	राशि (करोड रु० में)	समस्त नवीन विनियोजन से प्रतिशत
धातु शोधन उद्योग	५०२'५	४५'६
इन्जीनियरिंग उद्योग	१५०'०	१३७
रासायनिक उद्योग	१३२'०	१२'०
सीमेंट एव पोरसिलिनि का सामान	६३०	८'५
पैट्रोल, खनिज तेल आदि	१००	०६
कागज, समाचार पत्रीय कागज आदि	५४०	५'०
शक्कर	५१०	४'७
सूती, ऊनी, रेशमी तथा जूट का सूत एवं वस्त्र	३६.३	३३
नकली रेशम (Rayon) तथा रेशेदार सूत आदि	२४०	२२
अन्य	४१५	३८
योग	१,०६४'३	१००'०

द्वितीय योजना की कुछ महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं का विकास एव प्रगति पूर्व निश्चित लक्ष्यो से प्राय अधिक हुई है। इन परियोजनाओं की प्रगति का व्यौरा तालिका स० ७१ के अनुसार है।

राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय

द्वितीय पंचवर्षीय योजना प्रथम तीन वर्षों मे राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय मे निम्न प्रकार प्रगति हुई—

तालिका स० ७२—द्वितीय योजना के प्रथम चार वर्षों मे राष्ट्रीय एवं प्रति-व्यक्ति आय

वर्ष	राष्ट्रीय आय, प्रचलित मूल्यो पर (करोड रु०)	१६४८-४६ के मूल्यो पर (करोड रु०)	प्रति व्यक्ति आय प्रचलित मूल्यो पर	१६४८-४६ के मूल्यो पर रु०
१६५५-५६	६,६८०	१०,४८०	२६०'६	२७३ ६
१६५६-५७	११,३१०	११,०००	२६१ ५	२८३ ५
१६५७-५८	११,४००	१०,८६०	२६० १	२७ ७१
१६५८-५६	१२,४७०	११,६६०	३१५	२६३ ६
१६५६-६०	——	११,७५०	——	२६१ ३

तालिका सं० ७३—द्वितीय योजना के प्रथम तीन वर्षों मे विभिन्न व्यवसायो से प्राप्त राष्ट्रीय आय

व्यवसाय	१९५६ ५७		१९५७ ५८		१९५८-५९	
	आय (करोड रु० में)	राष्ट्रीय आय से प्रतिशत	आय (करोड रु० मे)	राष्ट्रीय आय से प्रतिशत	आय (करोड रु० मे)	राष्ट्रीय आय से प्रतिशत
कृषि	५,५२०	४८ ८	५,१९०	४६ ४	६१९०	४९ ६
खनिज, निर्माण एवं लघु इकाइयाँ	२,०००	१७ ७	२१२०	१८ ६	२१४०	१७ २
वाणिज्य, यातायात एवं संचार आदि	१,९६०	१७ ३	२०७०	१८·२	२११०	१६ ९
अन्य सेवाएं	१,८२०	१६ १	१९३०	१६ ९	२०४०	१६·४
विदेशो से उपार्जित आय	१०	१	—१०	—	—१०	—
योग	११,३१०	१००·०	११·४००	१००	१२४७०	१००

मूल्य-वृद्धि का मुख्य कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि है। १९५७, १९५८, १९५९ तथा १९६० में क्रमश गत वर्ष की तुलना म ९९.२, ७५० १७१.७ तथा २१८८ करोड रु० से मुद्रा की पूर्ति म वृद्धि हुई।

द्वितीय योजना काल मे ८० लाख रोजगार अवसर कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र म बढ़ान का लक्ष्य था, जबकि वर्त्तमान अनुमानानुसार ६५ लाख रोजगार के अवसरो म कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र मे तथा १५ लाख कृषि-क्षेत्र म वृद्धि होने का अनुमान है। योजना काल के अन्त म लगभग ७० से ७५ लाख व्यक्ति बेरोजगार रहेंगे।

थोक मूल्यो के अतिरिक्त उपभोक्ता मूल्य निर्देशाक म भी योजना काल म अनुमान स अधिक वृद्धि हुई जैसाकि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

तालिकास० ७५—उपभोक्ता मूल्य निर्देशाक (आधार १९४९ ५० = १००)

१९५५-५६	९६
१९५६ ५७	१०७
१९५७ ५८	११२
१९५८ ५९	११८
१९५९ ६०	१२३
दिसम्बर १९६०	१२४ (सामयिक)

योजना के प्रथम चार वर्षों मे थोक मूल्य निर्देशाक मे लगभग २७% तथा उपभोक्ता मूल्य निर्देशाक म लगभग २८ % की वृद्धि हुई है और मूल्यो की वृद्धि अब भी जारी है। राष्ट्रीय आय एव प्रति व्यक्ति आय की तुलना म मूल्यो की वृद्धि बहुत अधिक है। ऐसी परिस्थिति म यह कहना अनुचित न होगा कि सामान्य नागरिक के जीवन म कोई विशेष वृद्धि सम्भव नही हो सकी है। *योजना के कार्यक्रम का अधिकतर लाभ कुछ ही वर्गों को अधिक प्राप्त हुआ है।*

द्वितीय पचवर्षीय योजना में वर्त्तमान अनुमानानुसार ४,६०० करोड रु० शासकीय व्यय तथा ३,६५० करोड रु० शासकीय विनियोजन एव ३,१०० करोड रु० व्यक्तिगत विनियोजन होने की सम्भावना है। १९६०-६१ वर्ष तक योजना के विभिन्न लक्ष्यो की प्राप्ति निम्न प्रकार सम्भावित है—

तालिका सं० ७६—योजना के अन्त तक विभिन्न लक्ष्यों की सम्भावित प्राप्ति

मद	इकाई	१९६०-६१ का लक्ष्य	१९६०-६१ तक सम्भावित प्रगति	लक्ष्यो तथा प्रगति का प्रतिशत
खाद्यान्न	लाख टन	८०५	७५०	९३.२
तिलहन	,, ,,	७६	७२	९४.७
गन्ना	गुड लाख टन	७८	७२	९२.३
कपास	लाख गाँठ	६५	५४	८३.१
जूट	,, ,,	५५	५५	१००.०
सिंचित भूमि	लाख एकड	८८०	७००	७९.६
तैयार इस्पात	लाख टन	४३	२६	६०.५
अल्यूम्यूनियम	हजार टन	२५	१७	६८.०
सीमेंट	लाख टन	१३०	८८	६७.७
कोयला	,, ,,	६००	५३०	८८.३
कच्चा लोहा	,, ,,	१२५	१२०	९७.६
सूती वस्त्र	लाख गज	८५,०००	५०,०००	६५.८
शक्कर	लाख टन	२३	२२.५	९८.०
कागज एव पट्ठा	हजार टन	३५०	३२०	९१.५
मोटर गाडियाँ	सख्या	५७,०००	५३,५००	९३.९
शक्ति-उत्पादन क्षमता	लाख कि० (K W.)	६९	५८	८४.१
रेलो द्वारा ले जाया गया माल	लाख टन	१,८१०	१,६२०	८९.५
सडकें चौरस	हजार मील	१२५	१४४	११५.२
जहाजी यातायात	लाख ग्रा० टन	९.०	९०	१००.०
डाकखाने	हजार	७५	७५	१००.०
प्रारम्भिक बेसिक स्कूल	लाख	३ ५०	३.८०	१०९ ६

उपर्युक्त आँकडो से यह स्पष्ट है कि द्वितीय योजना के अधिकाश लक्ष्य पूर्ण न हो सकेंगे। यद्यपि उत्पादन एव अन्य समस्त क्षेत्रो मे प्रगति हुई है, तथापि निर्धारित लक्ष्यो की तुलना मे यह प्रगति कम है।

प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना का तुलनात्मक अध्ययन

प्रथम योजना के निर्माण के समय जो न्यूनता का वातावरण उपस्थित था, उसमे द्वितीय योजना के निर्माण के समय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये थे। प्रथम योजना मे अर्थ-क्षेत्र की अव्यवस्था, जो कि देश-विभाजन एवं द्वितीय महायुद्ध का परिणाम थी, मे समायोजन करके अर्थ-व्यवस्था को इस स्तर पर लाने का प्रयत्न किया गया कि जिससे राष्ट्र विकास-पथ पर अग्रसर हो सके। इस प्रकार प्रथम योजना छिन्न-भिन्न पृष्ठ-भूमि मे संचालित की गयी, जिसमे विकास के अभिलाषी कार्यक्रमो को स्थान नही दिया जा सकता था। इसके साथ ही प्रथम योजना मे सरकार को योजना का प्रकार निश्चित करना था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जनता की माँगें अत्यधिक थी तथा साधनो की अत्यन्त कमी थी, और इसलिए नियोजन की नीतियां भी निर्धारित करना आवश्यक था। प्रथम योजना मे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो को मान्यता दी गयी, इसलिए जनता को दबाव द्वारा त्याग करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता था। उनको धीरे-धीरे योजना की सफलता तथा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाने के लिए उनके त्याग के महत्त्व को समझा कर साधनो को एकत्रित किया जा सकता था।

द्वितीय योजना के प्रारम्भ के समय वातावरण सर्वथा भिन्न हो गया था। प्रथम योजना के पाँच वर्षों मे अर्थ-व्यवस्था म पर्याप्त समायोजन हो चुके थे; उदाहरणार्थ पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियो के पुनर्वास की व्यवस्था, खाद्यान्नो की पूर्ति मे वृद्धि, सामान्य उत्पादन मे वृद्धि आदि के लिए पर्याप्त कार्यवाहियाँ की जा चुकी थी। दीर्घकालीन समस्याएँ, जैसे भूमि-सुधार, अवसर तथा आय की समानता की व्यवस्था, सिंचाई के साधनो मे वृद्धि आदि की ओर पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। इसके साथ ही जन-समुदाय मे योजना के प्रति जाग्रति भी उत्पन्न हो गयी थी। योजना के कार्यक्रमो मे जन-समुदाय का सहयोग प्राप्त होने लगा तथा जनता द्वारा योजना के कार्यक्रमो को सफल बनाने के लिए अधिक आशाएँ की जाने लगी थीं।

आन्तरिक वातावरण के साथ-साथ विदेशी वातावरण मे भी अन्तर हो गया। प्रथम योजना मे भारत की तटस्थता की नीति तथा प्रजातान्त्रिक नियोजन दोनो को ही अन्य देशो द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। प्रथम योजना की सफलताओ ने ससार के बडे-बडे राष्ट्रो मे भारत की नीतियो के प्रति सद्‌भावना उत्पन्न करने मे सहयोग दिया। विदेशी सहायता पर अब अधिक निर्भर रहा जा सकता था। प्रथम योजना की सफलता से यह भी सिद्ध हो गया कि प्रजातान्त्रिक नियोजन मे व्यक्तिगत तथा शासकीय दोनो क्षेत्र

सफलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं। इसलिए पूंजीवादी देशों मे पूंजीपति एव उद्योगपतियो ने भारत के विकास-कार्यक्रमो मे अर्थ-विनियोजन करने के भय को छोड दिया। इस प्रकार विदेशी वातावरण मे परिवर्तन होने के कारण द्वितीय योजना के कार्यक्रमो को अधिक अभिलाषी रखा जा सकता था। प्रथम तथा द्वितीय योजना के कार्यक्रमो मे मुख्य अन्तर निम्न प्रकार है—

(१) प्रथम योजना को मुख्यत ग्रामीण विकास के कार्यक्रम की सज्ञा प्रदान की जा सकती है क्योकि इसके शासकीय व्यय के ४४% भाग को ग्रामीण एव कृषि-विकास के हेतु निर्धारित किया गया था। द्वितीय योजना मे शीघ्र औद्योगीकरण को विशेष एव अधिक महत्त्व दिया गया। इसमे कृषि-विकास पर लगभग २९% राशि व्यय की जानी है एवं औद्योगिक विकास के लिए १७% राशि निर्धारित की गयी है जबकि प्रथम योजना मे यह राशि केवल ९% थी। प्रथम योजना मे औद्योगिक क्षेत्र मे नवीन विनियोजन को विशेष स्थान प्रदान नही किया गया था, प्रत्युत् नवीनीकरण एव तत्कालीन उत्पादन-क्षमता के पूर्णतम उपयोग पर जोर दिया गया था। द्वितीय योजना मे इसके विपरीत नवीन विनियोजन के लिए अधिक राशि निर्धारित की गयी है। आधार-भूत उद्योगो, उदाहरणार्थ,लोहा एवं इस्पात, भारी रसायन, खाद आदि के नवीन कारखाने स्थापित करने का आयोजन किया गया। इस प्रकार द्वितीय योजना द्वारा भारत की अर्थ-व्यवस्था को औद्योगिक आधार (Industrial Base) प्रदान करने का प्रयास किया गया। इसलिए औद्योगिक विकास हेतु निर्धारित राशि का लगभग ८०% भाग पूंजीगत एव उत्पादक वस्तुओं के उद्योगो पर व्यय किये जाने का लक्ष्य था।

(२) प्रथम योजना मे विभाजन एव द्वितीय महायुद्ध द्वारा उत्पादित न्यूनताओ के, जिनमे कृषि-उत्पादन की न्यूनतायें अत्यन्त गम्भीर थी, के निवारण का प्रयत्न किया गया था। अत इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे—उत्पादन मे वृद्धि एव असमानताओ मे कमी। इस प्रकार इस योजना मे संगठन एव व्यवस्था सम्बन्धी परिवर्तनो को विशेष महत्त्व नही दिया गया। द्वितीय योजना के चार मुख्य उद्देश्य थे—राष्ट्रीय आय मे २५% की वृद्धि, शीघ्र औद्योगीकरण, रोजगार के अवसरो मे वृद्धि तथा असमानताओ मे कमी। इस प्रकार शीघ्र औद्योगीकरण एव रोजगार की व्यवस्था को भी योजना के मूलभूत उद्देश्यो मे स्थान दिया गया।

(३) प्रथम योजना के कार्यक्रम निश्चित करते समय अर्थ-प्रबधन पर विशेष जोर दिया गया अर्थात् पहिले उपलब्ध साधनो का अनुमान लगाया गया तथा तदनुसार योजना के कार्यक्रमो को निश्चित किया गया। कर, बचत तथा हीनार्थ

प्रबन्धन द्वारा प्राप्त होने वाले अर्थ के अनुमान अत्यन्त कम रखे गये। इसलिए योजना के लक्ष्य भी कम ही रख गये। द्वितीय योजना के कार्यक्रम विस्तृत रखे गये हैं तथा इसको वास्तव म विकास योजना कहा जाता है। इसम लक्ष्यों को लगभग दुगुना कर दिया गया। राष्ट्रीय आय म २५% वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया, जबकि प्रथम योजना मे यह लक्ष्य केवल १३% था। इस योजना मे शासकीय क्षेत्र के व्यय को भी दुगुना कर दिया गया, अर्थात २,३७८ करोड रुपये से बढा कर ४,८०० करोड रुपये कर दिया गया। इसी प्रकार विनियोजन की राशि भी दुगुनी करने का लक्ष्य रखा गया अर्थात् प्रथम योजना की ३,१०० करोड रुपय की विनियोजन-राशि की तुलना म द्वितीय योजना की विनियोजन राशि ६ २०० करोड रुपये यानी दुगुनी थी।

(४) प्रथम योजना म रोजगार के अवसर बढान के लिए कोई विशेष कार्यक्रम निश्चित नही किये गये थे। इस योजना काल म ४० लाख रोजगार के अवसरो म वृद्धि हुई। द्वितीय योजना मे रोजगार के अवसर बढाने का लक्ष्य रखा गया। इसलिए ग्रामीण तथा लघु उद्योगो के विकास हेतु १३० करोड रुपय का आयोजन किया गया। द्वितीय योजना म ८० लाख रोजगार के अवसर कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो म तथा १६ लाख रोजगार के अवसर कृषि क्षेत्र म बढान का निश्चय किया गया।

(५) प्रथम योजना म जनता की कठिनाइयो का विशेष ध्यान रखा गया था और इसलिए उपभोग की वस्तुओ म अधिक कमी को रोकने के लिए राष्ट्रीय आय के ६% भाग के विनियोजन का लक्ष्य रखा गया। द्वितीय योजना मे इस लक्ष्य को भी दुगुना अर्थात् ११% कर दिया था जिससे औद्योगिक क्षेत्र का पर्याप्त विकास हो सके। कुछ अर्थशास्त्रियो का मत है कि यदि देश की राष्ट्रीय आय का १०% भाग विनियोजित होता हो तो उस देश की अर्थ-व्यवस्था स्वत -विकास अवस्था (Take off Stage) म कही जा सकती है। परन्तु भारत की राष्ट्रीय आय के साथ प्रति व्यक्ति आय भी अत्यन्त कम है अत राष्ट्रीय आय के इतने कम भाग से स्वत विकास अवस्था की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है।

(६) प्रथम योजना म केवल अर्थ-व्यवस्था एव सामाजिक व्यवस्था मे इस प्रकार समायोजन करने का लक्ष्य था, जिसम योजना के कार्यक्रम समायोजित व्यवस्था हेतु सहायक सिद्ध हो। द्वितीय योजना में समाजवादी प्रकार के समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा गया तथा इस हेतु सामाजिक ढांचे मे परिवर्तन

करना भी आवश्यक समझा गया। एतदर्थ, शासकीय क्षेत्र के विस्तार को विशेष महत्व दिया गया। ग्रामीण क्षेत्र म भी सहकारिता को आधार मान लिया गया तथा ग्रामीण, आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था को सहकारिता के आधार पर पुर्ननिर्मित करन का लक्ष्य रखा गया।

इस प्रकार द्वितीय योजना द्वारा देश के आर्थिक एव सामाजिक प्रारूप म आमूल परिवर्तन करन का उद्देश्य था।

———

अध्याय १८

तृतीय पंचवर्षीय योजना

[स्वय-स्फूर्त अवस्था, स्वय-स्फूर्त विकास की आवश्यक शर्ते, भारत मे स्वय-स्फूर्त विकास, तृतीय योजना के उद्देश्य, तृतीय योजना का व्यय, विनियोजन एव प्राथमिकताएँ, तृतीय योजना के कार्यक्रम एव लक्ष्य—कृषि एव सामुदायिक विकास, सिचाई एव शक्ति, उद्योग एव खनिज, वृहद उद्योग, सरकारी क्षेत्र की परियोजनाये, खनिज विकास, यातायात एव सचार, रेल यातायात, सडक यातायात, जहाजी यातायात, हवाई यातायात, सचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, अन्य मदे, तृतीय योजना के अर्थ साधन—चालू आय से बचत, रेलो से अनुदान, सरकारी व्यवसायो का आधिक्य, जनता से ऋण, लघु बचत, प्राविधिक निधि आदि, विदेशी सहायता, हीनार्थ-प्रबधन, तृतीय योजना मे विदेशी विनिमय की आवश्यकता एव साधन, सतुलित क्षेत्रीय विकास, तृतीय योजना की आधारभूत नीतियाँ—समाजवादी समाज, रोजगार नीति एव कार्यक्रम, मूल्य-नियमन नीति, श्रम नीति, विनियोजन का प्रकार, तृतीय योजना की सफलतार्थ *आवश्यक परिस्थितियाँ।*

स्वय-स्फूर्त अवस्था (Take off Stage)

आर्थिक विकास एक ऐसी विधि है जो कि दीर्घकालीन प्रयासो द्वारा उच्चतम सीमा तक पहुँचने के लिये विभिन्न अवस्थाओ से होकर अन्तिम स्वरूप ग्रहण करती है। वास्तव में आर्थिक विकास का अन्तिम स्वरूप निश्चित करना

असम्भव है क्योकि जिन परिस्थितियो को वर्तमान में उच्चतम आर्थिक विकास की सज्ञा दी जा सकती है, भविष्य में व ही परिस्थितियाँ सामान्य विकास के लक्षण प्रतीत होन लगती हैं। इस प्रकार आर्थिक विकास एक ऐसी गतिशील अवस्था है जिसके लक्षणा में सदैव परिवतन होते रहन के कारण वह कभी पूर्ण नहीं होनी। प्रोफसर रोस्तोव (Rostow) न आर्थिक विकास की पाँच अवस्थाए निम्न प्रकार बतायी हैं--

(१) परम्परागत समाज (Traditional Society)

(२) स्वय स्फूत अवस्था के पूव की स्थिति (Pre conditions for Take off stage)

(३) स्वय-स्फूत विकास अवस्था (Take off stage or self-sustained growth)

(४) परिपक्वता की ओर अग्रसर (Drive to Maturity)

(५) अधिक उपभोग की अवस्था (Age of high mass consumption)

प्रोफसर रास्तोव न उन तिथियो को अकित किया है जबकि विभिन्न विकसित राष्ट्रो की अर्थ-व्यवस्था न इन विभिन अवस्थाओ मे प्रवेश किया। इस सूची मे भारत को १९५२ म स्वय-स्फूत विकास अवस्था म प्रविष्ट बताया गया है। परन्तु भारतीय अथशास्त्री इस विचारधारा से सामान्यत सहमत नहीं हैं। प्रोफसर रास्तोव न स्वय स्फूत विकास (Take off Stage) की परिभाषा देते हुए कहा है कि यह वह मध्य काल है जिसम विनियोजन की दर इस प्रकार बढनी है कि वास्तविक प्रति इकाई उत्पादन म वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार प्रारम्भिक विनियोजन वृद्धि से उत्पादन की तान्त्रिकताओ तथा राष्ट्रीय आय के प्रवाह म मौलिक परिवतन हो जाते है। इन मौलिक परिवतना के फलस्वरूप नवीन विनियोजन दर तथा नवीन प्रति इकाई उत्पादन दर का निरन्तर प्रादुर्भाव होता रहता है।

स्वय-स्फूत विकास अवस्था म प्रवेश करन के पूव प्रत्येक राष्ट्र को कुछ आवश्यक बातो की पूर्ति करनी होती है। राष्ट्र क समन्वित विकास के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार की स्थापना अत्यन्त आवश्यक होती है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय सरकार को देश को आर्थिक क्रियाओ म सक्रिय भाग लेना चाहिए तथा जन-साधारण म अपन जीवन को उन्नति हतु सहयोग एव राष्ट्रीयता की भावनायें जाग्रत होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वय-स्फूत विकास अवस्था की प्राप्ति क लिये कुछ आर्थिक शर्तों की पूर्ति होना भी आवश्यक है। इन आर्थिक शर्तों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

स्वय स्फूर्त-विकास की आवश्यक शर्तें

राष्ट्रीय उत्पादन एव आय म जनसख्या की वृद्धि की दर स अधिक वृद्धि होनी चाहिए। भारत म जनसख्या की वृद्धि की वार्षिक दर १ ६ स २ प्रतिशत अनुमानित है। इस आधार पर राष्ट्रीय आय म लगभग ५% वार्षिक वृद्धि करना आवश्यक है। राष्ट्रीय आय म ५% वार्षिक वृद्धि करन हेतु राष्ट्रीय आय का लगभग १०% स १५% भाग विनियोजित होता रहना चाहिए। विनियोजन की दर म वृद्धि यथासम्भव आ तरिक साधनो स होनी चाहिए अर्थात् राष्ट्रीय बचत म पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए। तृतीय योजना म आन्तरिक बचत को ८% (जो कि द्वितीय योजना के अन्त का अनुमान है) स बढा कर राष्ट्रीय आय का १२% करन का लक्ष्य रखा गया है।

(२) कृषि क्षेत्र की उत्पादकता म पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए जिससे बढती हुई जनसख्या को खाद्य एव उपभोग सामिग्री पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध हो सके, देश के उद्योगो के लिए कच्चा माल उपलब्ध हो सके तथा कृषि उत्पादन का निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके। इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु भारत की कृषि को तीव्र गति स विकसित करना आवश्यक है।

(३) स्वय-स्फूर्त विकास अवस्था की प्राप्ति हेतु अर्थ व्यवस्था के निर्यात क्षेत्र को शक्तिशाली बनाना अत्यन्त आवश्यक है। देश के शीघ्र औद्योगीकरण के लिए प्रारम्भिक काल म विदेशी मुद्रा की अत्यधिक आवश्यकता होती है। जब तक इस विदेशी मुद्रा की पूर्ति विदेशी सहायता से बडी मात्रा म की जाती रहेगी, अर्थ व्यवस्था को स्वय स्फूर्त विकास अवस्था म प्रविष्ट नहीं समझा जा सकता है। विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओ की पूर्ति राष्ट्रीय साधनो द्वारा करन के लिए निर्यात म वृद्धि तथा आयात को सीमित करना आवश्यक होता है।

(४) देश म आधारभूत एव पू जीगत वस्तुओ के उद्योगो की स्थापना एव विकास करना स्वय स्फूर्त विकास के लिए आवश्यक है। इन उद्योगो के विकास द्वारा ही देश का शीघ्र औद्योगीकरण सम्भव हो सकता है। पूंजीगत वस्तुओ के निरतर आयात को रोकन तथा निर्यात म वृद्धि करन हेतु लोहा इस्पात रसायन, मशीन निर्माण आदि उद्योगो का विकास अत्यन्त आवश्यक होता है। जब देश की मशीनरी पू जीगत वस्तुओ तथा औद्योगिक कच्चे माल की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति बडी मात्रा म देश की पूंजीगत वस्तुओ के उद्योगो द्वारा की जा सके तो तो ऐस देश को स्वयं स्फूर्त विकास अवस्था म प्रविष्ट हुआ समझना अनुचित न होगा।

(५) कृषि एव औद्योगिक क्षेत्र म पर्याप्त विकास हेतु शक्ति एव यातायात के साधनो का विस्तार एवं विकास अत्यन्त आवश्यक होता है। देश की आर्थिक

क्रियाओं की गतिशालता बहुत कुछ इन दो घटका पर निर्भर रहती है। भारतीय योजनाओं मे इसीलिये यातायात एव शक्ति के साधनो के विस्तार के लिये इतना अधिक महत्व दिया गया है।

(६) उपर्युक्त समस्त घटको के सचालन एव प्रबन्ध के लिये मानव की आवश्यकता होगी। मानव म परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल ही परिवर्तन करना आवश्यक होगा अन्यथा हमारे विभिन्न कार्यक्रमो की क्रियाशीलता शिथिल रहेगी। देश मे प्रशिक्षित लोगो की अत्यधिक आवश्यकता होगी जो कि हमारे नवीन व्यवसायो का कायभार संभाल सके। देश मे प्रशिक्षण की सस्थायें खोल कर विभिन्न तानिकताओ म प्रशिक्षित लोगा को पूर्ति म वृद्धि होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त नवीन व्यवसायो के प्रबन्ध एव सचालन हेतु एक निपुण, उत्साही एव शक्तिशाली साहसी वग की स्थापना भी आवश्यक है।

(७) स्वय स्फूर्त विकास की अत्यन्त आवश्यक।शर्त मूल्यो के यथोचित स्तर को बनाये रखना है। मूल्या की अनुचित वृद्धि पर राज्य को सदैव अकुश रखना चाहिये। मूल्यो की वृद्धि देश की निर्यात योग्यता को कमजोर कर देती है, विदेशी व्यापार के शेष को प्रतिकूल करने म सहायक होती है, आन्तरिक बचत की वृद्धि म रुकावट प्रस्तुत करती है, प्रशासन के व्ययो म वृद्धि कर देती है तथा सभी क्षत्रो के विकास को आघात पहुँचाती है। इस प्रकार स्वय-स्फूर्त-विकास की अन्य शर्ते बडी सीमा तक मूल्यो के स्तर पर निर्भर रहती ह। यदि मूल्यो को खुली छूट दे दी जाय, तो अन्य घटका की पूर्ति करना असम्भव होगा।

(८) आधुनिक युग म लगभग समस्त अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे सरकारी क्षेत्र का विकास आर्थिक विकास की तीव्र गति रखने के लिये किया जा रहा है। स्वय स्फूत विकास हतु सरकारी क्षेत्र के व्यवसायो को सुचारु रूप से चलाना अत्यन्त आवश्यक है जिससे यह अपन भावी विकास के लिये स्वय साधन जुटा सकें और अथ व्यवस्था पर भार रूप होन की बजाय, अन्य क्षेत्रा के विकास के लिये भी साधन जुटा सकें।

(९) देश की मानवीय योग्यताओ, शक्तियो एव साधनो को आर्थिक विकास के लिये उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। आर्थिक विकास हेतु देश की राजनीतिक, सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो म मूलभूत परिवर्तन होने चाहिये। राजनीतिज्ञ, सरकारी कमचारी, उद्योगपति, श्रमिक तथा कृषक की भावनाओ म परिवर्तन होना चाहिये जिससे वह दश की आर्थिक समस्याओ को विवेकपूर्ण रीति से समझन तथा उनका निवारण करने मे रुचि ग्रहण कर सके। दश मे यह जागृति उत्पन्न करने हेतु प्रजातान्त्रिक सस्थाओ, उदाहरणार्थ,

सहकारी सस्थायें पचायतें आदि की स्थापना की जानी चाहिये और इनके द्वारा जन साधारण म अपना विकास करन हेतु स्वय प्रयास करन के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व भारत की अथ विकसित व्यवस्था मे सुधार करन के लिए कोई ठोस कायवाहियाँ नही की गयी। देश की सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था परम्परागत विचारधाराओ के आधार पर संगठित थी तथा आधुनिक विकसित परिस्थितियो से भारत की जनता सवथा अनभिज्ञ थी। जन समुदाय का जीवन स्तर अत्यन्त दयनीय था तथा उनका आधारभूत आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु भी साधन उपलब्ध नहीं थ। राष्टीय आय के केवल ५% भाग का ही विनियोग किया जाता था। प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा अथ व्यवस्था म आवश्यक समायोजन किये गये जिससे भावी आर्थिक विकास के लिए सुदृढ पृष्ठभूमि उपलब्ध हो सके। प्रथम योजना क प्रारम्भ से ही इस बात का ध्यान रखा गया कि योजना का उद्देश्य केवल उत्पादन को बढाना तथा देश की आर्थिक स्थिति को सुधारना ही नहीं है बल्कि स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र पर आधारित ऐसा सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था की रचना करना है जिसम सामाजिक आर्थिक एव राजनीतिक न्याय राष्टीय जीवन की समस्त सस्थाओ को अनुप्राणित करे।

देश को द्वितीय महायुद्ध एव विभाजन स जा क्षति पहुँची थी प्रथम योजना मे उनकी पूर्ति करने तथा आर्थिक व्यवस्था की आधार शिलाए सुदृढ करन के प्रयास किए गये एव सविधान म प्रदत्त नीति निदशक तत्वो के अनुसार सामाजिक और आर्थिक नीतिया का भी निर्धारण हुआ सामुदायिक विकास योजना तथा भूमि-सुधार प्रथम योजना के विशष कायक्रम थ।

द्वितीय योजना म प्रथम योजना को ही नीतियो को अक्षुण्ण रखत हुए उत्पादन वृद्धि विकास कार्यों मे अधिक विनियोजन तथा जन समुदाय को अधिक रोजगार अवसर प्रदान करने के प्रयत्न किये गये। इस योजना म आर्थिक उन्नति की गति को तीव्र करने पर आधारभूत उद्योगो की स्थापना पर रोजगार अवसरो की वृद्धि करन पर आय व धन की विषमताओ को कम करन पर तथा आर्थिक शक्ति का कतिपय हाथो म केन्द्रित होन से रोकन पर जोर दिया गया। प्रथम योजना मे राष्ट्रीय आय मे ३½% प्रतिवर्ष तथा द्वितीय योजना मे ४% प्रतिवर्ष वृद्धि हुई। द्वितीय योजना द्वारा भारतीय अथ व्यवस्था को औद्योगिक आधार प्रदान किया गया है। इस प्रकार द्वितीय योजना के विभिन्न कायक्रमो द्वारा स्वय स्फूर्त विकास अवस्था के पूव की परिस्थितियो का निर्माण हुआ।

स्वय-स्फूर्त विकास अवस्था तक पहुँचने के लिए भारत जैसे राष्ट्र मे एक ओर कृषि उत्पादन मे इतनी वृद्धि होनी चाहिए तथा होती रहनी चाहिए कि वृद्धयोन्मुख जनसख्या के लिए पर्याप्त हो तथा दूसरी ओर विदेशी विनिमय का इतना सचय होना चाहिए कि विकास की गति को बनाये रखा जा सके। विदेशी विनिमय का सचय निर्यात की वृद्धि द्वारा किया जा सकता है। इसके साथ ही सामाजिक पूँजी का भी पर्याप्त मात्रा मे निर्माण होना चाहिए। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए जिस प्रकार पूँजी का निर्माण आवश्यक होता है, उससे कहीं अधिक सामाजिक पूँजी मे वृद्धि होना आवश्यक है। जन समुदाय को स्वय की शक्तियो राष्ट्र द्वारा निश्चित किये गये सामाजिक उद्देश्यो, शासकीय सत्ता ग्रहण करने वाले व्यापार एव व्यवसाय चलाने वाले तथा आर्थिक एव सामाजिक सस्थाओ का सचालन करने वाले अधिकारियो की देश की भावी समस्याओ के निवारण करने की क्षमता पर जो विश्वास एव सद्भावना होती है, उसे सामाजिक पूँजी कहा जाता है। देश के भौतिक विकास के साथ साथ जन समुदाय मे परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार जागरूकता होनी चाहिए। जब तक सामाजिक उत्थान की ओर पर्याप्त प्रगति नहीं होती, तब तक आर्थिक विकास की किसी भी दशा को स्वय-स्फूर्त विकास अवस्था कहना अनुचित होगा। राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय भावना एव नियोजन के प्रति जागरूकता की व्युत्पत्ति से आर्थिक विकास को सुदृढ बनाया जा सकता है।

द्वितीय योजना द्वारा उपर्युक्त परिस्थितियो को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है जिसमे स्वय स्फूर्त अवस्था की प्राप्ति हेतु आवश्यक वातावरण एव परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सके। तृतीय पचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को स्वय स्फूर्त अवस्था तक पहुँचाना है। सत्य तो यह है कि स्वय-स्फूर्त अवस्था की प्राप्ति हेतु बचत एव विनियोजन मे इतनी वृद्धि करना आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय मे निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि होती रहे। इस अवस्था की प्राप्ति हेतु राष्ट्र मे विनियोजन विशाल स्तर पर होना चाहिए तथा विशाल स्तर के विनियोजन कार्यक्रमो के सचालनार्थ पूँजीगत वस्तुओ एव सामिग्री की उत्पादन क्षमता मे पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए। तृतीय योजना मे विनियोजन के कार्यक्रम एव प्रकार निश्चित करते समय इस बात को दृष्टिगत किया गया है।

स्वय स्फूर्त अवस्था तभी प्राप्त हो सकती है जबकि उद्योगो एव कृषि का सतुलित विकास किया जाय। आय एव रोजगार की वृद्धि हेतु औद्योगीकरण के कार्यक्रमो को प्राथमिकता प्रदान की जाय। दूसरी ओर औद्योगिक विकास तभी सम्भव हो सकता है जबकि कृषि का विकास करके कृषि-उत्पादन-

क्षमता मे प्रशसनीय वृद्धि की जाय। तृतीय पचवर्षीय योजना मे इसलिए देश की पूंजीगत सामग्री एव खाद्य तथा कच्चे माल के उत्पादन मे वृद्धि करने पर जोर दिया गया है। भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ जन शक्ति का पूर्ण उपयोग न होता हो, रोजगार-अवसरो की पर्याप्त वृद्धि द्वारा ही विकास को सफल बनाया जा सकता है। तृतीय योजना मे इसीलिए रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने पर विशेष जोर दिया गया है।

तृतीय योजना के उद्देश्य

तृतीय योजना के कार्यक्रम निम्नांकित मुख्य उद्देश्यो पर आधारित है—

(१) तृतीय पचवर्षीय योजना काल म राष्ट्रीय आय म ५% से अधिक वार्षिक वृद्धि करना तथा इस प्रकार विनियोजन करना कि राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर का क्रम आगामी योजनाओ म भी चालू रहे।

(२) अनाज के उत्पादन म आत्म निर्भरता प्राप्त करना तथा कृषि-उत्पादन म इतनी वृद्धि करना कि देश के उद्योगो की आवश्यकताओ की पूर्ति के साथ साथ इनका आवश्यकतानुसार निर्यात भी किया जा सके।

(३) इस्पात, रसायन उद्योग शक्ति ईंधन आदि आधारभूत उद्योगो का विस्तार एव मशीन निर्माण करने वाले कारखानो की स्थापना करना जिससे १० वर्ष के अन्दर देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक यन्त्र आदि की आवश्यकता देश के ही साधनो स की जा सके।

(४) देश की श्रम शक्ति का यथासम्भव पूर्णतम उपयोग करना तथा रोजगार के अवसरो म पर्याप्त वृद्धि करना।

(५) अवसर की अधिक समानता की स्थापना करना तथा धन एव आय की विषमताओ म कमी करना तथा आर्थिक शक्ति का अधिक न्यायोचित वितरण करना।

तृतीय योजना काल को उन दस वर्षो का प्रथम चरण समझना चाहिए जिसम विकास की गति इतनी तीव्र होगी कि अर्थ-व्यवस्था स्वय-स्फूर्त विकास अवस्था मे प्रविष्ट कर सके। प्रथम एव द्वितीय योजना द्वारा तीव्र आर्थिक विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार की गयी है और भविष्य की योजनाओ म इस सुदृढ पृष्ठभूमि पर शीघ्र आर्थिक विकास किया जायगा। तृतीय योजना मे भी विकास का प्रकार द्वितीय योजना के आधारभूत सिद्धान्तो पर आधारित है। फिर भी तृतीय योजना म कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों मे तीव्र प्रयास को अधिक स्थान दिया गया है। कृषि अर्थ व्यवस्था को सुदृढ बनाने, उद्योग, शक्ति एव यातायात का विकास करने, औद्योगिक एव तात्रिक परिवर्तनो को तीव्र गति देना तथा

अवसर की समानता एव समाजवादी समाज की स्थापना की ओर ठोस कार्यवाही करने को तृतीय योजना मे विशेष महत्व दिया गया है।

(१) राष्ट्रीय आय मे ५% प्रतिशत की वृद्धि—तृतीय योजना काल मे राष्ट्रीय आय १३,००० करोड रु० (१९६०-६१ मे १९५८-५९ के मूल्यो के आधार पर) से बढ कर १७,००० करोड रुपया १९६५-६६ तक हो जायगी। १९६०-६१ के मूल्यो के आधार पर १९६० ६१ की अनुमानित राष्ट्रीय आय १४,५०० करोड रुपया से बढ कर १९६५-६६ तक १९,००० करोड रुपया होने का अनुमान लगाया गया है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि चौथी योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय २५,००० करोड रुपया और पाँचवी योजना के अन्त तक ३३,००० स ३४,००० करोड रुपया हो जायगी। जनसख्या की वृद्धि को दृष्टिगत रखत हुए प्रति व्यक्ति आय १९६० ६१ मे ३३० रुपया (१९६०-६१ के मूल्यो पर) अनुमानित है जो कि तृतीय योजना के अन्त तक बढ कर ३८५ रुपया होन का अनुमान है। इस प्रकार तृतीय योजना काल मे राष्ट्रीय आय में लगभग ३०% और प्रति व्यक्ति आय में लगभग १७% की वृद्धि होने का अनुमान है। राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय म अनुमानित वृद्धि करने हेतु तृतीय योजना में १०,४०० करोड रुपये का विनियोजन करने का लक्ष्य रखा गया है। विनियोजन की राशि को राष्ट्रीय आय के ११% स्तर से बढा कर १४% से १५% तथा घरेलू बचत का राष्ट्रीय आय के ८ ५% से बढा कर ११ ५% करने का लक्ष्य रखा गया है। यदि तृतीय योजना के इन लक्ष्यो की तुलना हम पिछले दस वर्षों के विकास से करें तो हमे ज्ञात होगा कि पिछले दस वर्षों में १९६०-६१ के मूल्यो के स्तर पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि ४२% तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि २१% हुई है।

पिछले दस वर्षों की विनियोजन राशि १०,११० करोड रुपया थी और इस काल म राष्ट्रीय आय (१९५०-५१ में) १०,२४० कराड रुपया (१९६०-६१ के मूल्या पर) से बढ कर १९६० ६१ म १४५०० कराड रुपया होने का अनुमान है अर्थात् इस काल में १०,११० करोड रुपये के विनियोजन पर ४२६० करोड रु० की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है। तृतीय योजना में १०,४०० कराड रुपये के विनियोजन पर ४५०० करोड रुपये की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने का लक्ष्य है। दूसरे शब्दो में इन आँकडो क आधार पर यह कहा जा सकता है कि १९५०-५१ से १९६०-६१ तक अर्थ-व्यवस्था की जो प्रगति १० वर्षों में हुई है, लगभग उतनी ही प्रगति तृतीय योजना क पाँच वर्षों मे प्राप्त करने का लक्ष्य है। उपर्युक्त आँकडो से यह भा ज्ञात होता है कि तृतीय योजना मे विनियोजन की उत्पादकता मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा।

भारत मे कृषि-व्यवस्था देश की राष्ट्रीय आय का लगभग आधा भाग उत्पादित करता है। इस क्षेत्र का पर्याप्त विकास न होने पर प्रति व्यक्ति आय मे भी पर्याप्त वृद्धि नही हो सकती है। पिछले दस वर्षो मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे ४६% की वृद्धि हुई है। तृतीय योजना मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे ३१% की वृद्धि करने का लक्ष्य है। समस्त कृषि उत्पादन मे तृतीय योजना काल मे ३०% की वृद्धि होने का अनुमान है जबकि पिछले १० वर्षो मे कृषि उत्पादन मे केवल ४१% की वृद्धि हुई है। तृतीय योजना के कृषि उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करने समय कच्चे माल की आवश्यकताओ को भी दृष्टिगत किया गया है।

(३) आधारभूत उद्योगो का विस्तार—तृतीय योजना मे द्वितीय योजना के समान योजना के समस्त सरकारी व्यय का २०% भाग उद्योगो एव खनिज विकास पर व्यय करने का आयोजन है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तृतीय योजना म सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत औद्योगिक विकास को प्राथमिकता को आवश्यकता से अधिक महत्व नही दिया गया है। तृतीय योजना मे औद्योगिक एवं खनिज विकास पर १५२० करोड रुपया व्यय होना है जो कि द्वितीय योजना के व्यय ६०० करोड रुपये का १$\frac{2}{3}$ गुना है। इसके अतिरिक्त १०२० करोड रुपया निजी क्षेत्र मे उद्योगो पर विनियोजित किया जायगा। इस प्रकार उद्योगो एव खनिज पर विनियोजित होने वाली राशि २५७० करोड रुपया है जो कि योजना के समस्त विनियोजन की २५% है।

दूसरी ओर कृषि एव सिचाई पर सरकारी एव निजी क्षेत्र मे विनियोजित होने वाली राशि क्रमश १३१० तथा ८०० करोड रुपया है जो समस्त विनियोजन की २०% होती है। तृतीय योजना म ४२५ करोड रुपया जो कि समस्त विनियोजन का ४% है, ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास पर विनियोजित होना है। इस प्रकार तृतीय योजना मे औद्योगिक एव खनिज विकास पर योजना के समस्त विनियोजन का २९% भाग विनियोजन होना है जबकि कृषि एव सिचाई से विकास के लिए केवल २०% राशि ही विनियोजित होनी है। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि तृतीय योजना द्वितीय योजना के समान उद्योग-प्रधान है। तृतीय योजना के औद्योगिक विकास के कार्यक्रमो द्वारा अगले १५ वर्षो के शीघ्र औद्योगीकरण की नीव डाली जायगी जिससे राष्ट्रीय आय एव रोजगार म अनुमानित वृद्धि हो सके। इसीलिए तृतीय योजना मे पूंजीगत, उत्पादक वस्तुओ एव मशीन निर्माण उद्योगो की स्थापना एव विस्तार को महत्व दिया गया है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास द्वारा उत्पादित निर्मित कच्चे माल की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी तृतीय योजना मे औद्योगिक कार्यक्रम सम्मिलित किए गए है। दूसरी ओर विलासिता एव अर्ध-

विलासिता की वस्तुग्रो के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करना सम्भव न हो सकेगा ग्रौर इनके उपभोग पर ग्रकुश रखना ग्रावश्यक होगा।

(४) रोजगार के ग्रवसरो मे वृद्धि—द्वितीय योजना के समान ही तृतीय योजना मे भी योजना काल म बढी हुई श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान करने का ग्रायोजन किया गया है। भारत म श्रम शक्ति की तीव्र वृद्धि के कारण ग्रथ-व्यवस्था के विकास के साथ बरोजगारी भी बढती जा रही है। ग्रभी तक भारतीय ग्रर्थ व्यवस्था का विकास श्रम शक्ति की वृद्धि के ग्रनुकूल नही हो सका है। यह ग्रनुमान लगाया गया है कि द्वितीय योजना के ग्रन्त म ६० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहेगे ग्रौर १५० से १८० लाख व्यक्ति ग्राशिक रोजगार प्राप्त रहेगे। तृतीय योजना काल म १९६१ की जनगणना के प्रारम्भिक ग्रनुमाना के ग्रनुसार १७० लाख व्यक्ति की वृद्धि श्रम शक्ति म होगी। तृतीय योजना मे ग्रभी तक केवल १४० लाख व्यक्तियो को रोजगार के ग्रवसर प्रदान प्रदान करन का ग्रायोजन किया जा सका है ग्रौर शष ३० लाख व्यक्तिया को रोजगार प्रदान करन के लिये प्रयत्न किये जाने है। यदि तृतीय योजना म ग्रनुमानित मात्रा म रोजगार के ग्रवसरो म वृद्धि हो भी तब भी योजना के ग्रन्त म दश म १२० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहेगे ग्रौर हमारी योजनाग्रा के ग्रतिम लक्ष्य 'पूर्ण राजगार' की प्राप्ति दीघ काल तक न हो सकेगी।

(५) ग्रवसर की समानता एव धन तथा ग्राय के वितरण की विषमताग्रो म कमी—ग्रवसर की समानता उत्पन्न करन के लिए कार्य करन के लिये काय करन के योग्य एव इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार के ग्रवसर प्रदान करना ग्रावश्यक है। इसी कारण भारत की तृतीय योजना मे रोजगारके ग्रवसरा की वृद्धि को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। ग्रथ-व्यवस्था के विकास की गति रोजगार के ग्रवसरा का ग्रावश्यकता के ग्रनुकूल करन के लिये देश म दृढ ग्रौद्योगिक ग्राधार स्थापित करना तथा शिक्षा एव समाज सेवाग्रो का विकास करना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। तृतीय योजना मे इसी कारण से ग्राधार भूत उद्योगो के विस्तार एव शिक्षा तथा समाज-सेवाग्रो के विकास एव विस्तार का ग्रायोजन किया गया है। ६ से ११ वष के बच्चों के लिये नि शुल्क एव ग्रनिवाय शिक्षा का ग्रायोजन किया गया है। शिक्षा के सभी स्तरोपर विकास करन, तात्रिक प्रशिक्षण की सस्थाग्रो के विस्तार छात्र वृत्ति का ग्रायोजन ग्रादि द्वारा शिक्षा के ग्रवसरो म समानता उत्पन्न करन का लक्ष्य है। तृतीय योजना म घने ग्राबाद ग्रामीण क्षत्रो म बहुत सी ग्रामीण कायशालायें (Rural Works) चलाने का ग्रायोजन कियाग या है जिससे ग्राशिक रोजगार प्राप्त जनसख्या को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सके। तृतीय योजना मे स्वास्थ्य सफाई, जल तथा निवास गृह

का भी आयोजन किया गया है जिससे गरीब वर्ग के लोग इन सुविधाओं का लाभ उठा कर अपने जीवन स्तर को उन्नत कर सकें। इसके अतिरिक्त अनुसुचित जातियो एव पिछड़ी जातियो के कल्याण के लिये भी कार्यक्रम तृतीय योजना मे सम्मिलित हैं। औद्योगिक श्रमिको को सामाजिक बीमा द्वारा जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं।

भारत की योजनाओ म धन और आय की वृद्धि के साथ-साथ इस बात का भी आयोजन किया गया है कि आर्थिक व्यक्तियो का केन्द्रीयकरण न होने पाये। तृतीय योजना मे सरकारी क्षेत्र मे सगठित एव भारी उद्योगो मे विस्तार करना, मध्यम एव लघु श्रेणी के उद्योगो सहकारिता के आधार पर सगठित उद्योगो एवं नवीन व्यवसायाओ द्वारा सचालित उद्योगो के विकास के अधिक अवसर प्रदान करना, तथा राजकीय वित्तीय नीति का प्रभावशाली सचालन करके आर्थिक सत्ताओ के केन्द्रीयकरण को रोके जाने का आयोजन किया गया है।

तृतीय योजना का व्यय, विनियोजन एवं प्राथमिकताएं

भारत की जनसख्या की वृ ८, जन-साधारण की सुविधाओं की उपलब्धि के सम्बन्ध म होन वाली सम्भावनाओ तथा अगली दो या तीन योजनाओ म देश को स्वय-स्फूत विकास-अवस्था तक पहुंचान की आवश्यकता के आधार तृतीय योजना के भौतिक कायक्रम निर्धारित किये गय ह। योजना म सम्मिलित सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमो की कुल लागत ८००० करोड रुपये से भी अधिक अनुमानित है। निजी क्षेत्र के कार्यक्रमो का समस्त व्यय ४१०० करोड रुपया अनुमानित है। वर्तमान अनुमानो के अनुसार तृतीय योजना काल मे ७५०० करोड रुपये के साधन उपलब्ध होंगे। परन्तु याजना काल मे उपलब्ध अवसरो का उचित उपयोग करन के लिए योजना के कायक्रम साधनो के वतमान अनुमानो पर पूर्णत. आधारित नहीं रख गये हैं। जैसे जैसे योजना की उत्पादक परियोजनायें सचालित होने लगेंगी, अर्थ-साधनो की उपलब्धि की सम्भावनायें भी बढ़ जायेंगी। इसी कारण ७५०० करोड रुपया के अर्थ-साधनो के लिये ८००० करोड रुपये के कार्यक्रम निर्धारित किय गये हैं। शेष ५०० करोड रुपया योजना के सचालन काल मे परिस्थिति के अनुसार विभिन्न क्षेत्रो से प्राप्त करने का अनुमान है। योजना के वर्तमान अनुमानित साधनो को विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार विभजित किया गया है—

तालिका स० ७७—तृतीय योजना का सरकारी क्षेत्र का व्यय

(करोड रुपयो म)

मद	द्वितीय योजना		तृतीय योजना			
			प्रस्तावित योजना		तृतीय योजना	
	व्यय	समस्त व्यय स प्रतिशत	व्यय	समस्त व्यय स प्रतिशत	व्यय	समस्त व्यय से प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	५३०	११ ५	१०२५	१४ १	१०६८	१४ २
बडी एव मध्यम श्रेणी का सिचाई योजनायें	४५०	९ ८	६५०	९ ०	६५०	८ ७
शक्ति	४१०	८ ९	९२५	१२ ८	१०१२	१३ ५
ग्रामीण एव लघु उद्योग	१८०	३ ९	२५०	३ ४	२६४	३ ५
सगठित उद्योग एव खनिज	८८०	१९ १	१५००	२० ७	१५२०	२० ३
यातायात एव सचार	१२९०	२८ १	१४५०	२० ०	१४८६	१९ ८
समाज सेवायें एव विविध	८६०	१८ ७	१२५०	१७ २	१३००	१७ ३
उत्पादन मे बाधा न ग्राने हेतु सचित कच्चा एव ग्रर्ध-निर्मित माल (Inventories)	—	—	२००	२.८	२००	२ ७
योग	४६००	१०० ०	७२५०	१०० ०	७५००	१०० ०

योजना मे सम्मिलित सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमो की समस्त ग्रनुमानित लागत ८००० करोड रुपये को विभिन्न मदो पर निम्न प्रकार विभाजित किया गया है—

तालिका स० ७८—तृतीय योजना के विभिन्न कार्यक्रमो की अनुमानित लागत[1]

(करोड रुपया म)

मद	द्वितीय योजना का व्यय	तृतीय योजना का व्यय			
		राज्या का व्यय	यूनियन क्षत्रा का व्यय	केंद्र का व्यय	याग
कृषि कायक्रम	२७६ ४४	५६१ ६७	१५ ६७	११० ०	६८७ ६४
सहकारिता	३३ ८.	६८ ५६	१ ५१	६ ००	८० १०
सामुदायिक विकास एव पचायतें	२१ ८७३	३१० १३	६ ३४	६ ००	३२२ ४७
सिचाई	३७२ १७	५८१ २१	१०	१८ ०३	५६६ ३४
बाढ नियन्त्रण	४८ ००	५६ ६५	१ ३७	—	६१ ३२
शक्ति	४४५ ४६	८१३ १५	२३ ४५	११३ १२	१०१६ ७२
उद्योग एव खनिज	८६६ ८६	७६ ५८	३२	१८०२ ४०	१८८२ ३०
ग्रामीण एव लघु उद्योग	१७५ ६६	१३७ ०३	४ २५	१२३ ००	२६४ २८
रेल यातायात	८६० ११	—	—	६४० ००	६४० ००
सडक	२२३ ६४	२१८ ३०	२५ ७५	८० ००	३२४ ०५
सडक यातायात	१८ १८	२० ४४	५ ५६	—	२६ ०३
परिभ्रमण (Tourism)	० १७	३ ६४	२२	३ ५०	७ ६६
बन्दरगाह आदि	३३ ३६	४ ६०	१८	१२५ ००	१३० ०८
जहाजरानी	५२ ६८	—	२ ६३	५५ ००	५७ ६३
डाक व तार	५० ५६	—	—	७६ ००	७६ ००
हवाई यातायात	४६ ००	—	—	५५ ००	५५ ००
आकाशवाणी प्रसारण	४ ६८	—	—	११ ००	११ ००

1 The Third Five Year Plan pp. 85 to 88

अन्य यातायात एवं संचार	५ ३१	२ ७३	२५	२१ ३०	२४ २८
सामान्य शिक्षा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम	२०८ ०४	३१९ ०६	२१ ०४	७८ ००	४१८ १०
तांत्रिक शिक्षा	४७ ७२	६९ ८६	१ ७३	७० ००	१४१ ५९
वैज्ञानिक एवं तांत्रिक अन्वेषण	—	—	—	७० ००	७० ००
स्वास्थ्य	२१६ ३४	२७१ १४	२५ ६६	४५ ००	३४१ ००
निवास गृह	८० ३३	९६ २०	२० ७६	२५ ००	१४१ ९६
पिछड़ी जातियों का कल्याण	७९ ४१	७४ ९८	३ ८९	३५ ००	११३ ८७
समाज-कल्याण	१५ १८	१० ४८	१ १४	१६ ००	२७ ६२
श्रम एवं श्रम-कल्याण	११ ८१	२५ १९	१ ८९	४४ ००	७१ ०८
पुनर्वास एवं जन सहयोग	६३ ४१	३४	—	१० ००	१० ३४
विविध	९९ ८०	४७ ४४	१० ८३	५२ ००	११० २७
योग	४६०० ००	३८४७ ३१	१७४ ८७	४०७६ ३५	८०९८.५३

उपर्युक्त आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि राज्यों के यूनियन क्षेत्रों एवं केन्द्र के कार्यक्रमों की आवंटित राशि एवं अनुमानित लागत निम्न प्रकार है—

(करोड़ रुपयों में)

	आवंटित राशि	अनुमानित लागत
राज्यों के कार्यक्रम	३७२५	३८४७ ३१
यूनियन क्षेत्रों के कार्यक्रम	१७५	१७४ ८७
केन्द्र के कार्यक्रम	३६००	४०७६ ३५
योग	७५००	८०९८ ५३

विभिन्न राज्यो एव यूनियन क्षेत्रो की तृतीय योजना के कार्यक्रमो की अनुमानित लागत निम्न प्रकार है—

तालिका स० ७६—प्रथम, द्वितीय एव तृतीय योजनाओ मे राज्यो एव यूनियन क्षेत्र का सरकारी व्यय[1]

(करोड रुपया मे)

राज्य / यूनियन क्षेत्र	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना
आध्र प्रदेश	१०८	१७५	३०५
आसाम	२८	५१	१२०
बिहार	१०२	१६६	३३७
गुजरात	२२४[2]	१४३	२३५
जम्मू काश्मीर	१३	२५	७५
केरल	४४	७६	१७०
मध्य प्रदेश	६४	१४५	३००
मद्रास	८५	१६७	२९० ९
महाराष्ट्र	(गुजरात मे सम्मिलित)	२०७	३९०
मैसूर	६४	१२२	२५०
उडीसा	८५	८५	१६०
पजाब	१६३	१४८	२३१ ४
राजस्थान	६७	९९	२३६
उत्तरप्रदेश	१६६	२२७	४९७
पश्चिमी बगाल	१५४	१४५	२५० (सामयिक)
योग समस्त राज्यो का	१४२७	१९८१	३८४७ ३
अडमन निकोबार	२	३	९ ८
देहली	१०	१४	८१ ८
हिमाचल प्रदेश	८	१६	२७ ९
मनीपुर	२	६	१२ ९
त्रिपुरा	३	९	१६ ३
अन्य क्षेत्र	५	१४	२६ १
यूनियन क्षेत्रो का योग	३०	६२	१७४ ८
समस्त भारत का योग	१४५७	२०४३	४०२२ १

1 *The Third Five Year Plan*, p 89

2. *This Figure relates to Composite Bombay State*

तालिका स० ७७ के अवलोकन से ज्ञात होता है कि तृतीय याजना म सरकारी क्षेत्र के व्यय का सबसे अधिक भाग सगठित उद्योग एव खनिज विकास के लिए निर्धारित किया गया है। वास्तव म योजना का २३ ८% व्यय छोटे बड उद्योग एव खनिज के लिए निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त शक्ति की निर्धारित राशि स भी औद्योगिक विकास को ही सहायता मिलती है। इस प्रकार लगभग ३७% व्यय औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित किया गया है। दूसरी ओर तृतीय योजना म कृषि विकास एव सिचाई पर योजना के व्यय का २३% भाग व्यय किया जाना है। यदि हम यह मान लें कि शक्ति के साधनो के बढने से ग्रामीण क्षेत्रो म बिजली पहुँच जायगी और ऐसे उद्योगो का विकास होगा जिनसे कृषि विकास मे सहायता मिलेगी तो भी यह बात सर्वथा न्यायोचित होगी कि अतिरिक्त शक्ति के साधनो का अधिक लाभ औद्योगिक क्षेत्र का प्राप्त होगा। इस आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि तृतीय योजना उद्योग प्रधान है।

विभिन्न मदो पर निर्धारित राशियो का द्वितीय योजना के व्यय से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि तृतीय योजना मे व्यय का प्रतिशत कृषि एव सामुदायिक विकास, शक्ति तथा उद्योग एव खनिज पर बढा दिया गया है और सिंचाई योजनाओ यातायात एव समाज सेवाओ पर घटा दिया गया है। इस व्यय के प्रतिशत म सबसे अधिक वृद्धि शक्ति की मद म की गयी और सबसे अधिक कमी यातायात एव सचार म हुई है। परन्तु कृषि एव सिंचाई पर व्यय होने वाली राशि द्वितीय योजना की तुलना म लगभग दुगुनी, शक्ति पर लगभग २$\frac{3}{4}$ गुनी, बड छोटे उद्योगो एव खनिज पर लगभग १$\frac{3}{4}$ गुनी समाज सेवाओ पर लगभग १$\frac{1}{2}$ गुनी हो गयी है। यातायात एव सचार की राशि म द्वितीय योजना की तुलना मे केवल १५% की वृद्धि की गयी है जबकि योजना के समस्त सरकारी व्यय म द्वितीय योजना की तुलना म ६८% की वृद्धि की गयी है। इस प्रकार यदि व्यय के आधार पर हम प्राथमिकताए निर्धारित करें तो हमे ज्ञात होगा कि तृतीय योजना म सबसे अधिक महत्व औद्योगिक विकास को दिया गया है। दूसरा स्थान कृषि विकास को तीसरा स्थान यातायात एव सचार को और चौथा स्थान समाज सेवाओ एव शक्ति को दिया गया है।

तालिका स० ७६ के अवलोकन से हम ज्ञात होता है कि उत्तर प्रदेश की तृतीय योजना की लागत ४९७ करोड रुपया अन्य राज्यो की तुलना मे सबसे अधिक है। द्वितीय योजना की तुलना म आसाम, बिहार, जम्मू काश्मीर केरल, मध्यप्रदेश मसूर, उडीसा, राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश की तृतीय योजना का व्यय दुगुने से भी अधिक है। इसी प्रकार समस्त राज्यो का तृतीय योजना का व्यय द्वितीय योजना की तुलना म दुगुना है।

तृतीय योजना के सरकारी क्षेत्र के समस्त व्यय ७५०० करोड रुपये म से ६३०० करोड रुपया विनियोजन तथा शेष १२०० करोड रुपया चालू व्यय होने का अनुमान है। निजी क्षेत्र के अनुमानित व्यय की समस्त राशि ४१०० करोड रुपये का विनियोजन होन का अनुमान है। इन विनियोजन राशियो का विभिन्न मदो पर वितरण निम्न प्रकार है—

तालिका स० ८०—द्वितीय एव तृतीय योजना मे विनियोजन

(करोड रुपयो मे)

मद	द्वितीय योजना				तृतीय योजना			
	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	योग से प्रतिशत	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	योग से प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	२१०	६२५	८३५	१२	६६०	८००	१४६०	१४
बडी एव मध्यम श्रणी की सिचाई योजनाएं	४२०	—	४२०	६	६५०	—	६५०	६
शक्ति	४४५	४०	४८५	७	१०१२	५०	१०६२	१०
ग्रामीण एव लघु उद्योग	९०	१७५	२६५	४	१५०	२७५	४२५	४
सगठित उद्योग एव खनिज	८७०	६७५	१५४५	२३	१५२०	१०५०	२५७०	२५
यातायात एव सचार	१२७५	१३५	१४१०	२१	१४८६	२५०	१७३६	१७
समाज सवाएं एव विविध	३४०	९५०	१२९०	१९	६२२	१०७५	१६९७	१६
उत्पादन म बाधा न आने हेतु सचित कच्चा एव अर्ध निर्मित माल	—	५००	५००	८	२००	६००	८००	८
योग	३६५०	३१००	६७५०	१००	६३००	४१००	१०४००	१००

१०४०० करोड रुपये के विनियोजन मे २०३० करोड रुपये की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होन का अनुमान है। द्वितीय योजना का अन्तिम वर्ष का

विनियोजन स्तर १६०० करोड रुपया तृतीय योजना के अन्त तक बढकर २६०० करोड रुपया हो जायगा। तृतीय योजना म द्वितीय योजना की तुलना म विनियोजन स्तर म लगभग ५४% का वृद्धि हागी। सरकारी क्ष त्र क विनियोजन मे ७०% की तथा निजी क्ष त्र के विनियाजन म ३२% की वृद्धि होने का अनुमान है।

द्वितीय योजना काल म हुए विनियोजन का तुलना तृतीय योजना के विनियोजन के अनुमानो के साथ करन स ज्ञात हाता है कि इन दोनो योजनाओ मे विनियोजन का प्रकार लगभग समान है। तृतीय याजना म कृषि एव सामुदायिक-विकास पर समस्त विनियोजन का १४% निर्धारित किया गया है जबकि यह प्रतिशत द्वितीय योजना म १२% था। शक्ति का विनियोजन जो कि द्वितीय योजना म समस्त विनियाजन का ७% था को बढा कर तृतीय योजना म १०% कर दिया गया है। इसी प्रकार उद्योग एव खनिज के विनियोजन प्रतिशत २३% को बढा कर २५% कर दिया गया। सिंचाई लघु एव ग्रामीण उद्योग तथा कच्चे एव अर्ध निर्मित माल के विनियोजन प्रतिशत द्वितीय योजना के समान ही हैं। द्वितीय योजना म यातायात एव सचार तथा समाज सेवाओ पर विनियोजन का क्रमश २१% एव १६% विनियोजित किया गया जबकि यह प्रतिशत तृतीय योजना मे घटा कर १७% एव १६% कर दिया गया है। विनियोजन के प्रकार से हमे ज्ञात होता है कि तृतीय योजना मे औद्योगिक विकास को सबसे अधिक प्राथमिकता दी गयी है। समस्त विनियोजन का २६% भाग प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित किया गया है जबकि कृषि विकास के लिए (सिंचाई सहित) केवल २०% भाग ही निर्धारित किया गया है। परन्तु इस तथ्य के साथ साथ यह भी स्पष्ट है कि तृतीय योजना मे द्वितीय योजना की तुलना मे कृषि विकास को अधिक महत्व दिया गया है। कृषि क्ष त्र के विनियोजन (सिंचाई सहित) को १८% से बढा कर २०% कर दिया गया है। औद्योगिक क्ष त्र के विनियोजन मे भी केवल २% ही की वृद्धि की गयी है।

तृतीय योजना के कायक्रम एव लक्ष्य—कृषि एव सामुदायिक विकास

तृतीय योजना म सम्मिलित कृषि सिंचाई एव सामुदायिक विकास के कार्यक्रमो के लिए १७१८ करोड रुपये का व्यय निर्धारित किया गया है। इन कायक्रमो द्वारा कृषि उत्पादन की वृद्धि की दर को अगले पाँच वर्षों मे दुगुना करन का लक्ष्य रखा गया है। योजना काल मे खाद्यान्नों मे ३०% और अन्य फसलो मे ३१% वृद्धि करन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस मद की निर्धारित समस्त राशि मे से १२८१'०० करोड रुपया कृषि उत्पादन के कायक्रमो पर

व्यय होना है। इस राशि का वितरण विभिन्न कार्यक्रमो पर निम्न प्रकार किया गया है—

तालिका स० ८१—कृषि उत्पादन पर व्यय

(करोड रुपयो मे)

	द्वितीय योजना	तृतीय योजना
कृषि उत्पादन	९८ १०	२२६·०७
लघु सिंचाई योजनाएं	९४ ९४	१७६ ७६
भूमि सुरक्षा	१७ ६१	७२·७३
सहकारिता	३३ ८३	८०·१०
सामुदायिक विकास के कृषि-कार्यक्रम	५० ००	१२६·००
बडी एव मध्यम श्रेणी की सिंचाई योजनाएं	३७२·१७	५९९ ३४
	६६६ ६५	१२८१ ००

इन साधनो के अतिरिक्त यह भी सम्भावना की जाती है कि कृषि-कार्यक्रमो के लिए सहकारी संस्थाओ से उपलब्ध होने वाली साख मे भी पर्याप्त वृद्धि हो जायगी। अल्पकालीन ऋण द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष मे २०० करोड रुपये से बढ कर तृतीय योजना के अन्त तक ५३० करोड रुपया होने का अनुमान है। इसी प्रकार दीर्घकालीन ऋण ३४ करोड रुपया से बढ कर तृतीय योजना के अन्त मे १५० करोड रुपया होने का अनुमान है। कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए योजना मे निम्नलिखित तात्रिक-कार्यक्रम सम्मिलित किये गए है—

(१) सिंचाई—तृतीय योजना काल मे बडी, मध्यम एव लघु श्रेणी की सिंचाई योजनाओ द्वारा २५६ लाख एकड भूमि (सकल) मे अतिरिक्त सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध होने का अनुमान है। इस प्रकार तृतीय योजना के अन्त तक सिंचित भूमि ९०० लाख एकड हो जायगी।

(२) भूमि-सुरक्षा, शुष्क खेती तथा भूमि को कृषि योग्य बनाना—योजना काल मे ११० लाख एकड भूमि मे भूमि-सुरक्षा के कार्यक्रम सचालित होगे, २२० लाख एकड भूमि पर शुष्क खेती की तात्रिकताओ का आयोजन होगा तथा ३८ लाख एकड भूमि को कृषि योग्य बनाया जायगा।

(३) खाद एव रासायनिक खाद की उपलब्धि—नाइट्रोजन (N) खाद के उपभोग मे पाच गुनी वृद्धि हो जायगी और इसका उपभोग १० लाख टन हो जायगा। फौसफेटिक खाद (P_2O_5) का उपभोग ६ गुना अर्थात् ७०,०००

टन स बढ कर ८ लाख टन हो जायगा। इसी प्रकार पार्टमिक (K_2O) खाद का उपभोग बढ कर दो लाख टन हो जायगा। हरी खाद का उपयोग ११८ लाख एकड भूमि पर से बढ कर ४१० लाख एकड भूमि म होने लगेगा।

(४) अच्छे बीज की अधिक उपज एवं वितरण—तृतीय योजना काल म १४८० लाख एकड अतिरिक्त भूमि म अच्छे बीज का उपयोग होने लगेगा। द्वितीय योजना म प्रत्येक विकास खण्ड म एक बीज का फार्म खोलने का आयोजन किया गया था। द्वितीय योजना के अन्त तक लगभग ४००० बीज के फार्मों की स्थापना होने का अनुमान है। तृतीय योजना के प्रारम्भ के वर्षों म ८०० बीज के अतिरिक्त फार्म स्थापित करने का आयोजन किया गया है।

(५) पौधे की सुरक्षा (Plant Protection)—द्वितीय योजना काल म पौधों की सुरक्षा के कार्यक्रम लगभग १६० लाख एकड भूमि पर सचालित किये गये। तृतीय योजना म इन कार्यक्रमों को लगभग ५०० लाख एकड भूमि पर लागू किया जायगा।

(६) अच्छे हल कृषि औजार एव वैज्ञानिक कृषि विधियों का उपयोग—प्रथम एव द्वितीय योजना म अच्छे औजारों एव वैज्ञानिक विधियों के उपयोग के लिये जो कार्यवाहियाँ की गयी, उनकी गति अत्यधिक मन्द रही है। तृतीय योजना म इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है। कृषि औजारों के निर्माण के लिये आवश्यक लोहा एव इस्पात राज्यों के कृषि विभागों द्वारा उपलब्ध कराया जायगा।

विशेषज्ञों द्वारा चुने हुए अच्छे कृषि औजारों को राज्य सरकारें किसानों तक पहुँचाने तथा उनके उत्पादन एव सरम्मत का प्रबन्ध करेंगी। द्वितीय योजना काल म चार अच्छे कृषि औजारों की जाँच एव प्रशिक्षण के केन्द्र खोले गये थे। तृतीय योजना म प्रत्येक राज्य म इस प्रकार के केन्द्र खोलने का आयोजन किया गया है जिससे किसानों को अच्छे औजारों के उपयोग का प्रशिक्षण एव सलाह दी जा सके। यह केन्द्र अच्छे कृषि औजारों का निर्माण कर सकेंगे। कृषि वर्कशाप २५ विस्तार प्रशिक्षण केन्द्रों (Extension Training Centres) पर खोल दी गयी हैं। तृतीय योजना म समस्त विस्तार प्रशिक्षण केन्द्रों पर कृषि वर्कशाप खोली जायेंगी जिनमे ग्रामीण स्तर के कार्यकर्ताओं मैकेनिक तथा किसानों को प्रशिक्षण दिया जायगा।

(७) जिला स्तर पर गहरी कृषि के कार्यक्रम—फोर्ड फाउन्डेशन की कृषि उत्पादन टीम की सिफारिशों के अनुसार विशेष चुने हुये जिलों म गहरी खेती को समस्त सुविधाएँ प्रदान करके कृषि उत्पादन को अनुमानित स्तर तक

बढाने का प्रयत्न किया जायगा। इन जिलो के अनुभवो का उपयोग धीरे-धीरे अन्य जिलो मे भी किया जायगा।

कृषि क्षेत्र के उत्पादन लक्ष्य—तृतीय योजना मे कृषि क्षेत्र के उत्पादन-लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

तालिका स० ८२—तृतीय योजना मे कृषि उत्पादन लक्ष्य[1]

वस्तु	इकाई	१९६०-६१ का उत्पादन	१९६५-६६ का अनुमानित उत्पादन	वृद्धि का प्रतिशत
खाद्यान्न	लाख टन	७६०	१०००	३१.६
तिलहन	,,	७१	९८	३८.०
गन्ना	गुड लाख टन	८०	१००	२५ ०
कपास	लाख गाँठें	५१	७०	३७ २
जूट	लाख गाँठें	४०	६२	५५ ०
नारियल	लाख नारियल	४५०००	५२७५०	१७ २
लाख (Lac)	हजार टन	५०	६२	२४ ०
चाय	लाख पौंड	७२५०	९०००	२४ १
तम्बाकू	हजार टन	३००	३२५	८ ३
कहवा (Coffee)	हजार टन	४८	८०	६७ ७
रबर	,,	२६ ४	४५	७० ५

तृतीय योजना मे विभिन्न राज्यो के कृषि उत्पादन के लक्ष्य तालिका स० ८३ के अनुसार पृष्ठ ४४०-४४१ पर देखें—

सामुदायिक विकास—द्वितीय योजना के अब तक सामुदायिक-विकास-कार्यक्रम ३,१०० विकास खण्डो म जिनमे लगभग ३७०,००० ग्राम सम्मिलित है, सचालित किया गया है। इनम से लगभग ८८० विकास खण्ड ५ वर्ष समाप्त करके सामुदायिक-विकास की दूसरी अवस्था मे प्रविष्ट कर गये हैं। अक्टूबर सन् १९६३ तक सामुदायिक-विकास-कार्यक्रम देश के समस्त ग्रामीण क्षेत्रों पर आच्छादित हो जायेगे। तृतीय योजना म २९४ करोड रुपया सामुदायिक विकास एव २८ करोड रुपया पचायतो के लिये निर्धारित किया गया है।

सामुदायिक-विकास-कार्यक्रमो मे कृषि उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करने का प्रायोजन किया गया है। राज्यो की योजनायें जिलो एव खण्डो की योजनाओ के आधार पर बनायी गयी हैं। ग्रामीण क्षेत्रो के स्थानीय साधनो एव कृषको के प्रयासो के प्रभावशाली उपयोग के लिये ग्रामीण उत्पादन योजनाएं निम्न तत्वो के आधार पर निर्धारित की गयी हैं। (कृपया पृष्ठ ४४२ देखें।)

1. *The Third Five Year Plan*, p. 317.

विभिन्न राज्यों के उत्पादन लक्ष्य

(गुड हजार टन) तृतीय के योजना के अन्त मे अनुमानित उत्पादन	वृद्धि का प्रतिशत	निलहन (हजार टन) १९६०-६१ का सम्भावित उत्पादन	तृतीय योजना के अन्त मे उत्पादन	वृद्धि का प्रनिशत	जूट (हजार टन) १९६०-६१ का सम्भावित उत्पादन	तृतीय योजना के अन्त मे उत्पादन	वृद्धि का प्रतिशत
७५०	१९६	१०७९	१६३७	५१७	—	—	—
१२०	२०.०	६०	८०	३३.३	८१३	१२१३	४९२
७२०	६३	३०	१०३	११००	८३९	१२५०	५२६
१०९	३१६	१०५०	१३५०	२८६	—	—	—
११८०	२४१	७१८	१०३९	४४७	—	—	—
८७	८१०	००	५१	१५५०	—	—	—
०६०	५९४	५३१	३८८	०२३	—	—	—
५०१	२५३	१०५०	१०४०	०७८	—	—	—
५१०	२३५	७००	८७५	२५.०	—	—	—
०३०	१३०.०	९०	२००	१०२२	३६१	३६१	१५३३
९००	१५४	१८५	३००	६०२	—	—	—
१८०	१०००	२७०	३८८	४००	—	—	—
४२००	०००	११८०	१३७५	४१९	८९	११९	३३७
१८७	४०१	४०	३०	५२०	१९८७	२८२७	४२३
|	—	| |	| |	—	—	—	—
१८	—	४	४	—	४१	८१	९७६
९९६३	२४२	७०८४	९८२०	३८६	४०३०	६१८१	५३.४

(१) सिंचाई की उपलब्ध सुविधाओं का पूर्णतम उपयोग, सामुदायिक सिंचाई के साधनों की मरम्मत आदि लाभ प्राप्त पाने वाले कृषकों द्वारा किया जाना, एवं उपलब्ध जल का मितव्ययता के साथ उपयोग ।

(२) एक से अधिक फसल उगाने वाले क्षेत्र में वृद्धि ।

(३) अच्छे बीज का ग्रामों में उत्पादन एवं वितरण ।

(४) खाद की उपलब्धि ।

(५) हरे एवं सड़े के खाद के कार्यक्रम ।

(६) अच्छी कृषि उत्पादन विधियों का उपयोग ।

(७) नवीन छोटी श्रेणी की सिंचाई योजनाओं का सामुदायिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर स्थापन एवं संचालन ।

(८) अच्छे कृषि औजारों के उपयोग के कार्यक्रम ।

(९) सागभाजी एवं फलों के उत्पादन में वृद्धि ।

(१०) मुर्गी पालन, मछली एवं डेरी के उत्पादन के विकास-कार्यक्रम ।

(११) पशु-पालन—अच्छे सांडों का ग्रामों में रखना ।

(१२) ग्रामों में ईंधन के पेड़ों एवं चरागाहों के विकास कार्यक्रम

सामुदायिक विकास के साथ समस्त देश में पंचायत राज्य का संचालन करने का प्रबन्ध किया जाना है । पंचायतों के प्रभावशाली संचालन हेतु जिले के प्रशासन में विवेकपूर्ण परिवर्तन भी किये जायेंगे ।

प्रथम एवं द्वितीय योजना के अनुभवों से ज्ञात होता है कि कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों का लाभ अधिकतर ऐसे किसानों को मिला है, जिनके पास अधिक भूमि है । छोटे कृषकों एवं कृषि मजदूरों को सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत उपलब्ध सुविधाओं का लाभ बहुत ही सीमित मात्रा में मिल पाया है । तृतीय योजना में खण्ड अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि विभिन्न भूमि सुधार सम्बन्धी विधानों के कार्यान्वित करने में सहयोग दें, ग्रामीण क्षेत्रों में सहायक रोजगार के अवसर बढ़ायें । ग्रामीण उद्योगों एवं दस्तकारों की उत्पादकता बढ़ावें, श्रमिक सहकारितायें संगठित करें तथा अपने क्षेत्र की उपलब्ध जन शक्ति का पूर्णतम उपयोग करें । ग्रामीण वर्कशाप द्वारा लगभग २५ लाख व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान करने का आयोजन किया गया है । इन वर्कशापों को पहले अधिक जनसंख्या वाले ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित किया जायगा । तृतीय योजना में ९० करोड़ रुपया खादी, अम्बर खादी एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए निर्धारित किया गया है । लघु उद्योग एवं इंडस्ट्रियल एस्टेट (Industrial Estates) को ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किया जाना

है। ५००० से अधिक जनसख्या वाले सभी ग्रामो एव नगरो मे से तथा २००० से ५००० तक की जनसख्या वाले ५०% गामो मे बिजली पहुँचाने का आयोजन किया गया है। इन सब सुविधाओ के उपयुक्त उपयोग से कृषि मजदूर की आर्थिक दशा मे सुधार होने की सम्भावना है।

सिंचाई एव शक्ति

तृतीय योजना की सिंचाई परियोजनाओ का उद्देश्य उपलब्ध सुविधाओ से अधिकतम लाभ प्राप्त करना तथा इन सुविधाओ द्वारा उत्पादित हानियो जैसे अतिरिक्त पानी का एकत्रित होने से (Water Logging) भूमि बेकार होना आदि को रोकना है। योजना मे इसीलिये तीन प्रकार की परियोजनाओ को अधिक महत्व दिया गया है—

(१) द्वितीय योजना की विभिन्न परियोजनाओ को पूरा करना तथा खेतो तक सिंचाई नालियाँ बनाना।

(२) अतिरिक्त जल के एकत्रित होने को रोकने तथा पानी की निकासी के लिये नालियाँ बनाने की परियोजनायें।

(३) मध्यम श्रेणी की सिंचाई परियोजनायें—तृतीय योजना के सिंचाई के आयोजन ६६१ करोड रुपये मे से ४३६ करोड रुपया द्वितीय योजना मे प्रारम्भ की हुई योजनाओ को पूरा करने पर, १६४ करोड रुपया नवीन सिंचाई योजनाओ तथा ६१ करोड रुपया बाढ नियन्त्रण पर व्यय किया जायगा। योजना काल मे बडी एव मध्यम सिंचाई परियोजनाओ द्वारा १२८ लाख एकड भूमि को सिंचाई के लिये अतिरिक्त सुविधायें उपलब्ध होगी जिसमे से ११५ लाख एकड भूमि की सिंचाई की जायगी। इसी प्रकार लघु सिंचाई योजनाओ से १२८ लाख एकड भूमि के लिये सिंचाई सुविधायें उपलब्ध होगी जिसम से ८५ लाख एकड भूमि पर सिंचाई की जायगी। इस प्रकार तृतीय योजना काल म २०० लाख एकड भूमि की अतिरिक्त सिंचाई की जायगी और सिंचित भूमि ७०० लाख एकड से बढ कर ९०० लाख एकड हो जायगी। तृतीय योजना म ९५ नवीन मध्यम श्रेणी की सिंचाई परियोजनाएं प्रारम्भ की जायेगी।, पजाब मे ब्यास नदी पर इन्डस वाटर सन्धि १९६० के अन्तर्गत स्टोरेज परियोजना, तथा बहुउद्देशीय परियोजनाओ के सिंचाई कार्यक्रम सम्मिलित किये गये हैं। तृतीय योजना की सिंचाई एव शक्ति की परियोजनाओ के लिये १८,१०० तात्रिक व्यक्तिया (Technical Personnel) की आवश्यकता होगी।

तृतीय योजना मे शक्ति के साधनो का निर्माण, उनकी प्रति किलोवाट पूंजी-

गत लागत, विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओ, उत्पादित शक्ति की प्रति किलोवाट-घटा की लागत, निर्माण म लगने वाला समय आदि के आधार पर निर्धारित किया गया। योजना म एक न्यूकिलियर शक्ति का स्टेशन के निर्माण तारापुर (बम्बई) म करने का आयोजन है। इनम दो रिएक्टर (Reactors) होगे जिनम से प्रत्येक १५० M.W. शक्ति उत्पादित करेगा। तृतीय योजना मे १०३६ करोड रुपये का आयोजन शक्ति के विकास के लिये सरकारी क्षेत्र मे किया गया है और ५० करोड रुपये के विनियोजन का निजी क्षेत्र मे आयोजन किया गया है। इस राशि मे ६६१ करोड रुपया जल विद्युत तथा थर्मल (Thermal) शक्ति उत्पादन की परियोजनाओ पर, ५१ करोड रुपया उद्जन-शक्ति (Atomic Power) तथा ३२७ करोड रुपया बिजली पहुँचाने एव वितरण की योजनाओ पर व्यय होना है। योजना मे एक और न्यूकिल्यर शक्ति का स्टेशन (सम्भवत राजस्थान म) स्थापित करने का आयोजन है। शक्ति की परियोजनाओ के लिये ३२० करोड रुपये की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता का अनुमान है। तृतीय योजना म विभिन्न प्रकार के शक्ति के कारखानो की उत्पादन-क्षमता निम्न प्रकार रहने का अनुमान है—

तालिका स० ८४—विभिन्न प्रकार की इकाईयो की शक्ति-उत्पादन-क्षमता[1] (लाख किलोवाट मे)

	१९६०-६१ (अनुमानित)	१९६५ ६६ (अनुमानित)
जलविद्युत कारखान	१९ ३	५१ ०
स्टीम क कारखान	८४ ६	७० ८
तेल से चलन वाले कारखान	३ १	३ ६
उद्जन शक्ति के कारखान		१ ५
योग	५७ ०	१२६ ९

तृतीय योजना मे ग्रामीण क्षेत्रो के विद्युतीकरण पर विशेष जोर दिया गया है। १०५ करोड रुपये का आयोजन ग्रामीण विद्युतीकरण के लिये किया गया है। देश के ५००० मे अधिक जनसख्या वाले समस्त ग्रामो एवं नगरो मे बिजली पहुँचाने का लक्ष्य है। योजना काल मे २००० से ५०००

1 *The Third Five Year Plan*, p 402.

तक की जनसंख्या वाले ५०% ग्रामो मे बिजली पहुँचान का अनुमान है। तृतीय योजना के अन्त तक लगभग ४३,००० नगरो एव ग्रामो मे बिजली पहुँच जायगी और लगभग ५,१८,१०७ ऐसे ग्रामो मे जिनकी जनसख्या २००० से ५००० है, बिजली पहुँचाना शष रह जायगा।

उद्योग एव खनिज

ग्रामीण एव लघु उद्योग—तृतीय योजना मे प्रथम एव द्वितीय याजना के समान ही ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास द्वारा रोजगार के विस्तार, अधिक उत्पादन तथा अधिक समान वितरण के उद्देश्यो की पूर्ति की जानी है। परन्तु इन उद्देश्यो की पूर्ति तृतीय योजना मे बडे पैमान पर करन को आवश्यकता है। तृतीय योजना के कार्यक्रम निम्नलिखित उद्देश्या को दृष्टिगत करके निर्धारित किये गये हैं—

(१) कुशलता म सुधार, तान्त्रिक सलाह की उपलब्धि, अच्छे औजार एव सामग्री, साख, आदि प्रत्यक्ष सुविधाओ को अधिक महत्त्व दकर श्रमिक की उत्पादकता म सुधार एव उत्पादन लगत को कम किया जाना।

(२) धीरे धीरे अनुदानो (Subsidies), विक्रय व्यवहार (Sales Rebate) तथा सुरक्षित बाजारो को कम करना।

(३) ग्रामीण क्षत्रो एव नगरा म उद्योगो का विस्तार एव विकास।

(४) वृहद् उद्योगो के सहायक उद्योगो के रूप म लघु उद्योगो का विकास।

(५) दस्तकारो को सहकारी सस्थाओ मे सगठित करना।

तृतीय योजना म ग्रामीण एव लघु उद्योगो के लिये तान्त्रिक एवं प्रबन्धन सम्बन्धी व्यक्तियो की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ग्रामीण क्षत्रो म समुदाय प्रकार (Cluster Type) की सस्थाओ की स्थापना की जायगी जिनके द्वारा कुछ ग्रामो के समूहो को विभिन्न दस्तकारियो म प्रशिक्षण प्रदान किया जायगा।

खादी, ग्रामीण उद्योगो एव हस्तकला के क्षेत्र मे प्रशिक्षण के कार्यक्रम उनके विकास के कार्यक्रम मे सम्मिलित किये गये हैं। तृतीय योजना मे समस्त ग्रामीण लघु उद्योगो मे अच्छे औजारो के उपयोग को महत्व दिया जायगा। लघु उद्योगो के क्षेत्र मे प्रशिक्षण का प्रबन्ध करन के लिये लघु उद्योग सेवा-सस्थाओ (Small Scale Service Institutes) द्वारा औद्योगिक विस्तार सेवा के केन्द्रो को खण्ड स्तर पर स्थापित किया जायगा। तृतीय योजना मे साख सुविधाओ के विस्तार का आयोजन किया गया है परन्तु सामान्य साख की आवश्यकताओ की पूर्ति क लिये अधिकोषण सस्थाओ को कार्यवाही करनी है। योजना मे तान्त्रिक सुधार, उत्पादन लागत का एकीकरण (Pooling

of Production Costs) तथा यातायात एव म य वितरण क व्यय का कम करक ग्रामाण एव लघु उद्योगा द्वारा उत्पादित वस्तुआ क मूल्य कम किये जायेंगे जिसस व अपना उत्पादन गहराई स कर हा सकें । मूल्या क कम होन पर प्रादान तथा प्रवहार का व्यय कर लिया जायगा ।

तृतीय योजना म ग्रामाण एव लघु उद्योगा क विकास क लिय २६४ करोड रुपय का आयोजन किया गया है जबकि द्वितीय योजना म इस मद पर १८० करोड रुपया व्यय होन का अनुमान है । इस राशि म स १४१ करोड रुपया राज्या का परियोजनाओ पर और १२३ करोड रुपया केन्द्र सरकार द्वारा संचालित परियोजनाओ एव कार्यक्रमा पर व्यय किया जायगा । विभिन्न उद्योगा के लिय निर्धारित राशियाँ निम्न प्रकार है—

तालिका सं० ८१—ग्रामीण एव लघु उद्योगा का निर्धारित व्यय

(करोड रुपया म)

उद्योग	द्वितीय योजना का अनुमानित व्यय	तृतीय योजना का निर्धारित व्यय
हाथकरघा उद्योग	२९ ७	३४ ०
हाथकरघा क्षेत्र म शक्ति स चलन वाल करघ	२ ०	४ ०
खादी एव ग्रामीण उद्योग	८१ ४	९२ ४
रेशम के कीड पालन का उद्योग (Sericulture)	३ १	७ ०
नारियल की जटा का उद्योग (Coir Industry)	२ ०	३ २
दस्तकारी (Handicrafts)	४ ८	८ ६
लघु उद्योग	४४ ४	८४ ६
औद्योगिक एस्टेट	११ ६	३० २
	१८० ०	२६४ ०

उपयुक्त राशियों के अतिरिक्त इन उद्योगा के विकास हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रमा म २० करोड रुपयो का आयोजन किया गया है। पुनर्वास (Rehabilitation) समाज कल्याण एव पिछडी जातियों के कल्याण के कार्यक्रमा म भी इन उद्योगों के विकास के लिए आयोजन किया गया है। निजी क्षेत्र म इन उद्योगा पर २७५ करोड रुपया विनियोजित होन का अनुमान है।

आदि जैसी वस्तुओं के उत्पादन को घरेलू उद्योगों द्वारा बढाना जिससे इनकी पूर्ति की जा सके ।

तृतीय योजना में औद्योगिक कार्यक्रमों पर विनियोजित होने वाली समस्त राशि २९९३ करोड़ रुपया है (इस राशि में पोत उद्योगों को दी जाने वाली सहायता हिन्दुस्तान शिपयार्ड को दिया जानेवाला निर्माण अनुदान आदि सम्मिलित नहीं है) जिसमें से १८०८ करोड़ रुपया सरकारी क्षेत्र में तथा ११८५ करोड़ रुपया निजी क्षेत्र में विनियोजित किया जायगा । सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिये ८९० करोड़ रुपया तथा निजी क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिये ४७८ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी ।

इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में १५० करोड़ रुपया प्रतिस्थापन (Replacement) पर व्यय होगा जिसमें ५० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी । सरकारी क्षेत्र में ४७८ करोड़ रुपया खनिज विकास तथा १३३० करोड़ रुपया औद्योगिक विकास पर विनियोजित होगा । इसी प्रकार निजी क्षेत्र में ६० करोड़ रुपया खनिज विकास पर और ११२५ करोड़ रुपया औद्योगिक विकास पर विनियोजित होगा । विनियोजन की समस्त राशि औद्योगिक एवं खनिज विकास के लिए अभी २५७० करोड़ रुपया निर्धारित की गयी है क्योंकि इस समय साधनों की अधिक उपलब्धि सम्भावित नहीं है । परन्तु यह अनुमान लगाया गया कि विभिन्न औद्योगिक कार्यक्रमों को लक्ष्य के अनुसार पूरा करना सम्भव न हो सकेगा और उन्हें चौथी योजना में ले जाया जायगा । ऐसी परिस्थिति में विभिन्न परियोजनाओं की राशि ठीक-ठीक निर्धारित करना सम्भव नहीं है ।

सरकारी क्षेत्र की परियोजनाएं

तृतीय योजना काल में द्वितीय योजना में प्रारम्भ हुई सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक परियोजनाओं को पूरा किया जायगा । रूरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर के इस्पात के कारखानों को पूरा किया जायगा और इनकी उत्पादन क्षमता तृतीय योजना के अन्त तक ३० लाख टन इस्पात के ढेले तथा ७ लाख टन पिण्ड लोह (बिक्री के लिए) हो जायगी । रूरकेला के खाद के कारखाने को पूरा करके उस की उत्पादन क्षमता १,२०,००० टन नाइट्रोजन हो जायगी, राँची के भारी मशीनों के कारखाने तथा ढालन आदि (Foundry Forge Shop) के कारखाने पूरे हो जायेंगे और इनकी उत्पादन क्षमता क्रमश: ४५,००० टन तैयार मशीनें तथा ६४,००० टन ढला हुआ सामान होगी । इसके अतिरिक्त जो कारखाने पूरे किये जायेंगे, वे इस प्रकार हैं—

कारखाने की स्थापना होगी जिसकी उत्पादन क्षमता ६३ लाख वर्ग मीटर कच्ची फिल्म तथा फोटो के कागज आदि होगी।

(६) बंगलोर में २५ करोड रुपये की लागत से घड़ियो का कारखाना खोला जायगा जिसकी उत्पादन-क्षमता २६०,००० घड़ियाँ होगा।

(७) पिंजोर (पजाब) में मशीनो के औजार बनाने का कारखाना ८ करोड रुपये की लागत से स्थापित किया जायगा। इसकी उत्पादन क्षमता १००० मशीनो के औजार, जिनकी कीमत ३५ करोड रुपया अनुमानित है, होगी।

(८) भिलाई मे ३ करोड रुपये की लागत पर Basic Refractories का कारखाना खोला जायगा।

(९) गुजरात में तेल शोधन का कारखाना ३० करोड रुपये की लागत पर खोला जायगा।

(१०) भारी निर्माण (Structural) के सामान तथा प्लेट आदि के कारखाने की स्थापना वर्धा (महाराष्ट्र) में १५ करोड रुपये की लागत पर होगी।

(११) गोरखपुर में खाद के कारखाने की स्थापना १८ करोड रुपये की लागत पर की जायगी जिसकी उत्पादन-क्षमता ८०,००० टन नाइट्रोजन के बराबर होगी।

(१२) होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में सिक्योरिटी (Security) कागज के कारखाने की स्थापना ५३ करोड रुपये की लागत परहोगी और इसकी उत्पादन-क्षमता १५०० टन सिक्योरिटी कागज होगी।

(१३) बुकारो मे २०० करोड रुपये की लागत पर इस्पात का कारखाना खोलने की योजना है। इसकी उत्पादन-क्षमता १० लाख टन इस्पात के ढले तथा ३,५०० ० टन लौह पिण्ड बेचन के लिये होगी।

(१४) दुर्गापुर मे धातु मिश्रण तथा औजारो के इस्पात का कारखाना ५० करोड रुपये की लागत पर स्थापित होगा जिसकी उत्पादन-क्षमता ४८,००० टन तैयार माल होगी।

(१५) कोचीन में दूसरा समुद्री जहाज बनाने का कारखाना २० करोड रुपये की लागत पर स्थापित किया जायगा।

(१६) भारी दबाव के बायलर बनाने का कारखाना त्रुचिरापल्ली (मद्रास) मे १५ से २० करोड रुपये की लागत पर स्थापित किया जायगा।

इन नवीन कारखानो की स्थापना के अतिरिक्त राँची के भारी मशीनो तथा ढलाई के कारखान, दुर्गापुर के खनिज मशीन के कारखाने, दुर्गापुर भिलाई तथा रूरकेला के इस्पात के कारखाने हिन्दुस्तान मशीन टूल्स के कारखाने,

घडियाँ	हजार	—	—	३६०	२४०
रेलवे इंजन (स्टीम)	सख्या	३००	२६५	३००	११७५ पाँच वर्षों में
रेलवे इजन (डिजिल)	,,	—	—	अप्राप्य	४३४ (,,)
रेलवे इजन (बिजली)	,,	—	—	६०	२३२ (,,)
मोटर गाडियाँ	हजार	५३.५	५३.५	१००	१००
कृषि औजार एव मशीनें	,,	२४७.०५	१३०.६	२६८	२२६
बाईस्किल	लाख	२२	१०.५	२२	७०
सिलाई की मशीनें	हजार	२६८	२६७	७००	७००
सरकारी क्षेत्र मे भारी बिजली का सामान	करोड रुपयो म	—	—	८०.०	८०.०
खाद (नाइट्रोजन मे)	हजार टन	२४८	११०	१०००	८००
खाद (फोस्फेटिक P_2O_2 म)	,,	६०	५५	५००	४००
भारी रसायन	,,	८६०.३	५८६.८	२७६८.५	२३६८
सीमेंट	लाख टन	९०	८५	१५०	१३०
मिल मे बना कपडा	लाख गज	२१०००	१७५००	२२५००	२२५००
निर्मित जूट	हजार टन	१२००	१०६५	१२००	११००
शक्कर	लाख टन	२२.५	३०	३५	३५
नमक	,,	३९	३७	६५	५४
खनिज तेल के उत्पादन	,,	६०.२ (क्रूड तेल)	५६.७	१०७.७ (क्रूड तेल)	९८.६

तृतीय योजना मे उन्ही उद्योगो को विशेष महत्व दिया गया है जिनके द्वारा स्वयं स्फूर्त अर्थ व्यवस्था का निर्माण सम्भव हो सके। इसी कारण इस्पात, मशीन-निर्माण तथा उत्पादक वस्तुओ के निर्माण करने वाले उद्योगो के विकास एव विस्तार के लिये अधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी है। इन वस्तुओ के उत्पादन को शीघ्रता के साथ बढा कर देश को आवश्यकताओ की पूर्ति घरेलू उत्पादन से करने का लक्ष्य है। विभिन्न मदो के निर्देशाको म निम्न प्रकार वृद्धि होने की ाशा है—

तालिका स० ८७—औद्योगिक उत्पादन के निर्देशांक (१९५०-५१=१००)

समूह	१९६०-६१ का निर्देशांक	१९६५-६६ मे अनुमानित निर्देशांक	१९६०-६१ के स्तर मे १९५५-६६ की वृद्धि का प्रतिशत
सामान्य निर्देशांक	१९४	३२९	७०
सूती वस्त्र	१३३	१५७	१८
लोहा एवं इस्पात	२३८	६३७	१६८
मशीनें सभी प्रकार की	५०३	१२२४	१४३
रसायन	२८८	७२०	१५०

खनिज विकास

तृतीय योजना के औद्योगिक विस्तार के कार्यक्रमो को सुचारुरूप से संचालित करने के लिये खनिज खोज एव खनिज विकास के विस्तृत कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक है। देश के खनिज साधनो की खोज के मुख्य उद्देश्य हैं—

(१) उन खनिज एव धातुओ के उपयोगी सचयो की खोज करके स्थान निश्चय करना जिनके लिये वर्तमान मे देश पूर्णत अथवा अंशत विदेशो पर निर्भर रहता है।

(२) अर्थ व्यवस्था की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु कच्चा लोहा, बौक्साइट, जिप्सम कोयला, चूने का पत्थर आदि के अतिरिक्त सचयो का पता लगाना।

(३) निर्यात के लिये कच्चे लोहे के सचयो का पता लगाना तथा नयी खानें स्थापित करना।

तृतीय योजना मे खनिज विकास के लिये ४७८ करोड रुपया सरकारी क्षेत्र मे तथा ६० करोड रुपया निजी क्षेत्र म व्यय होगा। खनिज विकास के लक्ष्य निम्न प्रकार हैं—

तालिका स० ८८—तृतीय योजना मे खनिज विकास के लक्ष्य

मद		१९६० ६१ का उत्पादन	१९६५-६६ का लक्ष्य
ताँबा	(हजार टन)	८·९	२०·०
सीसा	,,	३·५	८०
जस्ता	,,	—	१५
कोयला	(लाख टन)	५४६ २	९७०
कच्चा लोहा	(,,)	१०५ ?	३२०
खनिज तेल	(,,)	६० २	९८ ६

यातायात एव सचार

जुलाई १९५९ म यातायात नीति एव समन्वय समिति (नियोगी समिति) की स्थापना की गयी । इस समिति को यातायात की दीर्घकालीन नीति के सम्बन्ध मे सलाह देनी थी और इस नीति के अन्तर्गत ही यातायात के विभिन्न साधनों का अगले ५ से १० वर्ष म महत्व निश्चित किया जाना है । इस समिति ने फरवरी १९६१ म अपनी प्रारम्भिक रिपोर्ट योजना आयोग को पेश की जिसमे रेल एव सडक यातायात के समन्वय के सम्बन्ध म विस्तृत विवरण एवं आंकडे दिये गये । समिति की अन्तिम रिपोर्ट आने पर तृतीय योजना के निर्धारित यातायात के कार्यक्रमो पर पुन विचार किया जायगा।

तृतीय योजना म यातायात के कार्यक्रम जिन सामान्य विचारधाराओ पर आधारित हैं, व निम्न प्रकार है—

(१) तृतीय योजना मे यह मान लिया गया है कि अधिकतर लोहा, कोयला, अन्य कच्चे माल आदि भारी वस्तुएं जिनका उपयोग इस्पात कारखानो में होता है रेलों द्वारा ले जायी जायेंगी । इस कारण से रेलो मे अधिक विनियोजन अत्यन्त आवश्यक है ।

(२) यद्यपि देश मे यातायात के साधनो की प्राय कमी है और यह कमी तृतीय योजना म जारी रहने की सम्भावना है परन्तु यातायात की कमी होते हुए भी रेल एव सडक यातायात म कुछ मार्गों एव कुछ वस्तुओ मे प्रतिस्पर्धा आवश्यक रूप स समाप्त नहीं हो जायगी । यातायात नीति एव समन्वय समिति रेल एव सडक यातायात म समन्वय स्थापित करन के लिये सुझाव देगी ।

(३) भारत म रेल यातायात व्यवसाय आर्थिक दृष्टिकोण से सुदृढ व्यवसाय ही नहीं है अपितु यह व्यवसाय तृतीय योजना के साधनो की बडी मात्रा मे अनुदान भी प्रदान करेगा । भारतीय रेलो म पूंजीगत विनियोजन म निरन्तर वृद्धि होती जा रही है और इस वृद्धि को भविष्य म बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक होगा यदि हम इस व्यवसाय का लाभप्रद व्यवसाय बनाये रखना चाहते हैं । ऐसी परिस्थिति म यह बात विचारणीय है कि भविष्य म रेल व्यवसाय के सामान्य बजट को अनुदान देना चाहिये अथवा नहीं । यातायात नीति एव समन्वय समिति इस सम्बन्ध में भी सुझाव देगी ।

रेल यातायात—तृतीय योजना में रेल वाहन यातायात मे लगभग ५९% की वृद्धि होने की सम्भावना है अर्थात् १९६५-६६ तक वाहन यातायात २४५० लाख टन होने की सम्भावना है । इस्पात एव इस्पात कारखानो के कच्चे माल मे ,० लाख टन, कोयले मे ४०५ लाख टन, सीमेंट म ५५ लाख टन तथा सामान्य

करोड रुपये के विदेशी विनिमय की आवश्यकता का अनुमान है ।

सडक यातायात—तृतीय योजना म सडक यातायात के कार्यक्रमा म सडक यातायात की २० वर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य को दृष्टिगत रखा गया है अर्थात् विकसित एव कृषि क्षेत्र का कोई ग्राम पक्की सडक से ४ मील से दूर नहीं रहे तथा किसी भी अन्य प्रकार की सडक से १½ मील से अधिक दूर न रहे। तृतीय योजना मे सडक विकास कायक्रमो की लागत ३२४ करोड रुपया है जिसम से २४४ करोड रुपया राज्यो के कार्यक्रमा तथा ८० करोड रुपया केन्द्रीय सरकार के कार्यक्रमो की लागत अनुमानित है। राज्य सरकारो क नवीन सडको के विकास कायक्रम तीन विचारधाराओ पर निर्धारित किये जाते ह—

(१) पहुँच के बाहर (Inaccessible) क्षेत्रो मे सडको का आयोजन करना।

(२) विभिन्न क्षेत्रो की परियोजनाओ जैसे सिचाई, शक्ति तथा उद्योग की परियोजनाओ की पूर्ति करने के लिए सडकें निर्माण करना।

(३) राज्यो के पुनर्गठन के कारण नवीन सडको का आयोजन करना।

तृतीय योजना काल म राज्यो द्वारा बनायी जानेवाली सडको का ठीक ठीक अनुमान नहीं लगाया गया है फिर भी यह सम्भावना की जाती है कि इस काल म २५ ००० मील लम्बी पक्की सडकें (Surfaced Roads) बनाने की सम्भावना है। केन्द्रीय सडक विकास के कायक्रमो म वतमान राष्ट्रीय मार्गो के सुधारने के लिए विशेष आयोजन किया गया है। सीमित साधनो के कारण केवल एक नवीन सडक उत्तरी सलामारा से ब्रह्मपुत्र ब्रिज (Brahamputra Bridge) तक १०० मील लम्बी बनायी जायगी। १९६५ ६६ तक व्यापारिक गाडियो की सख्या २,०० ००० (१९६० ६१) से बढ कर ३,६५,००० हो जायगी अर्थात् ८२% की वृद्धि हो जायगी। इस प्रकार वस्तु वाहन गाडियो की सख्या १ ६० ००० से बढ कर २,८८,००० हो जायगी। यातायात नीति एव समन्वय समिति की प्रारम्भिक रिपोर्ट के अनुसार सडको द्वारा किराये पर माल भेजन के यातायात म पाँच वर्षो म १२०% की वृद्धि होने का अनुमान है अर्थात् १०,६,००० लाख टन मील (१९६० ६१) से बढ़ कर २,३३,४०० टन मील हो जायगी।

जहाजी यातायात—द्वितीय योजना के लक्ष्य ९ लाख G R T की सम्पूर्णत प्राप्ति का अनुमान है। इस समय भारतीय जहाज देश के समुद्री व्यापार का ८% से ९% भाग लाते एव ले जाते है। तृतीय योजना मे ५५ करोड रुपयो का आयोजन जहाजो के लिए किया गया है। इसके अतिरिक्त ४ करोड

पूँजी ३ करोड रुपया है। *यह कारखाना १९६३ ६४ तक १००० मशीने प्रति* वर्ष उत्पादित करने लगेगा।

तृतीय योजना म ११ करोड रुपये का आयोजन आकाशवाणी प्रसारण क लिये किया गया है। आकाशवाणी प्रसारण के विस्तार की परियोजना द्वितीय *योजना मे बनायी गयी थी जो कि तृतीय योजना काल म पूरी होगी। इस परि-* योजना के अन्तर्गत ५५ मीडियम वेव (Medium Wave) तथा २ शॉर्ट वेव (Short Wave) के ट्रासमीटर्स स्थापित किये जायेंगे। इस योजना की पूर्ति क फलस्वरूप मीडियम वेव की आन्तरिक सेवाओ द्वारा समस्त क्षेत्र का ६१% *तथा जनसख्या का* ७४% आच्छादित हो जायगा।

शिक्षा

तृतीय योजना काल मे स्कूल जाने वाले बच्चों की सख्या ४३.५४ लाख (१९६०-६१) से बढ़ कर ६३६.५ हो जायगी अर्थात् ६ १७ वर्ष क बच्चो *की समस्त सख्या का ५० १% स्कूल जान लगेगा।* ६-११ वष के बच्चो मे ७६ ४% ११ से १४ वर्ष क बच्चो म २८ ६, १४ स १७ वर्ष क बच्चो मे १५ ६% स्कूल जाने लगेंगे। योजना म प्राइमरी शिक्षा के स्कूलो म ७३,०००, मिडिल स्कूलो में १८,१०० तथा हाई स्कूलो म ५२०० की वृद्धि होन की *सम्भावना है।*

विश्वविद्यालीय शिक्षा प्राप्त करन वाल विद्यार्थियो की सख्या ९,००,००० (१९६० ६१ म) से बढ कर तृतीय योजना म १२ ००,००० हो जायगी। १९६०-६१ की विश्वविद्यालयो की सख्या ४६ तृतीय योजना मे ५८ हो जायगी। *इसी प्रकार कालेजो की संख्या १,०५० से बढ कर १,४०० हो जायगी। तृतीय* योजना म सामान्य शिक्षा के लिये ४१८ करोड रुपये का आयोजन है जिसमे १० करोड सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिये सम्मिलित है। इस राशि मे स ०९ करोड रुपया प्राथमिक शिक्षा, ८८ करोड रुपया माध्यमिक शिक्षा, ८२ ०० रुपया विश्वविद्यालीय शिक्षा ६ करोड रुपया सामाजिक शिक्षा, १२ करोड शारीरिक शिक्षा (Physical Education) तथा युवक क याण तथा ११ करोड रुपया अन्य कार्यक्रमो क लिये आयोजित है।

तृतीय योजना म १४२ करोड रुपया तात्रिक शिक्षा क लिये निर्धारित किया गया है। योजना काल म डिग्री तथा डिप्लोमा कोस म प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियो की सख्या बढ कर क्रमश १३,८६० (१९६० ६१) से बढ कर १९,१४० तथा २५,२७० (१९६०-६१) से बढ़ कर ३७,३९० हो जायगी। तृतीय योजना मे १७ नवीन इन्जीनियरिंग कॉलेज जिनम ७ क्षेत्रीय कॉलेज सम्मलित है, स्थापित

नहीं होती है परन्तु उपभोक्ता वस्तुओं की पर्याप्त वृद्धि एवं उपलब्धि की अनुपस्थिति में हीनार्थ प्रबन्धन मूल्यों की हानिकारक वृद्धि का कारण बन सकता है।

कुछ लोगों का विचार है कि तृतीय योजना में करों से प्राप्त होने वाली राशि २२६० (५५० चालू आय से बचत एवं १७१० अतिरिक्त कर) करोड़ रुपयों निर्धारित करने से जन साधारण पर कर-भार अत्यधिक हो जायगा जिससे व्यवसाइयों को अधिक उत्पादन के प्रति अधिक प्रोत्साहन नहीं रहेगा और जनसाधारण के जीवन-स्तर पर अनुचित प्रभाव पड़ेगा। सरकारी व्यवसायों से भी अधिक राशि प्राप्त करने का अर्थ भी यही लगाया जाता है कि इसके द्वारा सरकारी व्यवसायों द्वारा उत्पादित सेवाओं एवं वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जायगी जिसका भार भी जन साधारण को वहन करना पड़ेगा। यदि हम इस विचारधारा को कुछ सीमा तक सत्य मान लें, तो भी इसे दोषपूर्ण कहना उचित न होगा। कर एवं सरकारी व्यवसायों से अधिक राशियाँ न प्राप्त करने का अर्थ होता है कि हीनार्थ प्रबन्धन की राशि को बढ़ा दिया जाय जिससे अर्थ-व्यवस्था को और अधिक हानि पहुँचने तथा जन साधारण के जीवन-स्तर में कमी आने की और अधिक सम्भावना हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में करों से अधिक साधन उपलब्ध करना अनुचित नहीं मानना चाहिये। भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय का केवल ७ ।% भाग कर के रूप में प्राप्त होता था। यह प्रतिशत द्वितीय योजना के अन्त तक ८ ९% हो गया और तृतीय योजना के अन्त तक यह बढ़ कर ११ ४% होने का अनुमान है। यदि हम इस प्रतिशत का संसार के अन्य देशों में राष्ट्रीय एवं कर के प्रतिशत की तुलना करें तो हमें ज्ञात होगा कि भारत में कर भार पिछड़े हुए राष्ट्रों की तुलना में भी कम है। संसार के विभिन्न राष्ट्रों में राष्ट्रीय आय एवं कर का प्रतिशत निम्न प्रकार है—

तालिका सं० ६१—राष्ट्रीय आय एवं कर प्रतिशत

(१) टंगानाइका	१२ २३
(२) यूगैण्डा	१७ १४
(३) भारत	८ ९
(४) नाइजीरिया	८ ४१
(५) सीलोन	१९ ३५
(६) गोल्डकोस्ट	२२ २०
(७) जमैका	१३ २८
(८) ब्रिटिश गिनी	१७ ६७
(९) कोलम्बिया	१२ ८७

(१०) इटली	२३·५३
(११) फ्रास	२८·०६
(१२) ब्रिटेन	३७·०६
(१३) न्यूजीलैण्ड	३३·१८
(१४) स्वीडन	३३·३१
(१५) सयुक्त राज्य अमरीका	२६·३१

उपर्युक्त तालिका के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारत मे तृतीय योजना काल म राष्ट्रीय आय का कर ११·४% होने पर भी जन-साधारण पर अत्यधिक भार नही पडेगा। कर की राशि कम रखने से एक ओर विकास के लिये कम साधन उपलब्ध होने है और दूसरी ओर जन-साधारण के पास अधिक क्रय शक्ति रहती है जिससे वह अधिक उपभोक्ता वस्तुओ की माँग करके मूल्यो की वृद्धि को प्रेरणा देता है। तृतीय योजना म अप्रत्यक्ष करो मे पर्याप्त वृद्धि कर दी जायगी क्योकि प्रत्यक्ष कर देने वालो की सख्या भारत मे अत्यन्त कम है और इनसे विकास के लिये अधिक साधन उपलब्ध नही हो सकते है।

तृतीय योजना मे विदेशी विनिमय की आवश्यकता एव साधन

तृतीय योजना क १०४०० करोड रुपये के विनियोजन में जो विभिन्न कार्य-क्रम सम्मिलित है, इनम लगभग २०३० करोड रुपये की विदेशी आयात की आवश्यकता होने का अनुमान है। सरकारी एवं निजी क्षेत्र के विभिन्न विनियोजन की मदा म विदेशी विनिमय की आवश्यकता निम्न प्रकार अनुमानित है—

तालिका स० ६२—तृतीय योजना के कार्यक्रमो की विदेशी विनिमय की आवश्यकताएँ[1]

करोड रुपयो मे

सरकारी क्षेत्र	समस्त विनियोजन	विदेशी विनिमय की आवश्यकता
कृषि एव सामुदायिक विकास	६१०	३०
बडी एव मध्यम श्रेणी की सिचाई योजनायें	६५०	५०
शक्ति	१०१२	३२०
ग्रामीण एव लघु उद्योग	१००	२०
वृहद् एव मध्यम श्रेणी के उद्योग एव खनिज (खनिज तल सहित)	१४७०	६६०

1. *Third Five Year Plan*, p. 110.

यातायात एवं संचार	१४८६	३२०
समाज-सेवायें एव अन्य	५७२	६०
उत्पादन-कार्य में रुकावट न आने के लिये कच्चा एव अर्ध-निर्मित माल	२००	—
सरकारी क्षेत्र का योग	६१००	१५२०
निजी क्षेत्र		
वृहद् एव मध्यम श्रेणी के उद्योग, खनिज एव यातायात	१३५०	४९५
ग्रामीण एव लघु उद्योग	३२५	१५
अन्य	२६२५	—
निजी क्षेत्र का योग	४,३००	५१०
महा योग	१०,४००	२०३०

योजना की परियोजनाओं की २०३० करोड रुपये की विदेशी विनिमय की आवश्यकता के अतिरिक्त अर्थ व्यवस्था की कच्चे माल, प्रतिस्थापन मशीनें तथा अन्य पूरक औजारों की सामान्य आवश्यकता की पूर्ति के लिये ३६८० करोड रुपये की आवश्यकता होगी। विदेशी विनिमय की इस आवश्यकता की पूर्ति निम्न प्रकार करने का आयोजन है—

तालिका स० ९३— तृतीय योजना की विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं का प्रबन्धन[1]

(करोड रुपया म)

मद	द्वितीय योजना काल	तृतीय योजना काल
अ प्राप्तियाँ—		
निर्यात	३०५३	३७००
अदृश्य व्यवहार (शुद्ध)	४२०	—

[1] *Third Five Year Plan*, p 112

पूँजीगत व्यवहार (सरकारी ऋण एवं निजी विदेशी विनियोजन को छोड कर)	–१७२	–५५०
विदेशी सहायता	६२७	२६००[1]
विदेशी विनिमय के संचय का उपयोग	५६८	—
प्राप्तियो का योग	४८२६	५७५०
ब भुगतान—		
योजना की परियोजनाम्रो के लिए मशीनो म्रादि का म्रायात	—	१९००
पूँजीगत वस्तुम्रो के उत्पादन को बढाने के लिये म्रर्ध-निर्मित माल म्रादि	४८२६	२००
निर्वाह सम्बन्धी म्रायात (Maintenance Imports)		३६५०
भुगतान का योग	४८२६	५७५०

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि योजना काल की विदेशी विनिमय की म्रावश्यकताम्रो को पूर्ति के लिये निर्यात को बढाने का भरसक प्रयत्न करना म्रत्यन्त म्रावश्यक होगा। १९६१-६२ म निर्यात की मात्रा ६६७ करोड रुपया थी जबकि ततीय योजना म निर्यात का वार्षिक म्रौसत ७४० करोड रुपया बनाये रखना म्रावश्यक होगा। म्रन्तर्राष्ट्रीय बैंक क म्रन्तर्गत भारत के मित्र देशो की जो गोष्ठी (Consortium) मई-जून १९६१ मे हुई उसमे भारत को १०८९ करोड रुपये की विदेशी सहायता का म्राश्वासन दिया गया है। यह विदेशी सहायता भारत क विदेशी व्यापार क प्रतिकूल शेष का पूर्ति एवं १९६१ ६२ तथा १९६२-६३ वर्षों में म्रायात के लिये किये गये म्रादेशो के भुगतान को उपलब्ध होगी। इस राशि में स लगभग म्राधी राशि ४९८ करोड रुपया सयुक्त राज्य म्रमरीका द्वारा दी जायगी। सयुक्त राज्य म्रमरीका द्वारा

१. इस राशि मे PL 480 क म्रन्तर्गत ६०० करोड रुपये की विदेशी सहायता सम्मिलित नही है।

दी गयी इस राशि मे PL 480 के प्रन्तर्गत प्राप्त होने वाली ६०० करोड़ रुपये की सहायता सम्मिलित नही है। गोष्ठी के अन्य सदस्यो द्वारा ५६१ करोड रुपये की सहायता प्रदान की जायगी। इस गोष्ठी के अन्य सदस्य पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन, जापान, कनाडा, फ्रास, अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद् (International Development Association) है। रूस ने भी तृतीय योजना के कार्यक्रमो को २३८ करोड रुपये की सहायता देने का आश्वासन दे दिया है। अन्य मित्र देशो जेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड तथा स्विटजरलैण्ड ने लगभग ६७ करोड रुपये को सहायता तृतीय योजना की परियोजनाओ को दी है।

सतुलित क्षेत्रीय विकास

देश क विभिन्न क्षेत्रो क सतुलित विकास करने के हेतु आर्थिक विकास के लाभ कम विकसित क्षेत्रो को पहुँचाना तथा उद्योगो का विस्तृत फैलाव करना भारत की नियोजित अर्थ-व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है। अर्थ व्यवस्था क विस्तार एवं शीघ्र विकास द्वारा राष्ट्रीय एव क्षेत्रीय विकास मे उचित सतुलन उत्पन्न करना सम्भव होता है। परन्तु विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ म साधनो के सीमित होने के कारण आर्थिक विकास क कार्यक्रमो को ऐस केन्द्रो पर स्थापित किया जाता है, जहाँ विनियोजन क अनुकूल फल प्राप्त होते है। जैसे-जैसे विकास की गति बढती जाती है, विनियोजन अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो म होने लगता है और विकास के लाभ विस्तृत क्षेत्रो को प्राप्त होने लगते ह। तृतीय योजना मे विकास की तीव्र गति के साथ-साथ देश क विभिन्न भागो को विस्तृत विकास के अवसर भी उपलब्ध होगे। राज्यो के कायक्रमो के विस्तृत उद्देश्य कृषि उत्पादन मे वृद्धि करना, ग्रामीण क्षेत्रो मे आय एव रोजगार म वृद्धि करना, प्रारम्भिक शिक्षा, जल की पूर्ति एवं सफाई का प्रबन्ध करना, स्वास्थ्य-सेवाओ मे वृद्धि करना आदि है। इन कार्यक्रमो से कम विकसित क्षेत्रो मे जीवन-स्तर मे वृद्धि होगी। इस प्रकार राज्यो की योजनाओ म उत्पादन एव रोजगार मे वृद्धि तथा निर्बल वर्गो के कल्याण का आयोजन किया गया है। राज्यो की योजनाओ के व्यय का प्रकार एवं कार्यक्रम इस आधार पर निश्चित किये गये हैं कि विभिन्न राज्यो के विकास की विषमता मे कमी की जा सके। कृषि के विकास का विस्तार, सिचाई का विस्तार, ग्रामीण एवं लघु उद्योगो का विकास, शक्ति का विस्तार, सडक एवं सडक यातायात का विकास, ६-११ वर्ष के बच्चो की सर्वव्यापी शिक्षा, माध्यमिक, तात्रिक एव व्यावसायिक शिक्षा के अवसरो मे वृद्धि, रहन-सहन की दशाओ मे सुधार एव जल-सप्लाई, पिछडी एवं अनुसूचित जातियो के कल्याण-कार्यक्रम आदि के द्वारा देश भर मे शीघ्र

विकास होने के साथ कम विकसित क्षेत्रो का विकास भी होगा। तृतीय योजना मे सम्मिलित आधारभूत उद्योगो को तात्त्विक एव आर्थिक विचारधाराओ के आधार पर विभिन्न क्षेत्रो मे स्थापित किया जायगा। निर्यात योग्य सामान बनाने वाले उद्योगो की नवीन इकाइयाँ ऐसे स्थानो पर स्थापित की जायेंगी, जहाँ से विदेशी बाजारो म प्रतिस्पर्धा करना सुलभ हो सके। इनके अतिरिक्त अन्य समस्त औद्योगिक इकाइयो के स्थान विभिन्न क्षेत्रो की औद्योगिक विकास की आवश्यक्ताओ को दृष्टिगत करके निर्धारित किये गये है। प्राय इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ उद्योगो का केन्द्रीयकरण है, नवीन उद्योगो का केन्द्रीयकरण न किया जाय यद्यपि उन क्षेत्रो के वर्तमान उद्योगो के विस्तार को न रोकने का आयोजन है। निजी क्षेत्र के उद्योगो की स्थापना के सम्बन्ध मे लाइसेन्स अर्ध-विकसित क्षेत्रो की आवश्यक्ताओ को दृष्टिगत करके जारी किये जायेंगे। ऐसे क्षेत्र जिनम शक्ति, जल-सप्लाई, यातायात आदि पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नही है, तृतीय योजना मे इन सुविधाओ का प्रबन्ध किया जायगा। पिछडे हुए क्षेत्रो मे औद्योगिक विकास क्षेत्र स्थापित करने का सुझाव तृतीय योजना मे सम्मिलित किया गया है। पिछडे हुए क्षेत्रो में चुने हुए भागो मे शक्ति, जल, यातायात एव सचार का प्रबन्ध किया जायगा और कारखाने बनाने के स्थानो का विकास करके व्यवसाइयो को बेचे अथवा पट्टे पर दिये जायेंगे।

बडी-बडी परियोजनाओ जैसे नवीन सिंचाई योजनाओ, इस्पात के कारखाने तथा बडी-बडी औद्योगिक इकाइयो की स्थापना से सम्बन्धित क्षेत्र के चतुर्मुखी विकास मे सहायता मिलती है। इसी कारण सरकारी क्षेत्र के बडे-बडे कारखानो का स्थापना के स्थान के निर्णय विभिन्न क्षेत्रो की विकास की आवश्यकताओ को दृष्टिगत करके किये जाते हैं। शक्ति के साधनो एवं ग्रामीण क्षेत्रो के विद्युतीकरण मे भी क्षेत्रीय विकास मे सहायता मिलेगी। इसी प्रकार यातायात एवं सचार के साधनो मे वृद्धि होने से पिछडे हुए क्षेत्र विकास-कार्यक्रमो मे सक्रिय भाग ले सकेंगे। शिक्षा एव प्रशिक्षण के विस्तृत प्रबन्ध हो जाने से क्षेत्र के विभिन्न पिछडे क्षेत्र का शीघ्र विकास सम्भव होगा। प्रशिक्षित श्रमिको मे अधिक गतिशीलता होने के कारण इन्हे अधिक घने आबाद क्षेत्रो से हटा कर दूसरे स्थानो मे रोजगार दिलाने से भी क्षेत्रीय संतुलित विकास सम्भव होगा।

विभिन्न क्षेत्रो के विकास की गति का ठीक अनुमान लगाना कठिन होता है। विभिन्न राज्यो की आय एव विभिन्न क्षेत्रो की आय का अनुमान लगा कर इनके विकास का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रो

के सम्बन्ध म भी कुछ स्पष्ट नही किया गया है।"[1] तृतीय योजना की विस्तृत रिपोर्ट म योजना क भौतिक कार्यक्रमो का विस्तृत वर्णन किया गया है परन्तु समाजवादी समाज की स्थापना क लिये की गयी कार्यवाहिया का विशेष वर्णन नही किया गया है। वास्तव म ग्राय की विषमता को दूर करने वाल कार्यक्रमो का व्यौरा एक पृथक ग्रध्याय म किया जाना चाहिए था। यद्यपि तृतीय योजना मे पूँजीवादी समाज एव ग्रलोक क्षेत्र पर ग्राधारित व्यवस्था को सैद्धान्तिक रूपेण स्वीकार नही किया है तथापि केवल इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा ही समाजवादी समाज की स्थापना सम्भव नहीं हो सकती है। तृतीय योजना म मिश्रित ग्रर्थ-व्यवस्था को सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से मान्यता प्राप्त हुई है। परन्तु मिश्रित ग्रर्थ व्यवस्था ऐसे सस्थनीय परिवर्तनो, जिनके द्वारा सामाजिक, ग्रार्थिक एव राजनीतिक शक्तिया का सतुलित किया जाता है, की ग्रनुपस्थिति म समाजवादी समाज की स्थापना म सहायक सिद्ध नही हो सकती। सस्थनीय परिवर्तना की ग्रनुपस्थिति क कारण ही हम दखते है कि जन समुदाय स योजना के कार्यक्रमो म वाछनीय सहयोग प्राप्त नही होता है।

योजना के उद्देश्यो स यह स्पष्ट है कि विषमताग्रा को कम करन के उद्देश्य, जो कि समाजवादी समाज की स्थापना म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होने चाहिए, को ग्रन्तिम स्थान प्राप्त हुग्रा है ग्रर्थात् योजना क पाच उद्देश्यो मे ग्रतिम उद्देश्य विषमताग्रो की कमी है। इसक ग्रतिरिक्त योजना म प्रत्येक उद्देश्य की पूर्ति हेतु बनाय गये कार्यक्रमो को पृथक् पृथक् ग्रध्याया म स्पष्ट किया गया है। परन्तु विषमताग्रा म कमी करने के लिए की जाने वाली कार्यवाहियो का वर्णन पृथक ग्रध्याय म नही किया गया है। समाजवादी समाज की स्थापनार्थ सामाजिक पूँजी (Social Capital) म वृद्धि होना ग्रावश्यक है। परन्तु योजना म सामाजिक पूँजी म वृद्धि करने के लिए किन्हीं ठास प्रयासा का उल्लेख नही है। ग्राय एव धन का समान वितरण, ग्रार्थिक शक्तिया क केन्द्रीयकरण पर रोक, भूमि-व्यवस्था म कृषि क्षेत्र क श्रमिक एव निर्धन कृषक की दशा सुधारने के लिए परिवतन, ग्रवसर की समानता तथा वर्ग रहित समाज की स्थापना ग्रादि

---

1. "What is clear however, is that the Draft Third Plan does not contain an assessment of what the first two plans have done for taking the country in the direction of a Socialist Society Nor does it limit up integrately the proposals and programmes of the Third Plan with the transformation of Indian Society on Socialist lines"
Dr V. K R V Rao, '*Ideology of Third Plan*"—*Yojna*, 24th July, 1960, p 4.

सामाजिक पूंजी म वृद्धि करन म सहायक सिद्ध होन है। परन्तु इन सभी क्षेत्रो म व्यावहारिक दृष्टिकोण म अत्यन्त कम काय हुआ है। यद्यपि गत दस वर्षो म राष्ट्रीय आय का ४२% तथा कृषि एव औद्योगिक उत्पादन म क्रमश ३०% एव ५०% वृद्धि हुई तथापि उपलब्ध सूचनाओ के आधार पर यहा अनुमान लगाया जाता है कि अधिकाश जन समुदाय का आय स्थिर हो है अथवा कमी हुई है। प्रथम तथा द्वितीय योजना म राष्ट्रीय आय के नियोजित पुर्नवितरण का आयोजन नहा किया गया तथा य ा सूचना भी उपलब्ध नहा है कि अति रिक्त राष्ट्रीय आय का पिछले दस वर्षो म समाज के विभिन्न वर्गों म किस प्रकार वितरण हुआ। डा० ज्ञानचन्द्र न इस सम्बन्ध म अपन विचार व्यक्त करत हुए कहा है कि साधारणत यह माना जाता है कि मुद्रा स्फीति क दबाव म निरन्तर वृद्धि होन क कारण गत दो योजनाओ की अवधि म बड व्यापारियो उद्योग पतियो एव विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों (Privileged Classes) का हो लाभ हुआ है।[1]

तृतीय पचवर्षीय योजना म स्वय स्फूर्त अर्थव्यवस्था (Self Sustaining Economy) की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है इसलिए खाद्यान्नो म आत्म निर्भरता भारी उद्योगो की स्थापना तथा विकास की गति तीव्र करके वृद्धियोन्मुख जनसंख्या क जीवन स्तर में वृद्धि क अतिरिक्त समाज की उत्पादक सम्पत्तियो म वृद्धि करन को अधिक महत्व दिया गया है। परन्तु खाद्यान्नो मे आत्म निर्भरता शीघ्र औद्योगीकरण एव विकास की तीव्र गति तभी सम्भव हो सकता है जबकि जन समुदाय में समाज क लिए कार्य करने की भावना उत्पन्न की जाय। समस्त जन समुदाय को आर्थिक विकास स लाभान्वित किया जाय एव नवीन अर्थ व्यवस्था क निर्माण म उन्ह महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय। इन समस्त तथ्यो की व्यवस्था करन क लिए आर्थिक एव सामाजिक समानता क क्षेत्र को विस्तृत कर दिया जाना चाहिए।

रोजगार नीति एव कार्यक्रम

द्वितीय पचवर्षीय योजना म निरन्तर मानसून की प्रतिकूलता स कृषि-उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि न होते हुए भी राष्ट्रीय आय म २०% वृद्धि होने का अनुमान है जो कि लक्ष्य स केवल ५% कम है। विनियोजन क क्षेत्र म भी लक्ष्य की लगभग पूर्ण प्राप्ति का अनुमान है यद्यपि निजी क्षेत्र क विनियोजन की राशि लक्ष्य स अधिक होन की सम्भावना की जाती है। वास्तव म द्वितीय

1 Gyan Chand *Social Purpose in Planning*
—*Yojna* 24th August 1960, p 19

तालिका म० ६८—कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे रोजगार के अतिरिक्त अवसर

(लाख मे)

(१) निर्माण	
(क) कृषि एव सामुदायिक विकास	६.१०
(ख) सिंचाई एव शक्ति	४.९०
(ग) उद्योग एव खनिज—गृह एव लघु उद्योग सहित	८.६०
(घ) यातायात एव सचार—रेलो सहित	२.८०
(ङ) समाज-सेवाएँ	२.१०
(छ) अन्य	०.५०
योग	२३.००
(२) सिंचाई एव शक्ति	१.००
(३) रेलें	१.४०
(४) अन्य यातायात एव सचार	८.८०
(५) उद्योग एव खनिज	७.५०
(६) लघु उद्योग	९.००
(७) वन, मछली पकड़ना तथा अन्य सहायक सेवाएँ	७.००
(८) शिक्षा	५.९०
(९) स्वास्थ्य	१.८०
(१०) अन्य समाज सेवाएँ	०.८०
(११) सरकारी नौकरी	१.५०
(१२) अन्य वाणिज्य एवं व्यापार सहित	३७.८०
महायोग	१०५.३०

तृतीय योजना म उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त रोजगार के अनुमान निम्नलिखित तीन मान्यताओ पर आधारित हैं—

(१) वर्तमान उत्पादन एव रोजगार क्षमता को गिरने नही दिया जायगा। नियोक्ताओं की उन कठिनाइयों को दूर किया जायगा जो वर्तमान क्षमता को बनाये रखने म आयेंगी और वर्तमान इकाइयों म रोजगार का स्तर बनाये रखा जायगा।

इस प्रकार यातायात एवं सचार क निर्माण-कार्यक्रमो से ३४८० अतिरिक्त रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। अन्य क्षेत्रा क निर्माण-कार्यक्रमो मे भो इस प्रकार अतिरिक्त रोजगार के अनुमान लगाये गये है।

निर्माण क अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमो (कृषि क अतिरिक्त) म अतिरिक्त रोजगार के अवसरा का अनुमान या तो निश्चित मूल्यो पर प्रत्येक व्यक्ति को जारी रहने वाला रोजगार प्रदान करने हेतु आवश्यक पूंजी की राशि के आधार पर लगाये गये है अथवा प्रति व्यक्ति उत्पादन (जिसम उत्पादकता की वृद्धि के लिये आवश्यक समायोजन कर दिया गया हो) पर आधारित है। लघु उद्योग बोर्ड द्वारा स्थापित किये गये वकिंग ग्रूप क अनुमानानुसार लघु उद्योगा म एक व्यक्ति को रोजगार देने क लिये लगभग ५००० रुपये क विनियोजन की आवश्यकता होती है। दस्तकारी म १५०० रुपया तथा नारियल क रेशे के उद्योगों (Coir Industry) एव रेशम (Sericulture) में लगभग १००० रुपये की आवश्यकता होती है। तृतीय योजना में ग्रामीण एव लघु उद्योगो पर सरकारी क्षेत्र में व्यय होने वाली राशि पर ३·५७ लाख रोजगार क अवसरों में वृद्धि होने का अनुमान है। दूसरी ओर इस मद पर निजी क्षेत्र में विनियोजित होने वाली राशि पर ५ लाख रोजगार के अवसर बढने की सम्भावना है। इस प्रकार ग्रामीण एव लघु उद्योगो में तृतीय योजना में ८·५७ अथवा ९ लाख रोजगार के अवसर बढने का अनुमान है। हाथकरघे, शक्ति से चलने वाले करघे, खादी एव ग्रामीण उद्योगो पर सरकारी क्षेत्र में १३० करोड रुपया व्यय होगा जिसके द्वारा आंशिक रोजगार प्राप्त व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार की सुविधाएँ प्राप्त होगी।

शिक्षा के क्षेत्र में ५·९ लाख रोजगार के अवसर बढने का अनुमान है। इसम ३·७८ लाख अतिरिक्त शिक्षको की आवश्यकता शिक्षा प्राप्त करने वाले ६ से ११ वर्ष के बच्चो की वृद्धि के कारण होगी, १·२३ लाख अतिरिक्त शिक्षको की आवश्यकता ११ से १४ वर्ष के बच्चो के लिये, ०·७७ लाख शिक्षको की आवश्यकता १४ से १७ वर्ष के बच्चो के लिये तथा ०·४० लाख अतिरिक्त शिक्षको की आवश्यकता विश्वविद्यालयीय शिक्षा के लिये होगी। इस प्रकार तृतीय योजना में लगभग ६·१८ लाख अतिरिक्त शिक्षको की आवश्यकता होगी। परन्तु उपयुक्त शिक्षको की पर्याप्त उपलब्धि न होने के कारण शिक्षको की सख्या में ३०,००० की कमी करके तृतीय योजना में ५·८८ अथवा ५·८० लाख अतिरिक्त शिक्षको को रोजगार प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है।

के अवसर बढ सकेंगे। इस प्रकार कृषि के क्षेत्र मे ३५ लाख रोजगार के अवसर बढने का अनुमान लगाया गया है।

तृतीय योजना के विभिन्न कार्यक्रमो के सचालन मे रोजगार के अवसर बढाने हेतु कुछ विशेष विचाधाराओ को दृष्टिगत किया जाना है। उनमे से मुख्य-मुख्य निम्न प्रकार है—

(१) तृतीय योजना काल मे अतिरिक्त रोजगार के अवसरो का समस्त देश मे अधिक समानता के साथ विस्तार करने का प्रयत्न किया जाया जायगा।

(२) ग्रामीण क्षेत्रो मे औद्योगीकरण के विस्तृत कार्यक्रमो मे सचालन किया जायगा जिनमे ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण औद्योगिक एस्टेट का विकास, ग्रामीण उद्योगो का विस्तार आदि का विशेष महत्व दिया जायगा।

(३) ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार की वृद्धि ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास के साथ-साथ ग्रामीण वर्क्स को सगठित किया जायगा जिनके द्वारा औसत से २५ लाख व्यक्तियो को वर्ष मे १०० दिन रोजगार उपलब्ध हो सकेगा। ग्रामीण वर्क्स (Rural Works) कार्यक्रमो द्वारा रोजगार के अवसर की वृद्धि के साथ ग्रामीण जन शक्ति का आर्थिक विकास मे उपयोग भी सम्भव हो सकेगा। ग्रामीण वर्क्स मे पाच प्रकार के कार्यक्रम सम्मिलित हैं—

(अ) राज्यो एव स्थानीय सस्थाओ की योजनाओ मे सम्मिलित किये गये कार्यक्रम जिनमे ग्रामीण क्षेत्रो के कुशल (Skilled) एव अर्ध-कुशल श्रमिको का उपयोग होगा।

(आ) समाज द्वारा अथवा लाभ प्राप्त करने वाले नागरिको द्वारा सचालित वह कार्यक्रम जो विधान (Law) के अन्तर्गत उनके लिये अनिवार्य हैं।

(इ) एसे विकास कार्यक्रम जिनमे स्थानीय जनता श्रम का अनुमान दे और राज्य द्वारा कुछ सहायता प्रदान की जाय।

(स) ऐसी परियोजनाये जिनसे ग्रामीण जन समुदाय आय उपार्जन करने वाली सम्पत्तिया का निर्माण कर सकें।

(द) बेरोजगारी के अधिक दबाव वाले क्षेत्रो मे संगठित किये जाने वाले सहायक वर्क्स कार्यक्रम।

प्रयोगात्मक रूप से ३४ पायलट परियोजनाओ (Pilot Projects) का प्रारम्भ किया गया है जिनके द्वारा ग्रामीण जन-शक्ति का उपयोग किया जायगा। प्रत्येक परियोजना पर लगभग २ लाख रुपया व्यय किया जायगा। इन परियोजनाओ मे सिंचाई, वन लगाना, भूमि सुरक्षा, नालियाँ बनाना, भूमि को कृषि

शोधन, सामान्य एव बिजली इ जनियरिंग, रबड के टायर, अलमूनियम आदि की स्थापना देश म हुई और पुरान उद्योगो जैसे सूती वस्त्र, जूट एव चाय मे उत्पादन की नवीन विधियो के उपयोग को महत्व दिया जाने लगा है। इस प्रकार देश के लगभग सभी बड उद्योगो म उत्पादन की नवीन विधियो का उपयोग किया जाने लगा है। उत्पादन की नवीन विधियो मे शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर्मचारियो की आवश्यकता होती है और इन उद्योगो क विस्तार के साथ-साथ शिक्षित व्यक्तियो को रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध होंगे। शिक्षित बेरोजगारो की सख्या का ठीक-ठीक अनुमान लगाना तो अत्यन्त कठिन है, परन्तु यह अनुमान लगाया गया है कि द्वितीय योजना के अन्त म शिक्षित बेरोजगारो की सख्या लगभग १० लाख थी और तृतीय योजना काल में हाई स्कूल अथवा उससे ऊँची शिक्षा प्राप्त नये रोजगार प्राप्त करने वालो की सख्या ४० लाख होगी। कृषि, उद्योग एव यातायात क विकास क साथ-साथ तात्रिक एव व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त लोगो की माग म वृद्धि होगी। तृतीय योजना मे शिक्षा के पुनर्सगठन पर जोर दिया जायगा जिससे इस काल म उपयुक्त शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो सकें। ग्रामीण क्षेत्रो म सहकारी साख, विपणि एवं कृषि सस्थाओ म उत्पादन करने वाले उद्योगो (Pocessing Industries), वैज्ञानिक कृषि के विकास तथा जिला खण्ड तथा ग्राम स्तर पर लोकतत्रीय सस्थाओ की स्थापना से शिक्षित व्यक्तियो को अधिक रोजगार क अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। इसक अतिरिक्त ग्रामीण केन्द्रो म शिक्षित व्यक्तियो को लघु उद्योगो की स्थापना क अवसर भी उपलब्ध होंगे।

तृतीय योजना क रोजगार क कार्यक्रमो का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् उन पर आलोचनात्मक दृष्टि डालना भी आवश्यक है। रोजगार कार्यक्रमों के सम्बन्ध म हम अपनी आलोचना निम्न प्रकार सूत्रबद्ध कर सकते हैं—

(१) द्वितीय योजना काल के प्रारम्भ म देश म ५३ लाख व्यक्तियो के बेरोजगार होने का अनुमान था। द्वितीय योजना काल म १ करोड नवीन श्रमिको की वृद्धि का अनुमान था जबकि वास्तविक वृद्धि १'१७ करोड श्रमिक होने का अनुमान है। इस प्रकार द्वितीय योजना काल म पूर्ण रोजगार प्रदान करने हेतु १'७० करोड रोजगार क अवसर बढाने की आवश्यकता थी, जबकि वास्तव म केवल ८० लाख रोजगार क अवसर ही द्वितीय योजना के बढाये जा सके और इस प्रकार तृतीय योजना ९० लाख बेरोजगार व्यक्तियो से प्रारम्भ हो रही है। तृतीय योजना काल म १९६१ की जनगणना के प्रारम्भिक अनुमानो के अनुसार १'७० करोड नवीन श्रमिकों की वृद्धि होने का अनुमान है और

बेरोजगार हो जाना स्वाभाविक है। यदि भविष्य में क्रियान्वित होने वाली योजनाओं में निरन्तर निर्माण कार्य में वृद्धि होती रहे तो पूर्ण हुए निर्माण कार्य से अलग हुए बेरोजगारों को कुछ सीमा तक एवं नवीन श्रमिकों को सीमित मात्रा में रोजगार उपलब्ध हो सकता है। परन्तु भविष्य की योजनाओं में नवीन निर्माण कार्य बढ़ते ही रहेंगे, यह सम्भावना करना उचित न होगा। ज्यों-ज्यों अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता आती जायगी निर्माण कार्य भी कम होते जायेंगे। इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे निर्माण कार्यों में कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ती जायगी, नवीन निर्माण कार्यों की अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने की क्षमता भी घटती जायगी। क्योंकि इनमें पूर्ण हुए कार्यों से पृथक् हुए श्रमिकों को रोजगार देना आवश्यक हो जायगा।

(४) लघु उद्योगों एवं बड़े तथा मध्यम श्रेणी के उद्योगों में अतिरिक्त रोजगार के अवसर इन उद्योगों की नवीन विनियोजन की राशि पर आधारित हैं। वर्तमान मूल्यों के आधार पर विभिन्न उद्योगों में एक व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए विनियोजन की राशि अनुमानित कर ली गई है और इसी आधार पर विभिन्न उद्योगों में होने वाले नवीन विनियोजन राशि के आधार पर रोजगार क्षमता ज्ञात की गई है। इन क्षेत्रों में भी रोजगार के अनुमान तभी ठीक हो सकते हैं जबकि मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि न हो। मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि होने पर विभिन्न उद्योगों की विनियोजन राशि अनुमान के अनुसार रहते हुए भी उनकी रोजगार क्षमता कम हो जायगी।

(५) कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों का विभिन्न मदों से प्राप्त होने वाला अतिरिक्त रोजगार ६७.५० लाख है और इसका लगभग ५६% अर्थात् ३७.८० लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर व्यापार अधिकोषण, बीमा, यातायात (रेलों एवं सड़कों को छोड़कर) स्टोरेज, गोदाम तथा व्यवसायों एवं व्यक्तिगत सेवाओं आदि से प्राप्त होंगे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार के अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का प्रतिशत केवल ५२ था। तृतीय योजना में इस प्रतिशत को ५६ अनुमानित करने का कोई आधार स्पष्ट नहीं होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रतिशत १९५१ की जनगणना पर आधारित है और इसमें १९६१ की जनगणना के आँकड़े प्रकाशित होने पर महत्वपूर्ण अन्तर होना स्वाभाविक होगा क्योंकि पिछले दस वर्षों में देश के व्यावसायिक ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने की सम्भावना है।

(६) कृषि के क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का अनुमान उस भूमि

आय का अधिक भाग व्यय होता हो—उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करके ही की जा सकती है। भारत जैसे राष्ट्र में—जहाँ जन-समुदाय का न्यून जीवन स्तर है तथा अधिकतर जनसंख्या अपनी व्यक्तिगत आय का अधिकांश खाद्यान्नों पर व्यय करती है—नियोजन की सफलता एवं मूल्य नियमन नीति दोनों खाद्यान्नों की पूर्ति पर निर्भर है। खाद्यान्न एवं कृषि उत्पादन में कमी होने पर भारत की अर्थ व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है तथा देश के आन्तरिक एवं विदेशी दोनों ही साधनों में अनुमान की तुलना में अत्यन्त कमी हो जाती है। कृषि उत्पादन में कमी होने पर एक ओर खाद्यान्न एवं कच्चे माल के आयात हेतु अधिक विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है तथा दूसरी ओर कृषि उत्पादन के निर्यात में कमी होने से विदेशी विनिमय का उपार्जन कम होता है। इस प्रकार उपलब्ध विदेशी साधनों द्वारा योजना के कार्यक्रमों के लिए आवश्यक पूँजीगत वस्तुएँ आयात करना असम्भव हो जाता है। इसके साथ ही खाद्यान्नों एवं कच्चे माल का उत्पादन कम होने से जनसंख्या के एक बड़े भाग की आय कम हो जाती है और औद्योगिक संस्थाओं के लाभ पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे विकास के लिए कर, बचत एवं ऋण के रूप में अनुमानित राशियाँ प्राप्त नहीं हो सकती हैं। खाद्यान्नों एवं कच्चे माल के उत्पादन में कमी होने से उनके मूल्यों में वृद्धि हो जाती है जिनके फलस्वरूप कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों में भी वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार अर्थ व्यवस्था के सामान्य मूल्य-स्तर में वृद्धि होती है। उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य नियमन नीति का आधार खाद्यान्नों एवं कच्चे माल की पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि करना होना चाहिए।

विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्था में मूल्य नियमन नीति द्वारा निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करना आवश्यक होता है—

(१) मूल्य नियमन नीति द्वारा योजना की प्राथमिकताओं एवं लक्ष्यों के अनुकूल ही मूल्यों में परिवर्तन होने का आश्वासन प्राप्त करना।

(२) इसके द्वारा कम आय वाले लोगों द्वारा उपभोग की जाने वाली आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों की अधिक वृद्धि को रोकना।

(३) मुद्रा स्फीति की प्रवृत्तियों पर रोक लगाना जिससे मुद्रा स्फीति के दोषों को बढ़ने से रोका जा सके।

उपयुक्त दोनों ही उद्देश्य एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं और मूल्य नियमन नीति द्वारा दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति एक साथ होती रहती है।

नियोजित अर्थ-व्यवस्था में विशेषकर प्रजातान्त्रिक ढाँचे में मूल्य नियमन नीति

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे खाद्य एवं अन्य सामिग्री क उचित सतुलन बनाये रखन पर विशेष जोर दिया गया। योजना काल मूल्यो को विभिन्न प्रकार की फसलों को उगान क सम्बन्ध म प्रोत्साहन प्रदान करता था। खाद्यान्नो क उत्पादन का पर्याप्त मात्रा म बढाने हेतु इनके मूल्या को उचित स्तर पर बनाय रखना आवश्यक था जिसस अन्य फसलों की तुलना म उत्पादक को खाद्यान्नो की फसल से अधिक लाभ प्राप्त हो सके और वह अन्य फसलों की ओर अधिक आकर्षित न हो। मूल्यो के अत्यधिक उच्चावचन को रोकन हेतु खाद्यान्नो क बफर स्टाक का निर्माण, आयात एव निर्यात के कोटे (Quota) का मात्रा की समय के पूर्व घोषणा, अग्रिम सौदो (Forward Market Operations) पर नियन्त्रण एव अन्य वित्तीय तथा साख नियन्त्रण कार्यवाहिया का आयोजन द्वितीय योजना मे किया गया था। द्वितीय योजना काल म मूल्यो म निरन्तर वृद्धि होती रही। सामान्य थोक मूल्य निर्देशाक म योजना काल म ३०%, खान की सामिग्री के मूल्य निर्देशाक मे २७%, औद्योगिक कच्चे माल म ४५% निर्मित वस्तुओ मे २५% स भी अधिक वृद्धि हुइ। मूल्या को निरन्तर वृद्धि क दो मुख्य कारण थे— प्रथम जनसख्या की वृद्धि एव द्वितीय मौद्रिक आय की वृद्धि। इन दोनों ही कारणों मे उपभोक्ता वस्तुओ की माँग मे वृद्धि हुई परन्तु पूर्ति म अधिक वृद्धि न हो सकी। १९५७-५८ म खाद्यान्नो का उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना मे लगभग ६० लाख टन कम और १९५९-६० म पिछले वर्ष की तुलना म ४० लाख टन कम था। इसी वर्ष न कपास क उत्पादन म १८%, जूट क उत्पादन मे १२% तथा तिलहन के उत्पादन म १०% की कमी हुई। कृषि उत्पादन की इस कमी की प्रतिक्रिया के कारण मूल्यो मे सामान्य वृद्धि होना स्वाभाविक था। द्वितीय योजना काल मे श्रमिको क रहन-सहन की लागत का निर्देशाक (१९४९=१००) योजना के प्रारम्भ म १०० था जो योजना के अन्त मे १२४ हो गया।

द्वितीय योजना क अनुभवो से यह स्पष्ट हो गया कि उद्योग, खनिज एवं यातायात मे अधिक विनियोजन होने पर मूल्यो की वृद्धि को रोकने के लिए कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि करना आवश्यक होगा। परन्तु कृषि उत्पादन मानसून पर निर्भर रहता है जो कि एक अनिश्चित घटक है और जिस पर कोई नियन्त्रण सम्भव नही है। ऐसी परिस्थिति म देश का शीघ्र औद्योगीकरण यथोचित मूल्य स्तर के साथ करने के लिए कृषि उत्पादन का पर्याप्त सचय राज्य को रखना चाहिए जिससे मूल्यो म मौसमी परिवर्तनो पर राज्य नियन्त्रण रख सके। प्रथम एव द्वितीय योजना काल म थोक मूल्य निर्देशाक के परिवर्तन निम्नतालिका म दर्शाये गये हैं—

तालिका स० ९६—प्रथम एव द्वितीय योजना काल मे मूल्या के परिवतन
थोक मूल्य निर्देशाक (आधार १९५२ ५३ = १००)

वस्तु	१९५०	१९५१	१९५० की तुलना म १९५६ मे परिवर्तन का प्रतिशत	१९५१ की तुलना मे १९५६ मे परिवतन का प्रतिगत	१९ /६	१९६१	१९५६ की तुलना मे १९६१ मे परिवतन का प्रतिशत
खाद्य सामिग्री	१०८ ३	१२२ ४	—१४ ३	—२४ २	९२ ८	११७ ६	+२° ७
अनाज	९२ ०	१०० ०	— ६ ५	—१४ २	८६ ०	१०० ०	+१६ ३
दाल	८० ०	१०२ ०	— ३ ८	—२४ ५	७७ ०	९३ ०	+२८ ८
शराब एव तम्बाकू	९१ ६	११२ ९	—१४ १	—३० ३	७८ ७	११४ २	+४५ १
ईधन शक्ति प्रकाश आदि	९१ १	९७ ५	+ ६ ३	— ०७	९६ ८	१२१ ३	+२५ ३
औद्योगिक कच्चे माल	११९ १	१५३ ७	— ८ १	—२८ ८	१०९ ४	१५९ ९	+४६ ४
कपास	९३ ०	१४४ ०	+१५ ०	—२५ ७	१०७ ०	१११ ०	+ ३ ८
तिलहन	१३२ ०	१४९ ०	—१९ ७	—२५ ९	१०६ ०	१५० ०	+५० ९
निर्मित वस्तुएँ	९८ ९	११८ ७	+ ४ ०	—१३ °	१०२ ९	१२९ ४	+२५ ७
माध्यमिक उत्पाद	१०२ १	१३२ ६	+ ८ २	—१६ ७	११० ५	१३७ २	+२४ १
तयार उत्पाद	९८ ३	११६ ५	+ ३ ४	—१२ ८	१०१ ६	१२८ १	+२६ १
समस्त वस्तुएँ	१०६ ४	१२५ २	— ७ ८	—२१ ७	९८ १	१२७ ५	+३० ०

अर्थ साधन उपलब्ध होने है। साख पर पर्याप्त नियन्त्रण करके एक ओर निजी क्षेत्र के विनियोजन योजना के अनुकूल रखा जा सकेगा और दूसरी ओर विनियोजन के लिए उपलब्ध सीमित साधनों पर भी निजी क्षेत्र का अधिक दबाव नही हो सकेगा। सट्टे के सौदों के लिये वस्तुओं का संग्रह तथा अन्य कच्चे एवं निर्मित माल के संग्रह को हतोत्साहित किया जायगा। रिजर्व बैंक के द्वारा सचालित साख नियन्त्रण नीति के साथ-साथ बैंकों द्वारा प्राप्त किये गये ऋणों के निश्चित सीमाओं से अधिक होने पर दण्डनीय ब्याज (Penal Interest) का भी आयोजन किया गया है।

(३) व्यापारिक नीति —व्यापारिक नीति द्वारा देश की वस्तुओं की कमी को दूर किया जा सकता है। परन्तु भारत मे दीर्घ काल आयात को कम और निर्यात को बढाने की आवश्यकता है। योजना के कार्यक्रमों को सचालित करने हेतु घरेलू उत्पादन के कुछ भाग निर्यात करना आवश्यक है जिसके कारण देश मे वस्तुओं की कमी होने से उपभोक्ता को अधिक मूल्य देना पडेगा।

(४) प्रत्यक्ष वितरण एव प्रत्यक्ष नियन्त्रण—मौद्रिक एव कर नीति को उचित स्वरूप देने से अर्थव्यवस्था मे मूल्यों मे स्थिरता लाना सम्भव नही है। कुछ क्षेत्र ऐसे है जहाँ वितरण एव मूल्य नियन्त्रण जैसी कार्यवाहियाँ करना आवश्यक होगा। मूल्य नियन्त्रण द्वारा कम पूर्ति वाली आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को यथोचित सीमाओं के अन्दर रखा जा सकता है जिससे अधिकतम मूल्य देने वाला ही इन वस्तुओं को प्राप्त करने म समर्थ न हो अपितु कम आय वाले लोग भी उस वस्तु का उपभोग कर सके। दूसरी ओर कम पूर्ति वाली वस्तुओं का विभिन्न उपभोगों के लिये प्रथमिकताओं के अनुसार वितरण किया जा सकता है। वास्तव म आधारभूत अनिवार्यताओं के मूल्यों मे यथोचित स्थिरता बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी ओर आराम एव विलासिताओं की वस्तुओं के मूल्यों म वृद्धि होने पर जन-साधारण पर विशेष प्रभाव नहीं पडता है, इसलिए इनके मूल्यों का नियन्त्रित करना इतना आवश्यक नहीं होता है।

इस्पात, सीमेट, कपास, शक्कर, कोयला आदि के मूल्यों पर राज्य को नियन्त्रण रखने का अधिकार है। खाद के मूल्यों को सेन्ट्रल फर्टीलाइजर पूल द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। आवश्यक वस्तुओं सम्बन्धी विधान एवं औद्योगिक विकास एव नियमन विधान के अन्तर्गत राज्य को बहुत सी वस्तुओं के मूल्यों एव वितरण पर नियन्त्रण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राज्य मूल्यों मे समायोजन हेतु उत्पादन कर (Excise Duty) मे भी परिवर्तन

गये, जिससे झगडो एवं शिकायतो (Grievances) का निवारण पारस्परिक वार्तालाप, समझौता (Conciliation) एव ऐच्छिक पच-फैसला द्वारा किया जा सके। इस नियम-संग्रह के लागू होने से औद्योगिक सम्बन्धो मे पर्याप्त सुधार हुआ है। इसी प्रकार श्रम सघो के पारस्परिक झगडो मे भी श्रमिक-सस्थाओ द्वारा स्वीकृत आचार-सहिता (Code of Conduct) के लागू होने से पर्याप्त कमी हो गई है। तृतीय पचवर्षीय योजना म इन कार्यवाहियों से और भी अधिक लाभ उठाया जायगा। तृतीय योजना की अन्य श्रम नीतियाँ निम्न प्रकार है—

(१) तृतीय योजना काल मे औद्योगिक मतभेदो का निवारण यथासम्भव ऐच्छिक पच-निर्णय द्वारा किये जाने के लिए विधियाँ निकाली जायेंगी। कार्य-समितियो को दृढ बनाया जायगा तथा इन्हे श्रम सम्बन्धी मामलो के स्वीकृत क्षेत्र मे लोकतन्त्रीय प्रशासन-सस्थाओ का रूप प्रदान किया जायगा। समस्त औद्योगिक इकाइयो मे एक उचित शिकायतें दूर करने की विधि (Grievance Procedure) को लागू करने की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा।

(२) श्रमिको म यह भावना उत्पन्न करने के लिए कि जिस कारखाने मे वे काम करते है, वह उनका ही है तथा श्रमिको की उत्पादन-क्षमता की वृद्धि हेतु २४ औद्योगिक इकाइयो में सामूहिक प्रबन्ध परिषदें नियुक्त की गई। उन्हे कारखाने के कार्य की सूचना प्राप्त करने एव श्रम कल्याण, प्रशिक्षण एव अन्य विषयो पर प्रत्यक्ष शासन करने का अधिकार है। इस योजना को अन्य औद्योगिक इकाइयो पर लागू किया जायगा ताकि यह औद्योगिक क्षेत्र का सामान्य लक्ष्य बन जाय।

(३) *तृतीय योजना काल मे वर्तमान श्रमिको की शिक्षा-व्यवस्था का विस्तार किया जायगा। इस समय श्रमिको की शिक्षा का प्रबन्ध नियोक्ताओ एवं कर्मचारियो के सगठनो की सहायता से चलाये जाने वाले एक अर्ध-स्वतत्र (Semi-autonomous) बोर्ड द्वारा किया जाता है।* दूसरी ओर प्रबन्धको को श्रमिको से सम्बन्धित मामलो मे शिक्षा प्रदान करने के प्रश्न पर भी विचार किया जा रहा है।

(४) श्रम सघो को देश के औद्योगिक एवं आर्थिक प्रशासन का मुख्य अंग स्वीकार करना आवश्यक समझा गया है। श्रमिक शिक्षा के विस्तार के फल-स्वरूप श्रमिको के कर्मठ नेताओ का प्रादुर्भाव होने की सम्भावना है। स्वीकृत आचार-संहिता मे माने गये श्रम संघो को मान्यता देने के सिद्धान्तो से देश मे

(८) सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं अभी तक केवल भृत्ति पाने वाले सगठित उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों पर ही लागू होती हैं। इनके अतिरिक्त श्रमिकों का बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है जिसके कल्याण के लिए समाज को कार्यवाही करनी चाहिए। तृतीय योजना में दान करने वाले सगठनों, नगर पालिकाओं, पचायत समितियों, पचायतों तथा एच्छिक सस्थाओं को शारीरिक दृष्टिकोण से अपाहिज, वृद्ध व्यक्तियों, स्त्रियों एव बच्चों जिनके पास रोजगार के साधन न हो, को सहायता देने के लिए आर्थिक सहायता राज्य द्वारा प्रदान की जायगी।

(९) ऐसे व्यवसायों का चयन किया जायगा जिनमें अनुबन्ध श्रम को हटाना सम्भव नहीं है तथा उनमें अनुबन्ध-श्रम की आज्ञा प्रदान की जायगी। ऐसी कार्यवाहियों के विषय में निश्चय किया जायगा कि जिनके द्वारा अनुबन्ध-श्रम के हितों की रक्षा की जा सके।

(१०) श्रमिकों के लिए आवास गृहों की व्यवस्था की समस्या का पुन अध्ययन किया जायगा क्योंकि सहायता प्राप्त गृह निर्माण योजनाओं द्वारा इस सम्बन्ध में कोई सुधार नहीं हुआ है। श्रमिकों की मनोरजन एव खेलकूद की व्यवस्था में भी विस्तार किया जायगा।

(११) कोयला-खनिकों को आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिए उनकी सहकारी समितियों का और विस्तार किया जायगा।

(१३) द्वितीय योजना के अन्त तक १६६ औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थाएं थीं जिनमें ४२,००० श्रमिकों को प्रशिक्षण प्रदान करने का प्रबन्ध था। तृतीय योजना में इन सस्थाओं की सख्या ३१८ हो जायगी जिनमें १०,००० श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया जायगा। मशीनों पर प्रशिक्षण देने का भी उचित प्रबन्ध किया जायगा। प्रबन्ध की तात्रिकताओं में प्रशिक्षण शिक्षित व्यक्तियों को प्रदान करने का अलग से प्रबन्ध किया जायगा। तृतीय योजना में ७,८०० प्रशिक्षण-दाताओं (Craft Instructions) को प्रशिक्षित किया जायगा। अप्रेंटिसशिप योजना जो अभी तक एच्छिक रूप से चलाई जा रही थी, को अनिवार्य बनाने के लिए विधान बनाया जायगा और योजना काल में १४,००० व्यक्तियों को अप्रेंटिसशिप प्रशिक्षण का आयोजन किया जायगा। औद्योगिक श्रमिकों को सध्याकालीन कक्षाओं में वर्तमान ३,००० स्थानों को १५,००० तक बढ़ा दिया जायगा।

(१४) तृतीय योजना काल में १०० रोजगार के दफ्तर खोले जायेंगे जिससे प्रत्येक जिले में कम से कम एक रोजगार का दफ्तर हो जायगा। योजना काल में रोजगार बाजार सूचना में (Employment Market Infor-

mation) कार्यक्रम का विस्तार किया जायगा और यह उन सभी क्षेत्रों पर लागू होगी जो रोजगार दफ्तरों के अन्तर्गत आते हों।

(१५) कारखानों के बन्द होने पर निकाले हुए कर्मचारियों को कठिनाइयों से बचाने के लिए एक योजना को नियोक्ताओं एवं कर्मचारियों के अनुदान एवं सरकार की सहायता के आधार पर संचालित किया जायगा। इस योजना के अन्तर्गत निकाले हुए कर्मचारियों को सहायता प्रदान की जायगी। इसके अतिरिक्त यह योजना अस्थायी रूप से आर्थिक कठिनाई में ग्रस्त अच्छी ख्याति वाली औद्योगिक इकाइयों को सहायता प्रदान करेगी। यह अस्थायी रूप से औद्योगिक प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेगी तथा श्रमिकों द्वारा सहकारिता पर चलाये जाने वाले कारखानों को (जब वह बन्द होने की अवस्था में हों) सहायता प्रदान करेगी।

तृतीय योजना में श्रमिकों की उत्पादकता को विशेष महत्व दिया गया है और उद्योगों में विवेकीकरण (Rationalization) एवं नवीनीकरण को उत्पादकता की वृद्धि का मूलाधार बनाया गया है। उत्पादकता में वृद्धि तथा प्रति इकाई लागत में कमी विवेकीकरण द्वारा बिना अधिक व्यय किये तथा बिना श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाले सम्भव हो सकती है।

विनियोजन का प्रकार

तृतीय योजना के दीर्घकालीन उद्देश्य आधारभूत पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना करना है जिससे अर्थ-व्यवस्था में विनियोजन की राशि बढ़ने से पूंजीगत वस्तुओं की बढ़ी हुई मांग की पूर्ति की जा सके। दूसरे शब्दों में, तृतीय योजना का अन्तिम लक्ष्य स्वतः-स्फूर्त विकास अवस्था के निर्माण की ओर अग्रसर होना है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए अर्थ साधन निर्धारित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त मुद्रा-स्फीति के दबाव की गम्भीरता को रोकने के लिए खाद्यान्नों एवं कच्चे माल में पर्याप्त वृद्धि करने का लक्ष्य भी तृतीय योजना में रखा गया है। इस प्रकार कृषि एवं उद्योगों को योजना में अधिक प्राथमिकता दी गयी है, और यातायात एवं संचार तथा समाज-सेवाओं पर द्वितीय योजना की तुलना में आनुपातिक व्यय कम कर दिया गया है। योजना के विनियोजन का प्रकार निश्चित करने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि कृषि एवं उद्योग में होने वाले विनियोजन का अनुमान लगा लिया जाय। वास्तव में विनियोजन की समस्त राशि को दो भागों में विभाजित करना आवश्यक होगा—प्रथम, वह राशि जो कि विनियोजन वस्तुओं के उद्योगों (Investment goods Industries) की स्थापना पर विनियो-

राशि मे ६३० करोड रुपये की राशि को आच्छादित (Cover) करने के लिए इतनी राशि से ही विनियोजन वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि होना आवश्यक होगा। यदि हम विनियोजन के क्षेत्र मे पूंजी तथा उत्पादन के अनुपात को ३ : १ मान लें तो ६३० करोड रुपये की विनियोजन-वस्तुएँ उत्पन्न करने के लिए ७७६० करोड रुपये के विनियोजन की आवश्यकता होगी। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तृतीय योजना की समस्त विनियोजन राशि १०४०० करोड रुपये की राशि म से ७७६० करोड रुपया अथवा लगभग २७% विनियोजन वस्तुओ के क्षेत्र म तथा ७३% उपभोक्ता वस्तुओ के क्षेत्र मे विनियोजित किया जायगा।

तृतीय योजना मे शासकीय एवं व्यक्तिगत विनियोजन की राशियो को कृषि सिंचाई, उद्योग, यातायात-शक्ति, समाज सेवाओ आदि मे वितरित करके बनाया गया है, परन्तु विनियोजन की राशि को विनियोजन एव उपभोग के क्षेत्रो के लिए निर्धारित नहीं किया गया है। कृषि सिंचाई तथा लघु उद्योगो म होने वाले लगभग समस्त विनियोजन उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन म वृद्धि करने के लिए है। वृहद् उद्योगो एव खनिज म विनियोजित होने वाली राशि को उपभोक्ता एवं विनियोजन-वस्तुओ सम्बन्धी उद्योगो के आधार पर दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। इसी प्रकार सभी विनियोजन क क्षेत्रो की राशि दो भागो मे वितरित की जा सकती है। इस वितरण से मोट तौर पर यह प्रतीत होगा कि समस्त विनियोजन की लगभग ३०% राशि अर्थात् ३१२० करोड रुपया विनियोजन-वस्तुओ के क्षेत्र मे विनियोजित होगा जबकि उपर्युक्त आंकडो के आधार पर यह स्पष्ट है कि विनियोजन की लगभग २७% राशि ही पर्याप्त होगी। इस प्रकार तृतीय योजना काल के विनियोजन-कार्यक्रम मे विनियोजन वस्तुओ के क्षेत्र को अधिक महत्त्व दिया गया है जिससे अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता वस्तुओ की पूर्ति मे कमी हो सकती है। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष मे उपभोक्ता-वस्तुओ की माँग मे ३१७० करोड की वृद्धि निम्न प्रकार होगी—

	राष्ट्रीय आय	(करोड रुपये मे) बचत	उपभोग
१९६०-६१	१४५००	११६०	१३३४०
१९६५-६६	१९०००	२०९०	१६९१०
		अन्तर	३५७०

३५७० करोड रुपये की उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि करने के

लिए (३ १ पूंजी एव उत्पादन के अनुपात के अनुसार) १०७१० करोड रुपये के विनियोजन की आवश्यकता होगा। यदि योजना के पूंजी उत्पादन के अनुपात २ ५ १ को ही ठीक मान लिया जाय तो भी ३१७० करोड रुपय की उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन म वृद्धि करने क लिए ८६२५ करोड रुपये के विनियोजन की आवश्यकता होगी, जबकि तृतीय योजना के कायक्रमो के अनुसार केवल ७२८० करोड रुपये का उपभोक्ता वस्तुओ क क्षेत्र म विनियोजन करने का अनुमान है। इस आधार पर उपभोक्ता वस्तुओ की पर्याप्त उपलब्धि सन्देहजनक प्रतीत होती है।

तृतीय योजना की सफलतार्थ आवश्यक परिस्थितियाँ

तृतीय योजना की नीतियो एव लक्ष्यो के प्रकाशित रूप का आलोचनात्मक अध्ययन विभिन्न क्षेत्रो म हुआ है। विश्व बक न अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि तृतीय योजना के आयोजन वास्तविक है। कुछ अन्य अर्थ शास्त्रियो के मतानुसार योजना के कार्यक्रम अत्यन्त अभिलाषी हैं जिनकी पूर्ति होना सम्भव न हो सकेगा। योजना का कायक्रम अभिलाषी है अथवा वास्तविक, इस सम्बन्ध म निम्नांकित सम्भावनाओ का गहन अध्ययन करना आवश्यक होगा—

(१) प्रस्तावित आन्तरिक अर्थ साधनो की उपलब्धि।

(२) उपलब्ध अर्थ साधनो का विकास कायक्रमो के लिए उपयोग।

(३) विदेशी अर्थ की उपलब्धि एव इसके द्वारा आवश्यक सामिग्री, यन्त्र, उपकरण आदि की समय पर प्राप्ति।

(४) शासन द्वारा अर्थ साधनो का प्रभावशाली उपयोग।

(५) मूल्य नियमन नीति की प्रभावशीलता।

(६) जन सहयोग की सीमाएं।

(७) मानसून का अनुकूलता।

उपर्युक्त समस्त सम्भावनाएं पारस्परिक घनिष्ट रूपेण इतनी सम्बद्ध हैं कि एक का प्रभाव अन्य पर निरन्तर पडता रहेगा। आन्तरिक साधनो के सम्बन्ध म यह स्पष्ट करना उचित होगा कि द्वितीय योजना म आन्तरिक अर्थ प्राप्त करने के साथ साथ शासकीय व्यय मे अत्यधिक वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप विकास हेतु वास्तविक अर्थ साधन अनुमानित राशि के समतुल्य प्राप्त न हो सका। हमारे वित्तमन्त्री श्री देसाई न यह आश्वासन दिया है कि शासकीय व्यय मे तृतीय योजना काल म वृद्धि नहीं होगी। आन्तरिक साधनो से अनुमानित अतिरिक्त राशियो का प्राप्त होना ही पर्याप्त न होगा अपितु इन अतिरिक्त उपलब्धियों का उपयोग नियोजन के कायक्रमो के लिए होना आवश्यक है। यदि

द्वितीय योजना के समान प्रशासन व्यय म भी वृद्धि होती रही तो अतिरिक्त उपलब्धियो मे सफलता प्राप्त होने हुए भी योजना के कायक्रमा को सफल नहीं बनाया जा सकता है। इसके साथ ही प्रस्तावित राशियो का वास्तविक मूल्य (Real Value) भी बनाये रखना अति आवश्यक है। यदि योजना काल म मूल्यो के सामान्य स्तर म वृद्धि हो जाती है तो अनुमानिक अर्थ के वास्तविक मूल्य मे भी कमी हो जायगी। योजना-कायक्रमो को अर्थ द्वारा प्राप्त की गयी वास्तविक वस्तुओ, सामिग्री आदि द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। यदि मौद्रिक दृष्टिकोण से प्रस्तावित राशियाँ प्राप्त हो जाये, परन्तु इन उपलब्धियो द्वारा मूल्यो म वृद्धि के कारण केवल ¾ वस्तुएं सामिग्री आदि जुटाई जा सके तो योजना के केवल तीन चौथाई भाग की ही पूर्ति की जा सकेगी। ऐसी परिस्थिति हो सकती है कि मौद्रिक दृष्टिकोण स योजना के समस्त लक्ष्य पूर्ण हो जायें किन्तु कार्यक्रमो की वास्तविक पूर्ति न हो सके।

उपर्युक्त दृष्टिकोण के आधार पर यह अनुमोदन करना कि योजना के लक्ष्यो को कम कर दिया जाय न्यायसगत नहीं होगा। केवल इस दृष्टिकोण से योजना के कार्यक्रमा को अभिलाषी बताना भी उचित न होगा। वास्तव मे योजना के कायक्रमो को अभिलाषी कहने के स्थान पर यह कहना उचित होगा कि योजना-म शासन की कार्यक्षमता एव नीतियो की प्रभावशीलता का अनुमान अभिलाषी है। योजना म शासन की कायक्षमता म वृद्धि करने के लिए निश्चित नीतियो एव उनके चालू रखने, मत्री, सचिव, विभागीय अध्यक्षो तथा अन्य स्तरो पर कायक्रमा के क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व निश्चय करने, प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध, विधियो को साधारण बनाना तथा प्रभावशील निरीक्षण की व्यवस्था, निर्माण-कार्यो मे व्यय-अनुसार कार्यों के होने का निश्चय, जनता के साथ सदभावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने आदि का आयोजन किया जाय। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से यह सभी कार्यवाही उचित प्रतीत होती है, परन्तु व्यवहार म इनका उपयोग उत्साह के साथ नहीं किया जाता है। शासन के कर्मचारियो म उत्साह एव नैतिकता की अत्यन्त कमी रहती है। शासन का ढाँचा इतना दोषपूर्ण है कि कार्यक्रमो के क्रियान्वित करने मे बहुत समय लग जाता है तथा निश्चय करने का कार्य एक अधिकारी से अन्य अधिकारी पर ही घूमता रहता है। वह शासन जो एक साम्राज्यवादी विदेशी सरकार ने स्थापित किया था, विकास कायक्रमो के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। त[illegible] विषयो के निश्चय करने का भी अधिकार शासन के अधिकारियो के [illegible] है तथा तान्त्रिक विशेषज्ञ केवल एक सलाहकार मात्र है। तान्त्रिक वि[illegible]

हो जायगा। मानसून की प्रतिकूलता योजना के समस्त अनुमानो को छिन्न-भिन्न कर सकती है।

तृतीय योजना म २६०० करोड रु० विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान है। यद्यपि पश्चिमी राष्ट्र एव अमेरिका पिछडे क्षेत्रो के आर्थिक विकास के लिए सहायता देने की विधियो मे सुधार करन को निरन्तर प्रयत्नशील हैं, परन्तु इस सुधार से भारत को अधिक विदेशी सहायता मिलन की गुजाइश नहीं है। भारत को जो विदशी सहायता प्राप्त होती है उमके आधार म राजनीतिक एव अशत राजनीतिक विचारधाराओ का विशष महत्व है। भारत को अधिक विदशो सहायता प्राप्त होन का सब प्रमुख कारण भारतीय तटस्थता (Neutrality) है। परन्तु एशिया तथा अफ्रीका क अन्य देश भी इसी तटस्थ नीति का अनुसरण कर रहे हैं तथा उनका भी विदशी सहायता प्राप्त का दावा भारत के समान है। पश्चिमी राष्ट्र इस प्रकार विदशी सहायता के विषय म तटस्थ देशो मे भेद भाव रखने की जोखिम नहीं उठा सकते है। इस प्रकार पश्चिमी राष्ट्रो से प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता का विभिन्न अर्ध-विकसित तटस्थ देशो से विभाजन होना स्वाभाविक ह। परन्तु भारत को विभिन्न राष्ट्रो से प्राप्त आश्वासन के आधार पर अनुमानित मात्रा मे विदेशी सहायता प्राप्त करन की केवल सम्भावना की जा सकती है।

योजना का सफलता एव उसके लक्ष्यो की पूर्ति म जन-सहयोग का विशेष स्थान है। अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक विकास के लिए जन-समुदाय द्वारा कुछ न कुछ त्याग अवश्य ही करना पडता है। यह त्याग एच्छिक एव विवशता पूर्ण दोनो ही रूप ग्रहण कर सकता है। ऐच्छिक त्याग को जनता का सहयोग कह सकते हैं। शासकीय नीतियो की प्रभावशीलता एव शासन सम्बन्धी कार्यक्षमता जनता के सहयोग पर बडी सीमा तक निर्भर रहती है। बहुत से विकास कार्यक्रमो को नि शुल्क समाज सेवा द्वारा पूर्ण किया जा सकता है तथा इस प्रकार शासन-व्यय पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। यदि देश के नागरिको मे नैतिकता एवं योजना के प्रति जागरूकता का प्रादुर्भाव हो जाय तो बडी से बडी अभिलाषी योजना भी सफल हो सकती है। योजना की सफलतार्थ अर्थ के समान ही सामाजिक पूंजी भी आवश्यक है। यदि जनता जनार्दन का योजना के सचालनकर्ताओ एव सरकार मे विश्वास हो तो योजना की सफलता मे कोई सन्देह नहीं होता है। यदि देश के नागरिक राष्ट्रीय हितो को अपने व्यक्तिगत हितो से अधिक महत्व दें तो योजना के कार्यक्रमो से इच्छित फल प्राप्त हो सकते हैं। योजना की केवल आर्थिक सफलता ही पर्याप्त नहीं होती

है, बल्कि योजना का अन्तिम उद्देश्य तो सामाजिक उन्नति ही होता है। शासन एव जन-साधारण के सम्बन्ध अभी इतने घनिष्ट नही हैं कि वे विकास-कार्यक्रमो मे सहायक हो।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि तृतीय योजना के लक्ष्यो को अभिलाषी कहना किसी प्रकार भी उचित नहीं है परन्तु योजना के कार्यक्रमो एव नीतियो की प्रभावशीलता का अनुमान अवश्य ही अभिलाषी है।

अध्याय १४

भारत मे नियोजित अर्थ व्यवस्था के दस वर्ष एवं जन-जीवन

[कृषि, उद्योग, खनिज, ग्रामीण एवं लघु उद्योग, शक्ति, यातायात एव सचार; समाज सेवाएँ, रोजगार, भारतीय समाज के जीवन-स्तर के आधार पर वर्गीकरण—
(अ) ग्रामीण जन-समाज,
(ब) नागरिक समाज ।]

भारत ने मार्च १९६१ म अपनी दो पचवर्षीय योजनाओं का पूरा करके नियोजित अथ व्यवस्था के दस वर्ष समाप्त कर लिये। इन दस वर्षों मे भारत की अर्थ व्यवस्था का पर्याप्त विस्तार एव विकास हुआ है और भविष्य के विकास की सुदृढ नीव भी डाल दी गयी है। इस काल म सामाजिक एव आर्थिक दोनो ही क्षेत्रो म कुछ महत्वपूर्ण सस्थनाय सुधार भी हुए है। प्रथम पचवर्षीय योजना म कृषि, सिंचाई एव शक्ति तथा यातायात को अधिक महत्व दिया गया जिसस देश के औद्योगीकरण के लिए सुदृढ आधार प्राप्त हो सके। प्रथम योजना म प्राचीन भूमि प्रबन्ध जो कि कृषि उत्पादन मे बाधाये प्रस्तुत करता था, म सुधार किये गये, सामुदायिक विकास कायक्रम का प्रारम्भ एव सहकारिता म जाग्रति उत्पन्न की गयी, सिंचाई एव शक्ति की सुविधाओ मे बडे पैमाने पर सुधार किये गये, देश के प्रशासन क ढाँचे को सुदृढ किया गया एव इसमे सुधार किये गये कृषि, उद्योग, लघु उद्योगो के विकास तथा पिछडे वर्गों को वित्तीय सहायता देने के लिये विशेष साख सस्थाओ की स्थापना की गयी। प्रथम योजना द्वारा जन-समुदाय म विकास की आवश्यकता के प्रति जाग्रति के के साथ-साथ पारस्परिक सहयोग तथा स्थानीय साधनो को जुटाने की आवश्यकता के महत्व के आभास करन की शक्ति भी प्रबल का गयी।

द्वितीय योजना म प्रथम योजना की आधारभूत नीतियो का ही अनुसरण किया गया परन्तु बड पैमाने पर विनियोजन, उत्पादन एव रोजगार क लक्ष्य निर्धारित किए गए जिससे अर्थ-व्यवस्था को विकास की अगली अवस्था तक

पहुँचाया जा सके। इस योजना म आधारभूत एव भारी उद्योगो के विस्तार एव विकास को विशेष महत्त्व दिया गया। इस योजना म शीघ्र विकास के उद्देश्य के साथ साथ देश म समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया। प्रथम एव द्वितीय योजना के दस वर्षो म विकास व्यय एव विनियोजन निम्न प्रकार हुआ है—

तालिका स० ६७—प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजना मे व्यय एव विनियोजन

(करोड़ रुपया म)

मद	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	योग
सरकारी क्षेत्र का विनियोजन	१५६०	३६५०	५२१०
निजी क्षेत्र का विनियोजन	१८००	३१००	४६००
समस्त विनियोजन	३३६०	६७५०	१०११०
सरकारी क्षेत्र का व्यय—			
कृषि एव सामुदायिक विकास	२९१	५३०	८२१
बडी एव मध्यम श्रेणी की सिचाई योजनाएँ	३१०	४२०	७३०
शक्ति	२६०	४४५	७०५
ग्रामीण एव लघु उद्योग	४३	१७५	२१८
उद्योग एव खनिज	७४	९००	९७४
यातायात एव सचार	५२३	१,३००	१८२३
समाज सेवाएँ एव अन्य	४५९	८३०	१२८९
योग	१९६०	४६००	६५६०

प्रथम योजना म कृषि विकास एव सिचाइ के लिये सरकारी व्यय का ३१% व्यय किया गया। द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास के महत्व को बढा दिया गया और औद्योगिक विकास के लिये योजना के सरकारी व्यय का २०% भाग निर्धारित किया गया जबकि प्रथम योजना के सरकारी व्यय का केवल ४% भाग औद्योगिक विकास पर व्यय किया गया। प्रथम योजना के सरकारी व्यय १९६० करोड रुपये मे से १७७२ करोड रुपया अर्थात ९०% आन्तरिक साधनो से और १८८ करोड रुपया अर्थात १०% विदेशी सहायता के रूप मे

तालिका सं० ६८—विकास के सूचक

मद	इकाई	१६५०-५१	१६५५-५६	१६६०-६१	१६६०-६१ में १६५०-५१ के स्तर पर वृद्धि का प्रतिशत
राष्ट्रीय ग्राय (१६६०-६१ के मूल्यो पर)	करोड रु० में	१०२४०	१२१३०	१४५००	४२
जन संख्या	करोड में	३६'१	३६७	४३८	२१
प्रति व्यक्ति ग्राय १६६०-६१ के मूल्यो पर	रुपयो में	२८४	३०६	३३०	१६
कृषि उत्पादन का निर्देशाक	१६४६-५०=१००	६६	११७	१३५	४१
खाद्यान्नो का उत्पादन	लाख टन	५२२	६५८	७६०	४६
नाइट्रोजन खाद का उपभोग	N के हजार टन	५५	१०५	२३०	३१८
सिंचित भूमि	लाख एकड	५१५	५६२	७००	३६
सहकारी सस्थाग्रो द्वारा कृपको को ऋरण	करोड रुपयो में	२२'६	४६'६	२०० ०	७७३
ग्रौद्योगिक उत्पादन का निर्देशाक	१६५०-५१=१००	१००	१३६	१६४	६४
इस्पात के ढेलो का उत्पादन	लाख टन	१४	१७	३५	१५०
एल्यूमिनियम	हजार टन	३७	७३	१८५	४००

मशीनो के औजार (graded)	करोड रु० मे मूल्य	० ३४	० ७८	५ ५	१५१८
सलफ्यूरिक एसिड	हजार टन	९९	१६४	३६३	२६७
खनिज तेल के उत्पाद	लाख टन	—	३६	५७	—
मिल का बना कपडा	लाख गज	३७२००	५१०२०	५१२७०	३८
खादी, हाथ एव शक्ति के करघो का उत्पादन	,,	८९७०	१७७३०	२३४९०	१६२
समस्त वस्त्र उत्पादन	,,	४६१७०	६८७५०	७४७६	६२
कच्चा लोहा	लाख टन	३२	४३	१०७	२३४
कोयला	,,	३२३	३८४	५४६	६९
निर्यात	करोड रु०मे	६२४	६०९	६४५	३
शक्ति की उत्पादन क्षमता	लाख किलोवाट	२३	३४	५७	१४८
रेलो द्वारा किराये पर ले जाया गया माल	लाख टन	९१५	११४०	१५४०	६८
सडकें (राष्ट्रीय मार्ग एव सतह वाली सडको सहित)	हजार मील	९७ ५	१२२ ०	१४४०	४८

सड़कों पर चलने वाली व्यापारिक मोटर गाड़ियाँ	हजार	११६	१६६	२१०	८१
स्कूलो में विद्यार्थियो की संख्या	लाख	२३५	३१३	४३५	८५
इंजीनियरिंग एव टेकनोलाजी में डिग्री स्तर की शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियो की संख्या	हजार	४१	५९	१३९	२३९
अस्पतालो में पलंग	हजार	११३	१२५	१८६	६५
प्रेक्टिस करने वाले डाक्टर	हजार	५६	६५	७०	२५
खाद्य सामग्री का उपभोग	प्रति व्यक्ति प्रति दिन कैलोरीज की सख्या	१८००	१९५०	२१००	१७
वस्त्रो का उपभोग	प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष गज	९ २	१५ ५	१५·५	६८

कृषि

उपर्युक्त आँकड़ो से यह स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के दस वर्षों मे सर्वतोमुखी विकास एव विस्तार हुआ है। कृषि उत्पादन मे पिछले दस वर्षो मे औसत से ३·५% की वृद्धि प्रति वर्ष हुई है। कृषि उत्पादन मे इतनी अधिक वृद्धि भूत काल के दस वर्षों मे कभी भी नहीं हुई। इन दस वर्षों में कृषि, सामुदायिक विकास एवं सिंचाई के कार्यक्रमो पर १५५१ करोड़ रुपया व्यय किया गया जिससे ग्रामीण जीवन को सुधारने मे पर्याप्त सहायता मिली है। इस काल मे ४० लाख एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाया गया, ५ लाख एकड़ भूमि पर यन्त्रवत् कृषि विधियो (Mechanical Cultivation) का विस्तार

किया गया, तथा १५ लाख एकड भूमि पर सुधार किये गए। नाइट्रोजियम खाद का उपयोग ५५ ००० टन (In Terms Of N) से बढ कर २,३०,००० टन और फास्फेटिक खाद (In Terms Of $P_2 O_5$) ७,००० से बढ कर ७०,००० टन हो गया। ११८ लाख एकड भूमि पर हरे खाद का उपयोग किया गया तथा २७ लाख एकड भूमि पर भूमि सुरक्षा की कार्यवाहियो को सचालित किया गया। दूध का उत्पादन १७० लाख टन से बढ कर २२० लाख टन और मछली का उत्पादन ७ लाख टन से बढ कर १४ लाख टन हो गया। वन लगाने के कार्यक्रम ५ लाख एकड भूमि पर चलाये गये। जमीदारी एव जागीरदारी का उन्मूलन, कृषिको के अधिकारो की सुरक्षा एव सुधार का आयोजन, भूमि पर अधिकार रखने की अधिकतम सीमाएँ निर्धारित करने का आयोजन किया गया। कृषि मजदूरो को रिक्त भूमि पर बसाने का कार्य भी किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम लगभग ३,७० ००० ग्रामो म सचालित किये गए और इस प्रकार इन कार्यक्रम स आधी ग्रामीण जनसख्या को आच्छादित किया गया। इन काल मे प्राथमिक कृषि सहकारी समितियो की सख्या २,१०,००० हो गई जो कि १९५०-५१ की सख्या की लगभग दुगुनी थी। लगभग १,८७० सहकारी निर्माण समितियो एव ४१ सहकारी शक्कर के कारखानो की स्थापना की गई।

उद्योग

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के पिछले दस वर्षों म औद्योगिक उत्पादन की गति एवं दर म महत्वपूर्ण विकास हुआ है। औद्योगिक उत्पादन म ७% प्रति वर्ष (मिश्रित दर म At Cumulative Rate) की वृद्धि हुई है। सरकारी क्षेत्र म इन काल म औद्योगिक विकास कार्यक्रमो पर ६७४ करोड रुपये का व्यय किया गया। द्वितीय योजना काल म उद्योगो पर सरकारी क्षेत्र ८७० करोड रुपया विनियोजित किया गया। सरकारी क्षेत्र के अधिकतर उद्योग भारी एव आधार-भूत प्रकार के है। इस कारण म सरकारी क्षेत्र को औद्योगिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है और औद्योगिक विकास द्रुत गति से करना सम्भव हो सकता है। इस काल म तीन बडे इस्पात के कारखाने भिलाई, रूरकेला एव दुर्गापुर की स्थापना सरकारी क्षेत्र मे की गयी है। अल्युमिनियम, सीमेंट, भारी रसायन, रग, कोयला, खनिज तेल, शक्ति आदि जैसे औद्योगिक, कच्चे माल की उपलब्धि म पर्याप्त वृद्धि हो गई है। इस काल में मशीनो के बनाने वाले उद्योगो का भी विस्तार हुआ है और देश म अब कृषि, यातायात, रसायन एव औषधियो के उद्योगो म वस्त्र, जूट, सीमेंट, चाय, शक्कर, आटे एव तेल मिल, कागज उद्योगों एव खनिज निकालने आदि मे उपयोग होने वाली

मशीनो का निर्माण होने लगा है। रेलो मे उपयोग आने वाली मशीनो एव सामिग्री, विद्युत सामिग्री तथा वैज्ञानिक औजारो का उत्पादन भी अब देश मे होने लगा है। जूट, सूती वस्त्र एव शक्कर उद्योगो के नवीनीकरण की ओर भी पर्याप्त प्रगति हुई है। देश मे औद्योगिक बॉयलर्स, मिलिंग मशीनो, अन्य प्रकार के औजारो, ट्रक्टर, सल्फा तथा एण्टीबायटिक औषधियाँ, डी० डी० टी०, अखबार का कागज, मोटर साइकिलें तथा स्कूटर आदि नवीन मदो का उत्पादन भी देश मे होने लगा है।

खनिज

इस काल मे खनिज के शोषण एव उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया है। कोयला लोहा एव बॉक्साइट के शोषण एव उत्पादन के सम्बन्ध मे सफल कार्यवाहियाँ की गयी हैं। खनिज उत्पादन की वृद्धि तृतीय योजना काल मे अधिक हुई है। खनिज तेल की खोज करने से पता लगा है कि आसाम म नाहोरकटिया म खनिज तेल का सचय है और गुजरात मे कैम्बे, अक्लेश्वर म भी खनिज तेल बडी मात्रा मे मिलने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रो मे खनिज तेल की खोज जारी है। खनिज तेल की खोज के लिए आयल तथा नैचुरल गैस कमीशन (Oil And Natural Gas Commission) की स्थापना की गई है। नानमती (Nanmati) एव बरौनी म दो तेल शोधन के कारखान सरकारी क्षेत्र म स्थापित किए गए है तथा इण्डियन आयल कम्पनी की स्थापना तेल क वितरण के लिए की गयी है।

ग्रामीण एव लघु उद्योग

पिछले दस वर्षो मे राज्य द्वारा २१८ करोड रुपया ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास पर व्यय किया गया है। विभिन्न अखिल भारतीय परिषदो की स्थापना, लघु उद्योगो, हाथ करघा उद्योग, खादी एव ग्रामीण उद्योग, हस्त कला, नारियल के रेश के उद्योग तथा रेशम उद्योग के विकास के लिए समन्वित कार्यक्रम सचालित हेतु की गई। औद्योगिक विस्तार सेवा का विकास किया गया है तथा लघु उद्योग सेवा सस्थाओ (Small Scale Industries Service Institutes) की स्थापना प्रत्येक राज्य मे की गई है और ५३ विस्तार केन्द्र (Extension Centre) भी स्थापित किए गए है। लगभग ६० औद्योगिक एस्टेट जिनमे लगलग १००० लघु कारखान हैं, की स्थापना की गयी है। साख सुविधाओं, तानिक सलाह तथा कच्चे माल की उपलब्धि के विशेष प्रबन्ध किए गए हैं तथा निर्यात की हुई एव देश म उत्पादित मशीनो को किराया क्रय (Hire Purpurchase) पर देन का भी आयोजन किया गया है।

मशीनो के औजार, सिलाई की मशीनें, बिजली के मोटर, पंखे, साइकिलें, हाथ के औजार आदि के उत्पादन मे पिछले पाँच वर्षों मे २५% से ५०% की वृद्धि हुई है। अधिकोषण सस्थाओ द्वारा लघु उद्योगो को राज्य की प्रतिभूति (Guarantee) पर साख प्रवल करने, बुनकर सहकारी समितियो को शक्ति के करघे क्रय करने के लि एसहायता देने तथा अम्बर चरखा के निर्माण एव वितरण का आयोजन किया गया है।

शक्ति

नियोजित अर्थ-व्यवस्था के दस वर्षो मे सरकारी क्षेत्र मे शक्ति की मद पर ७०५ करोड रुपये का विनियोजन किया गया है। प्रथम योजना के पूर्व प्रारम्भ की गई बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओ—दामोदर घाटी, भाखडा-नगल, तुगभद्रा तथा हीराकुड—के कार्यक्रमो को समन्वित किया गया और इनके कार्य मे पर्याप्त प्रगति हुई है। चम्बल, रीहन्द, कोनया, नागार्जुन सागर आदि नवीन नदी घाटी योजनाओ का प्रारम्भ किया गया है। इस काल मे ग्रामीण क्षेत्रो के विद्युतीकरण को विशेष महत्व दिया गया और विद्युतीकृत (Electrified) नगरो एव ग्रामो की सख्या १९५०-५१ म ३६८७ से बढ कर १९६०-६१ तक २३,००० हो गयी है।

यातायात एव संचार

पिछले दस वर्षो म यातायात के साधनो मे पर्याप्त विस्तार हुआ है। सरकारी क्षेत्र में यातायात एव सचार पर १८२३ करोड रुपया व्यय किया गया है। इस काल मे ८०० मील लम्बी रेल की लाइने डाली गई। रेल के इजनो की सख्या ८५०० से बढकर १०,६००, मालगाडी के वैगन की सख्या २,२२,४०० से बढकर ३,४१,००० हो गयी। यात्री मील ४१३ करोड मे बढकर ४८६ करोड हो गये तथा किराये पर रेलो द्वारा ले जाया गया माल ९१५ लाख टन से बढ-कर १५४० लाख टन हो गया। इसी प्रकार सतह वाली सडकें (Surfaced Roads) जिनम राष्ट्रीय मार्ग भी सम्मलित हैं ९७,५०० मील से बढकर १,४४,००० मील हो गई। समुद्री जहाज का ग्रास रजिस्टर्ड टनेज ३.९ लाख से बढकर ९ लाख हो गया। इस काल म डाकखानो की सख्या ३६,००० से बढकर ७७,००० और टलीफोनो की सख्या १,६८,००० से ४,६०,००० हो गई। प्रत्येक भाषा के क्षेत्र म एक आकाशवाणी प्रसारण स्टेशन स्थापित किया गया और सन् १९६०-६१ मे इन स्टेशनो की सख्या २८ थी।

समाज सेवाएँ

पिछले दस वर्षों मे राज्य द्वारा १२८९ करोड रुपया समाज सेवाओ पर

रोजगार—पिछले दस वर्षों मे जनसख्या म ७७० लाख की वृद्धि हुई है जिससे बेरोजगार की समस्या और अधिक गम्भीर हो गयी है। द्वितीय योजना काल म ८० लाख अनिरिक्त रोजगार के अवसर उत्पन्न किये गये और द्वितीय योजना के अन्त म ९० लाख व्यक्तिया के बेरोजगार होने का अनुमान है।

भारतीय समाज के जीवन स्तर के आधार पर वर्गीकरण

उपर्युक्त आँकडो एव विवरण म यह स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ व्यवस्था के पिछले दस वर्षों म इतना विकास हुआ है जितना कि भूत काल म कभी भी १० वर्षों मे नहीं हुआ। परन्तु नियोजित अर्थ व्यवस्था की वास्तविक सफलता समस्त अर्थ व्यवस्था के सामूहिक आंकडा म स्पष्ट नहीं हो सकती है। नियोजित अर्थ व्यवस्था के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन म क्या सुधार हुआ यह देखना भी आवश्यक है। नियोजन के दस वर्षों के पश्चात् आज भी जन साधारण म असतोष, अज्ञान निर्धनता विषमता आदि उपस्थित है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक सफलता का अध्ययन करने हेतु भारत के जन जीवन को निम्न वर्गों म विभक्त किया जा सकता है—

(अ) ग्रामीण जन समाज

(१) उच्च श्रेणी का वर्ग—जिसम बडे बडे कृषक जिनके अधिकार म अधिक भूमि एव पूँजी है बडे बडे जमीदार एव जागीरदार जिनको राज्य से अधिक मुआवजा मिलता है और जो अधिक भूमि भी अधिकार म रखते हैं। तथा साहूकार जो कृषको को अधिक ब्याज पर ऋण देता है, छोटे-छोटे उद्योग चलाता है एव व्यापार करता है सम्मिलित हैं। ग्रामीण समाज का अध्ययन करने हेतु श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता म नियुक्त हुए अध्ययन ग्रुप की रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ग म ग्रामीण परिवारो के लगभग २०% परिवार आते हैं और इनकी आय १००० रुपया प्रतिवष स अधिक है। प्रथम एव द्वितीय योजना के अन्तर्गत सचालित ग्रामीण विकास कार्यक्रमो जैसे, सामुदायिक विकास सहकारिता पचायते आदि का अधिकतर लाभ इस वर्ग को ही प्राप्त हुआ है। इस वर्ग म कुछ शिक्षित व्यक्ति हैं जो कि ग्रामीण समाज पर प्रभुत्व रखने म सफल रहते हैं। इन्हे राज द्वारा दी गई सुविधाओ का ज्ञान है और यह उनका पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न भी करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों म निर्माण कार्यों के ठेके आदि भी इसी वर्ग के लोगो को प्राप्त होते हैं और यह उनका लाभ उठा लेते हैं। पिछले दस वर्षों म इस वर्ग की सम्पन्नता में अवश्य ही सुधार हुआ है। बडे-बडे कृषक खाद्यान्न एव कृषि उत्पादन के मूल्यो की वृद्धि के कारण अधिक लाभ उपार्जन करने म सफल रहा है। परन्तु अज्ञान के कारण अतिरिक्त आय का उपयोग जीवन-स्तर मे वृद्धि करने

अथवा धन का उत्पादन उपयोग करने हेतु नही किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रो मे चलाये गये विभिन्न राजकीय कार्यक्रमो मे लगे हुए सरकारी अधिकारियों के साथ भी इन्हीं का सम्पर्क घनिष्ट है।

(२) निम्न श्रेणी का वर्ग—इस वर्ग मे कृषि मजदूर, कम भूमि वाले कृषक तथा छोटे-छोटे दस्तकार सम्मलित है। इस वर्ग मे ग्रामीण परिवारो के लगभग ८०% परिवार सम्मिलित हैं और इनकी वार्षिक आय १००० रुपये से कम है। ग्रामीण परिवार के लगभग ५०% परिवार ऐसे हैं जिनकी वार्षिक आय ५०० रुपये से भी कम है। २५० रुपये से कम वार्षिक आय वाले परिवारो की संख्या भी ग्रामीण क्षेत्रो मे अधिक है। इस वर्ग को नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा प्राप्त लाभो का भाग उचित रूप से प्राप्त नही हुआ है। यह वर्ग अब भी विकास कार्यक्रमो से अनभिज्ञ है। इसकी आय एव जीवन स्तर मे पिछले दस वर्षों मे कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। इन्हे वर्षभरके लिये रोजगार उपलब्ध नही होता है और राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि होने पर भी इनकी आय म कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। अज्ञान एव रूढ़िवादी भावनाओ के कारण यह वर्ग न तो राज्य द्वारा उपलब्ध कराई गई शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाओ का लाभ ही उठाता है और न इसम नियोजन के प्रति जागरूकता ही है। ग्रामीण क्षेत्रो म खोले गये स्कूलो की सख्या तो बहुत अधिक है परन्तु इन स्कूलो की दशा अत्यन्त दयनीय है। बहुत से स्कूलो मे दीर्घ काल तक शिक्षक ही उपलब्ध नही होते हैं। इनके पास ग्रामीण समाज मे शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने के साधन नही हैं, निम्न वर्ग के लोग अपने बच्चो को स्कूल भेजने म कोई रुचि नही दिखाते है, क्योकि इनको अपनी अनिवार्यताओ को पूरा करने हेतु सपरिवार कार्य करना आवश्यक होता है। ग्रामीण समाज ग्रामीण क्षेत्रो मे सचालित योजना कार्यक्रमो को एक राजकीय कार्यवाही मानता है जिसे संचालित करने का कर्तव्य सरकारी अधिकारियो का है। सहकारी सस्थायें सफलता पूर्वक नही चलाई जाती है। इनके लिये ईमानदार एव तत्पर अधिकारियो की आवश्यकता होती है, जिनकी समाज मे अत्यन्त कमी है। सहकारिता का लाभ भी उच्च श्रेणी के वर्ग को ही मिलता है।

(ब) नागरिक समाज

(१) उच्च वर्ग—इस वर्ग मे बडे बडे उद्योगपति, व्यवसायी, व्यापारी एव ठेकेदार सम्मिलित किये जा सकते हैं। इस वर्ग को योजना काल मे सब से अधिक लाभ प्राप्त हुआ बताया जाता है। योजना काल के बडे पैमाने के विनियोजन के कारण नागरिक क्षेत्र के प्राय सभी वर्गों की आय मे कुछ न

कुछ वृद्धि हुई है। आय की वृद्धि के कारण उपभोक्ता वस्तुओ की माँग मे अत्याधिक वृद्धि हुई है जबकि नियोजित अर्थव्यवस्था के दस वर्षो के नवीन विनियोजन मे उत्पादक एव पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन को विशेष महत्व प्रदान किया गया। इसके साथ ही उपभोक्ता वस्तुओ के आयात पर भी प्रतिबंध लगा दिये गये हैं अथवा आयात कर को इतना अधिक बढा दिया गया है कि आयात की हुई वस्तुएं देश के बाजारो मे बिक न सकें। इस प्रकार देश के उपभोक्ता उद्योगो को एक ओर संरक्षण दिया गया है और दूसरी ओर विदेशी विनिमय की बचत करके उत्पादक एव पूंजीगत वस्तुओ का अधिक आयात करना सम्भव हो सका है। परन्तु इस स्थिति का देश के उद्योगपतियो ने अनुचित लाभ उठाया है। उन्हे प्रतिस्पर्धा का भय नहीं रह गया है और अधिक माँग की उपस्थिति म वे अधिक मूल्य पर अपनी वस्तुएं बेच कर लाभ उपार्जित करते हैं। इसके अतिरिक्त उद्योगपतियो मे अपनी उत्पादन लागत को कम करने के प्रति कोई प्रोत्साहन भी नहीं है क्योकि न तो उन्हे प्रतिस्पर्धा का भय है और न वस्तुओ के दीर्घकाल तक न बिकने का डर है। राज्य ने इस काल मे नवीन औद्योगिक इकाइयो की स्थापना के सम्बन्ध मे हर प्रकार से प्रोत्साहित किया है और देश मे बहुत से लघु, मध्यम एव वृहद् औद्योगिक इकाइया की स्थापना की गयी है। इन उद्योगो को मशीनो, पूंजीगत वस्तुओ एवं कच्चे माल की अत्यधिक आवश्यक्ता थी और बडे पैमाने के विनियोजन को आच्छादित करने के लिये विनियोजन वस्तुओ की अत्याधिक माँग थी। विनियोजन वस्तुओ के निर्माताओ ने (जिनमे बडे-बडे पूंजीपति सम्मिलित है) इस परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया है। विदेशो से इन पूंजीगत वस्तुओ के आयात करने मे राज्य के कठोर नियन्त्रणो का उपयोग किया है जिसके फलस्वरूप नवीन औद्योगिक इकाइयो को देश मे बनी हुई पूंजीगत वस्तुओ का अधिकतर उपयोग करना पडा है। इस प्रकार पूंजीगत वस्तुओ के निर्माताओ ने इस एकाधिकार के वातावरण का लाभ उठाया और उनके लाभ की दर सामान्य से अधिक रही है। पिछले दस वर्षों मे निर्माण कार्य इतना अधिक हुआ है जितना कि सम्भवत पिछले ५० वर्षों मे भी नहीं हुआ होगा। इसमे से ७० से ८०% निर्माण सरकारी एवं अर्ध सरकारी क्षेत्र मे किया गया है। सरकारी क्षेत्र एव अर्ध सरकारी क्षेत्र के निर्माण कार्य ठेके द्वारा कराये जाते है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था के दस वर्षो मे ठेकेदार वर्ग की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि हो गई है। ठेकेदारो ने योजना काल मे अत्यधिक लाभोपार्जन किया है। इस लाभ का कुछ भाग दोषपूर्ण निर्माण कार्य तथा नियन्त्रित मूल्य वाले सामान का दुरुपयोग करके प्राप्त किया गया है।

फिर सामूहिक परिवार का निर्वाह करते हैं। इनके परिवारो मे आय उपार्जन करने वालो की सख्या कम और आश्रितों की सख्या अधिक है। कुछ-कुछ परिवारो म स्त्रियाँ भी नौकरी आदि करके आय उपार्जित करती है। यह वर्ग सदैव जीवन स्तर को यथोचित स्तर पर रखने का प्रयत्न करता है जो कि उच्च मूल्य स्तर के कारण इनके साधनो के बाहर रहता है। इस वर्ग के अभिलाषी होने के कारण इनमे अपने जीवन स्तर को बढाने की प्रवृत्ति भी उपस्थित है। इस वर्ग मे बच्चो को अच्छी शिक्षा देने पर भी अधिक जोर दिया जाता है जिसमे बच्चो का भविष्य उज्ज्वल हो सके। परन्तु शिक्षा के स्तर म निरन्तर कमी एव शिक्षा की लागत म वृद्धि होने के कारण इनकी कठिनाइयाँ और भी गम्भीर हो गयी है। इस वर्ग के जीवन निर्वाह की लागत का अनुमान मूल्य निर्देशाक के आधार पर नही लगाया जा सकता है। इनके जीवन निर्वाह की लागत म शिक्षा एव सामाजिक उत्तरदायित्वो की लागत भी सम्मिलित रहती है।

बढते हुए मूल्यो का सब से अधिक प्रभाव इस वर्ग पर पडता है। देश मे निर्मित वस्तुओ को पर्याप्त मात्रा मे इन्हे क्रय करना असम्भव है क्योंकि इनके पास साधनो की इतनी कमी रहती है कि एक नवीन वस्तु खरीदने के लिये इन्हे दूसरी वस्तु के क्रय का विचार छोडना पडता है। देश के उद्योगो का सरक्षण मिलने के कारण इन उद्योगो के उत्पादन का मूल्य निरन्तर बढता जा रहा है। उद्योगपतियो को विदेशी प्रतिस्पर्धा का भय न होने के कारण वे अधिक मूल्य पर अपना सामान बेचने का प्रयत्न करते है। मूल्यो की वृद्धि का दूसरा कारण औद्योगिक श्रमिको को अधिक लाभ उपलब्ध कराना भी है। औद्योगिक श्रमिक सगठित है और राज्यो एव केन्द्र दोनो मे श्रमिक नेता मन्त्रियो के पद ग्रहण किये हुए हैं जिसके कारण श्रमिको की माँगो की पूर्ति करना उद्योग-पतियो को आवश्यक हो गया है। उद्योगपति श्रमिको को दिये जाने वाले लाभो को अपनी वस्तुओ के मूल्य मे जोड देता है और इस प्रकार श्रमिको का लाभ का बहुत बडा भाग मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओ को वहन करना पडता है। सरकारी क्षेत्र के व्यवसाय म भी श्रमिको को दिये गये लाभो की लागत अन्तिम रूप से उपभोक्ता को ही देनी पडती है। जब इस प्रकार उपभोक्ता को उद्योगो एव व्यवसायो के समस्त व्यय, सरकारी कर आदि का भार वहन करना पडता है परन्तु निम्न मध्यम वर्ग को यह भार असहनीय हो जाता है क्योंकि इनकी आय स्थिर रहती है और इसे अपने आश्रितो का निर्वाह करना आवश्यक होता है। जब इस वर्ग के लोग अपनी तुलना औद्योगिक श्रमिको के (परिवारो जिनमे आय उपार्जन करने वाले अधिक और आश्रित कम है) से करते है तो इनमें असंतोष

की भावना जाग्रत होना स्वाभाविक है और इन्हे ऐसा लगता है कि योजना का लाभ इनको तनिक भी प्राप्त नही हो रहा है।

इस वर्ग में बेरोजगारी का भार भी अत्यधिक है। यह वर्ग रोजगार प्राप्त करने हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिये तत्पर रहता है परन्तु क्षेत्रीय एव भाषा-भाषी भावनाओ, जाति भेद, साम्प्रदायिकता आदि के कारण इन्हे आय उपार्जन के पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाते हैं। अवसर उपलब्ध होने हुए भी जब इन्हे नहीं दिये जाते तो इनमें असन्तोष की भावनायें जाग्रत होती हैं परन्तु इन्हे अपने उत्पीडन को प्रस्तुत करने के अवसर भी उपलब्ध नही है।

इस प्रकार इस वर्ग के सदस्यो का नियोजन की कार्यवाहियो म अधिक रुचि नहीं है। इनको एक ओर नियोक्ताओ के शोषण, वहम तथा घृणा को वहन करना पडता है और दूसरी ओर बढते हुए मूल्यो के दवाव स दबे रहना पडता है। यदि यह वर्ग ग्रामीण क्षेत्रो स नगरो म आता है ता निवास गृहो की समस्या उपस्थित होती है। मकानों के किराये नगरो मे इतने अधिक हो गए है कि इनको अपनी आय का लगभग २०% किराये क रूप म दना पडता है। यदि इस वग के लोग ग्रामो म रहते है तो बच्चा की शिक्षा का उचित प्रबन्ध सम्भव नहीं है। समाज म इनका स्थान ऐसा है कि यह अपने व्ययो का कम करने मे असमर्थ है और जिस क्षेत्र म भी यह बचत करत है मूल्यो की निरन्तर वृद्धि उस बचत के लाभ से इन्हे वचित कर देती है।

प्रो० सी० एन० वकील के शब्दो म "जाति, धर्म, भाषा तथा क्षेत्र पर आधारित न होने वाले वास्तविक पिछडे वग—निम्न मध्यम वर्ग—पर कोई विचार नहीं किया जाता है। योजना के उद्देश्यो की पूर्ति हेतु अधिकारियो को परिस्थितियो के इस पहलू पर विचार करना चाहिए। आर्थिक एव सामाजिक ढाँचे के द्रुतगति से होने वाले परिवर्तनो के मध्य म इस समस्या का निरन्तर अध्ययन करना आवश्यक है। देश के विभिन्न भागो के इस वर्ग के सदस्यो के जीवन का गहन अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। देश की भविष्य मे आर्थिक, राजनीतिक एव सामाजिक सुदृढता के लिए इस वर्ग की समस्याओ का अध्ययन एव निवारण आवश्यक है। नियोजन को सबसे अधिक सहयोग देने की क्षमता रखने वाले वर्ग का योजनाओ की सफलता म सक्रिय कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करने हेतु आश्वासन के अतिरिक्त वास्तविक सुविधाओ की उपलब्धि आवश्यक है।"[1]

---

1 But the real backward class—the lower middle class irrespective of cast, religion, language or region, remains un-
(contd next page)

(ग) निम्न वर्ग—इस वर्ग मे नगरो के औद्योगिक श्रमिको, छोटे छोटे व्यापारियो आदि को सम्मलित किया जा सकता है। औद्योगिक श्रमिको के कल्याण हेतु प्रथम एव द्वितीय योजनाओ म विशेष कार्यवाहियाँ की गई हैं। यह श्रमिक सगठित है और अपनी कठिनाइयो एव माँगो को सामूहिक रूप से प्रस्तुत करने म असमथ ह। इन दो योजनाओ की नीति से इस वर्ग के जीवन मे पर्याप्त सुधार हुआ है। श्रमिको के प्रशिक्षण, चिकित्सा आदि का भी प्रबन्ध किया गया है। इनक पारिश्रमिक म भी वृद्धि हुई है, यद्यपि यह वृद्धि मूल्यो की वृद्धि के अनुकूल नहीं है। औद्योगिक श्रमिको के निवास-गृहो का निर्माण बडे बडे केन्द्रो मे राज्य द्वारा किया गया है। परन्तु इनकी वतमान अवस्था अन्य उन्नतिशील राष्ट्रो के औद्योगिक श्रमिको की तुलना म अत्यन्त दयनीय है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था के दस वर्षो मे उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि होन पर भी समाज के समस्त वर्गों को समान लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। वास्तव म इन दस वर्षों म उत्पादन की वृद्धि को जितना महत्व दिया गया उतना ही महत्व वितरण को भी देना चाहिए था। सम्पन्नता के वितरण की विषमता के कई कारण रहे है। देश के आर्थिक ढाँचे म जो सस्थनीय परिवर्तन किये गये व या तो पर्याप्त नहीं हैं या फिर उनमे प्रभावशीलता की कमी है। सरकारी क्षेत्र का विस्तार एव निजी क्षेत्र पर नियन्त्रण की प्रभावशीलता पर्याप्त नहीं रही है। इसके अतिरिक्त प्रशासन के विभिन्न दोषो के कारण भी वितरण की विषमता अभी भी बनी हुई है। राष्ट्रीय चरित्र की हीनता, कर्तव्य परायणता की कमी, अकुशल सगठन आदि कारणो ने भी निर्बल वर्ग को निबलता के जाल से मुक्त होने से रोक रखा है। वर्तमान परि-

---

noticed For the sake of many objectives of the Plan, those in charge must come to grip with this aspect of the situation The rapidly changing economic and social pattern rejoins constant examination An intensive study of the life of the members of this class in different parts of the country is urgently called for A careful examination of their problems and timely solution is necessary in the interest of the future economic, political and social stability of the country The largest potential supporters of the plan require something more tangible than vague words to spur them into working actively for its success"

Prof C. N Vakil Plan Impact on Large Sections of People is not Strong, The Economic Times, 15th June, 1961.

स्थितियो मे यह आवश्यक हो गया है कि भविष्य की योजनाओ के कार्यक्रमो का प्रकार एव सचालन विधि इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए कि उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ वितरण मे समानता लायी जा सके और योजना के लाभो का बडा भाग निर्बल वर्गों को प्राप्त हो सके ।

———

अथवा साधनो को जन-समूह के अधिकतम लाभार्थ विवेकपूर्ण उपयोग करने की कला को नियोजन कहत है।" विठ्ठल बाबू की इस परिभाषा का स्पष्टीकरण कीजिये।

(९) आर्थिक नियोजन की उचित परिभाषा दीजिये और इसके आधार पर आर्थिक नियोजन के मुख्य लक्षणो का वर्णन कीजिये।

(१०) आर्थिक नियोजन के सामान्य उद्देश्यो का वर्णन कीजिये। भारत की योजनाओ मे इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु कौन-कौन से मुख्य कार्यक्रम सम्मिलित किये गये है ?

(११) यह अनिवार्य है कि आर्थिक विकास की पूर्ण योजना लागू करने मे राज्य को समाज के हित के लिय पर्याप्त मात्रा म हस्तक्षेप व नियन्त्रण रखना चाहिये। भारतीय पचवर्षीय योजनाओ को दृष्टिगत करते हुए इस कथन की व्याख्या कीजिये।

(बी० काम० पाट १, विक्रम विश्वविद्यालय, १९६०)

(१२) उन घटको का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये जिन्होने प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तो की प्रगति एव सामान्य स्वीकृति म सहायता प्रदान की।

(एम० काम०, आगरा विश्वविद्यालय, १९५९)

(१३) नियोजित अर्थ व्यवस्था मे राज्य के कर्तव्यो का वर्णन कीजिये, विशेषकर ऐसी परिस्थिति मे जब कि पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करनी हो।

(एम० काम०, आगरा विश्वविद्यालय, १९५९)

(१४) "नियोजित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत ही राष्ट्र के साधनो का पूर्णतम उपयोग, अधिकतम उत्पादन एवं पूर्ण रोजगार सम्भव हो सकता है।" ससार की वतमान परिस्थितियो को दृष्टिगत करते हुए इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

(१५) *किसी भी राष्ट्र मे नियोजन का प्रकार किन विचारधाराओ* एव परिस्थितियो पर आधारित होता है ? भारत मे प्रजातान्त्रिक नियोजन को मान्यता देने के कौन कौन से मुख्य कारण है, स्पष्ट कीजिये।

(१६) समाजवादी तथा प्रजातान्त्रिक देशो के आर्थिक नियोजन के प्रमुख तथ्यो को समझाकर लिखिये।

(बी० काम० पार्ट १, विक्रम विश्वविद्यालय, १९६१)

(१७) "समाजवादी एव पूँजीवादी नियोजन मे आप किस प्रकार भेद करेंगे ? आधुनिक आर्थिक समाज की उत्पादन एव वितरण की समस्याएँ

जन द्वारा ही सम्भव है—अर्ध विकसित राष्ट्रो की मुख्य मुख्य समस्याओ के सन्दर्भ मे इस कथन पर अपने विचार प्रगट कीजिये ।

(२९) पूँजी निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन कीजिये । अर्ध-विकसित राष्ट्रो मे पूँजी निर्माण की कमी के कारण स्पष्ट कीजिये ।

(३०) "*आर्थिक नियोजन प्राथमिकताओ के विवेकपूर्ण निश्चयीकरण को* कहते हैं"—इस कथन के सदर्भ मे अर्ध-विकसित राष्ट्रो की प्राथमिकताएँ निर्धारित करने की समस्या को व्याख्या कीजिये ।

(३१) "आर्थिक नियोजन के सफलतार्थ जहाँ आर्थिक पूँजी की पर्याप्त उपलब्धि आवश्यक है ।, वहाँ सामाजिक पूँजी का उचित स्तर अनिवार्य है ।" इस कथन को भारतीय योजनाओ के सन्दभ मे स्पष्ट कीजिये ।

(३२) *अर्ध-विकसित राष्ट्रो की बेरोजगारी की समस्या का विस्तृत वर्णन* कीजिये और इसके निवारणार्थ की जाने वाली कार्यवाहियो को स्पष्ट कीजिये । तृतीय योजना मे इस समस्या का निवारण किस सीमा तक सम्भव होगा ?

(३३) 'अर्ध विकसित राष्ट्रो के शीघ्र विकास एव जन समुदाय के सामान्य हितार्थ सरकारी क्षेत्र का विस्तार अत्यन्त आवश्यक है ।' इस कथन को स्पष्ट करते हुए भारतीय योजनाओ मे सरकारी क्षेत्र के महत्व पर अपने विचार दीजिये ।

(३४) *सरकारी क्षेत्र के सगठन एव प्रबन्ध व्यवस्था की व्याख्या* कीजिये । लोक निगम सरकारी क्षेत्रो के व्यवसायो के लिये अधिक प्रभावशाली क्यो समझे जाते हैं ?

(३५) रूसी अर्थ-व्यवस्था के मुख्य मुख्य लक्षणो का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये ।

(३६) रूसी योजनाओ का सक्षिप्त विवरण देते हुए यह बताइये कि इन *योजनाओ द्वारा रूसी अर्थ-व्यवस्था का आश्चर्यजनक विकास किन* कारणो से सम्भव हो सका है ?

(३७) चीनी नियोजित अर्थ-व्यवस्था पर एक निबन्ध लिखिये और भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था से तुलना भी कीजिये ।

(३८) अमरीकी अर्थ व्यवस्था मे आर्थिक नियोजन का क्या स्थान है ? अमरीकी *अर्थ व्यवस्था की रूसी अर्थ-व्यवस्था से तुलना करते हुए बताइये कि आपके* विचार मे इनमे कौन सी अर्थ व्यवस्था श्रेष्ठ माननी चाहिये ।

(३९) गांधीवादी योजना के मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिये । भारतीय पचवर्षीय योजनाओ म यह तत्व कहाँ तक अपनाये गये हैं ?

(बी० काम०, विक्रम विश्वविद्यालय)

(४०) बम्बई योजना की प्रथम विशेषताश्रो को बतलाइये। देश कीप्रथम पचवर्षीय योजना इनके द्वारा कहाँ तक प्रभावित हुई है ?

(बी० काम०, विक्रम विश्वविद्यालय)

(४१) जिन राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितियो मे भारत मे आर्थिक नियोजन को राष्ट्रीय आवश्यकता के रूप मे मान्यता प्राप्त हुई, उनको दृष्टिगत करते हुए बम्बई योजना के आधारभूत उद्देश्यो की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

(एम० काम०, आगरा विश्वविद्यालय)

(४२) "भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना वास्तव मे एक विकास योजना थी। उस समय क्रियान्वित किये जाने वाले विभिन्न केन्द्रीय एव प्रान्तीय कायक्रमो को दृष्टिगत करते हुए प्रथम पचवर्षीय योजना एक राजनीतिक कार्यवाही थी न कि सिद्धान्त रूप से एक आर्थिक आवश्यकता।" व्याख्या कीजिये।

(एम० काम०, आगरा विश्वविद्यालय)

(४३) देश की कौन-कौन सी परिस्थितियो ने प्रथम पचवर्षीय योजना के कार्यक्रमो को प्रभावित किया ?

(४४) "भारत की पचवर्षीय योजना मुख्य रूप से एक ग्रामीण विकास की योजना थी।" इस कथन के सदर्भ मे प्रथम योजना के ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो की विवेचना कीजिये।

(४५) "प्रथम योजना की सफलताओ का मुख्य कारण योजना के कार्यक्रम ही नहीं थे अपितु कुछ अनुकूल परिस्थितियो ने योजना की सफलता मे योगदान दिया।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये और इस सदर्भ मे प्रथम योजना की असफलताश्रा पर प्रकाश डालिये।

(४६) द्वितीय पचवर्षीय योजना की मुख्य विशेषताओ का वर्णन कीजिये और योजना की औद्योगिक नीति एव कार्यक्रमो पर प्रकाश डालिये।

(एम० काम०, आगरा विश्वविद्यालय)

(४७) द्वितीय योजना द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना मे कहाँ तक सहायता मिली है ? योजना मे निजी एव सरकारी क्षेत्र मे किये गये महत्व के आधार पर योजना के समाजवादी कार्यक्रमो की विवेचना कीजिये।

(४८) भारत की योजनाश्रो मे हीनार्थ प्रबघन को क्या स्थान प्राप्त है ? नियोजित अर्थ-व्यवस्था के दस वर्षों मे हीनार्थ प्रबघन द्वारा उत्पादित दोषो को स्पष्ट कीजिये।

(एम० काम०, विक्रम विश्वविद्यालय)

(४६) निश्चित अर्थ व्यवस्था से आप क्या अर्थ समझते है ? भारतीय योजनाओ के सचालन हेतु निश्चित अर्थ व्यवस्था को क्या महत्व दिया गया है ?

(५०) *द्वितीय पचवर्षीय योजना की विदेशी विनिमय की कठिनाइयो पर* एक निबध लिखिये ।

(५१) प्रथम एव द्वितीय योजना की तुलना करते हुए यह बताइये कि द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास को अधिक महत्व किन परिस्थितियो के कारण दिया गया ?

(५२) द्वितीय योजना के अर्थ प्रबधन पर एक सक्षिप्त निबध लिखिये ।

(५३) देश मे फैली हुई बेरोजगारी के क्या कारण है ? द्वितीय पचवर्षीय योजना इसको दूर करन म कहा तक सफल हुई है ?

(५४) *कर्वे समिति की रिपोर्ट को दृष्टिगत करते हुए द्वितीय पचवर्षीय* योजना म कुटीर और लघु उद्योगो के स्थान पर प्रकाश डालिये । इनका विकास किस सीमा तक देश म बेरोजगारी की समस्या को हल करन म सहायक होगा ?

(बी० काम०, विक्रम विश्वविद्यालय)

(५५) *एक राष्टीय योजना को समाज म आधारभूत सैद्धान्तिक एकता* का प्रतिबिम्ब होना चाहिये इस कथन की व्याख्या कीजिये और बताइये कि भारत की पचवर्षीय योजनायें कहाँ तक ऐसी राष्ट्रीय योजनाएं कही जा सकती हैं जिनको कि जनता का सहयोग प्राप्त हो ।

(५६) *प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत अपन देश* की सामाजिक उन्नति की विवेचना कीजिये ।

(बी० काम०, विक्रम विश्वविद्यालय)

(५७) स्वय स्फूर्त विकास का क्या अर्थ है ? इस अवस्था म प्रवेश करन हेतु *किन किन शर्तों की पूर्ति आवश्यक है ? क्या आप के विचार मे तृतीय योजना* के अन्त तक भारत इस अवस्था म प्रवेश कर लेगा ?

(५८) तृतीय पचवर्षीय योजना की प्रमुख विशेषताओ की विवेचना औद्योगिक प्रगति को विशेष रूप से समझाते हुए कीजिये ।

(५९) तृतीय पचवर्षीय योजना के उद्देश्यो का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिये ।

(६०) द्वितीय एव तृतीय योजना के विनियोजन कार्यक्रमो की तुलना कीजिये और यह बताइये कि तृतीय योजना मे विनियोजन का प्रकार वर्तमान परिस्थितियो के कहाँ तक अनुकूल है ?

(६१) तृतीय पचवर्षीय योजना मे घरेलू साधनो को अधिक महत्व दिया

गया और हीनार्थ प्रबन्धन को यथोचित सीमाओं में रखा गया है—इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

(६२) तृतीय योजना की औद्योगिक नीति एव कार्यक्रमों का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।

(६३) कृषि उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु तृतीय योजना मे सम्मिलित कार्यक्रमो की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

(६४) तृतीय योजना मे समाजवादी समाज की स्थापना हेतु कोई विशेष कार्यक्रम सम्मलित नहीं किये गये हैं, जब कि पिछली दो योजनाओं का अधिकतर लाभ सम्पन्न वर्गों के लोगो को ही प्राप्त हुआ है—इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

(६५) तृतीय योजना मे रोजगार नीति एव कार्यक्रम का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।

(६६) मूल्य नियमन तृतीय योजना का प्रमुख उद्देश्य ही नहीं प्रत्युत इस की सफलतार्थ एक आवश्यक शर्त भी है—इस वाक्य पर अपने विचार प्रकट कीजिये। तृतीय योजना मे मूल्य नियमन हेतु कौन-कौन से कार्यक्रम सम्मिलित किये गये है और उनकी प्रभावशीलता की क्या सम्भावना है ?

(६७) तृतीय योजना की सफलता के लिये किन-किन परिस्थितियों की उपस्थिति आवश्यक है।

(६८) भारत मे दस वर्षीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे होने वाले विकास का सक्षप्ति विवरण दीजिये और यह बताइये कि इस विकास का लाभ भारतीय जन समुदाय के विभिन्न वर्गों को किस सीमा तक प्राप्त हुआ है ?

(६९) तृतीय योजना मे विदेशी विनिमय की आवश्यताओं एवं उनके आयोजन का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।

(७०) "भारतीय आर्थिक नियोजन प्रमुख रूप से एक राजकीय कार्यक्रम है। यहाँ की योजनाओं के निर्माण मे जन-समुदाय को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इन योजनाओं को जन-सहयोग पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नहीं होता है और न इन योजनाओं द्वारा जन साधारण मे जागृति ही उत्पन्न हो सकी है। भारतीय योजनाओं की सफलता इन्हीं कारणों से केवल एक भ्रम मात्र है। जन-साधारण आज भी उसी स्थिति मे है जिस दयनीय स्थिति में वह योजनाओं के सचालन के पूर्व रहता था।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

सहायक ग्रन्थ

1 ARTHUR LEWIS	The Principles of Economic Planning
2 DURBIN	Problems of Economic Planning
3 DICKINSON	Economics of Socialism
4 FERDYNAND ZEWEIG	The Planning of Free Societies
5 BARBARE WOOTON	Freedom Under Planning
6 G D H COLE	Principles of Economic Planning
7 HANSON	Public Enterprize and Economic Development
8 LIPSON	A Planned Economy or Free Enterprize
9 S E HARRIS	Economic Planning
10. MAURICE DOBB	Economic Development of Russia since 1917
11 JAMES MEVOR	An Economic History of Russia
12 CLAVIN HOOVER	The Economic Life of Soviet Russia
13 SAND B WEBB	Soviet Communism
14 VOZNESENSKY	The Economy of The U S S R. During World War II
15 STRUMILIN	Planning in The Soviet Union
16 NICHOLES SPULBER	Economics of East European Countries
17 *UNITED NATIONS*	*Economic Survey of Asia* and The Far East (1949 1955)
8. S ADLER	Chinese Economy 1957)
19	First Five Year Plan for The Development of National Economy of The People's Requblic of China in 1953 57
20 A C BINING	The Rise of American Economic Life
21 *GEORGE SOULE*	*American Economic History*
22 HANSON	American Economy
23 B C A COOK (1957)	'BURMA' Overseas Economic Surveys (Issued by Her Majesty s Stationery Office, London)
24 C N VAKIL	Planning for an Expanding Economy
25 VITHAL BABU	: Towards Planning
26 AGARWAL & SINGH	The Economics of Under-Development

27 NAG	A Study Of Economic Plans for India
28 AGARWAL	Economic Advancement of Under Developed Countries
29 BAWER	Economic Analysis and Policy in Under Developed Countries
30 BALJIT SINGH	Economic Planning in India
31 WADIA & MERCHANT	The Five Year Plan—A Criticism
32 T N RAMASWAMI	Economic Analysis of The Draft Plan
33 KUMARAPPA	Planning for The People by The People
34 N DAS	• Stuides in Indian Economic Problems
35 R. C SAXENA	Public Economics
36 VENKATASUBBIAH	Indian Economy since Independence
37 RANGNEKAR	Poverty and Capital Development in India
38 ALOK GHOSH	Indian Economy
39 TANDON	Economic Planning
40 PALVIA	Econometric Model of Development Planning
41 V V Bhatt	Employment and Capital Formation
42 M L SETH	Theory and Practice of Economic Planning
43 डा० राजकुमार अग्रवाल	रूस का आर्थिक विकास
44 जय प्रकाश नारायण	समाजवाद से सर्वोदय की ओर
45 KENNETH E. BOULIDNG	Principles of Economic policy
46 G D KARWAL	Economic Freedom and Economic Planning
47 DR DALTON	Practical Socialism for Great Britain
48 HERMAN LEVY	New Industrial System
49 CARL LANDAVER	Theory of National Economic Planning
50	First Second and Third Plan Draft Reports
51	First Second and Third Plan Detailed Reports
52	Report of The National Bureau of Economic Research (New York) on Capital Formation Growth
53	U N Committee Report on Measures for The Economic Development of Under Developed Countries

54. A plan For The Economic Development Of India (Bombay Plan)

55 M. N. Roy People's Plan

56 Second Five Year Plan—Progress Report

57 Appraisal and Prospects of The Second Five Year Plan

58. Progress of Selected Projects During Second Plan Period issued b Planning Commission, March 1961

59. Commerce, Eastern Economist, Economic Review, Economic Times Weekly Yojna, Journal of Trade and Industry—Regular and Special Numbers

60. India—1959-1960-1961

61. V. K. R. V Rao : Deficit Financing, Capital Formation and Price Behaviour in Under Developed Countries

62. सर्वोदय नियोजन—अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ प्रकाशन

63 आर्थिक समीक्षा—विशेषांक